हरि बोलौ हरि बोल

भगवान श्री रजनीश

हरि बोलौ हरि बोल

हरि बोलौ हरि बोल....यह बोल जब तुम्हारे भीतर उठेगा, तुम न रह जाओगे। तभी उठ सकता है। तुम मिटो तो ही उठ सकता है। तुम्हारी राख पर ही यह फूल खिलेगा। और लोग मिटना नहीं चाहते। इसलिए लोग सुन भी लेते हैं और सुनते भी नहीं। सुनकर भी अनसुना रखते हैं। देख लेते हैं और देखते नहीं।

मगर याद रहे, आदमी जब तक परमात्मा से न भरे तब तक बांझ है—ऐसा, जैसे वृक्ष हो और फूल न लगें; जैसे किसी स्त्री की कोख से बच्चा जन्म न ले; जैसे पृथ्वी में अंकुर न फूटे; जैसे सूरज हो और अंधेरा गिरे। जब तक आदमी के जीवन में हरि नहीं, तब तक हरियालापन नहीं, हरियाली नहीं। जब तक आदमी के जीवन में हरि नहीं तब तक कुछ भी नहीं। फिर लाख तुम ठीकरे इकट्ठे करो, पद और प्रतिष्ठा और प्रमाण-पत्र जुटाओ, सब कूड़ा-करकट है। तुम किसे धोखा दे रहे हो? सम्पदा तो एक है। उसके बिना आदमी बांझ रह जाता है, इसे याद रखना। उसके बिना आदमी ऐसा है—जैसा चली हुई कारतूस, जिसमें कुछ भी नहीं। दिखती कारतूस जैसी ही है, मगर आत्मा नहीं है। परमात्मा के स्मरण से ही तुम आत्मवान हो।
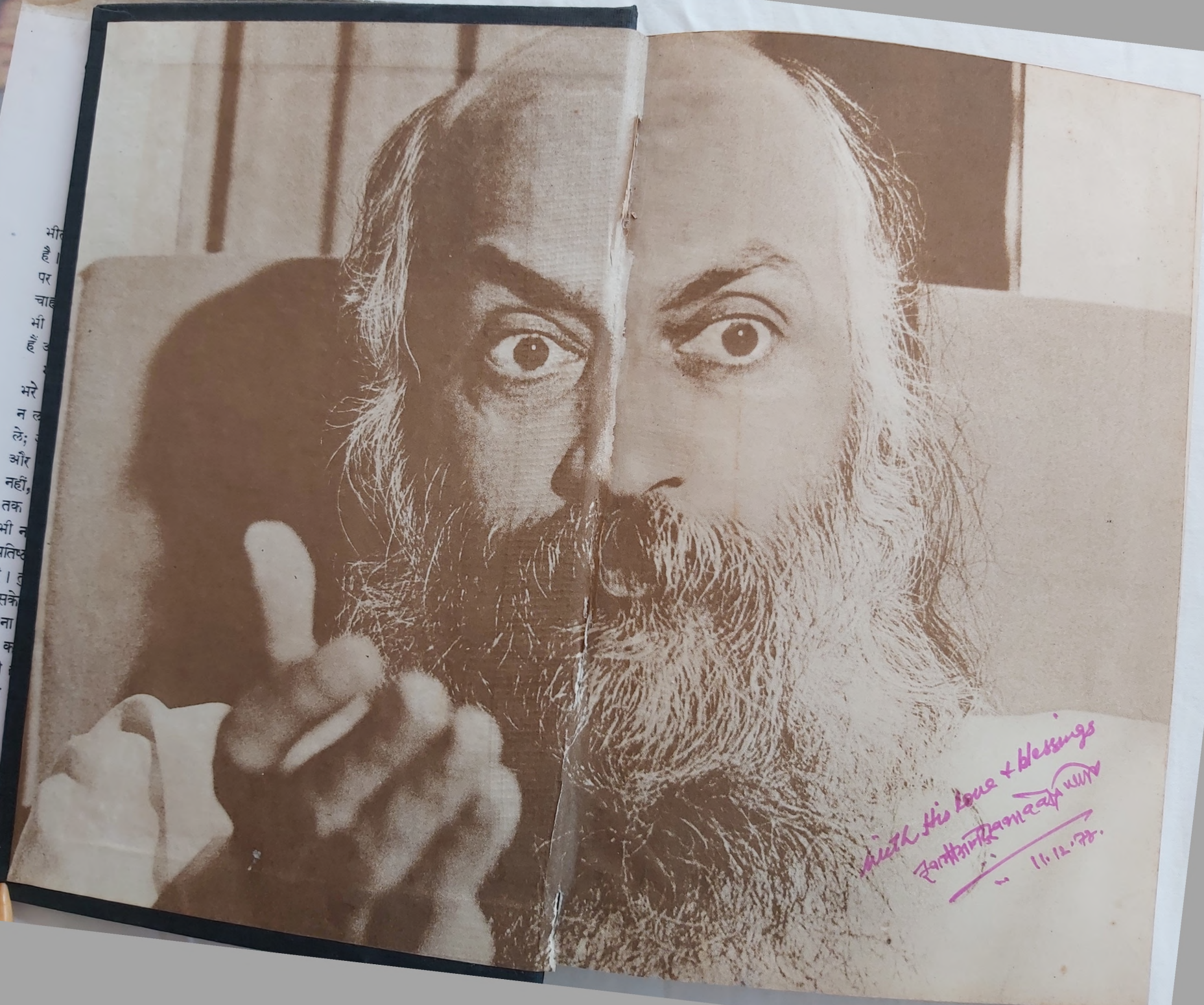
with His Love + blessings
11.12.78.

हरि बोलौ हरि बोल

सुन्दरदास के पदों पर दिनांक १ जून से १० जून, १९७८ तक हुए
भगवान श्री रजनीश के दस अमृत प्रवचनों की प्रथम प्रवचनमाला

नया हिन्दी साहित्य

संतो मगन भया मन मेरा (रज्जब-वाणी)
ज्योति से ज्योति जले (सुन्दर-वाणी)
एस धम्मो सनंतनो : चौथा भाग
ताओ उपनिषद : पांचवां भाग
कृष्ण : मेरी दृष्टि में (नया संस्करण)
गीता-दर्शन : अध्याय १+२
गीता-दर्शन : अध्याय ४+५
संभोग से समाधि की ओर (नया संस्करण)
नेति-नेति
महागीता : सातवां भाग
साधना-पथ

हरि बोलौ हरि बोल

भगवान श्री रजनीश
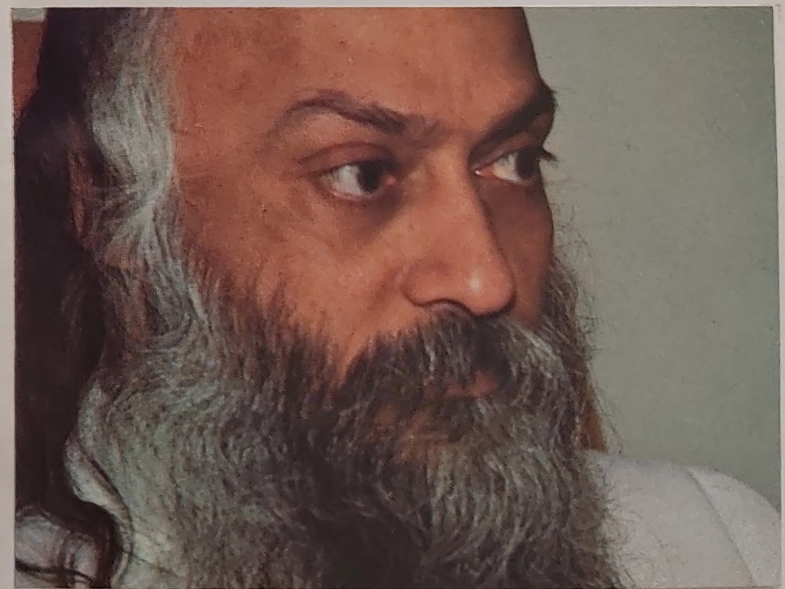
प्रकाशक

मा योग लक्ष्मी,
सचिव, रजनीश फाउंडेशन,
१७--कोरेगांव पार्क,
पूना--४११ ००१

प्रथम संस्करण : ११ दिसम्बर, १९७८
प्रतियां : ३०००
मूल्य : ५०.०० रुपये

मुद्रक :
गो. आ. जोशी
के. जोशी एंड कं.
ब्लॉक मेकर्स एंड आर्ट प्रिंटर्स
निकट भिकारदास मारुति टेंपल
पूना--४११ ०३०

संकलन : मा योग प्रज्ञा
संयोजन : स्वामी नरेंद्र बोधिसत्व
कला-सज्जा : स्वामी आनंद कृष्ण
संपादन : स्वामी चैतन्य कीर्ति

रजनीश फाउंडेशन
१९७८

आमुख

संत सुन्दरदास दादू के शिष्य थे। भगवान श्री का कहना है कि दादू ने बहुत लोग चेताये। दादू महागुरुओं में एक हैं। जितने व्यक्ति दादू से जागे उतने भारतीय संतों में किसी से नहीं जागे।

सुन्दरदास पर उनके बालपन में ही दादू की कृपा हुई। दादू का सुन्दरदास के गांव धौंसा में आना हुआ। सुन्दरदास ने उस अपूर्व क्षण का जिक्र इन शब्दों में किया है--

> दादू जी जब धौंसा आये
> बालपन हम दरसन पाये।
> तिनके चरननि नायौ माथा
> उन दीयो मेरे सिर हाथा।

यह क्रान्ति का क्षण जब सुन्दर के जीवन में आया तब वे सात वर्ष के ही थे। सात वर्ष! लोग हैं कि सत्तर वर्ष के हो जाते हैं तो भी संन्यासी नहीं होते। निश्चित ही अपूर्व प्रतिभा रही होगी सुन्दर की!

भगवान श्री का कहना है--

दादू धौंसा गये, बहुत संभावना यही है कि सुन्दरदास के लिए गये। यही एक हीरा था वहां, जिसकी चमक दादू तक पहुंच रही होगी; जो पत्थरों के बीच रोशन दीये की तरह मालूम पड़ रहा होगा।

सुन्दरदास ने कहा है--

> सुन्दर सत्गुरु आपनैं, किया अनुग्रह आइ।
> मोह-निसा में सोवते, हमको लिया जगाइ॥

दादू ने देख ली होगी झलक। उठा लिया इस बच्चे को हीरे की तरह। और हीरे की तरह ही सुन्दर को सम्हाला। इसलिए 'सुन्दर' नाम दिया उसे। सुन्दर ही रहा होगा बच्चा।

एक ही सौन्दर्य है इस जगत में --परमात्मा की तलाश का सौन्दर्य।

एक ही प्रसाद है इस जगत में--परमात्मा को पाने की आकांक्षा का प्रसाद।

धन्यभागी हैं वे--वे ही केवल सुन्दर हैं--जिनकी आंखों में परमात्मा की छवि बसती है।

तुम्हारी आंखें सुन्दर नहीं होती हैं; तुम्हारी आंखों में कौन बसा है, उसमें सौन्दर्य होता है।

तुम्हारा रूप-रंग सुन्दर नहीं होता; तुम्हारे रूप-रंग में किसकी चाहत बसी है, वहीं सौन्दर्य होता है।

और तुम्हें भी कभी-कभी लगा होगा कि परमात्मा की खोज में चलनेवाले आदमी में एक अपूर्व सौन्दर्य प्रगट होने लगता है। उसके उठने-बैठने में, उसके बोलने में, उसके चुप होने में, उसकी आंख में, उसके हाथ के इशारों में--एक सौन्दर्य प्रगट होने लगता है, जो इस जगत का नहीं है।

'हरि बोलौ हरि बोल' में संकलित ये दस प्रवचन उस अपूर्व सौन्दर्य की ओर आमंत्रण हैं--उन्हें जिनके हृदय में इसकी प्यास जगी है और जो इस प्यास के लिए अपने सारे जीवन को दांव पर लगा सकते हैं।

'सुन्दरदास का हाथ पकड़ो। वे तुम्हें ले चलेंगे उस सरोवर के पास, जिसकी एक घूंट भी सदा को तृप्त कर जाती है।...लेकिन बस सरोवर के पास ले चलेंगे, सरोवर सामने कर देंगे। अंजुली तो तुम्हें बनानी पड़ेगी अपनी। झुकना तो तुम्हें ही पड़ेगा। पीना तो तुम्हें ही पड़ेगा।...लेकिन अगर सुन्दर को समझा तो मार्ग में वे प्यास को भी जगाते चलेंगे। तुम्हारे भीतर सोये हुए चकोर को पुकारेंगे, जो चांद को देखने लगे। तुम्हारे भीतर सोये हुए चातक को जगाएंगे, जो स्वाति की बूंद के लिए तड़पने लगे। तुम्हें समझाएंगे कि तुम मछली की भांति हो जिसका सागर खो गया है और जो किनारे पर तड़प रही है।'

--भगवान श्री रजनीश

अनुक्रम

नीर बिनु मीन दुखी

पहला प्रवचन : दिनांक १ जून, १९७८; श्री रजनीश आश्रम, पूना

नीर बिनु मीन दुखी, छीर बिनु शिशु जैसे,
पीर जाके औषध बिनु कैसे रहयो जात है।
चातक ज्यों स्वाति बूंद, चन्द कौ चकोर जैसे,
चन्दन की चाह करि सर्प अकुलात है।
निर्धन.ज्यौं धन चाहे, कामिनी को कंत चाहै,
ऐसी जाको चाह ताको कछु न सुहात है।
प्रेम कौ प्रभाव ऐसो, प्रेम तहां नेम कैसो,
सुन्दर कहत यह प्रेम ही की बात है।

प्रेम भक्ति यह मैं कही, जानै बिरला कोइ।
हृदय कलुषता क्यों रहै, जा घट ऐसी होइ ॥

सत्य सु दोइ प्रकार, एक सत्य जो बोलिये।
मिथ्या सब संसार, दूसर सत्य सु ब्रह्म है ॥

सुन्दर देखा सोधिकै, सब काहू का ज्ञान।
कोई मन मानै नहीं, बिना निरंजन ध्यान ॥
षट दरसन हम खोजिया, योगी जंगम शेख।
संन्यासी अरु सेवड़ा, पंडित भक्ता भेख ॥

तो भक्त न भावैं, दूरि बतावैं, तीरथ जावैं, फिरि आवैं।
जी कृत्रिम गावैं, पूजा लावैं, झूठ दिढ़ावैं, बहिकावैं ॥
अरुमाला नावैं, तिलक बनावैं, क्यों पावैं गुरु बिन गैला।
दादू का चेला, भरम पछेला, सुन्दर न्यारा ह्वै खेला ॥

हरि बोलौ हरि बोल ! ....बोलने-योग्य कुछ और है भी नहीं, न सुनने-योग्य कुछ और है। बोलो तो हरि बोलो, चुप रहो तो हरि में ही चुप रहो। भीतर जाती श्वास हरि में डूबी हो, बाहर जाती श्वास हरि में डूबी हो। उठो तो हरि में, सोओ तो हरि में। जब हरि तुम्हें सब तरफ से घेर ले, जब हरि तुम्हारी परिक्रमा करे, जब तुम हरि के आवास हो जाओ...जागने में वही तुम्हारी दृष्टि में हो, स्वप्न में वही तुम्हारा स्वप्न भी बने, तुम्हारा रोआं-रोआं उसी में ओत-प्रोत हो जाये, तुम्हारे पास जगह भी न बचे जो उसके अतिरिक्त किसी और को समा ले—जब हरि ऐसा व्याप्त हो जाता है तभी मिलता है।

थोड़ी भी जगह रही हरि से गैर-भरी तो तुम संसार बना लोगे। और एक छोटी-सी बूंद संसार की सागर बन जाती है। एक छोटा-सा बीज, वैज्ञानिक कहते हैं, पूरी पृथ्वी को हरियाली से भर सकता है। एक छोटा-सा बीज, जहां तुम्हारे भीतर हरि नहीं, है, पर्याप्त है तुम्हें भटकाने को—जन्मों-जन्मों तक भटकाने को।

हरि के अतिरिक्त कुछ और न बचे, ऐसी इस नयी यात्रा पर सुन्दरदास के साथ हम चलेंगे। सन्तों में... कवितायें तो बहुत सन्तों ने की हैं, लेकिन काव्य के हिसाब से सुन्दरदास को ही केवल कवि कहा जा सकता है। बाकी के पास कुछ गाने को था, तो गाया है। लेकिन सुन्दर के पास कुछ गाने को भी है और गाने की कला भी है। सुन्दरदास अकेले, सारे निर्गुण सन्तों में, महाकवि के पद पर प्रतिष्ठित हो सकते हैं। जो कहा है वह तो अपूर्व है ही; जैसे कहा है, वह भी अपूर्व है। सन्देश तो प्यारा है ही, सन्देश के शब्द-शब्द भी बड़े बहुमूल्य हैं।

तुम एक महत्त्वपूर्ण अभियान पर निकल रहे हो। इसके पहले कि हम सुन्दरदास के सूत्रों में उतरना शुरू करें...और सीढ़ी-सीढ़ी तुम्हें बड़ी गहराइयों में वे सूत्र ले जायेंगे। ठीक जल-स्रोत तक पहुंचा देंगे। पीना हो तो पी लेना। क्योंकि सन्त केवल प्यास जगा सकते हैं। कहावत है न, घोड़े को नदी ले जा सकते हो, घोड़े को पानी दिखा सकते हो, लेकिन पानी पिला नहीं सकते।

सुन्दरदास का हाथ पकड़ो। वे तुम्हें ले चलेंगे उस सरोवर के पास, जिसकी एक घूंट भी सदा को तृप्त कर जाती है। लेकिन बस सरोवर के पास ले चलेंगे। सरोवर सामने कर देंगे। अंजुली तो तुम्हारी ही बनानी पड़ेगी अपनी। झुकना तो तुम्हें ही पड़ेगा। पीना तो तुम्हें ही पड़ेगा। लेकिन अगर सुन्दर को समझा तो मार्ग में वे प्यास को भी जगाते चलेंगे। तुम्हारे भीतर सोये हुए चकोर को पुकारेंगे, जो चांद को देखने लगे। तुम्हारे भीतर सोये हुए चातक को जगायेंगे, जो स्वाति की बूंद के लिए तड़फने लगे। तुम्हें समझायेंगे कि तुम मछली की भांति हो, जिसका सागर खो गया है और जो किनारे पर तड़फ रही है।

सागर का तुम्हें पता हो या न हो, एक बात का तो तुम्हें पता है जिससे तुम्हें राजी होना पड़ेगा कि तुम तड़फ रहे हो कि तुम परेशान हो, कि तुम पीड़ितहो, कि तुम बेचैन हो, कि तुम्हारे जीवन में कोई राहत की घड़ी नहीं है, कि तुमने जीवन में कोई सुख की किरण नहीं जानी। आशा की है। सुख मिला कब ? सोचा है मिलेगा, मिलेगा, अब मिला तब मिला; पर सदा धोखा होता रहा है। खोजा बहुत है। नहीं कि तुमने कम खोजा है--जन्मों-जन्मों से खोजा है। मगर तुम्हारे हाथ खाली हैं। तुम्हारी खोज गलत दिशाओं में चलती रही है। तुम्हारी खोज तुम्हें सरोवर के पास नहीं लायी--और-और दूर ले गयी है। और धीरे-धीरे तुम्हारे अनुभव ने तुम्हारे भीतर यह बात गहरा दी है कि शायद यहां मिलने को कुछ भी नहीं है। और अगर कोई ऐसा हताश हो जाये कि यहां मिलने को कुछ भी नहीं है, तो फिर मिलने को कुछ भी नहीं है। क्योंकि पैर थक जायेंगे। तुम टूट कर गिर जाओगे।

सुन्दर तुम्हें याद दिलायेंगे : यहां मिलने को बहुत कुछ है। सिर्फ खोजने की कला चाहिये। ठीक दिशा, ठीक आयाम। यहां पाने को बहुत कुछ है। स्वयं परमात्मा यहां छिपा है। लेकिन तुम गलत खोजते रहे हो। तुम कंकड़-पत्थर बीन रहे हो, जहां हीरे की खदानें हैं। तुम्हारी प्यास जगायेंगे, तुम्हारे चातक को जगायेंगे, तुम्हारे चकोर को जगायेंगे। तुम्हारे भीतर एक प्रज्वलित अग्नि पैदा करेंगे। ऐसी घड़ी तुम्हारे भीतर प्यास की आ जायेगी जरूर, जब न-मालूम किस गहराई से हरि बोलौ हरि बोल, ऐसे बोल तुम्हारे भीतर उठेंगे। तभी तुम इन सूत्रों को समझ पाओगे। ये सूत्र ऊपर-ऊपर नहीं हैं, ये प्राणों के अन्तरतम का निवेदन हैं।

इसके पहले कि हम सूत्रों में चलें, सुन्दरदास के सम्बन्ध में दो-चार बातें समझ लेनी जरूरी हैं; वे सहयोगी होंगी।

संयोग की ही बात कहो, सुन्दरदास के पिता का नाम था परमानन्द, और मां का नाम था सती। परमानन्द और सती-- ऐसे दो जीवन-धाराओं के मिलन से यह अपूर्व व्यक्ति पैदा हुआ। तुम्हारे भीतर भी यह जन्म होगा, मगर ये दो धारायें

तुम्हारे भीतर मिलनी चाहिए--आनंद और सत्य। आनंद को तलाशो तो सत्य मिल जाता है, सत्य को तलाशो तो आनन्द मिल जाता है। वे एक-दूसरे के साथ जुड़े हैं--एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

यह संयोग की ही बात है कि पिता का नाम परमानन्द था, मां का नाम सती था। लेकिन सभी सन्त सत्य और आनन्द के मिलन से पैदा होते हैं। पुराने लोग नाम भी बड़े सोचकर रखते थे। अक्सर तो यह होता था कि सारे नाम ही परमात्मा के नाम होते थे। हिन्दुओं के पुराने नाम सोचो, तो वे सब वे ही नाम हैं जो विष्णु-सहस्रनाम में उपलब्ध हैं। परमात्मा के हजार नाम, उन्हीं को हम रख लेते थे आदमियों के नाम। कोई राम, कोई कृष्ण है, कोई विष्णु है। मुसलमानों के नाम सोचो, तो मुसलमानों में सौ नाम हैं परमात्मा के। अगर उनके नाम तुम खोजने चलोगे तो तुम पाओगे सभी नाम परमात्मा के नाम से बने हैं। फिर चाहे रहीम हो और चाहे रहमान हो, चाहे अब्दुल्लाह हो--ये सब परमात्मा के ही नाम हैं। अब्दुल्लाह यानी अब्द अल्लाह।

पुराने लोग आदमी को नाम परमात्मा का देते थे। क्यों ? क्योंकि बार-बार पुकारे जाने से चोट पड़ती है। अगर तुम्हारा नाम राम है, तो रावण होना जरा कठिन हो जायेगा। और कौन जाने, किस शुभ घड़ी में तुम्हारा नाम ही तुम्हारे भीतर तीर की तरह चुभ जाये। शुरू तो नाम से हुआ था। किस दिन यह नाम सत्य बन जाये, कोई भी नहीं कह सकता। यह नाम सत्य बन सकता है।

इसलिए मैं भी तुम्हें संन्यास देता हूं तो तुम्हें नये नाम देता हूं। नाम ऐसे, जो परम से जुड़े हैं। तुम बहुत दूर हो अभी वहां से। लेकिन तुम्हें याद तो दिलानी जरूरी है कि तुम दूर कितने ही होओ, मंजिल तुम्हारी वहां है, जाना वहां है, पहुंचना वहां है। वहां नहीं पहुंचे तो जिन्दगी व्यर्थ गयी, कचरे में गयी।

याद रखना, नाम एक याद्दाश्त है। लेकिन यह संयोग की बात कि सुन्दरदास का जन्म हुआ-- मां थी सती, पिता थे परमानन्द। तुम्हारे भीतर भी इन दो का मिलन हो सकता है, तुम्हारा भी सन्तत्व जन्म सकता है।

सुन्दरदास का संन्यास बहुत अनूठा है, भरोसे-योग्य नहीं। तुम चौंकोगे जानोगे तो। सात वर्ष के थे, तब वे संन्यस्त हुए। सात वर्ष ! लोग सत्तर वर्ष में भी संन्यासी नहीं होते। अपूर्व प्रतिभा रही होगी।

प्रतिभा का लक्षण क्या है ? प्रतिभा का लक्षण है एक ही, कि दूसरे जिस बात को अनुभव से नहीं समझ पाते, उसको प्रतिभाशाली दूसरों के अनुभव से समझ लेता है। बुद्धू अपने अनुभव से नहीं समझ पाते, बुद्धिमान दूसरों के अनुभव से समझ लेता है।

ययाति की कथा है उपनिषदों में। ययाति की मौत आयी। वह सौ वर्ष का हो गया था। लेकिन रोने लगा, गिड़गिड़ाने लगा। मौत के चरण पकड़ लिए। कहा, मुझे क्षमा कर! मैं तो भूल ही गया कि मरना है। तो मैं तो कुछ कर ही नहीं पाया। राम-नाम भी नहीं ले पाया। यह सोच कर कि सौ वर्ष तो जीना है, जल्दी क्या है, ले लेंगे, टालता रहा। और हजार कामों में उलझ गया। बाजार में ही पड़ा रहा। यह ज्यादती हो जायेगी, मुझे क्षमा कर! भूल मेरी है। मुझे क्षमा कर। सौ वर्ष मुझे और चाहिये।

मौत ने कहा, किसी को तो ले जाना पड़ेगा। तुम्हारा कोई बेटा जाने को राजी हो तो चला जाये, तो तुम्हें मैं छोड़ दूं।

मौत को भरोसा था कि जब सौ साल का बूढ़ा जाने को राजी नहीं है तो उसके बेटे जाने को क्यों राजी होंगे। ययाति के सौ बेटे थे। अनेक रानियां थीं उसकी। सम्राट था। उसने अपने बेटों की तरफ देखा, कोई सत्तर साल का था, कोई पचहत्तर साल का था। उन्होंने सब नीचे सिर झुका लिए। एक बेटे ने जिसकी उम्र अभी ज्यादा नहीं थी, अठारह ही साल थी, सबसे छोटा बेटा था, वह खड़ा हो गया, उसने कहा कि मैं चलता हूं। मौत को भी दया आ गयी। मौत को ऐसे दया आती नहीं। दया आने लगे तो मौत का काम न चले। मौत की तो बात छोड़ो, मौत के साथ जो लोग काम करते हैं उन तक की दया खो जाती है--डॉक्टर इत्यादि। डॉक्टर को दया आने लगे तो खुद ही की फांसी लग जाये। चौबीस घन्टे मौत का धंधा करते-करते बीमारी से लड़ते-लड़ते कठोर हो जाता है। हो ही जाना पड़ता है। अगर हर बीमारी में बैठकर रोने लगे डॉक्टर भी, और जब भी कोई मरीज आये उसको मुश्किल खड़ी हो जाये, भावावेश से भर जाये, तो जीना मुश्किल हो जाये; मरीज तो दूर, वह खुद ही मरीज हो जाये।

तो मौत तो जन्मों-जन्मों से लोगों को ले जाती रही है। ले जाना उसका काम है। मगर कहते हैं उसे भी दया आ गयी। दया आ गयी इस भोले-भाले लड़के पर। अभी इसने जिन्दगी देखी नहीं। अभी इसको कुछ पता ही नहीं है। उसने उस लड़के के कान में कहा, पागल! तेरा बाप सौ साल का होकर नहीं मरना चाहता, और तू अभी अठारह का है, कुछ तो सोच! तेरे भाई, कोई सत्तर, कोई पचहत्तर, वे भी नहीं मरना चाहते, तू कुछ तो सोच, तूने अभी जिन्दगी देखी नहीं कुछ...!

उस लड़के ने, पता है, मौत को क्या कहा? उस लड़के ने कहा, जब मेरे पिता सौ साल के होकर भी जीवन से तृप्त नहीं हुए, मेरे भाई पचहत्तर साल के होकर जीवन से तृप्त नहीं हुए, सत्तर साल के होकर जीवन से तृप्त नहीं हुए, तो मैं जीकर क्या करूंगा? इनका अनुभव काफी है। अतृप्त ही जाना है, सौ साल के बाद जाना

है, तो इतने दिन और क्यों परेशान होना? मैं अभी चलने को राजी हूं।

इसे कहते हैं प्रतिभा! दूसरे के अनुभव से सीख लिया। और तुम्हें पता है, ययाति सौ साल जिया। यह बेटा चला गया। सौ साल जब जीना था तो फिर निश्चिन्त हो गया कि अब जल्दी क्या है। फिर मौत आयी और फिर वही घटना घटी। फिर गिड़गिड़ाने लगा कि मुझे क्षमा करो। मैं तो यह सोच कर कि सौ साल जीना है, फिर भूल गया। एक बार मौका और दे दो।

और ऐसा कहते हैं ययाति को दस बार मौके दिये गये। वह हजार साल जिया, लेकिन हजारवें साल भी वह मौत के पैर में गिड़गिड़ा रहा था। मौत ने कहा, अब बहुत हो गया। एक सीमा होती है।

और तुम ययाति की कहानी को कहानी ही मत समझना। यह तुम्हारी कहानी है। तुम कितने बार जी चुके हो, कितनी बार तुमने जिंदगी मांग ली है--फिर, फिर, फिर! हर बार मरे हो, फिर जिंदगी मांगकर आ गये हो। यही तो आदमी की कहानी है। आदमी मर रहा है, खाट पर पड़ा है और जिंदगी को मांग रहा है, पकड़ रहा है पैर मौत के, कि एक बार और। लौट आएगा, जल्दी किसी गर्भ में समा-येगा, जल्दी फिर वापिस आ जाएगा। ...ऐसे तुम कितनी ही बार आ गये हो और जैसे ययाति भूल-भूल गया था, तुम भी भूल-भूल गये हो।

बुद्धिमान दूसरे के अनुभव से सीख लेता है। उस बेटे ने ठीक कहा कि जब ये सब मेरे भाई, निन्यानबे मेरे भाई, मेरा पिता, ये इतने दिन जीकर कुछ नहीं पा सके और गिड़गिड़ा रहे हैं पिता, सौ साल के बाद क्या गिड़गिड़ाना, अभी शान से चलने को साथ तैयार हूं। बात व्यर्थ हो गयी मेरे लिए। यहां कुछ मिलने का नहीं है। यहां सिर्फ भटकना है, दौड़ना है और गिरना है। गिरने के पहले जाने की तैयारी है मेरी। मैं चलता हूं। मेरे लिए संसार व्यर्थ हो गया।

ऐसी ही घटना कुछ घटी सुंदर के जीवन में। सात साल के थे। दादू का गांव में आगमन हुआ। जैसे दादू ने रज्जब को चेताया, ऐसे ही सुन्दरदास को भी चेताया। दादू ने बहुत लोग चेताये। दादू महागुरुओं में एक हैं। जितने व्यक्ति दादू से जागे उतने भारतीय संतों में किसी से नहीं जागे।

दादू का गांव में आना हुआ। राजस्थान का छोटा-सा गांव, धौसा। कहा है सुन्दरदास ने--

दादू जी जब धौसा आय। बालपन हम दरसन पाये।
तिनके चरननि नायौ माथा, उन दीयो मेरे सिर हाथा।

सात वर्ष के थे।

ख्याल करो, मनुष्य के जीवन में प्रत्येक सात वर्ष के बाद क्रान्ति का क्षण होता

है। जैसे चौबीस घन्टे में दि न का एक वर्तुल पूरा होता है, ऐसे सात वर्ष में चित्त की सारी वृत्तियों का वर्तुल पूरा होता है। हर सात वर्ष में वह घड़ी होती है कि अगर चाहो तो निकल भागो। हर सात वर्ष में एक बार द्वार खुलता है। सात साल का जब बच्चा होता है तब द्वार खुलता है। फिर चौदह साल का होता है तब द्वार खुलता है, फिर इक्कीस साल का होता है तब द्वार खुलता है। हर सात वर्ष में एक बार द्वार खुलता है। और अगर चूक गये तो फिर सात साल के लिए गहरी नींद हो जाती है।

हर सात साल में तुम परमात्मा के बहुत करीब होते हो। जरा-सा हाथ बढ़ाओ कि पा लो। इसी सात साल को हिसाब में रखकर हिन्दुओं ने तय किया था कि पचास साल की उम्र में व्यक्ति को वानप्रस्थ हो जाना चाहिये। उनचास साल में सातवां चक्र पूरा होता है। तो पचासवें साल का मतलब है, उनचास साल के बाद, जल्दी कर लेनी चाहिये। आदमी अब सत्तर साल जीता है। वह सौ साल के हिसाब से बांटा गया था। अब आदमी सत्तर साल जीता है।

तो तुम्हारे जीवन में थोड़े मौके नहीं आते, बहुत मौके आते हैं, लेकिन हर मौका अपने साथ बड़े आकर्षण भी लेकर आता है; दरवाजा भी खुलता है और संसार भी अपनी पूरी मनमोहकता में प्रगट होता है। सात साल का बच्चा अगर जरा जाग जाये, या सद्गुरु का साथ मिल जाये, तो क्रान्ति घट सकती है, क्योंकि यह घड़ी है जब अहंकार पैदा होता है। और यही घड़ी है कि अगर इसी घड़ी में कोई अपने को सम्हाल ले तो सदा के लिए निरहंकारी हो जाता है। अहंकार के पैदा होने का मौका ही नहीं आता।

तुमने देखा, सात साल के बाद बच्चे हर बात में नहीं कहने लगते हैं। तुम कहो, ऐसा नहीं करो; वे कहेंगे, करेंगे! कहें न, तो भी करके दिखायेंगे, करेंगे। तुम कहो सिगरेट मत पीना, वे पियेंगे। तुम कहो, सिनेमा मत जाना; वे जायेंगे। तुम कहो ऐसा नहीं, वे वैसा ही करेंगे।

सात साल के बाद बच्चे के भीतर अहंकार पैदा होता है कि मैं कुछ हूं, मुझे अपनी घोषणा करनी है जगत के सामने। बच्चा आक्रमक होने लगता है। यही घड़ी है जब अहंकार जन्म लेता है। और जब अहंकार जन्म लेता है, उसी का दूसरा पहलू है: अगर संयोग मिल जाये, सौभाग्य हो, सामर्थ्य हो, प्रतिभा हो, तो आदमी निर-अहंकार में सरक जा सकता है।

यह ख्याल रखना। दोनों चीजें एक साथ होती हैं--या तो अहंकार में सरकना होगा और या निर-अहंकार में। या तो दरवाजे से बाहर निकल जाओ या दरवाजा बन्द कर दो, दरवाजे के विपरीत चल पड़ो। ऐसा ही फिर चौदह साल में होता है, कामवासना का जन्म होता है। या तो कामवासना में उतर जाओ और या ब्रह्मचर्य

में। वह संभावना भी करीब है, उतने ही करीब है।

ऐसा ही फिर इक्कीस साल में होता है। या तो प्रतिस्पर्धा में उतर जाओ जगत की--ईर्ष्या, संघर्ष, प्रतियोगिता, द्वेष--और या अप्रतियोगी हो जाओ।

ऐसा ही फिर अट्ठाईस साल की उम्र में होता है। या तो संग्रह में पड़ जाओ, परिग्रह में पड़ जाओ--इकट्ठा कर लूं, इकट्ठा कर लूं, इकट्ठा कर लूं--या अपरिग्रही हो जाओ, देख लो कि इकट्ठा करने से क्या इकट्ठा होगा? मैं भीतर तो दरिद्र हूं और दरिद्र रहूंगा। ऐसा ही फिर पैंतीस साल की उम्र में होता है। पैंतीस साल की उम्र में तुम अपनी मध्यावस्था में आ जाते हो। दुपहरी आती है जीवन की। या तो तुम समझो कि अब ढलान के दिन आ गये, अब रूपान्तरण करूं। अब वक्त आ गया, उतार की घड़ी आ गयी, अब जिन्दगी रोज-रोज उतरेगी, अब सूरज ढलेगा और सांझ करीब आने लगी।

पैंतीस साल की उम्र में सुबह भी उतनी दूर है, सांझ भी उतनी दूर है। तुम ठीक मध्य में खड़े हो। लेकिन अधिक लोग बजाय समझने के कि मौत करीब आ रही है, अब हम मौत की तैयारी करें; मौत करीब आ रही है, यह सोच कर हम कैसे मौत से बचें, इसकी चेष्टा में लग जाते हैं। इसलिए दुनिया की सर्वाधिक बीमारियां पैंतीस साल और बयालीस साल के बीच में पैदा होती हैं। तुम लड़ने लगते हो मौत से। मौत से लड़ोगे, जीतोगे कहां? जितने हार्ट-अटैक होते हैं, जितने मानसिक तनाव होते हैं, वे पैंतीस और बयालीस के बीच में होते हैं। यह बड़े संघर्ष का समय है।

अगर पैंतीस साल की उम्र में एक व्यक्ति समझ ले कि मौत तो आनी ही है; लड़ना कहां है, स्वीकार कर ले; न केवल स्वीकार कर ले बल्कि मौत की तैयारी करने लगे, मौत का आयोजन करने लगे . . .। और ध्यान रखना, जैसे जीवन का शिक्षण है, ऐसे ही मौत का भी शिक्षण है। अच्छी दुनिया होगी होगी कभी-- और कभी वैसी दुनिया थी भी--तो जैसे जीवन को सिखानेवाले विद्यापीठ हैं, वैसे ही मृत्यु को सिखानेवाले विद्यापीठ भी थे। अभी दुनिया की शिक्षा अधूरी है। यह तुम्हें, जीना कैसे, यह तो सिखा देती है; लेकिन यह नहीं सिखाती कि मरना कैसे। और मरना है अन्त में।

तो तुम्हारा ज्ञान अधूरा है। तुम्हारी नाव ऐसी है कि तुम्हारे हाथ में एक पतवार दे दी है और दूसरी पतवार नहीं है। तुमने कभी देखा, एक पतवार से नाव चलाकर देखी? अगर तुम एक पतवार से नाव चलाओगे तो नाव गोल-गोल घूमेगी, कहीं जायेगी नहीं। उस पार तो जा ही नहीं सकती, बस गोल-गोल चक्कर मारेगी। दो पतवार चाहिये। दोनों के सहारे उस पार जाया जा सकता है। लोगों को जीवन की शिक्षा तुम दे देते हो। बस नाव उनकी गोल-गोल घूमने लगती है। वह जीवन

के चक्कर में पड़ जाते हैं।

संसार का अर्थ होता है : चक्कर में पड़ जाना।

पैंतीस साल की उम्र में मौका है; फिर द्वार खुलता है एक घड़ी को। मौत की झलकें आनी शुरू हो जाती हैं। जिन्दगी पर हाथ खिसकने शुरू हो जाते हैं। भय के कारण लोग जोर से पकड़ने लगते हैं जिन्दगी को। और जोर से पकड़ोगे तो बुरी तरह हारोगे, टूटोगे। अपनी मौज से छोड़ तो कोई तुम्हें तोड़नेवाला नहीं है। समझकर छोड़ दो।

और बयालीस साल की उम्र में कामवासना क्षीण होने लगती है। जैसे चौदह साल की उम्र में कामवासना पैदा होती है वैसे बयालीस साल की उम्र में कामवासना क्षीण होती है। यह प्राकृतिक क्रम है। लेकिन आदमी परेशान हो जाता है, बयालीस साल में जब वह पाता है कामवासना क्षीण होने लगी——और वही तो उसकी जिन्दगी रही अब तक——तो चला चिकित्सकों के पास। चला डॉक्टरों के पास, हकीमों के पास।

तुमने दीवालों पर जो पोस्टर लगे देखे हैं——'शक्ति बढ़ाने के उपाय'; 'गुप्त रोगों को दूर करने के उपाय'——अगर तुम उन डॉक्टरों के पास जाकर देखो तो तुम हैरान होओगे। उनके पास तुम जो लोग पाओगे वे बयालीस साल की उम्र के करीब के लोग पाओगे, उनके बैठकखाने में जो तुम्हें बैठे मिलेंगे। क्योंकि कामवासना क्षीण हो रही है, शरीर से ऊर्जा जा रही है, अब वे चाहते हैं कि कोई चमत्कार हो जाये, कोई जड़ी-बूटी मिल जाये, कोई औषधि मिल जाये। नहीं कोई औषधि है कहीं, लेकिन इनका शोषण करने के लिए लोग बैठे हुए हैं——वैद्य, चिकित्सक, हकीम... हकीम वीरूमल! इस तरह के लोग बैठे हुए हैं। और यह धन्धा ऐसा है कि इसमें पकड़ाया नहीं जा सकता, क्योंकि जो आदमी आता है वह पहले तो छिपे-छिपे आता है। वह किसी को बताना भी नहीं चाहता कि मैं जा किसलिए रहा हूं। वह जब उसको कोई सफलता नहीं मिलती, तो दूसरे वीरूमल का द्वार खटखटायेगा। मगर कह भी नहीं सकता किसी को कि यह दवा काम नहीं आयी। दवायें कभी काम आयी हैं? पागलपन है।

और किसी भी तरह की मूढ़ता की बातें चलती हैं——मन्त्र चलते, तन्त्र चलते, ताबीज चलते, तान्त्रिकों की सेवा चलती कि शायद कोई चमत्कार कर देगा। और जो जीवन-ऊर्जा जा रही है मेरे हाथ से, वह मैं वापिस पा लूंगा, फिर मैं जवान हो जाऊंगा!

बयालीस साल की उम्र घड़ी है कि आ गया क्षण, जब तुम कामवासना को जाने दो। अब राम की वासना के जगने का क्षण आ गया। काम जाये तो राम का

आगमन हो। फिर द्वार खुलता है, मगर तुम चूक जाते हो।

ऐसे ही हर सात वर्ष पर द्वार खुलता चला जाता है। जो पहले ही सात वर्ष पर जाग गया है वह अपूर्व प्रतिभा का धनी रहा होगा। हो सकता है, दादू इस छोटे से बच्चे की तलाश में ही धौसा आये हों। क्योंकि सद्गुरु ऐसे ही नहीं आते।

कहानी है बुद्ध के जीवन में कि वे एक गांव गये। उनके शिष्यों ने कहा भी कि उस गांव में कोई अर्थ नहीं है जाने से। छोटे-मोटे लोग हैं, किसान हैं। कोई समझेगा भी नहीं आपकी बात। वैशाली करीब है, आप राजधानी चलिये। इस छोटे गांव में ठहरने की जगह भी नहीं है। मगर बुद्ध ने तो जिद्द ही बांध रखी है कि उसी गांव जाना है। उस गांव के बिना जाये वैशाली नहीं जायेंगे। नाहक का चक्कर है। उस गांव में जाने का मतलब दस-बीस मील और पैदल चलना पड़ेगा। नहीं माने, तो गये। जब गांव के करीब पहुंच रहे थे तब एक छोटी-सी लड़की ने, उसकी उम्र कोई पन्द्रह साल से ज्यादा नहीं रही होगी, वह खेत की तरफ जा रही थी अपने पिता के लिए भोजन लेकर, वह रास्ते में मिली, उसने बुद्ध के चरणों में सिर झुकाया और कहा कि प्रवचन शुरू मत कर देना जब तक मैं न आ जाऊं। और किसी ने तो ध्यान ही नहीं दिया इस बात पर। गांव में पहुंच गये, लोग इकट्ठे हो गये। छोटा गांव है. लेकिन बुद्ध आये, यह सौभाग्य है। सोचा भी नहीं था कि इस गांव में बुद्ध का आगमन होगा। सारा गांव इकट्ठा हो गया। सब बैठे हैं कि अब बुद्ध कुछ बोलें। और बुद्ध बैठे हैं कि वे देख रहे हैं।

आखिर किसी ने खड़े होकर कहा कि महाराज, आप कुछ बोलें। उन्होंने कहा कि मैं किसी की प्रतीक्षा कर रहा हूं। उस आदमी ने चारों तरफ देखा; उसने कहा, गांव के हर आदमी को मैं पहचानता हूं। थोड़े ही आदमी हैं, सौ-पचास। सब यहां मौजूद हैं, आप किसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं?

बुद्ध ने कहा, तुम ठहरो। वह लड़की भागी हुई आयी। और जैसे ही वह लड़की आकर बैठी, बुद्ध बोले। बुद्ध ने कहा, मैं इस लड़की की प्रतीक्षा करता था। सच तो यह है, मैं इसी के लिए आया हूं।

दादू धौसा गये, बहुत संभावना यही है कि सुन्दरदास के लिये गये। यही एक हीरा था वहां, जिसकी चमक दादू तक पहुंच रही होगी; जो पत्थर के बीच रोशन दीये की तरह मालूम पड़ रहा होगा। उसकी तलाश में गये थे।

सुन्दरदास ने कहा है——

सुन्दर सत्गुरु आपनैं, किया अनुग्रह आइ।
मोह-निसा में सोवते हमको लिया जगाइ।

सात वर्ष के बच्चे को संन्यास दिया। ऐसे कुछ छोटे बच्चे यहां भी हैं। मुझसे

लोग आकर पूछते हैं कि आप इतने-से बच्चे को क्यों संन्यास दे रहे हैं ? तुमने दादू से भी पूछा होता कि सुन्दर को क्यों संन्यास दे रहो हो ? सात साल का बच्चा है, अभी इसने देखा क्या, जाना क्या ? लेकिन सच यह है कि यहां कौन है जो बच्चा है ? जन्मों-जन्मों की लम्बी यात्रा हरेक के पीछे है। सब जाना जा चुका, बहुत बार जाना जा चुका, बार-बार जाना जा चुका। यहां छोटा बच्चा कौन है ? यह जगत कुछ नया तो नहीं है; बहुत पुराना है, बहुत पुराना है। बड़ा पुरातन है। और तुम यहां सदा से हो। यह देह तुम्हारी पहली देह तो नहीं। न मालूम कितनी देहों में तुम बसे हो ! हो सकता है, इस देह में नये मालूम हो रहे हो; देह नयी होगी, मगर तुम नये नहीं हो।

दादू ने देख ली होगी झलक। उठा लिया इस बच्चे को हीरे की तरह। और हीरे की तरह ही सुन्दर को सम्हाला। इसलिए 'सुन्दर' नाम दिया उसे। सुन्दर ही रहा होगा बच्चा।

यही सौंदर्य है एकमात्र कि आदमी परमात्मा की प्यास में तड़पे। और तड़प ऐसी हो कि सारे जीवन को दांव पर लगा दे। सत्तर साल का आदमी भी दांव लगाने के लिए तैयार नहीं; पास बचा भी नहीं कुछ दांव लगाने को। हड्डी-मांस-मज्जा रह गयी है, सूख गयी है; मगर दांव लगाने को राजी नहीं है। कुछ बचा भी नहीं है दांव लगाने को। कुछ गंवाने का भी नहीं है अब, सब गंवा ही चुका है। चली-चलाई कारतूस है। मगर फिर भी फन मारकर बैठा है चली-चलाई कारतूस पर कि बचा लूं, कुछ चूक न चला जाये, कुछ छूट न जाये हाथ से।

अभी यह बच्चा तो नया-नया था। दादू ने इसे सुन्दर नाम दिया। एक ही सौंदर्य है इस जगत में--परमात्मा की तलाश का सौंदर्य। एक ही प्रसाद है इस जगत में--परमात्मा को पाने की आकांक्षा का प्रसाद। धन्यभागी हैं वे, वे ही केवल 'सुन्दर' हैं, जिनकी आंखों में परमात्मा की छवि बसती है। तुम्हारी आंखें सुन्दर नहीं होती हैं; तुम्हारी आंखों में कौन बसा है, उसमें सौंदर्य होता है। तुम्हारा रूप-रंग सुन्दर नहीं होता; तुम्हारे रूप-रंग में किसकी चाहत बसी है, वहीं सौंदर्य होता है। और तुम्हें भी कभी-कभी लगा होगा कि परमात्मा की खोज में चलनेवाले आदमी में एक अपूर्व सौंदर्य प्रगट होने लगता है। उसके उठने-बैठने में, उसके बोलने में, उसके चुप होने में, उसकी आंख में, उसके हाथ के इशारों में--एक सौंदर्य प्रगट होने लगता है, जो इस जगत का नहीं है।

दादू ने सुन्दर को बड़े प्रेम से पाला-पोसा। खूब प्रेम की बरसा की उस पर। हीरा था, खूब निखारा उसे। और अपने सारे शिष्यों को कहा था, सुन्दर की चिन्ता लो, सुन्दर की फिक्र करो, इसमें से कुछ महिमाशाली प्रगट होने को है। और

महिमाशाली प्रगट हुआ।

दादूदयाल की मृत्यु के बाद दादू सौंप गये थे रज्जब को कि सुन्दर को सम्हालना। और जैसे रज्जब के जीवन में घटना घटी, कि दादूदयाल की मृत्यु के बाद रज्जब ने फिर आंखें नहीं खोलीं। कहा कि अब क्या आंख खोलनी ? जो देखने-योग्य था, देख लिया। जो देखने में नहीं आता, वह देख लिया। जो आंखों के पार है वह आंखों में झलक गया। अब क्या आंख खोलनी ? अब इस जगत में क्या रखा है ? रहे कुछ वर्ष जिन्दा, लेकिन फिर आंख नहीं खोली। जिन्दा रहे और अंधे की तरह रहे।

जैसे यह रज्जब के जीवन में अपूर्व घटना घटी कि दादू के मर जाने के बाद उन्होंने आंख नहीं खोली...। उस प्यारे गुरु के जाने के बाद आंख खोलने का कोई कारण नहीं रहा। बहुत लोगों ने समझाया कि सूरज बहुत सुन्दर है, चांद-तारे बहुत सुन्दर हैं, फूल खिले हैं। लोग आयें, लेकिन रज्जब कहते, अब कोई फूल ज्यादा सुन्दर नहीं हो सकता और अब कोई सूरज उससे ज्यादा प्रकाशवान नहीं हो सकता। अब तुम चांद-तारों की बात मत करो, मैंने चांद-तारों के मालिक को देखा है। आंख बंद करके अब मुझे उसी के साथ रहने दो। अब बाहर देखने को मेरे लिए कुछ नहीं। आंख खोलता इसलिए था कि दादू थे, अब क्या खोलनी ? अब देह लुप्त हो गई दादू की। अब तो भीतर ही देख लेता हूं। अब तो भीतर ही उनके साथ मुझे रचा रहने दो।

ऐसी ही घटना फिर सुन्दर के जीवन में घटी। दादू तो जल्दी चल बसे, बच्चा छोटा था, दादू वृद्ध थे। रज्जब को सौंप गये थे। रज्जब ने सम्हाला। लेकिन छोटा बच्चा था, रज्जब भी चल बसे एक दिन। तब दादू के चले जाने के बाद, फिर रज्जब के चले जाने के बाद, सुन्दर पर क्या घटी ? फिर एक अनूठी घटना घटी। ये घटनाएं समझने जैसी हैं। क्योंकि ये घटनाएं तुम्हारे और मेरे बीच घट रही हैं और घटेंगी, इसलिए समझ लेना उपयोगी है। जब रज्जब चल बसे तो रज्जब के चलने के कुछ ही दिन पहले--दूर था सुन्दर, काशी में था-- एकदम भागना शुरू किया काशी से। रज्जब तो थे राजस्थान में--सांगानेर में। लम्बी यात्रा थी। मित्रों ने कहा, शिष्यों ने कहा--अब तो सुन्दर के भी शिष्य थे, उसके पीछे भी प्यासे इकट्ठे होने लगे थे--उन्होंने कहा, कहां भागे जाते हो, इतनी जल्दी क्या है ? लेकिन सुन्दर ने कहा, अब देर नहीं। रुकते भी न थे विश्राम करने को मार्गों में। किसी तरह बस पहुंच जाना है सांगानेर। और इधर रज्जब की सांसें अटकी थीं। और वे बार-बार आंख खोलकर देखते थे, पूछते थे : 'सुन्दर पहुंचा, नहीं पहुंचा ?' और जैसे ही सुन्दर का आगमन हुआ और रज्जब ने सुन्दर को देखा, पास लिया। देखा...बाहर की आंख तो वे

खोलते नहीं थे, भीतर की आंख से ही देखा। रज्जब को शान्ति मिली, वे लेट गये। सुन्दर का हाथ हाथ में ले लिया और चलब से।

सुन्दर पर क्या गुजरी ? सुन्दर जवान था, परिपूर्ण स्वस्थ था, लेकिन उसी क्षण से बीमार हो गया। जिस बिस्तर पर रज्जब मरे, उसी बिस्तर पर सुन्दर मरा। वहीं बीमार हो गया। यह बीमारी इतनी अकस्मात थी। पूछा मित्रों ने, क्या हुआ ? शिष्यों ने पूछा, क्या हुआ ? भले-चंगे आये थे। लेकिन सुन्दर ने कहा : अब... अब जीने का कोई कारण नहीं। अब जीने का कोई रस नहीं। अपनी तरफ से रस चला ही गया था। अपनी तरफ से तो जीने का कोई कारण नहीं था। लेकिन रज्जब बूढ़े हैं, मैं मर जाऊं तो इनको धक्का न लगे, इसलिए जी रहा था। अब कोई वजह नहीं, अब कोई कारण नहीं है। दादू गये, रज्जब गये, अब मैं भी जाता हूं।

सांगानेर में एक शिलालेख मिला है, जिस पर ये वचन खुदे हैं——

संवत् सत्रासै छीयाला। काती सुदी अष्टमी उजीयाला।
तीजे पहर बृहसपतवार। सुन्दर मिलिया सुन्दरदास।

प्यारा वचन है——सुन्दर मिलिया सुन्दरदास ! मृत्यु की बात ही नहीं की। सुन्दरदास को सुन्दर मिल गया——परम सुन्दर को मिल गया ! जिसकी तलाश थी उसमें डूब गया। देह की छोटी-सी, झीनी-सी आड़ थी, वह भी छूटी।

मृत्यु को ऐसे ही देखना——सुन्दर मिलिया सुन्दरदास ! मृत्यु शत्रु नहीं है। मृत्यु तुमसे कुछ भी छीनती नहीं, सिर्फ बीच के पर्दे हटाती है। मृत्यु तुम्हें कुछ देने आती है, लेने नहीं आती। मगर तुम इतने जोर से पकड़े हुए हो व्यर्थ की चीजों को कि तुम्हें लगता है कि मृत्यु कुछ छीनने आती है। तुम मृत्यु को शत्रु मानकर बैठे हो, वह तुम्हारी जीवन के प्रति केवल आसक्ति के कारण। जिस दिन जीवन की आसक्ति नहीं, मृत्यु मित्र है——परममित्र है——परम कल्याणकारी है।

सुन्दर मिलिया सुन्दरदास। अब तक तो सुन्दर के दास थे, सुन्दरदास ने कहा, अब सुन्दर हुए। अभी तो सुन्दर केवल उसके दास होने के कारण थे, अभी तो प्रतिफलित होती थी उसकी आभा। अभी तो थोड़ी-थोड़ी झलक उसकी पड़ती थी। थोड़ी-थोड़ी गीत की कड़ी पकड़ में आती थी। अब उसी में डूब गये। अब महाप्रकाश हो गये।

उनके अन्तिम वचन जो उन्होंने मरने के पहले कहे——

निरालम्ब निर्वासना इच्छाचारी येह,
संस्कार-पवनहि फिरै, शुष्कपर्ण ज्यों देह
वैद्य हमारे राम जी, औषधहू हरिनाम
सुन्दर यहे उपाय अब, सुमरण आठों जाम

सुन्दर संसय कौ नहीं, बड़ी महोच्छव येह
आतम परमातम मिल्यौ, रहौ कि बिनसौ देह
सात बरस सौ में घटै, इतने दिन को देह
सुन्दर आतम अमर है, देह खेह की खेह।
समझो——निरालम्ब निर्वासना इच्छाचारी येह।

संसार है इच्छा। परमात्मा है निर्वासना। संसार है वासना की दौड़——अर्थात् तुम विमुख हो परमात्मा से। परमात्मा है निर्वासना, तब तुम सन्मुख होते हो परमात्मा के।

संस्कार-पवनहि फिरै, शुष्कपर्ण ज्यों देह। सूखे पत्ते को हवा में उड़ते देखा ? ऐसे ही तुम संस्कारों और आदतों की हवा में उड़ते फिरते हो। तुम अभी अपने पैरों से अपनी दिशा में नहीं चल रहे हो। हवा में उड़ते हुए पत्ते हो। दुर्घटना तुम्हारी जीवन की व्यवस्था है। संयोग से जी रहे हो। अभी तुम योग से नहीं जी रहे, केवल संयोग से जी रहे हो। अभी तुम्हारी दिशा निर्णीत नहीं। अभी तुम कहां जा रहे हो, तुम्हें पता भी नहीं है। क्यों जा रहे हो, यह भी पता नहीं; कहां से आ रहे हो, यह भी पता नहीं।

संस्कार-पवनहि फिरै, शुष्कपर्ण ज्यों देह। यह देह तो सूखा पत्ता है, पुरानी आदतों, पुराने संस्कारों से चलता रहता है। तुम जागो, पुरानी आदतों, पुराने संस्कारों से ऊपर उठो।

वैद्य हमारे रामजी। और यह जो बीमारी है भटकने की, इसमें एक ही वैद्य है, वह राम है।

...औषधहू हरिनाम। और औषधि भी एक ही है——उस प्यारे का नाम, उस प्यारे की याद, उस प्यारे की स्मृति। ऐसी भर जाये, ऐसी रोएं-रोएं में समा जाये कि उसके अतिरिक्त और कुछ भी न बचे। फिर तुम्हारी जिन्दगी में दिशा होगी, अर्थ होगा। फिर तुम्हारी दिशा ऐसी ही घटनाओं के धक्के में नहीं घटती रहेगी। फिर तुम ऐसे ही भीड़ के रेले-पेले में नहीं चलते रहोगे। फिर तुम चलोगे एक तीर की तरह——ऐसे तीर की तरह, जो परमात्मा को वेध देता है।

सुन्दर यहे उपाय अब, सुमरण आठों जाम
सुन्दर संसय कौ नहीं, बड़ी महोच्छव येह।

मर रहे हैं, मृत्यु आ रही है; मित्र, शिष्य, प्रियजन रोने लगे होंगे। सुन्दर से बहुतों को सुन्दर की याद मिली थी। सुन्दर से बहुतों के भीतर सुन्दर की आकांक्षा जगी थी। वे सब रोने लगे होंगे, वे सब पीड़ित होंगे। सुन्दर उनसे कह रहे हैं——सुन्दर संसय कौ नहीं, बड़ी महोच्छव येह। यह बड़ा महोत्सव है, तुम रोते क्यों हो,

संशय क्या है ? मैं मर थोड़े ही रहा हूं । मैं वह नहीं हूं जो मर सकता है ।

वेद कहते हैं, अमृतस्य पुत्रः । तुम अमृत के पुत्र हो । मृत के साथ सम्बन्ध जोड़ लिया, इसलिए तुम्हें भ्रांति हो रही है । ऐसा ही समझो कि कच्चे रंग के कपड़े पहन लिये और वर्षा हो गयी और रंग बहने लगा । तो तुम्हारा रंग थोड़े ही बह रहा है । तुम्हारा कोई रंग ही नहीं है । कच्चे कपड़े हैं, उनका रंग बह रहा है । लेकिन अगर कोई वस्त्रों से ही अपने को एक समझ ले--और बहुतों ने समझ लिया है । अपने वस्त्रों से ही अपने को एक समझ लिया है । उनके वस्त्र छीन लो तो तुमने उनसे सब छीन लिया । फिर उनके पास कुछ नहीं बचता । किसी ने पद से अपने को एक समझ लिया है । पद छीन लो उसका, सब गया । किसी ने धन से अपने को एक समझ लिया है । उसका धन गया कि वह आत्महत्या कर लेता है कूद कर; अब क्या जीने का सार है! तुमने कैसी क्षुद्रता से अपने तादात्म्य कर लिये हैं !

सुन्दर कहते हैं--सुन्दर संसय कौ नहीं, बड़ी महोच्छव येह । यह बड़ा महोत्सव है, तुम रोओ मत । तुम चिन्तित न होओ, संशय न करो । मैं मर नहीं रहा हूं । मैं परम जीवन में जा रहा हूं ।

आतम परमातम मिल्यौ रहो कि बिनसौ देह ।

देह रही कि गयी, इससे क्या लेना-देना ? आतम परमातम मिल्यौ. . . । यह बूंद अब सागर में जा रही है । बूंद की तरह तो नहीं बचेगी, फर्क क्या पड़ता है ? सागर की भांति रहेगी अब ।

सात बरस सौ में घटै . . . । फिर सात वर्ष में घटे कि सौ वर्ष के बाद घटे, क्या फर्क पड़ता है ? . . . इतने दिन की देह । दिन की तो गिनती है । . . . इतने दिन की देह । इसकी तो सीमा है, समय है । समय चूक ही जायेगा ।

सुन्दर आतम अमर है, देह खेह की खेह ।

उसे पकड़ो जो अमृत है । उसको हाथ में लो जो अमृत है । शाश्वत से अपने को जोड़ो । क्षणभंगुर से जोड़ोगे, दुखी रहोगे । क्योंकि ये पानी के बबूले फूटते रहेंगे, फूटते रहेंगे और दुख और पीड़ा देते रहेंगे ।

ये उनके अन्तिम वचन थे । ऐसे इस प्यारे आदमी के वचनों की हम यात्रा शुरू करते हैं ।

नीर बिनु मीन दुखी, छीर बिनु शिशु जैसे,
पी जाके औषद बिनु कैसे रहयो जात है ।।

जैसे मछली बिना पानी के तड़फे, तुम भी बिना पानी के हो । और आश्चर्य यही है कि तड़फ भी रहे हो और तुम्हें याद भी नहीं । तड़फ भी रहे हो तो तुम ऐसे कारण खोज लेते हो जो तड़फन के कारण नहीं हैं । अगर तुम तड़फते हो तो तुम

कहते हो तड़फूं कैसे न--धन चाहिये ! ऐसे ही जैसे कोई मछली तड़फती हो घाट पर पड़ी तपती हुई रेत में, और सोचे कि मैं तड़फ रही हूं इसलिए कि धन नहीं है । हीरे मिल जाते तो तड़फ मिट जाती । कि पद मिल जाता तो तड़फ मिट जाती । यश मिल जाता, तड़फ मिट जाती । लेकिन यश मिल जायेगा, तड़फ मिटेगी मछली की ? पद मिल जायेगा, तड़फ मिटेगी मछली की ? धन मिल जायेगा, तड़फ मिटेगी मछली की ?

तुम देखो अपने चारों तरफ, जो-जो तुम चाहते हो, दूसरों को मिल गया है । उनकी तड़फ नहीं मिटी है । तुम्हारी भी तड़फ नहीं मिटेगी । सफल लोगों की असफलतायें तो देखो ! धनियों की निर्धनता तो देखो ! जिनके बड़े नाम हैं उनके छोटे काम तो देखो ! जिन्होंने किसी तरह अपनी प्रतिष्ठाएं बना लीं, अपने अहंकार निर्मित कर लिए, उनके भीतर का खोखलापन तो देखो ! जिनको तुम महान समझते हो उनके छिछलेपन को तो जरा पहचानो !

तुम चकित होओगे, अगर तुम्हें आदमी का सबसे ज्यादा छिछलापन देखना हो तो किसी भी राजधानी में जाकर उसकी पार्लियामेन्ट में देख लो । दिल्ली चले जाओ, अगर आदमी के ओछेपन देखने हों । क्षुद्रताएं देखनी हों, चालबाजियां देखनी हों, बेईमानियां देखनी हों, गलाघोंट प्रतियोगिता देखनी हो, एक-दूसरे की टांग खींचना और एक-दूसरे को गिराने की चेष्टा देखनी हो--दिल्ली चले गये ।

जब भी तुम्हें संसार से लगाव होने लगे, दिल्ली चले गये । देखकर एकदम विराग पैदा होगा ।

जरा धनी आदमी की चिन्ताओं में उतरकर देखो । उसके विषाक्त जीवन को देखो । उसके भीतर की रिक्तता को पहचानो । जरा देखो कि वह सो भी नहीं पाता रात, नींद कहां ? जरा देखो कि जी भी कहां पाता है ! जीने का आयोजन ही करने में ही जीवन बीत जाता है, जीने का समय कहां मिलता है ? तैयारी ही तैयारी लोग करते रहते हैं ।

मैंने सुना है, जर्मनी में एक बड़ा विचारक था । उसको एक ही धुन थी कि दुनिया में जो भी सबसे अच्छी किताबें हैं वे पढ़नी हैं । तो उसने बड़ी लायब्रेरी खड़ी कर ली । वह दुनियाभर में घूमता फिरता था, जहां भी कोई किताब मिलती, किसी भी भाषा में हो, महत्त्वपूर्ण हो, वह खरीदकर अपने देश पहुंचाता । किताबें तो इकट्ठी हो गईं, लेकिन तब तक पढ़ने का समय नहीं बचा । जब वह मरा तो लाखों किताबें छोड़ गया । मगर उसमें से पढ़ी उसने एक भी नहीं थी । आयोजन ही करने में सारा समय चला गया ।

मैंने एक और पुरानी सूफी कहानी पढ़ी है जो इससे मिलती-जुलती है । एक

आदमी ने देश के सारे शास्त्रों में जो भी सार है वह जानना चाहा। वह बहुत धनी था। उसने हजारों पण्डित लगा दिये। उसने कहा, मुझे तो फुरसत नहीं है पढ़ने की, तुम सार निकालकर ले आओ। संक्षिप्त—डायजेस्ट। सब धर्मों का सार निकाल डालो। पण्डित लगे, उन्होंने बड़ी मेहनत की, वर्षों लगे सार निकालने में। पर सार भी निकला तो भी बड़े पोथे तैयार हुए। क्योंकि कितने शास्त्र हैं, उनका सार भी निकालो . . . । हजार शास्त्र का एक करोगे, तो हजारों शास्त्र हैं। उस आदमी ने देखे वे बड़े-बड़े पोथे, उसने कहा, भई इतने से काम नहीं चलेगा। अब मैं बूढ़ा भी हो गया हूं। मेरे पास इतना समय भी नहीं है। फिर मुझे धन कमाने से सुविधा भी नहीं है, फुरसत भी नहीं है। और संक्षिप्त करो। एक ही किताब बना लाओ। सारे, सबका इन्तजाम इसमें आ जाना चाहिये।

फिर और वर्षों लग गये, आखिर वे किताब बनाकर लाये, तब तक वह आदमी खाट पर पड़ा था। उन्होंने पूछा कि अब यह किताब एक बन गई है . . . । उसने कहा कि अब बहुत देर हो गई, अब तो यह एक किताब पढ़ने का भी समय नहीं है। तुम तो संक्षिप्त में एक कागज पर, एक पन्ने पर सार बात लिख लाओ।

अब एक किताब को एक पन्ने में उतारना कठिन मामला था। ऐसे ही किताब संक्षिप्त होते-होते होते-होते बहुत संक्षिप्त हो गई थी, अब तो उसमें सूत्र ही सूत्र बचे थे। अब उनमें से भी छांटना बहुत मुश्किल बात थी। फिर भी छांटना चला, जब वे छांटकर एक पन्ने पर पहुंचे तब वह आदमी मर रहा था। उसने कहा, अब बहुत देर हो गई। अब एक पन्ना पढ़ने की भी मेरे पास सुविधा नहीं। अब तो तुम एक वचन मेरे कान में बोल दो।

तो उन्होंने कहा, हमें थोड़ा समय लगेगा, अब इसमें से फिर एक वचन बनाना; जब तक वे एक वचन बनाकर लाये, वह आदमी मर चुका था।

अक्सर लोग ऐसे ही जिन्दगी बिता रहे हैं। जीवन का आयोजन चलता है। जीवन का अनुभव कहां? तुम भी तड़फ रहे हो, सारी दुनिया तड़फ रही है, लेकिन तड़फ का कारण क्या है? जो जानते हैं उनसे पूछो। जो जाग गये, उनसे पूछो। वे कहते हैं: तुम्हारे तड़फने का कारण यह नहीं है कि तुम्हारे पास धन कम है, कि तुम्हारे पास यश कम है, पद कम है। तुम्हारे तड़फने का कारण यह है कि तुम मछली हो और सागर खो गया है। और तुम रेत पर पड़े हो।

नीर बिनु मीन दुखी . . . । सागर है परमात्मा; तुम सागर, उस परमात्मा के सागर की मछली हो। आत्मा ऐसे जैसे सागर में मछली। जैसे मछली प्रफुल्लित होती है सागर में, ऐसे ही आत्मा प्रफुल्लित होती है परमात्मा में। जैसे ही दूर हो जाते हो वैसे ही बेचैनी शुरू हो जाती है। जितने दूर उतनी बेचैनी। जितना दुखी आदमी

पाओ, समझ लेना परमात्मा से उतना ही दूर निकल गया है। यह पूरब की अन्यतम खोज है। अगर तुम पश्चिम में हो, दुखी हो और तुम जाओ विशेषज्ञ के पास, तो हर दुख की वह अलग-अलग दवा बताता है। पूरब में ऐसा नहीं है: अगर पूरब में तुम दुखी हो और तुम ज्ञानी के पास जाओ तो वह दवा एक ही बताता है।

वैद्य हमारे रामजी, औषधहू हरिनाम।

वह कहता है कि ठीक, दुख-दुख का लम्बा हिसाब न बताओ। तुम्हारे दुख से कोई फर्क नहीं पड़ता। हम जानते हैं तुम्हारा दुख क्या है। हमें सब मछलियों का दुख पता है कि उनका सागर खो गया है। राम के सागर में फिर डुबकी मारो। हरि बोलौ हरि बोल!

नीर बिनु मीन दुखी, छीर बिनु शिशु जैसे।

जैसे छोटा बच्चा, जिसे दूध नहीं मिला है. . .शायद छोटे बच्चे को यह पता भी न हो कि मैं रो क्यों रहा हूं। वह पहली दफा जब बच्चा पैदा होता है तो उसे पता भी कैसे होगा कि मैं दूध की कमी के कारण रो रहा हूं? दूध तो अभी चखा ही नहीं है। अभी तो पैदा ही हुआ है। अभी तो सांस ली है और रोने लगा है। यह किसलिए रो रहा है? अगर यह बच्चा बोल सके तो भी बता नहीं सकेगा मैं किसलिए रो रहा हूं। कन्धे बिचकायेगा। कहेगा: पता नहीं, मगर रोना आ रहा है।...'क्या चाहते हो?' तो क्या तुम समझते हो कि बच्चा उत्तर दे सकेगा कि मैं क्या चाहता हूं? जो कभी जाना नहीं, पहचाना नहीं, जिसे कभी चखा नहीं, स्वाद नहीं लिया—कैसे कहेगा? लेकिन उसके रोने को देखकर मां पहचान लेती है कि क्यों रो रहा है। उसे दूध चाहिये, उसे स्तन चाहिये। दूध मिलते ही बच्चा निश्चिन्त हो जाता है। फिर सो जाता है—गहरी निद्रा में, विश्राम में। जब फिर भूख लगती है तब फिर रोने लगता है। धीरे-धीरे उसको भी पता चल जायेगा कि मैं रोता क्यों हूं, कि भूख लगती है। धीरे-धीरे उसे भी पता चल जायेगा कि जब भूख लगती है तो मुझे दूध चाहिये।

लेकिन अगर चाहो तो बच्चे को धोखा दे सकते हो। बहुत सी माताएं देती हैं। बच्चा रो रहा है, उसको पकड़ा दिया, झूठा रबर का स्तन उसके मुंह में दे दिया। बच्चा उसी को पी रहा है और सोच रहा है कि बड़ा आनन्द आ रहा है। उसी को चूसते-चूसते सो जाता है। भ्रांति खड़ी कर लेता है। पुष्टि तो नहीं मिलती कुछ, पौष्टिकता तो नहीं मिलती कुछ, भोजन भी कुछ नहीं मिलता। रबर की चूसनी को चूसकर मिलेगा भी क्या? लेकिन निश्चिन्त मालूम होता है। ज्यादा दिन धोखा नहीं चलेगा। कभी-कभी देते रहो तो चलेगा। अगर कुछ भी नहीं होता पास तो अपना अंगूठा ही चूसने लगता है। अब अंगूठे से कुछ भी निकलता नहीं।

दुनिया में तुम ऐसे ही लोग पाओगे। कोई रबर की चूसनी चूस रहे हैं। कोई अपना अंगूठा ही चूस रहे हैं। यह मैं बच्चों की बात नहीं कर रहा, यह मैं तुम्हारी बात कर रहा हूं। जो मिल गया, वही चूस रहे हैं। एक चूसने की धुन है। लगता है कि चूसने से तृप्ति मिलती है। लेकिन स्तन हो तो ही चूसने से तृप्ति मिलती है। दूध बहता हो वहां, तो ही चूसने से तृप्ति मिलती है।

भक्त चूसता है परमात्मा की जीवन-धारा से; अभक्त संसार में खेल-खिलौनों से चूसते रहते हैं। कोई धन से चूस रहा है—यह रबर की चूसनी है। कोई चले हैं कि प्रधानमन्त्री होना है—यह रबर की चूसनी है। फिर चूसनी कितनी ही बड़ी हो, कि क्रेन से उठानी पड़े, इससे भी कुछ फर्क नहीं पड़ता। छोटी-बड़ी का कोई सवाल नहीं है—उसके पीछे जीवन की धारा है या नहीं? उसके भीतर प्रेम बह रहा है कि नहीं?

इसीलिए इस जीवन में एक अपूर्व घटना घटती है: लोग जिन्दगी-भर चूसते हैं और भूखे के भूखे। और जब देखो तब रो रहे हैं। तुम्हें अनुभव है भलीभांति। तुम जब भी बात करते हो, क्या करते हो—रोते हो। दूसरा भी रोता है। लोगों की बातचीत सुनो जरा— बस बैठे हैं और रो रहे हैं! दुनिया-भर की शिकायतें कर रहे हैं—'यह गलत, यह गलत, यह गलत... ! सब तरफ गलती हो रही है। जिन्दगी दूभर हो गई है। पहले के दिन अब कहां रहे।' पहले के दिन की भी इसी तरह याद कर रहे हैं ताकि मन को समझा लें। और आगे के दिन की सोच रहे हैं कि कभी तो समाजवाद आयेगा। कभी तो ऐसा होगा कि चूसनी से दूध बहेगा। मगर चूसनियों से दूध बहता ही नहीं। न समाजवाद में बहता है, न रामराज्य में बहा। कभी नहीं बहता। व्यक्ति को परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ना पड़ेगा, तो ही जीवन में तृप्ति की धारा शुरू होती है।

नीर बिनु मीन दुखी, छीर बिनु शिशु जैसे।
पीर जाके औषद बिनु, कैसे रहयो जात है।

और पीर है भारी। पीड़ा है बहुत। औषधि के बिना कैसे रह रहे हो तुम? सुन्दर पूछ रहे हैं तुमसे यह कि मैं चकित हूं कि तुम औषधि क्यों नहीं खोजते! और औषधि उपलब्ध है—हरि बोलौ हरि बोल!

चातक ज्यों स्वाति बूंद, चन्द कौ चकौर जैसे।

चांद देखता है...चकोर लगा है, चांद की तरफ आंखें लगाये है। चातक प्रतीक्षा करता है स्वाति के बूंद की। ऐसे ही भक्त कूड़े-करकट में नहीं उलझता, उसकी आंखें आकाश पर लगी होती हैं। उसकी आंखें चन्द्र के प्रकाश पर लगी होती हैं।

भक्त चकोर है, और भक्त चातक है। वह हर किसी गन्दी तलैया का पानी नहीं पीता फिरता। वह प्रतीक्षा करता है स्वाति-नक्षत्र के बूंद की। एक बूंद काफी है उस नक्षत्र में, क्योंकि उस एक बूंद से ही मोती बन जाते हैं। और यहां कितना ही पियो, प्यास बुझती कहां है? जितना पियो उतनी प्यास जलती है, उतनी प्यास बढ़ती है।

तुमने देखा नहीं, जितना धन बढ़ता है उतना और धन पाने की प्यास बढ़ती है! जितनी कामवासना में उतरो उतनी कामवासना बढ़ती है। जितना क्रोध करो उतना क्रोध बढ़ता है। यह बड़ा उलटा गणित है। करने से चुक जाना चाहिये। चुकता नहीं मालूम पड़ता। अभ्यास से आदत मजबूत होती चली जाती है।

चन्दन की चाह करि, सर्प अकुलात है।

और जैसे-जैसे चन्दन की सुगंध मिल गई हो और सर्प लहराने लगा हो, ऐसे भक्त की मस्ती है। भक्त चन्दन की चाह में चला हुआ सर्प है। स्वाति की बूंद की प्रतीक्षा करता हुआ चातक है। आकाश की तरफ आंखें उठाये, प्रेम में डूबा चकोर है।

निर्धन ज्यों धन चाहे, कामिनी को कंत चाहे।

जैसे प्रेयसी प्रेमी को खोजती है, प्रेमी प्रेयसी को खोजता है, जैसे निर्धन धन को खोजता है, जैसे हीन पद को खोजता है, जैसे निर्बल सबलता खोजता है—ये सारी चीजें भक्त नहीं खोजता। भक्त तो सिर्फ भगवान को खोजता है। उसका धन भगवान, उसका पद भगवान, उसका प्रेमी भगवान। उसने अपनी सारी आकांक्षाओं का एक इकट्ठा प्रवाह परमात्मा की तरफ बहा दिया है। वह छोटी-छोटी धाराओं में नहीं बहता—उसने गंगा बना ली है और चल पड़ा है सागर की तरफ।

ऐसी जाको चाह ताको कछु न सुहात है।

और जिसकी ऐसी चाह जगी हो, उसे फिर कुछ नहीं सुहाता। तुम भक्त को कहो कि हम तुम्हारी बड़ी प्रतिष्ठा करेंगे, उसे कुछ बात जंचती नहीं। तुम प्रतिष्ठा करो कि अप्रतिष्ठा, तुम सम्मान करो कि गाली दो, अन्तर नहीं पड़ता। उसकी दौड़ कहीं और है, वह जा कहीं और रहा है। तुम्हें देखता कहां! न तुम्हारी प्रशंसा देखता, न तुम्हारी मालाएं। तुम्हारी मालाओं का मूल्य कितना है? तुम्हारी मालाओं से तो तुम जैसे ही नासमझ प्रसन्न होते हैं।

मैंने सुना है, एक राजनेता का एक गांव में स्वागत किया गया। मालाओं पर मालाएं चढ़ीं, गुलदस्तों पर गुलदस्ते दिये गये। जब मालाएं चढ़ चुकीं, गुलदस्ते दिये जा चुके, तब भी राजनेता का सैक्रेटरी थोड़ा परेशान था, क्योंकि राजनेता के चेहरे पर क्रोध है, माथे पर सिकुड़न है। उसने पूछा, आप नाराज से क्यों दिखाई पड़ते

हैं ? इतनी मालाएं चढ़ीं, इतने फूल, इतना स्वागत-सम्मान . . . !

उसने कहा, बकवास ! मैंने तीस माला के दाम दिये थे, उनतीस ही आयी हैं।

यह दुनिया बड़ी अजीब है, यहां पैसे भी चुकाने पड़ते हैं कि हमको माला चढ़ाओ, उसके पैसे पहले देने पड़ते हैं। और तीस के दिये थे और उनतीस ही आयी हैं ! वह गिनती कर रहा है। अपने हाथ से अपने को ही चढ़ा लेते। काहे को इतना कष्ट किया ?

और फिर मैंने एक फकीर की कहानी सुनी है। वह एक गांव में गया। और गांव के लोग उससे नाराज थे। लोग फकीरों से सदा नाराज रहे। क्योंकि वे बातें ऐसी कह देते हैं जो तुम्हें बेचैन कर जाती हैं। बड़े लोग क्रुद्ध थे। उन्होंने जूतों की एक माला बनाकर उसको पहना दी। और फकीर नाचने लगा। और लोग और मुश्किल में पड़े। लोगों ने पूछा कि समझ रहे हो, होश है कुछ, जूते की माला पहनाई है ! उसने कहा कि मैं नाच किसलिए रहा हूं, इसीलिए तो। परमात्मा से कह रहा हूं : वाह रे वाह ! अभी तक बहुत गांवों में गया, मालियों के गांव रहे होंगे, चमारों के गांव मैं पहली दफा आया। यह भी खूब रही ! आखिर आदमी वही तो चढ़ाएगा न, जो उसके पास है !... हे चमार भाइयो ! तुमने बड़ी कृपा की। ऐसा ही करते रहना, क्योंकि मैं तो यहां से आता ही जाता रहूंगा। और जूते मेरे वैसे भी फट गये थे। सो तुमने एक-दो नहीं, कई जूते दे दिये। जिन्दगी चल जायेगी इससे तो मेरी। तुम्हारा खूब-खूब धन्यवाद। और फूल तो कुम्हला जाते हैं तो फेंकने पड़ते हैं, जूते कुम्हलाते भी नहीं। मेरे भी काम आयेंगे, मेरे शिष्यों के भी काम आयेंगे। धन्यवाद ! मगर यह मुझे पता नहीं था कि यह बस्ती पूरे चमारों की है।

जो चल पड़ा परमात्मा की तरफ, उसके जीवन के मापदण्ड बदल जाते हैं।

ऐसी जाको चाह ताको कछु न सुहात है।

प्रेम को प्रभाव ऐसो, प्रेम तहां नेम कैसो।

यह वचन अद्भुत है। इसे खूब हृदय में खोदकर रख लेना। जितना गहरा ले जा सको, ले जाना। प्रेम को प्रभाव ऐसो . . .। प्रेम इस जगत में सबसे बड़ा जादू है। और तुमने तो प्रेम अभी जाना नहीं। तुम जिसको प्रेम कहते हो वह तो कुछ और है। प्रेम नहीं है। इसलिए तुम्हारी जिन्दगी में जादू नहीं घटा है। और तुम्हारी जिन्दगी में पारलौकिक की चमक नहीं आयी है।

प्रेम को प्रभाव ऐसो, प्रेम तहां नेम कैसो।

प्रेम का प्रभाव ऐसा है, ऐसा अद्भुत जादू है प्रेम का कि जिसके जीवन में परमात्मा के लिए प्रेम आ गया, उसको फिर किसी नियम को मानने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। न उसके लिए कोई आचरण है, न कोई शील।

प्रेम पर्याप्त आचरण है।

. . . प्रेम तहां नेम कैसो। नियम कैसा, मर्यादा कैसी ? प्रेम पर्याप्त है।

जीसस ने कहा है : तुमने सुनी हैं दस आज्ञाएं जो मोजिज़ ने दीं, मैं तुम्हें ग्यारहवीं आज्ञा देता हूं। प्रेम करो, वैसा ही जैसा मैंने किया है। और ग्यारहवीं पर्याप्त है। और जो ग्यारहवीं पूरी करेगा, उसके लिए दस की फिकर छोड़ दे। दस की चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं है। चोरी मत करना, बेईमानी मत करना, झूठ मत बोलना, धोखा मत देना, हिंसा मत करना--यह सब बकवास है, जिसको प्रेम आ गया। प्रेम को प्रभाव ऐसो ! जिसके मन में प्रेम आ गया, वह कैसे हिंसा करेगा ?

और एक बात और भी ख्याल रखना। जरूरी नहीं है कि तुम हिंसा न करो तो तुम्हारे जीवन में प्रेम आ जाये। जरूरी नहीं है। प्रेम आ जाये तो हिंसा चली जाती है। प्रेम आ जाये तो चोरी चली जाती है। प्रेम आ जाये तो बेईमानी चली जाती है। लेकिन बेईमानी चली जाये तो प्रेम आ जाता है, ऐसा नहीं है।

इसलिए तुम बहुत लोग पाओगे जिन्होंने बेईमानी छोड़ दी है, चोरी छोड़ी दी है, व्यभिचार छोड़ दिया है, अनाचरण छोड़ दिया है, मगर उनके जीवन में कोई प्रेम का कमल नहीं खिला है। उलटे सूख गये, सब सूख गया, उनके जीवन का सरोवर ही सूख गया। कभी-कभी तो ऐसा हो जायेगा कि साधारण आदमी जो कभी थोड़ा बेईमानी भी कर लेता है, झूठ भी बोल देता है, कभी मौका पड़ जाये तो झगड़ भी लेता है--इस आदमी की जिन्दगी में शायद तुम्हें कभी थोड़े रस की धार भी मिल जाये, मगर जिन लोगों ने बिलकुल हिंसा छोड़ दी, बेईमानी छोड़ दी, जिन्होंने सब तरह से आचरण में अपने को कस लिया है, इनकी जिन्दगी में तो तुम पत्थर पाओगे, फूल नहीं।

एक बड़ी भूल हो रही है। भूल यह है : जैसे दीया जले तो अन्धेरा चला जाता है, यह सच है। लेकिन दूसरी बात सच नहीं है कि अन्धेरा चला जाये तो दीया जल जाये। सच तो यह है, अन्धेरा जा ही नहीं सकता, तुम सिर्फ भ्रांति पैदा कर सकते हो कि अन्धेरा चला गया। तो अक्सर तुम्हें ऐसा हो जायेगा कि तथाकथित अहिंसकों में तुम्हें बड़े कठोर लोग मिल जायेंगे और तथाकथित ईमानदार आदमियों में तुम्हें ऐसे आदमी मिल जायेंगे जिनके साथ घड़ी-भर बिताना असंभव हो जाये। तुम्हारे तथाकथित सन्तों के साथ चौबीस घन्टे रह लो तो फिर तुम दुबारा कभी सन्तों का सत्संग न करोगे। बड़े अहंकार का जन्म होता है। प्रेम का कहां जन्म होता है ? उलटे अहंकार का जन्म होता है। और अहंकार प्रेम से विपरीत दिशा है।

भक्त अन्तस से चलता है, आचरण को बदलता है। और तुम अक्सर आचरण

बदल कर सोचते हो अन्तस बदल जाये। नहीं, यह न कभी हुआ है, न हो सकता है। सूत्र ख्याल में रखो : भीतर से बाहर की तरफ परिवर्तन होते हैं, बाहर से भीतर की तरफ परिवर्तन नहीं होते। अगर तुम्हारे भीतर आनन्द हो तो तुम्हारे आचरण में भी आनन्द की किरणें फूटेंगी। अगर तुम्हारे हृदय में हंसी हो, तो ओठों तक भी चली जायेगी। लेकिन इससे उलटा मत सोचना कि ओंठ हंसी के मालूम पड़ें। बिलकुल कार्टर जैसी हंसी हो, सब दांत निकाल दो बिलकुल, तो भी जरूरी नहीं कि हृदय में कोई हंसी हो।

तुमने कभी अस्पताल में जाकर खोपड़ियां देखीं? सब खोपड़ियां हंसती मालूम होती हैं। क्योंकि दांत बिलकुल कार्टर जैसे निकले होते हैं, साफ। चमड़ी वगैरा तो खो ही गई, अब चमड़ी वगैरा तो बचती ही नहीं। इसलिए मुर्दे की खोपड़ी देखकर डर लगता है। क्योंकि मुर्दा और हंस रहा है, बहुत घबड़ाहट पैदा होती है। सब मुर्दे हंसते हैं, मगर इससे कोई यह पता नहीं चलता कि हृदय से आ रही है। अब हृदय है ही नहीं। . . .कि आत्मा से उठ रही है यह आवाज। अब कोई आत्मा इत्यादि है भी नहीं। अब तो वहां कुछ भी नहीं है। मुर्दा अब तुम पर हंस रहा है और अपने पर हंस रहा है, कि हम बुद्धू थे, और तुम बुद्धू हो।

लेकिन लोग ऊपर से चिपकाना सीख गये हैं। हंसी चिपका लेते हैं। करुणा चिपका लेते हैं। सब कागजी चेहरे बना लेते हैं। लोग नाटक करने में कुशल हो गये हैं। मुखौटे पहने हुए हैं।

प्रेम को प्रभाव ऐसो, प्रेम तहां नेम कैसो।

इसलिए भक्त नियम जानता ही नहीं। भक्ति के शास्त्र में नियमों की चर्चा ही नहीं होती—कि तुम ऐसा करो, तुम वैसा करो, तुम ऐसा मत करना, पानी छान-कर पीना, रात खाना मत खा लेना। इस सबकी कोई चर्चा ही नहीं होती। इसलिए भक्तों को अगर तुम तपस्वियों से जाकर पूछोगे तो वे कहेंगे सब भ्रष्ट। क्योंकि नियम की कोई बात ही नहीं—बस, हरि बोलौ हरि बोल!...नियम तो होना चाहिये! उनको पता ही नहीं है कि जिसके जीवन में 'हरि बोलौ हरि बोल' प्रविष्ट हो गया, सब नियम अपने-आप पूरे हो जाते हैं। परम नियम आ गया, तो शेष सब नियम अपने-आप चले आते हैं। मालिक आ गया तो बाकी सब गुलाम हैं। वे उसके पीछे चले आते हैं।

प्रेम को प्रभाव ऐसो . . .। जादू ऐसा है प्रेम का, उसकी प्रभावना ऐसी है।
प्रेम तहां नेम कैसो।
सुन्दर कहत यह प्रेम ही की बात है।

सुन्दर कह रहे हैं कि जो मैं कह रहा हूं, यह प्रेम की बात है। तुम इसमें नियम

खोजने मत लग जाना। आचरण, साधना इत्यादि के चक्कर में मत पड़ जाना। मैं तो सिर्फ प्रेम की बात कर रहा हूं। मैंने प्रेम से पाया। दादू के प्रेम में पड़ा और दादू के प्रेम ने मुझे परमात्मा के प्रेम से जुड़ा दिया। और मैंने प्रेम क्या पाया कि सब पा लिया। सब सुगन्ध अपने-आप आ गयी।

प्रेम-भक्ति यह मैं कही जानै विरला कोइ।
हृदय कपुलता क्यों रहे, जा घट ऐसी होइ।।

जहां प्रेम घट जाये वहां कलुषता बचेगी कहां? दीया जल गया, अब अंधेरा बचेगा कहां?

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक नवाब के घर नौकर था। और नवाब ने उससे कहा . . . सर्द सुबह लखनऊ की, नवाब के उठने की इच्छा नहीं हो रही . . . उसने नसरुद्दीन को कहा कि नसरुद्दीन जरा बाहर जाकर देख, सूरज निकला कि नहीं? रात कटी कि नहीं?

नसरुद्दीन बाहर गया, लौट कर आया और वह आकर जल्दी से लालटेन जलाने लगा। तो उससे पूछा नवाब ने, क्या कर रहा है? उसने कहा, मैं बाहर गया, लेकिन अंधेरा बहुत है, सूरज दिखाई नहीं पड़ता। लालटेन जलाकर जा रहा हूं।

सूरज अगर हो, तो लालटेन जला कर नहीं देखना पड़ता। सूरज हो तो अंधेरा हो कैसे सकता है? ...प्रेम को प्रभाव ऐसो।

प्रेम भक्ति यह मैं कही, जानै बिरला कोइ।

बहुत विरले लोग इस प्रेम-भक्ति को पहचानते हैं। यह इस जगत का सबसे महत्त्वपूर्ण रहस्य है। लोग तो छोटी-छोटी बातों में पड़े हैं—क्या खाना, क्या पीना, कैसे उठना, कैसे बैठना, कहां सोना, कहां नहीं सोना। असली बात चूकी ही जा रही है। इसी क्षुद्र में उलझ कर सारा जीवन व्यतीत हो जाता है। ऐसी भूल तुमसे न हो, ऐसी भूल में मत पड़ना। बस, प्रेम करो।

हृदय कलुषता क्यों रहै, जा घट ऐसी होइ।।
सत्य सु दोइ प्रकार, एक सत्य जो बोलिये।
मिथ्या सब संसार, दूसर सत्य सु ब्रह्म है।

सत्य के दो प्रकार हैं, वे कहते हैं। एक सत्य तो वह है जो बोला जाता है। वह सिर्फ गौण है, ऊपर ऊपर है। कभी-कभी तो ऐसा भी हो सकता है कि तुम सत्य बोलते ही इसलिए हो कि दूसरे को चोट पहुंचे। सत्य तुम बोलते ही इसलिए हो कि दूसरा फंसे। तुम्हारा सत्य जरूरी नहीं कि धार्मिक हो। तुम्हारे सत्य के पीछे बड़ा अधर्म छिपा हो सकता है। उस सत्य का कोई मूल्य नहीं है। असली सत्य दूसरा है। वह है तुम्हारे भीतर ब्रह्म का आविर्भाव हो, फिर बात और है। फिर तुम सत्य बोलोगे,

लेकिन वह सत्य तुम्हारे अन्तरतम से आयेगा। अभी तो तुम सत्य के साथ भी राजनीति करोगे, कूटनीति करोगे, हिसाब-किताब बिठाओगे।

तुमने ख्याल किया, अगर किसी की निन्दा करनी हो तो तुम क्या कहते हो—भई हम तो सच-सच कह रहे हैं; जैसा है, वैसा ही कह रहे हैं। मजा निन्दा का ले रहे हो, मजा सत्य का नहीं है। मजा तो इसका है कि कितना नीचे एक आदमी को गिराओ। मजा तो कलुषित है, लेकिन बहाना सत्य का है।

एक और सत्य है जो बाहर से जिसका कोई सम्बन्ध नहीं। कहने से जिसका कोई सम्बन्ध नहीं, होने से जिसका सम्बन्ध है। सत्य हो जाओ। फिर सत्य अपने-आप प्रगट होगा। फिर वह जो भी रूप लेगा वे ठीक ही होंगे। असली बात दूसरी है।

मिथ्या सब संसार, दूसर सत्य सु ब्रह्म है।

उस दूसरे सत्य पर ख्याल रखो, वह छिपा हुआ सत्य है। वह प्रेम से ही आविर्भूत होता है।

सुन्दर देखा सोधिकैं, सब काहू का ज्ञान।

सुन्दर कहते हैं, मैंने सब तरह के ज्ञान परख डाले, शोध कर देख डाले। शास्त्रों में गया, पंडितों के पास बैठा। सात साल का बच्चा था, जब संन्यस्त हुआ। तो दादू ने उसे भेज दिया काशी कि तू खूब पढ़, संस्कृत पढ़, शास्त्र पढ़, ज्ञानियों के पास बैठ। अठारह साल सुन्दर काशी में शास्त्र का अध्ययन करते रहे। लेकिन सब शास्त्रों के अध्ययन के बाद पाया कि जो दादू के पास था वह काशी में नहीं है। भेजा ही इसलिए था दादू ने, क्योंकि छोटा बच्चा है, अभी देख ही ले ठीक से कि असली चीज कहां है—ज्ञान में है या प्रेम में है?

तो बड़े पण्डितों के पास से पण्डित होकर लौटा। लेकिन आना पड़ा वापिस दादू के पास।

सुन्दर देखा सोधिकैं, सब काहू का ज्ञान।
कोई मन मानैं नहीं बिना निरंजन ध्यान॥

दादू को देख लिया हो तो फिर कोई और शास्त्र मन को भुला नहीं सकता, न कोई पाण्डित्य काम आ सकता है। फिर कितनी ही बातें सुन्दर हों, सब लफ्फाजी है।

कोई मन मानैं नहीं . . .। मन में कोई रमता नहीं, जमता नहीं। भेजा ही इसलिए था ताकि दादू को ठीक-ठीक समझ ले सुन्दर, ठीक-ठीक पहचान ले। व्यर्थ को देख लो तो सार्थक को पहचानने में आसानी हो जाती है। व्यर्थ को न पहचानो तो सार्थक को कैसे पहचानोगे?

कोई मन मानैं नहीं, बिना निरंजन ध्यान।

ज्ञान से नहीं कुछ मिलता। ज्ञान कूड़ा-करकट है, उधार है, बासा है, पराया है। ध्यान से मिलता है। ध्यान अपना है, निज का है। और भक्ति के मार्ग पर ध्यान का अर्थ है, प्रेम की दशा—हरि बोलौ हरि बोल!

षट दरसन हम खोजिया, योगी जंगम शेख।

आ गये काशी से लौटकर दादू के पास, लेकिन दादू ने कहा अभी और खोज। काशी निपट गया, अब ठीक है; अब जा योगियों के पास बैठ। बड़े प्रसिद्ध शेख हैं, उनके पास बैठ।

संन्यासी अरु सेवड़ा . . .। सेवड़ा कहते हैं जैन संन्यासी को, जैन साधु को। संन्यासी अरु सेवड़ा, पंडित भक्ता भेख। जा सब तरह के भेषवालों के पास बैठ। सब में तलाश, टटोल।

अब सेवड़ा जो है, जैन संन्यासी जो है, वह तो बिलकुल आचरण से ही जीता है। वह तो नियम से ही जीता है। प्रेम की तो वहां कोई बात ही नहीं। प्रेम शब्द से तो वहां घबड़ाहट पैदा हो जाती है। प्रेम नहीं—नेम, नियम। ऐसा उठो, ऐसा बैठो, ऐसा करो, ऐसा चलो—हर चीज का नियम। जैन शास्त्रों को देखो तो नियमों ही नियमों से भरे हैं। ऐसा लगता है जैसे कि कोई कानूनविद् लोगों ने ये किताबें लिखी हों। जैसे कानून की किताबें होती हैं—नियम, और नियम, और उसमें से उपनियम, और सब तरह की व्यवस्था कर देनी है—कोई निकल न जाये! मगर निकलनेवाले बचते हैं कहीं ऐसे! फिर वकील किसलिए हैं? वकील बता देते हैं कि यह तरकीब है इसमें से निकलने की।

दिल्ली में कानून बन भी नहीं पाता कि वकील तरकीबें निकाल लेते हैं। कानून बन ही रहा है, कि तरकीबें निकाल ली जाती हैं। वह कहता है। कि घबड़ाओ मत। कुछ न कुछ छेद हर जगह छूट जाते हैं। आदमी की बनाई हुई चीज पूर्ण तो हो नहीं सकती। रास्ता निकल ही जायेगा। जरा उल्टा-सीधा जाना पड़ेगा, इरछा-तिरछा चलना पड़ेगा; रास्ता तो निकल ही आयेगा। जैसे वकील रास्ते निकाल लेते हैं, ऐसे पण्डित रास्ते शास्त्रों में से निकाल लेते हैं।

...भेजा। राजस्थान तो. . .सेवड़ों का काफी प्रभाव रहा है राजस्थान में। तो भेजा सुन्दर को कि जा सेवड़ों के पास बैठ। सेवड़ा क्यों कहते हैं? क्योंकि जैन राजस्थान में जब जाते हैं साधु को मिलने तो वे कहते हैं कि सेवा करने जा रहे हैं। जिसकी सेवा करने जाना पड़ता है, वह सेवड़ा। साधु महाराज आये, उनकी सेवा करने जा रहे हैं।

षट दरसन हम खोजिया, योगी जंगम शेख।

संन्यासी अरु सेवड़ा, पंडित भक्ता भेख ।।

सब तरह के वेश वालों के पास जा सुन्दर ! बैठ, समझ ! व्यर्थ को ठीक से पहचान ले । फिर लौट आना । तो तेरी आंख फिर हीरे से नहीं चूकेगी । तू हीरे को देख लेगा ।

तो भक्त न भावैं, दूरि बतावैं, तीरथ जावैं, फिर आवैं ।

तो सुन्दर गये सब जगह । जहां-जहां भेजा वहां-वहां गये । फिर-फिर लौट आये ।

तो भक्त न भावैं, दूरि बतावैं, तीरथ जावैं, फिर आवैं ।
जी कृत्रिम गावैं, पूजा लावैं, झूठ दिढ़ावैं, बहिकावैं ।।
अरु माला नावैं, तिलक बनावैं, क्यों पावैं गुरु बिन गैला ।
दादू का चेला, भरम पछेला, सुन्दर न्यारा ह्वै खेला ।।

यह सब खेल की तरह सुन्दर ने लिया । यह सब जाना-आना, ठीक । गुरु कहता है तो जाओ । जल्दी ही दिखाई पड़ने लगा कि सब खेल है, मर्जी गुरु की कुछ और है । गुरु जो दिखाना चाहता है कि देख, तुझे कौन मिल गया है ! कंकड़-पत्थरों में भेजता है ताकि हीरे की पहचान आये । अन्धेरे में भेजता है ताकि रोशनी की पहचान आये । नियमों के जगत में भेजता है ताकि प्रेम की समझ आये ।

यह वचन समझो— तो भक्त न भावैं, दूरि बतावैं . . . ।

सुन्दर कहते हैं, वह आदमी जो कहता है परमात्मा दूर है, हमें नहीं भाता, क्योंकि हमने उसे बहुत पास से भी पास देखा । हमने दादू में झांका और पास से भी पास देखा । . . . तो भक्त न भावैं . . . । तो जो भक्त यह कहता है कि दूर है परमात्मा, बहुत दूर है, कठिन है, दुर्गम है, पाना मुश्किल है, खड्ग की धार है . . . ये बातें हमें नहीं जंचतीं, क्योंकि हमने प्रेम का मार्ग देखा, जो फूलों का मार्ग है । कहां की खड्ग की धार ? और दूर परमात्मा नहीं है । पास से भी पास है, झुकने की तैयारी चाहिए । हाथ बढ़ाओ, उसका हाथ तुम्हारे हाथ में आने को तत्पर है ।

तो भक्त न भावैं, दूरि बतावैं . . . ।

जहां भी दूरी बताई जा रही है, समझ लेना बेईमानी है । दूरी वहीं बताई जाती है जहां आदमी को पता नहीं है । फिर पता न हो तो बचने का एक ही उपाय है कि दूर है, बहुत दूर है ।

खलिल जिब्रान की एक कहानी है । एक आदमी गांव-गांव घूमता था । वह बड़ा संन्यासी था और बड़ा दार्शनिक । और लोगों को समझाता था कि आओ मेरे साथ जिसको भी परमात्मा तक चलना है । मगर बड़ा कठिन मार्ग है । मार्ग इतना कठिन है कि विरले ही पहुंच पाते हैं । बुलाता कि आओ मेरे साथ, परमात्मा की तरफ

चलो । फिर मार्ग की कठिनाई इतनी बताता कि लोग सोचते, यह तो झंझट की बात है, इतनी कठिनाई ! तो लोग कहते कि ठीक, आप ठीक कहते हैं । जरूर होगा; पर इतना कठिन है, हमारे बस के बाहर है ।

वह कठिनाई इसीलिए बताई जाती है, क्योंकि तुम्हारे बस के बाहर बताना जरूरी है । नहीं तो जल्दी ही तुम पहचान लोगे कि वह दावेदार झूठ है । तुम्हें अगर परमात्मा की थोड़ी झलक मिल जाये, तो तुम्हें फिर कोई झूठा दावेदार धोखा नहीं दे सकता ।

तो उस दार्शनिक की खूब प्रशंसा बढ़ती जाती थी, यश बढ़ता जाता था, हजारों लोग उसे सुनते थे । एक गांव में एक झक्की आदमी था, पागल-सा आदमी था, वह खड़ा हो गया । उसने कहा, अच्छी बात, कितना ही कठिन है, जब तुम चले गये तो हम भी चले जायेंगे । तो हम तुम्हारे पीछे चलते हैं । मुझे शिष्य बनाओ ।

दार्शनिक थोड़ा डरा कि यह झंझट की बात है । दार्शनिक शिष्य बनाने में डरते हैं, क्योंकि शिष्य आज नहीं कल कसौटी हो जायेगा । आज नहीं कल शिष्य पूछेगा, बहुत दिन हो गये, अभी तक दर्शन नहीं हुए हो; आप जो कहते हो, मैं सब कर रहा हूं, अभी तक दर्शन नहीं हुए ? शिष्य झंझट की बात है । शिष्य को बनाने का मतलब ही यह है कि आज नहीं कल शिष्य पर ही तुम्हारा निर्णय टंगेगा ।

दार्शनिक ने सोचा कि भटकाऊंगा, इसको खूब भटकाऊंगा, खूब चक्कर लगवाऊंगा, खूब उलटे-सीधे रास्ते चलवाऊंगा, थक जायेगा, रास्ते पर अकल आ जायेगी, वापिस लौट आयेगा । मगर वह आदमी भी जिद्दी ही था । आदमी जैसा आदमी था । उसने कहा कि ठीक है लगवाओ चक्कर । जो गुरु कहे वह करे और जहां गुरु जाये वहीं जाये । कहानी कहती है कि चलते-चलते चलते-चलते, चलते-चलते छह साल बीत गये । और वह बार-बार पूछे कि और कितनी दूर ? वह तो थके ही नहीं । झक्की आदमी, वह काहे को थके ! वह कहे, कितनी दूर ? लेकिन गुरु थकने लगा, क्योंकि इसके कारण झंझट खड़ी हो गई । जिन्दगी मजे से चल रही थी, अब यह एक झंझट खड़ी कर ली पीछे । छह साल बीतते-बीतते एक दिन गुरु ने अपना माथा पीट लिया और कहा कि मुझे उसका रास्ता मालूम था, लेकिन तेरे सत्संग में उसका रास्ता खो गया । तू मुझे क्षमा कर, तू मेरा पीछा छोड़ ।

समझानेवाले तुम्हें समझाए चले जाते हैं कि बहुत दूर है, इतनी दूर है कि हमीं बामुश्किल पहुंचे । तुम क्या पहुंच पाओगे ? तुम्हारी क्या बिसात ? तुम हो किस खेत की मूली ? वे तुम्हें यह समझाते हैं । इस समझाने से तुम कहते हो कि भई मामला इतना कठिन है, झंझट में पड़ना . . . । वैसे ही जिन्दगी कठिनाई में गुजर रही है । ऐसे ही तो किसी तरह पार नहीं पा रहे हैं, और यह झंझट कहां लेनी ! तो ठीक कहते

हैं, महाराज ! अब अगले जन्म में देखेंगे । जब सुविधा होगी, तब देखेंगे । अभी तो अवसर नहीं है ।

न तुम पीछे चलते हो, न कभी गुरुओं की कसौटी होती है ।

तो भक्त न भावैं, दूरि बतावैं . . . ।

दादू के पास बैठकर सुन्दर ने सुना था । सुना नहीं--देखा, जाना, पहचाना, अनुभव किया था । स्पर्शित हुआ था कि इतने पास है--पास से भी पास है । तुम्हारा हृदय भी उतने पास नहीं जितना परमात्मा पास है । दूरी कहां ? दूरी कैसी ? हम उसी में पैदा होते हैं, उसी में जीते हैं, उसी में एक दिन तिरोहित हो जाते हैं । वह हमारे प्राणों का प्राण है ।

तो ये बातें जंचती नहीं । . . . तीरथ जावैं, फिरि आवैं . . . तो भेजते हैं गुरु तो चला जाता है । अब गुरु की आज्ञा है कि जा, कुंभ का मेला हो रहा है, कर आ । अब वहां देखते हैं सब तरह का पाखंड, सब तरह की व्यर्थताएं और मूढ़ताएं । फिर-फिर लौटकर आ जाता है ।

गुरु मिल गया तो तीर्थ मिल गया । अब और कहां तीर्थ है ? अब कहां काबा, कहां काशी ?

जी कृत्रिम गावैं . . . ।

जगह-जगह जाकर देखा । जिसने दादू को गाते सुन लिया था, अब किसी और का गीत उसे समझ में नहीं आयेगा । कृत्रिम गावैं . . . । गा रहे हैं । न गीत अपना है, न गीत में प्राण हैं, न गीत में जीवन है । शब्द सब उधार और बासे हैं । ओंठ-ओंठ पर हैं । हृदय कहीं छूता भी नहीं उनसे । न खुद का छूता है, न दूसरे का छूता है ।

जिसने दादू को गाते देखा हो . . .और दादू कोई गायक थोड़े ही हैं--फक्कड़ फकीर ! मगर जो धार शब्दों में है, क्योंकि शब्दों के पीछे खड़ा हुआ एक अनुभव है ! शब्दों में चमकती कौंध है । शब्द को भी सुनो तो थोड़ी निःशब्द की भनक आ जाती है ।

जिसने मीरा को नाचते देखा है, फिर और कौन-सा नाच उसे सुहायेगा ! और ऐसा नहीं है कि मीरा कोई नर्तकी है । न किसी विद्यापीठ में गयी सीखने, न किसी उस्ताद के पास बैठी । मस्ती से नाच रही है, कोई बोध से नाच रही है---नाचने की जानकारी से नहीं । जिसने मीरा को नाचते देखा, फिर सब नाच फीके पड़ जायेंगे ।

देखा होगा दादू को कभी मस्त होकर गाते--ठोंक कर खंजड़ी, अपने टूटे-फूटे शब्दों में, जगाते लोगों को, याद दिलाते लोगों को । बैठकर दादू की लहर को अनुभव किया होगा ! दादू की हवा में जिया था । छोटा था, तबसे जिया था । सात

साल का था, तब से दांव लगा दिया था ।

जी कृत्रिम गावैं, पूजा लावैं . . . ।

तो देखते हैं कि पूजा भी लाते हो, मगर पूजा लाने वाला कहां है ? उपस्थिति कहां है ? ऐसे ही चले आते हैं मुर्दे की तरह, पूजा भी लगा देते हैं । देखा होगा दादू को नाचते मन्दिर में । देखा होगा दादू को पूजा लगाते । जिसने रामकृष्ण को भोग लगाते देख लिया, फिर सब भोग फीके पड़ जायेंगे, फिर सब पुजारी फीके पड़ जायेंगे ।

रामकृष्ण का भोग लगाना ऐसा था कि पहले खुद अपने को लगाते । मन्दिर में खड़े हैं थाली सजाकर और चख रहे हैं । मामला चला था । मन्दिर के ट्रस्टियों ने कहा कि यह बात तो गलत है । कभी किसी शास्त्र में लिखा है कि पहले भोग खुद को लगाओ ? और फिर झूठा भगवान को खिलाओ ? सब शास्त्रों में कहा है कि पहले भगवान को भोग लगाओ, फिर तुम लगा सकते हो अपने को । रामकृष्ण ने कहा, तो रखो तुम्हारे शास्त्र, और यह रही तुम्हारी नौकरी । मेरी मां जब मुझे खिलाती थी तो पहले खुद चखती थी । मैं उससे सीखा हूं । यह शास्त्र का सवाल नहीं--यह प्रेम का सवाल है ।

प्रेम का प्रभाव ऐसो, प्रेम तहां नेम कैसो ।

मेरी मां चखती थी पहले कि है भी स्वादिष्ट कि नहीं ? बेटे को दूं कि नहीं दूं ? तो क्या मैं उससे भी गया-बीता हूं कि बिना चखे और भोग लगा दूं ? और भोग हो, जिसमें स्वाद भी न हो ? यह नहीं होगा ।

अब यह कोई पूजा है ? तुम भी सोचोगे कि यह तो बात गड़बड़ हो गयी । यह कैसी पूजा ! लेकिन, अगर तुमने रामकृष्ण को भोग लगाते देख लिया, फिर सारे मन्दिर फीके पड़ जायेंगे । क्योंकि वहां तुम एक लपट पाओगे । एक आनंद-भाव पाओगे । प्रेम की धारा बहती हुई पाओगे ।

फिर रामकृष्ण कभी-कभी पूजा करते तो दिन-भर पूजा चलती । सुबह शुरू होती, रात होने आ गयी ; देखने आये थे सुबह, वे लोग चले गये ; दुपहर आये, वे चले गये ; सांझ आये, वे चले गये--चल ही रही है पूजा । आखिर ट्रस्टियों ने कहा कि भई तुम होश में हो कि बेहोश ? कोई नियम होता है हर चीज का । और कभी ऐसा होता कि दो-चार दिन ताला मार देते और मन्दिर में पूजा नहीं होती, घन्टा भी न बजता ।

तो रामकृष्ण ने कहा कि जब मौज होती है, जब मेरे भीतर से आती है, तब करता हूं । और जब मेरी मौज नहीं होती तो मैं मार देता ताला कि अब रहो भीतर । अब हो गयी पूजा बहुत । अब पड़े रहो वहां । लेकिन जो भी होता है हृदय से होता है । हृदय से ही हो तो ही सचाई है ।

. . . पूजा लावैं, झूठ दिढ़ावैं, बहिकावैं ।

भगवान तक को धोखा दे रहे हैं लोग ! आदमियों की तो छोड़ो, तुम जब मन्दिर पूजा चढ़ाने गये हो, तुम्हारे हृदय में चढ़ाने का कोई भाव था ? तुमने सच में अपना हृदय चढ़ाया था ? उन फूलों के साथ तुम्हारा भी कुछ चढ़ा था, कि बस यूं ही एक औपचारिकता पूरी कर आये थे ? किसको धोखा दे रहे हो ? कम से कम उसे तो धोखा मत दो ।

. . . अरु माला आवैं ।

और लोग हैं कि माला फेर रहे हैं । और भेज देते हैं दादू उनको कि जा । लोग माला फेर रहे हैं और भीतर संसार फिर रहा है ।

. . . तिलक बनावैं . . . ।

और लोग तिलक बना रहे हैं । और वह तिलक वैसा ही है जैसे स्त्रियां अपने सौन्दर्य का शृंगार-साधन कर रही हैं, जिसमें कोई मूल्य नहीं है । अहंकार है, पद-प्रतिष्ठा है, अकड़ है ।

. . . क्यों पावैं गुरु बिन गैला ।

जगह-जगह जाकर एक बात लगी साफ सुन्दर को कि बिना गुरु के गैल नहीं मिलती । ये सब बिना गुरु के चल रहे हैं । यही इनकी अड़चन है । शास्त्र भी पढ़ लेते हैं, मगर शास्ता कहां है जो शास्त्र में अर्थ डाले ? पूजा भी कर लेते हैं, लेकिन किसी प्यारे से मिलन नहीं हुआ है, जो पूजा को जीवन्त बनावे । माला भी फेर लेते हैं, लेकिन किसी ऐसे आदमी से मिलना नहीं हुआ है, जिसको श्वास में 'हरि बोलौ हरि बोल' की माला फिर रही हो ।

. . . क्यों पावैं गुरु बिन गैला ।

गैला शब्द के दो अर्थ हैं । एक अर्थ तो होता है—राह, गैल । और एक अर्थ होता है, मूढ़ । मूर्ख । दोनों ही अर्थ सार्थक हैं यहां । क्यों पावैं गुरु बिन गैला । ये मूढ़ बिना गुरु के नहीं पा सकेंगे । या बिना गुरु के कोई राह नहीं मिलती ।

असल में राह तो उससे ही मिल सकती है, जिसे मिल गयी हो । जो पहुंच गया, जो उस शिखर पर आरूढ़ हो गया, उसकी ही पुकार तुम्हारे अंधकारपूर्ण जंगलों से तुम्हें बाहर ला सकेगी ।

दादू का चेला, भरम पछेला, सुन्दर न्यारा ह्वै खेला ।

तो गये । तो भक्त न भावैं, दूरि बतावैं, तीरथ जावैं फिरि आवैं । तो लौट-लौट आते । फिर वहीं आ जाते । स्वाद लग गया गुरु का । दादू का चेला ! गुरु मिल गया । शिष्यत्व का अनुभव हो गया । भरम पछेला । सारे भ्रम तोड़ डाले गुरु ने । इन्हीं भ्रमों को तोड़ने के लिए जगह-जगह भेजा । अठारह साल काशी रहने को कहा ।

सुन्दर न्यारा ह्वै खेला । और धीरे-धीरे सुन्दर को सब समझ में आ गया कि बाकी सब संसार गुरु के बिना नाटक है । खेलो खूब ! जानकर खेलो, साक्षीभाव से खेलो । सुन्दर न्यारा ह्वै खेला । एक बात जान लो कि तुम न्यारे हो, भिन्न हो, पृथक हो । बस उतनी बात तुम्हारी समझ में आ जाये कि सब समझ में आ गया । साक्षी समझ में आ गया तो सब समझ में आ गया ।

इस जगत को भोक्ता को तरह मत जियो, कर्ता की तरह मत जियो, द्रष्टा की तरह जियो । और प्रेम से यह चमत्कार घटता है कि तुम द्रष्टा हो जाते हो ।

प्रेम को प्रभाव ऐसो, प्रेम तहां नेम कैसो,
सुन्दर कहत यह प्रेम की ही बात है ।

आज इतना ही ।

संसार अर्थात् मूर्च्छा

दूसरा प्रवचन : दिनांक २ जून, १९७८; श्री रजनीश आश्रम, पूना

ज्ञानी परमात्मा को परम नियम कहते हैं, और कहते हैं कि यह नियम अत्यंत न्यायपूर्ण और कठोर है। दूसरी ओर भक्त परमात्मा को परम प्रेम कहते हैं और परम कृपालु। इस बुनियादी दृष्टि-भेद पर कुछ कहने की कृपा करें।

कहते हैं कि खेल के भी नियम होते हैं। फिर यह कैसा कि प्रेम में कोई नियम न हो ?

भगवान, प्रेम स्वीकार न हो तो ... ?

संसार में असफलता अनिवार्य क्यों है ?

मैं महापापी हूं, मुझे उबारें !
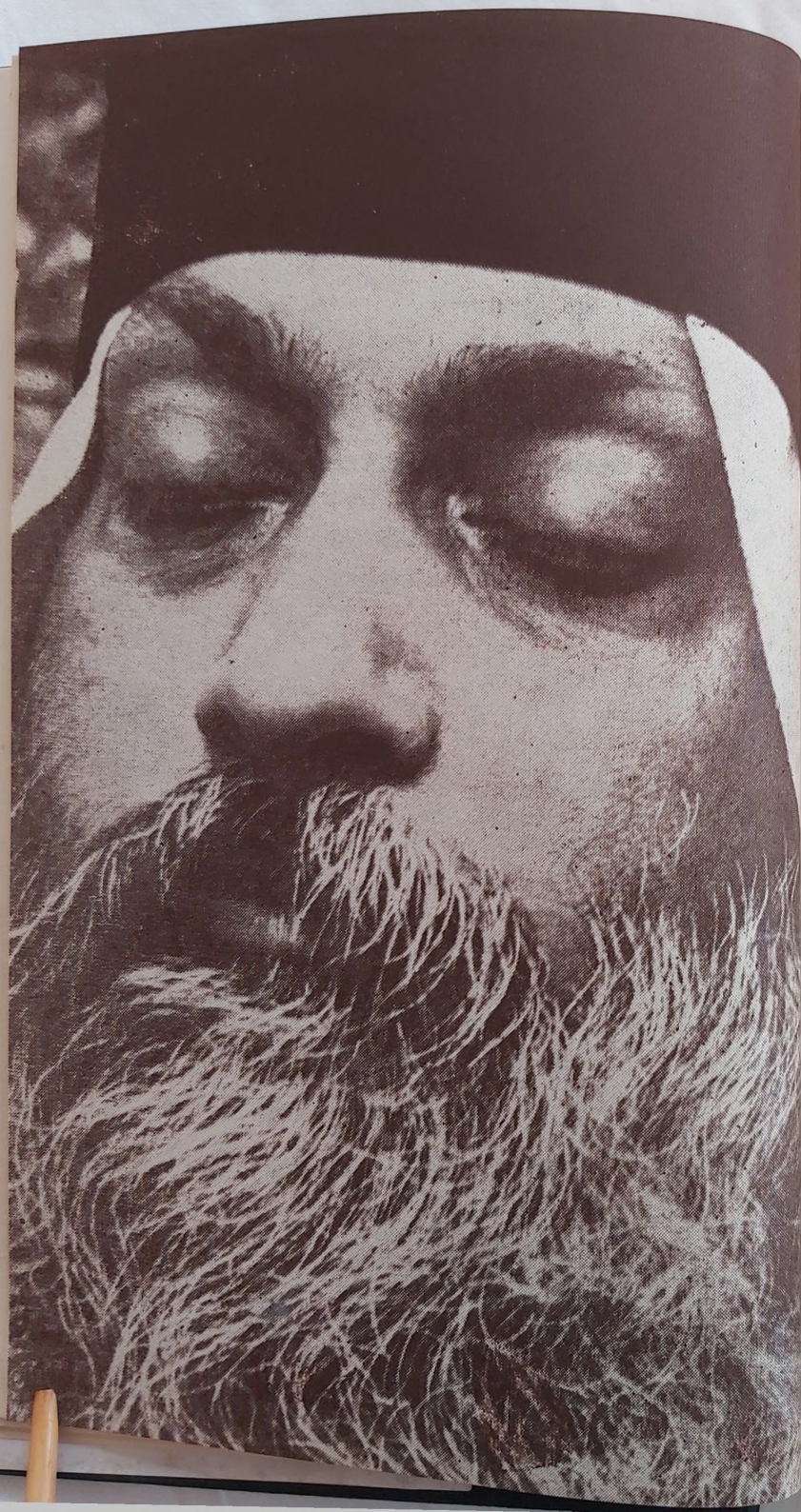
पहला प्रश्न --

ज्ञानी परमात्मा को परम नियम कहते हैं, और कहते हैं कि यह ऋत्, यह नियम अत्यंत न्यायपूर्ण और कठोर है । दूसरी ओर भक्त परमात्मा को परम प्रेम कहते हैं, और परम कृपालु । इस बुनियादी दृष्टि-भेद पर कुछ कहने की कृपा करें ।

* ज्ञानी की भाषा गणित की भाषा है । गणित की भाषा कठोर होगी । परमात्मा कठोर नहीं है । गणित की भाषा से देखोगे परमात्मा को तो कठोर दिखाई पड़ेगा । गणित की भाषा तुम्हारी आंख पर एक चश्मा है ।

परमात्मा न तो कठोर है और न सदय है; न तो दयालु, न क्रोधी । द्वन्द्व से भरे शब्दों में परमात्मा को बांटने का कोई उपाय नहीं है । परमात्मा है द्वन्द्वातीत । लेकिन मनुष्य तो जब भी सोचेगा तो दो ही उपाय हैं उसके पास--या तो तर्क की भाषा, या प्रेम की भाषा; या तो गणित की भाषा या काव्य की भाषा । ज्ञानी ने गणित की भाषा चुनी है । गणित की भाषा की कुछ खूबियां हैं और कुछ हानियां भी । खूबी--कि साफ-सुथरी होती है, स्पष्ट होती है । खतरा--क्योंकि स्पष्ट है, साफ-सुथरी है, स्वयं नियमबद्ध है, इसलिए उसमें से देखा गया परमात्मा भी कठोर और नियमबद्ध मालूम होगा ।

प्रेम की भाषा का भी अपना लाभ है, अपनी हानि है । लाभ है कि परमात्मा कठोर नहीं मालूम होगा--दयालु मालूम होगा, सदय मालूम होगा । तुम उसकी खोज पर सुगमता से निकल सकोगे । यात्रा बहुत दुर्गम न मालूम होगी । लेकिन हानि भी है । क्योंकि तुम अत्यंत भाव से भरकर परमात्मा की तरफ देखोगे, तुम्हें जीवन में, शीघ्रता से कुछ कर लेना है, इसकी प्रतीति कम होगी; आलस्य घेर लेगा, तमस् घेर लेगा ।

ज्ञानी का खतरा है कि वह सूखा हो जाता है । और भक्त का खतरा है कि वह आलसी हो जाता है--परमात्मा सदय है, जल्दी क्या है ? उसकी कृपा अनन्त है, मिल ही जायेगी । पुकारने की ही बात है ।

ज्ञानी जीवन को बदलने में लग जाता है, क्योंकि डरा होता है। कठोर नियम हैं, चूका तो खतरा है। महानर्क में पड़ना होगा। ज्ञानी जीवन को सुदृढ़ करने में लगता है, गढ़ता है, रंग देता है, आकार देता है, रूप देता है--और तीव्रता से देता है। जैसे छाती पर नंगी तलवार लिए कोई खड़ा है।

भक्त सो जाता है। भक्त कहता है, जल्दी क्या है? उस प्यारे के हाथों में सब है। मेरे पापों की गिनती क्या है?

ये लाभ हैं, हानियां भी जुड़ी हैं साथ-साथ। ज्ञानी परमात्मा को नियम की तरह देखता है, स्वयं भी सूख जाता है। तुम्हारा जैसा परमात्मा होगा, वैसे ही तुम हो जाओगे। उसके जीवन में एक गणित का सुथरापन तो होता है, लेकिन कोई काव्य नहीं जन्मता। उसके जीवन में कोई गीत नहीं गूंजता। उसके हृदय में कोई नृत्य नहीं होता, उत्सव नहीं होता। वह गंभीर हो जाता है, उदास हो जाता है, चिन्तित हो जाता है। अब परमात्मा की तरफ चलनेवाला आदमी चिन्तित हो जाये, तो पहुंचेगा कैसे? भयभीत हो जाता है। और जहां भय है वहां मुक्ति कहां? जो भयभीत है, वह सिकुड़ जाता है, फैलना बन्द हो जाता है। और फैलाव में ही उससे मिलन हो सकता है।

वह फैलाव है। सारा अस्तित्व उसी का फैलाव है। जब हम भी फैलेंगे तो उससे मिलेंगे। उस जैसे होंगे तो उससे मिलेंगे।

तो ज्ञानी सिकुड़ जाता है, कठोर हो जाता है। अपने पर ही कठोर नहीं हो जाता, दूसरे पर भी कठोर हो जाता है। ज्ञानी के हाथ में पड़ जाओ तो तुम्हें सताने लगेगा। तुम्हें इस तरह ढालने लगेगा कि तुम यंत्रवत हो जाओगे। खुद भी यंत्र हो जाता है, तुम्हें भी यंत्रवत कर देता है। यह खतरा है ज्ञान का।

भक्त सरल होता है, सहज होता है, आश्वस्त होता है, चिन्तामुक्त होता है। भयभीत नहीं होता। जब उसका प्यारा ही सारे जगत के केन्द्र में बैठा है तो भय कैसा? उसकी कल्पना में कोई नर्क नहीं होते; नर्कों में जलने वाली ज्वालाएं नहीं होतीं। फैलता है, आसानी से फैलता है। नाचता है, गाता है, उत्सव मनाता है। परमात्मा है तो उत्सव ही जीवन होना चाहिये। उसके भीतर से रसधार बहती है।

ये तो लाभ हैं। लेकिन, नासमझ भी दुनिया में हैं, जो हर चीज में से हानि उठा लेते हैं। नासमझ हैं जो चादर ओढ़ कर सो जाते हैं। वे कहते हैं, जब वही है और उसकी करुणा अपार है, तो हम क्यों चिन्ता लें? हम क्यों फिकर करें?

ध्यान रखना, ये भाषाओं के भेद महंगे भी पड़ सकते हैं! सब तुम पर निर्भर है--तुम कैसे उपयोग करोगे? बुद्धिमान आदमी गलत स्थिति का भी ऐसा उपयोग कर लेता है कि ठीक परिणाम हों और बुद्धू ठीक स्थिति का भी ऐसा उपयोग करता है कि दुष्परिणाम हो जाते हैं। मगर ये भेद सिर्फ भाषा के हैं। इनके द्वारा परमात्मा के

सम्बन्ध में कुछ पता नहीं चलता; इनके द्वारा परमात्मा की खोज पर निकले हुए आदमी के सम्बन्ध में पता चलता है।

अगर महावीर के वचन सुनो तो साफ एक बात होती है कि महावीर शुद्ध गणित हैं। इससे महावीर के परमात्मा के संबंध में कुछ पता नहीं चलता, क्योंकि परमात्मा तो एक है; महावीर का हो कि मीरा का हो, कुछ फर्क नहीं पड़ता। लेकिन महावीर गणितज्ञ जैसे साफ-सुथरे हैं। जो लोग खोजबीन करते हैं दर्शन के इतिहास की वे कहते हैं: जो बात अलबर्ट आइन्स्टीन ने पच्चीस सौ साल बाद कही, वही बात महावीर ने पच्चीस सौ साल पहले कही थी--सापेक्षवाद का सिद्धान्त--द थीरी ऑफ रिलेटिविटि।

महावीर और आइन्स्टीन में कुछ तालमेल है। दोनों के देखने का ढंग एक जैसा है--सुसंबद्ध, सुतर्कयुक्त। और महावीर ने उससे कोई हानि नहीं उठायी। महावीर न तो सूखे, न उदास हुए। उन जैसी मस्ती कहां! उन जैसा आनन्द अहोभाव कहां! कुछ हानि नहीं हुई महावीर की। महावीर सुसंबद्ध गणित का उपयोग करके भी सीढ़ी-दर-सीढ़ी परमात्मा तक पहुंच गये--परमात्मा हो गये।

लेकिन फिर महावीर के पीछे चलनेवाले, सेवड़े, वे कहीं पहुंचते मालूम नहीं होते। गणित उनके गले में फांसी की तरह लग गया है। बस वे हिसाब-किताब ही बिठा रहे हैं, खाते-बही ठीक कर रहे हैं, पाप-पुण्य का लेखा-जोखा कर रहे हैं। किस बात के करने से कितना पाप हो जायेगा और किस बात के करने से कितना पुण्य हो जायेगा, इसी में पड़े हुए हैं। सेवड़ों की जिन्दगी में महावीर जैसा रस नहीं दिखायी पड़ता, न मस्ती दिखाई पड़ती है। वह महावीर की चाल, वह प्रसाद कहीं दिखाई नहीं पड़ता। यद्यपि महावीर नग्न हैं, लेकिन कृष्ण भी अपने सुन्दरतम वस्त्रों में इतने सुन्दर कहां थे? माना कि नहीं उन्होंने मोर-मुकुट बांधा है, लेकिन बांधें क्यों? सौन्दर्य नग्न भी सुन्दर है। महावीर के सौन्दर्य में कमी नहीं है। कहते हैं, महावीर जैसा सुन्दर आदमी पृथ्वी पर दुबारा नहीं चला। शायद सुन्दर इतने थे कि वस्त्रों की भी जरूरत न थी। यही कारण होगा कि नग्न हुए। सुन्दर इतने थे कि देह पर कुछ भी और रखना देह को कुरूप करना होता।

तुमने देखा, असुन्दर स्त्रियां ज्यादा आभूषणों में रस लेती हैं। सुन्दर स्त्रियां आभूषणों से मुक्त हो जाती हैं। जब भी कोई जाति की स्त्रियां सुन्दर होने लगती हैं, आभूषण विदा हो जाते हैं। आभूषण से लदी औरत सिर्फ अपनी कुरूपता की खबर देती है, और कुछ भी नहीं। आभूषणों के द्वारा वह अपनी कुरूपता को छिपाती है, आभूषणों के उधार सौन्दर्य को अपने ऊपर आरोपित करती है। जिसके चेहरे में सौन्दर्य नहीं है, उसकी नाक पर लगा हुआ हीरा, जड़ा हुआ हीरा, तुम्हें मोहित कर

लेगा। कम-से-कम हीरा तो मोहित करेगा, हीरे की चमक तो मोहित करेगी ! जिसके हाथ सुन्दर नहीं हैं उसके हाथ में बजती हुई चूड़ियों की खनकार शायद संगीत का अनुभव दे। जो स्वयं सुन्दर नहीं है, वस्त्रों में आविष्ठ, शायद सौन्दर्य का भ्रम पैदा हो सके।

जितनी कुरूपता उतने आभूषण, उतना प्रसाधन, उतना इंतज़ाम। सुन्दर स्त्री अपने में ही सुन्दर है। आभूषण उसके सौन्दर्य को खण्डित करेंगे।

तो शायद यही कारण था कि महावीर नग्न खड़े हुए। अपूर्व सौन्दर्य था उनका; अपूर्व प्रसाद था उनके व्यक्तित्व का ! गणित की दृष्टि ने उन्हें मारा नहीं, उन्हें नुकसान नहीं पहुंचाया। बुद्धिमान आदमी को कोई चीज़ नुकसान नहीं पहुंचाती। वह जहर से भी औषधि बना लेता है। लेकिन उनके पीछे चलने वाले लोग सिर्फ गणित के हिसाब-किताब में लगे हैं। उनकी जिन्दगी हिसाब-किताब में जा रही है। वे भूल ही गये मस्ती। मस्ती की फुरसत कहां ? नाचें कब ? हिसाब ही पूरा नहीं बैठ पाता। गीत कब गायें ? वीणा कब बजायें ? बांसुरी कब उठायें ?

और ध्यान रखना, बांसुरी बजाने के लिए बांसुरी ओठों पर रखना अनिवार्य नहीं है। बांसुरी चुप्पी में भी बज सकती है। ऐसी ही महावीर की बजी थी। मगर बांसुरी निश्चित बज रही थी। एक अपूर्व आकर्षण था उस व्यक्तित्व में। बिना किसी आडम्बर के आकर्षण था।

फिर मीरा है, जो नाची, जो गायी, जिसने भाव से परमात्मा को देखा। उसके लिये परमात्मा नियम नहीं है। नियम अदालतों में होते हैं। परमात्मा उसके लिए न्यायाधीश नहीं है। न्यायाधीश से कोई प्रेम हो सकता है ? न्यायाधीश तो कठोर। न्यायाधीश तो बिलकुल ऐसा होता है जैसे कि उसमें व्यक्तित्व तो होना ही नहीं चाहिये, तभी उसका न्याय पक्षपात-रहित होगा। अगर उसका जरा भी प्रेम-भाव है तो न्याय डांवांडोल हो जायेगा। अगर कोई सामने खड़ा है व्यक्ति, जिससे उसका लगाव है, तो फिर शिथिलता हो जायेगी न्याय में। फिर न्याय पूरा नहीं हो पायेगा। या उसकी दुश्मनी है, विरोध है, तो भी न्याय गड़बड़ हो जायेगा। तब अतिशय कठोर हो जायेगा। न्यायाधीश को तो प्रेम से, लगाव से मुक्त होना चाहिये, निष्पक्ष होना चाहिये। कोई भावाविष्ट दशा नहीं होनी चाहिये।

तुमने देखा, सारी दुनिया में न्यायाधीश के लिये हमने विशेष वस्त्र बना रखे हैं। वस्त्र ही नहीं, उसको सिर पर पहनने के लिए झूठे बाल भी तैयार करवा देते हैं, ताकि उसका व्यक्तित्व बिदा हो जाये। आखिर आदमी आदमी है। उसकी पत्नी है, बच्चे हैं, मित्र हैं, शत्रु हैं—आदमी जैसा आदमी है। हम उसके सारे व्यक्तित्व को उससे छीन लेते हैं। हम उसे एक नकली आदमी बनाकर बिठाल देते हैं। हम

उससे यह कह रहे हैं कि अब तुम भूल जाओ कि तुम समाज के हिस्से हो। तुम्हारा विग, तुम्हारे कपड़े, तुम्हारे बैठने का ढंग, वकील तुम्हें जिस तरह सम्बोधित करेंगे—माई लॉर्ड ! हं...जैसे परमात्मा बैठा हो ! अब वकील भी अच्छी तरह जानते हैं कि माई लॉर्ड जैसा कुछ भी नहीं है, लेकिन अब उद्घोषणा ऐसी करनी है जैसी कि कठोर परमात्मा बैठा हुआ है—निष्पक्ष, दूर, जिससे हमारा कोई लेना-देना नहीं, जो शुद्ध नियम से चलेगा।

मीरा का परमात्मा न्यायाधीश नहीं है। मीरा का परमात्मा प्रेमी है। मीरा के साथ नाच रहा है। मीरा के साथ रास रचा रहा है। मीरा के हाथ में हाथ डाला है। मीरा उसकी ही धुन पर नाच रही है। मीरा अपनी धुन पर उसको नचा रही है। यह बड़े लगाव का, बड़े प्रेम का, बड़ा रससिक्त सम्बन्ध है। लेकिन मीरा में कुछ कमी नहीं है—महावीर से जरा भी कमी नहीं है। इतनी रससिक्त होकर, इतनी प्रीतिपूर्ण होकर, इतने भाव और प्राणों से परमात्मा को पुकारकर भी मीरा वहां पहुंच गयी जहां महावीर अपने कठिन-कठोर नियम से पहुंचे। जहां महावीर तपश्चर्या से पहुंचे वहां मीरा गीत गाते हुए पहुंच गई। जहां महावीर उपवास से पहुंचे हैं वहां मीरा उत्सव से पहुंच गई है।

लेकिन फिर बहुत भक्त हैं, भक्त के नाम से चलते हैं दुनिया में बहुत लोग, जो सिर्फ चादर ओढ़कर सो रहे हैं; जो कहते हैं : 'करना क्या है ? वह प्यारा तो सबका देखनेवाला है; वह तो सब करनेवाला है। हमारा पाप भी क्या है, क्षमा कर देगा। जब मिलन होगा, झुक जायेंगे चरणों में, माफी मांग लेंगे। हमारे पाप ही छोटे-मोटे हैं, उसकी करुणा तो अपार है। हमारे पापों की गिनती क्या है ? वह तो माफ कर देगा। हम क्यों परेशान हों ?' आलस्य पैदा हो रहा है। तमस् पैदा हो रहा है।

भक्त की भूल अगर जाये तो तमस् पैदा होता है। ज्ञानी की भूल अगर पैदा हो जाये तो उदासी, सूखापन, मरुस्थल। सब हरियाली विदा हो जाती है, सब फूल खिलने बन्द हो जाते हैं। वसन्त फिर नहीं आता।

भूलों से बचना। कौन-सी भाषा तुम चुनते हो, इसकी बहुत चिंता नहीं है। इतना ही ख्याल रखना कि उससे कोई गलत परिणाम मत ले लेना। तो तुम किसी भी मार्ग से पहुंच सकते हो।

ज्ञानी अपने सम्बन्ध में कह रहा है कि परमात्मा नियम है। सच तो यह है, हम जब भी परमात्मा के सम्बन्ध में कुछ कहते हैं तो अपने सम्बन्ध में कुछ कहते हैं। परमात्मा के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। अनिर्वचनीय है। अव्याख्य है। और, अगर परमात्मा के ही सम्बन्ध में कुछ कहना हो तो हमारे कोई शब्द काम नहीं आ सकते—न तो प्रेम, और न नियम। क्योंकि हमारे सारे शब्द हमारे हैं—

छोटे-छोटे शब्द; जैसे हमारे छोटे-छोटे आंगन। इन छोटे-छोटे आंगन में कहां आकाश को समाओगे? और ऐसा भी नहीं है कि तुम्हारे आंगन में आकाश नहीं है—बस आकाश का एक अंशमात्र है, पूरा आकाश नहीं हो सकता है। ऐसे हमारे हर शब्द में परमात्मा का एक अंशमात्र हो सकता है, पूरा परमात्मा नहीं हो सकता।

लेकिन आदमी की भ्रान्ति, मतान्धता ऐसी है कि जब वह दावा करता है तो अतिशयोक्ति पूर्ण कर देता है। फिर वह भूल ही जाता है कि यह छोटा आंगन, मैं इसको ही पूरा आकाश कहूं? तो भक्त भी वैसी भूल कर देता है कि अपने छोटे आंगन को पूरा आकाश कह देता है—कि बस, परमात्मा ऐसा है, कि परमात्मा प्रेम है, और अन्यथा नहीं है। और ज्ञानी भी भूल कर देता है। कहता है, बस परमात्मा नियम है, अन्यथा नहीं।

मैं तुमसे कहना चाहता हूं, परमात्मा के सम्बन्ध में जितनी बातें कही गयी हैं, सब सच हैं। और जितनी बातें अभी नहीं कही गयी हैं, कही जायेंगी कभी, वे भी सच हैं। और ऐसी भी बातें हैं जो न कही गयी हैं और न कही जा सकेंगी, वे भी सच हैं। परमात्मा विराट है, अनंत है। हम कह-कहकर उसे चुकता न कर पायेंगे। हमारी सब भाषाएं छोटी पड़ जायेंगी। हमारे सब पैमाने छोटे पड़ जायेंगे। हमारी छोटी-छोटी प्यालियों में हम कितना उसे भरेंगे? सागर बड़ा है।

अरिस्तोतल घूमता था सागर के तट पर, उसने एक आदमी को देखा। बड़ा पागल मालूम पड़ा वह आदमी। वह एक छोटी सी प्याली में, चाय पीने की प्याली में सागर से पानी भरकर लाता था और एक छोटा-सा गड्ढा खोद रखा था उसने किनारे पर, उसमें डाल देता था। फिर भाग जाता, फिर डालता। फिर भागा जाता, फिर डालता। अरिस्तोतल घूमता रहा, घूमता रहा; बीच में बोलना नहीं है—किसी दूसरे आदमी के काम में क्यों बाधा डालनी? लेकिन फिर उसकी जिज्ञासा प्रबल हो उठी। नहीं रोक सका अपने को। कहा कि भई मुझे तुम्हारे काम में बाधा नहीं डालनी चाहिए, लेकिन मेरी समझ में नहीं आ रहा, तुम क्या कर रहे हो? तुम यह प्याली-भर पानी भर कर लाते हो, इस रेत में खोदे गड्ढे में डालते हो, वह खो जाता है। फिर तुम भागे जाते हो, जब तक तुम लौटते हो, वह पहले वाला पानी तो रेत पी गई। तुम कर क्या रहे हो? इससे प्रयोजन क्या है?

उस आदमी ने कहा, मैंने तय किया है कि इस पूरे सागर को इस गड्ढे में उंडेलूंगा। अरिस्तोतल हंसने लगा। उसने कहा, तुम पागल हो। ऐसा सुन कर वह आदमी और भी जोर से हंसा। और उसने कहा, अगर मैं पागल हूं अरिस्तोतल, तो जरा अपने सम्बन्ध में विचार कर लेना। तुम क्या कर रहे हो? यह खोपड़ी आदमी की कोई चाय पीने की प्याली से ज्यादा बड़ी है? इसमें भर-भर कर तुम परमात्मा

को चुकता करने की कोशिश कर रहे हो।

यही अरिस्तोतल कर रहा था जीवन भर। तर्कनिष्ठ आदमी था। तर्क का जन्मदाता था पश्चिम में। तर्क का पिता। उसका काम ही यही था कि सारा अस्तित्व तर्क की पद्धति से सुस्पष्ट हो जाये। उस आदमी ने अरस्तु को एक धक्का दे दिया। वह आदमी परमज्ञानी रहा होगा। रहा होगा कोई मस्त फकीर, जो अरिस्तोतल को जगाने आया था। उस दिन से अरिस्तोतल के जीवन में बड़ा फर्क पड़ा। पुरानी अकड़ न रही। जब भी सोचने बैठता, तभी उस आदमी की याद आती—वह प्याली, सागर का पानी भरना, गड्ढे में डालना।

आदमी की बुद्धि और ज्यादा कर भी क्या सकती है! आदमी जो भी कहता है परमात्मा के सम्बन्ध में, अपने सम्बन्ध में कहता है। अपनी आंख के सम्बन्ध में कहता है। अपने देखने के ढंग के सम्बन्ध में कहता है। अपनी जीवन-शैली के सम्बन्ध में कहता है।

तुम्हें जो रुच जाये, उसके अनुकूल चल पड़ना। पर इतना ही ख्याल रखना, हर मार्ग के लाभ हैं, हर मार्ग की हानियां हैं। हानियों से सावधान रहना। ऐसा कोई भी मार्ग नहीं है जिसको हानि न हो और जिस पर हानि की संभावना न हो। जितना लाभ हो उतनी ही हानि की संभावना है। जितना ज्यादा लाभ हो उतनी ही ज्यादा हानि की संभावना है। लाभ और हानि सदा अनुपात में होते हैं।

दूसरा प्रश्न भी पहले से कुछ सम्बन्धित है। दूसरा प्रश्न है: कहते हैं कि खेल के भी नियम होते हैं। फिर यह कैसा कि प्रेम में कोई नियम न हो?

सुन्दरदास ने कल कहा कि प्रेम में कोई नियम नहीं। इसलिए पूछा है: कहते हैं कि खेल के भी नियम होते हैं।

खेल के नियम होते हैं, जरूर होते हैं। और खेल के भी नियम होते हैं, ऐसा नहीं; अगर ठीक से समझोगे तो खेल के ही नियम होते हैं। और प्रेम खेल नहीं है। और जब प्रेम खेल नहीं होता, तभी प्रार्थना का जन्म होता है।

तुम जिसे प्रेम समझ रहे हो, वह तो खेल है, उसके तो नियम हैं। पति-पत्नी के बीच नियम होते हैं। नहीं तो विवाह क्या है? सब नियम से खेल चला रहा है। बैंड-बाजा बजेगा। घोड़े पर सवार होगा दूल्हा, दुल्हन सजेगी, बारात निकलेगी। ये सब नियम हैं। इन नियमों के द्वारा एक बात गहराई जा रही है मन में, कोई बहुत महत्त्व-पूर्ण कार्य हो रहा है? वैसे घोड़े पर कभी बैठे नहीं थे। अब घोड़े पर बैठे हैं। दूल्हा को कहते हैं—'दूल्हा राजा!' मोर बांधा हुआ है। कटार लटकाई हुई है। कटार—जिससे सब्जी भी न कटे! मगर अकड़ देने के लिए। वस्त्र पहनाए हुए हैं—विशिष्ट, जैसे अगर ऐसे ही पहनकर निकलो तो लोग भीड़ लगाकर देखें और कहें कि दिमाग

खराब हो गया है या क्या बात है ? एक विशिष्टता देने के लिए, ताकि तुम्हारे मन में यह छाप पड़ी रह जाए कि कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ है ।

फिर मन्त्र-जाप है, पूजा-पाठ है, हवन है, फिर हवन के चारों तरफ सात फेरे हैं । पण्डितों का संस्कृत का उच्चार, जो तुम्हें कुछ समझ में नहीं आता कि क्या कहा जा रहा है, क्यों कहा जा रहा है । न पण्डित को पता है, न तुमको पता है । . . . कुछ विशिष्ट हो रहा है ! एक विशिष्टता की हवा पैदा की जा रही है । सात चक्कर लगा दिये गये, एक गांठ बांध दी गई, कसम खिला दी गई—समाज के सामने, सारे लोग मौजूद हैं । समाज ने सील-मोहर लगा दी । ये सब खेल के नियम हैं ।

एक सज्जन मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं कि बड़ा परेशान हूं । सालों बीत गए, इस स्त्री के साथ जिस दिन से मेरा विवाह हुआ है, शान्ति नहीं जानी । तो मैंने उनसे कहा कि कोई रास्ता नहीं बनता हो तो छूट जाओ, अलग हो जाओ । वे कहने लगे, कैसे छूट जाओ ? सात फेरे पड़ चुके हैं । तो मैंने कहा, उलटे फेरे पाड़ लो, और क्या करोगे ? आखिर फेरे ही पड़े हैं न, तो रास्ता तो है ही । फिर बैण्ड-बाजा बजवा दो, फिर बैठ जाओ घोड़े पर । अब की दफा उलटे बैठ जाना । फिर इकट्ठा कर लो लोगों को और उल्टे चक्कर लगा लेना और गांठ खोल कर कहना कि नमस्कार ।

मगर हम इसीलिये सदियों तक तलाक का अवसर नहीं दिये थे, क्योंकि अगर तलाक का अवसर हो तो विवाह के खेल की गंभीरता नष्ट हो जाती है । फिर ऐसा लगता है, यह खेल तो तोड़ा भी जा सकता है । तो फिर लगने लगता है कि यह खेल ही है । जब तलाक हो सकता है तो विवाह खेल मालूम होने लगता है । तलाक हो ही नहीं सकता, तो फिर विवाह खेल नहीं है ।

खेल के तो बाहर तुम आ सकते हो । ताश खेलने बैठे, नहीं खेलना तो उठ गये । खेल को तो कभी भी बन्द किया जा सकता है । विवाह खेल नहीं है, ऐसी तुम्हारे मन में धारणा बिठाने के लिए, तलाक को रोका गया था । और जिन-जिन देशों में तलाक की सुविधा मिल गई है, उन-उन देशों में विवाह विदा हो रहा है । हो ही जायेगा, क्योंकि जब खेल ही है तो जब तक खेलना है खेलो, जब नहीं खेलना है तो समाप्त करो । कष्ट झेलने की कोई जरूरत नहीं है ।

प्रेम—जिस प्रेम की बात सुन्दरदास कर रहे हैं या मैं कर रहा हूं—खेल की बात नहीं है । खेल के पार उठने की बात है । इस जगत में एक ही चीज तो है जो खेल नहीं है, वह परमात्मा है । बाकी सब खेल है । परमात्मा से जुड़ने का नाम प्रेम है । वहां कैसे नियम ? क्योंकि अगर वहां भी नियम हों तो नियम तोड़े जा सकते हैं । अगर नियम हों तो नियम बचाये जा सकते हैं । अगर नियम हों तो नियम से बचने की तरकीबें निकाली जा सकती हैं । हर नियम में से उपाय निकाला जा सकता है ।

लेकिन परमात्मा और मनुष्य के बीच का सम्बन्ध नियम का सम्बन्ध नहीं है—निसर्ग का सम्बन्ध है । यह कोई नियम नहीं है कि आदमी परमात्मा से जुड़ा है । यह नियति है । ऐसी अस्तित्व की व्यवस्था है । यह कोई नियम नहीं है कि वृक्ष पृथ्वी से जुड़ा है । वृक्ष पृथ्वी का ही रूप है, पृथ्वी का ही रंग है । पृथ्वी ने ही अपने हरे रंग को वृक्ष में उंडेला है । और पृथ्वी ने अपने लाल रंग को वृक्ष में फूल बनाया है । और पृथ्वी में छिपी हुई सुगन्ध वृक्ष-वृक्ष में आकर प्रगट हुई है । वृक्ष पृथ्वी का ही फैला हुआ हाथ है आकाश की तरफ । यह पृथ्वी की आकांक्षा है चांद-तारों को छूने की । यह पृथ्वी के नाचने का भाव है । यह पृथ्वी मस्त होना चाहती है । यह वृक्ष किसी नियम के कारण पृथ्वी से नहीं जुड़ा है—यह पृथ्वी का ही हिस्सा है ।

जैसे वृक्ष पृथ्वी से एक है, ऐसे ही मनुष्य परमात्मा से एक है । मनुष्य परमात्मा का ही फैलाव है, उसी का विस्तार है । जिस दिन यह बात पहचान में आती है, उस दिन प्रेम जगा । उस प्रेम का कोई नियम नहीं होता । वह स्वयं ही अपना नियम है ।

तुम पूछते हो : 'कहते हैं खेल के भी नियम होते हैं ।' खेल के तो नियम होते ही हैं । सच तो यह है, खेल नियम पर ही निर्भर होता है । इसलिए खेल में लोग नियम को तोड़ते नहीं । नियम को तोड़ो तो खेल खतम । कोई भी नियम तोड़ दो तो खेल खतम ।

तुम ताश खेलने बैठे हो तो तुम्हें मानना पड़ता है कि यह राजा है, यह रानी है । और तुम भी जानते हो कि कागज का पत्ता है—न कोई राजा है, न कोई रानी है । अब तुम यह नहीं कह सकते खड़े होकर कि हम राजा-रानी में नहीं मानते, क्योंकि हम तो लोकतन्त्र में मानते हैं । तो खेल खतम । तो फिर बात बंद हो गयी । अब क्या खेलोगे ? राजा-रानी के बिना खेल नहीं चल सकेगा । हालांकि जिन्दगी से विदा हो गये, लेकिन ताश के पत्तों में अभी हैं । ताश के पत्तों में रहेंगे ।

कहते हैं, आनेवाली दुनिया में बस पांच ही राजा-रानी रहेंगे—चार ताश के पत्तों के और एक इंग्लैण्ड का । बाकी तो सब गये, क्योंकि इंगलैण्ड का रानी हो या राजा, वह भी ताश के पत्तों जैसा है । उसमें कुछ बल नहीं है । सिर्फ नाममात्र है । खेल का एक हिस्सा है । तोड़ने की कोई जरूरत नहीं ।

खेल तो नियम पर ही निर्भर होते हैं । तुम अपने नियम नहीं चला सकते । खेल में तो स्वीकृत नियम होता है । तुम अगर शतरंज खेल रहे हो तो तुम यह नहीं कह सकते कि हम अपनी ही चाल तय करेंगे—कि घोड़ा कैसे चले, ऊंट कैसे चले, वजीर कैसे चले । तुम यह नहीं कह सकते कि कोई अनिवार्यता थोड़े ही है कि वजीर ऐसा ही चले कि घोड़ा ऐसा ही चले; हम अपना नियम बनायेंगे । दूसरा आदमी अपना नियम बनायेगा, खेल खत्म हो गया ।

खेल तो नियम पर निर्भर होता है। वह तो समझौता है। वह तो इस बात का राजीपन है कि हम दोनों राजी हैं नियम पर, तो ही खेल चलता है।

जिनकी जिन्दगी नियम के अनुसार चलती है, उनकी जिन्दगी ताश के पत्तों जैसा खेल है, शतरंज का खेल है। कुछ जिन्दगी में खोजो जो नियम नहीं है। वही सत्य है। कुछ ऐसा खोजो, जिसके लिए तुमने कोई समझौता नहीं किया है। कुछ ऐसा खोजो कि तुम्हारे समझौता तोड़ने से टूट नहीं जायेगा। कुछ ऐसा खोजो जो तुम्हारा कॉन्ट्रेक्ट नहीं है। सब खेल कॉन्ट्रेक्ट है।

तो मैं तुमसे कहना चाहूंगा. . .पूछा तुमने : 'कहते हैं खेल के भी नियम होते हैं।' मैं कहना चाहता हूं कि खेल के ही नियम होते हैं। और अगर तुम्हारी जिन्दगी में नियम ही नियम हैं तो तुम बस खेल ही खेल में पड़े हो। तुम्हें असलियत का कब पता चलेगा, कैसे चलेगा? कुछ खोजो, जो नियम के बाहर है, जो नियम में नहीं समाता। वहीं से द्वार मिलेगा। उसी को प्रेम कहा है सुन्दरदास ने। और उसकी संभावना है।

अड़चन यह आ रही है कि तुमने जिसे प्रेम समझ रखा है, वह खेल है। और तुम बड़े डूब कर खेलते हो, इसमें कोई सन्देह नहीं। लोग शतरंज खेलने में तलवारें खींच लिये हैं। ताश के पत्तों में झगड़े हो गये हैं जो जिंदगी-भर चले हैं। लोग बड़ी गम्भीरता से खेलते हैं। खेल को गम्भीरता से ही खेलना पड़ता है, नहीं तो तुम्हें दिख ही जायेगा कि खेल है, हम भी क्या कर रहे हैं? अगर तुम खेल को गम्भीरता से नहीं लेते तो तुम्हें मूढ़ता मालूम पड़ेगी।

जरा सोचो कि अन्तरिक्ष से कोई यात्री उतरता है—उतरेगा जल्दी, क्योंकि उड़नतश्तरियां उड़ रही हैं—कोई अन्तरिक्ष का यात्री उतरता है और तुम्हारे खेल देखे। समझो कि फुटबाल खेल रहे हो, कि वॉलीबॉल खेल रहे हो। वह बड़ा हैरान होगा कि इनका दिमाग तो खराब नहीं हो गया? गेंद को इधर से उधर फेंकते, उधर से इधर फेंकते, इनका दिमाग तो खराब नहीं हो गया? और इनका तो हो गया सो हो गया और ये हजारों लोग देखने आये हैं, ये क्या देख रहे हैं? और बड़ा शोरगुल मचाते हैं, दंगे-फसाद हो जाते हैं। उनकी समझ में नहीं आयेगा एकदम से कि यह हो क्या रहा है! यह कौन-सी चीज हो रही है? यह किसलिए हो रही है? एक दफा गेंद को उधर फेंकना हो तो उधर फेंक दो, इधर फेंकना हो इधर फेंक दो। अपने घर जाओ। या ज्यादा ही दिक्कत हो तो दो गेंद रखो, अपनी-अपनी फेंकते रहो, मजा करो। मगर यह इतनी झंझट और इतनी झंझट इतने लोग देखने भी आये हैं, सार कहां है? अर्थ क्या है?

अर्थ तो कुछ भी नहीं है। खेल को हमने गम्भीरता दी है। भारी गम्भीरता

दी है। खेल हमारी एक तरकीब है, जिससे हम वास्तविक हिंसा को बचाना चाहते हैं। खेल के द्वारा हम झूठी हिंसा करके हिंसा करने की तृप्ति पा लेते हैं—हरा दिया दूसरे को! अब यह जरा भद्दा लगता है कि उसकी छाती पर चढ़कर बैठो और घूंसे मारो। यह जरा भद्दा लगता है। वह भी चलता है, मगर भद्दा लगता है। तो हमने कुछ तरकीबें निकाल ली हैं कि हम तुमको तो घूंसा नहीं मारेंगे, लेकिन तुम्हारी पिद्दी को पीट देंगे। वह प्रतीक है कि पीट दी पिद्दी, तुम पिट गये। ऐसी हमने तरकीब निकाल ली। सीधा घूंसा मारें किसी को, तो जरा असभ्य मालूम होता है। हमने बहाने निकाल लिए। होशियार है आदमी, कुशलता से बहाने निकाल लेता है।

मैंने सुना है, अदालत में एक मुकदमा था। दो आदमियों में सिर-फोड़ हो गई। मजिस्ट्रेट उनसे पूछे कि बात क्या थी? और वे दोनों ही एक-दूसरे की तरफ देखें और कहें कि तू ही बता दे। आखिर मजिस्ट्रेट ने कहा, बोलते हो कि नहीं, नहीं तो दोनों को पिटाई करवाई जायेगी और कारागृह में डाल दिया जायेगा। बोलो, मामला क्या है? झगड़ा शुरू कैसे हुआ?

उन्होंने कहा कि अब हम क्या बतायें आपको। हम दोनों दोस्त हैं। नदी के किनारे बैठे थे रेत में, गपशप कर रहे थे। इसने कहा कि यह आदमी एक भैंस खरीदने जा रहा है। मैंने इससे कहा, भैंस मत खरीद भाई, क्योंकि कभी मेरे खेत में घुस जायेगी। अपनी पुरानी दोस्ती है। झांसा-झगड़ा होगा। मैं बरदाश्त नहीं कर सकूंगा। मेरे खेत में मैं भैंस किसी की बरदाश्त कर ही नहीं सकता। मैं भैंस की पिटाई कर दूंगा। तू भी आदमी जिद्दी है, तू भी अपनी भैंस की पिटाई न देख सकेगा। नाहक पुरानी दोस्ती खराब हो जायेगी। तू भैंस मत खरीद। उस आदमी ने कहा : 'कौन मुझे रोक सकता है दुनिया में भैंस खरीदने से? कल खरीदता था तो आज खरीदूंगा। और तू क्या है, तेरा खेत क्या है? और भैंस घुसेगी ऐसी कल्पना मत कर—घुसेगी ही! और कर लेना जो करना हो। देख लिए बहुत ऐसी बातें करने वाले। भौंकने वाले कुत्ते काटते नहीं हैं।' और इसने बड़े तेजी पर बात चढ़ा दी। बात यहां तक बढ़ गई कि मैंने अपने हाथ से लकीर खींच दी रेत में कि यह रहा मेरा खेत, घुसा इसमें भैंस। और इसने एक लकीर हाथ से खींच कर कहा कि यह घुस गई मेरी भैंस, और कर ले कौन मेरा क्या करता है! बस, उसी में माथा-फोड़ हो गया, एक-दूसरे का सिर खुल गया। अब हम आपसे क्या कहें? न इसने भैंस खरीदी है, न मेरा अभी खेत है। मैं खेत खरीदने की सोच रहा हूं।

आदमी बहाने खोज लेता है, हिंसा सहारे लेकर निकल आती है। तुम्हारे खेलों में तुम्हारा जो रस है, उसके पीछे और कारण हैं। कहीं प्रतिस्पर्धा है, कहीं

हीनता का भाव है, कहीं जिन्दगी में पिट गये हैं। तो अब कहीं और. . . ।

तुम अगर जाओ विश्वविद्यालय में, तो तुम एक बात देखकर हैरान होओगे: वहां तुम्हें जितने अच्छे खिलाड़ी मिलेंगे, सब गधे हैं। वह कारण है। वे पिट गये हैं एक जगह—गणित में पिट गये, भाषा में पिट गये, विज्ञान में पिट गये—अब वे कहीं तो पीटें! आखिर उनको भी तो जिन्दा रहना है। आखिर थोड़ा आत्मसम्मान बचाना है। वे फुटबॉल पीट रहे हैं, हॉकी चला रहे हैं। जितने छंटे हुए गधे विश्व-विद्यालय में होते हैं. . .। मैं विश्वविद्यालय में बहुत दिन रहा हूं, इसलिए जानता हूं। जिनको प्रसिद्ध खिलाड़ी समझा जाता है, वे वही लोग होते हैं जो परीक्षा में कभी पास होते ही नहीं। मगर वे भी अपना रास्ता निकाल लेते हैं। और उनका भी बड़ा सम्मान होता है। यहां तक सम्मान होता है कि वे पास नहीं भी होते तो भी उनको पास किया जाता है, कि वे कहीं दूसरे विश्वविद्यालय या दूसरे कॉलेज में न चले जायें, क्योंकि उन्हीं के साथ ट्रॉफी जुड़ी है। उन्हीं के साथ प्रतियोगिता जुड़ी है। कॉलेज का नाम भी उनके साथ जुड़ा है। उनको रोका जाता है, समझाया जाता है कि रुके रहो। उनकी फीस माफ की जाती है, स्कॉलरशिप दी जाती है। और स्कॉलर जैसा उनमें कुछ भी नहीं है, इसलिए वे खिलाड़ी हैं।

मगर हर आदमी अपना कोई रास्ता निकाल लेता है, कोई तरकीब निकाल लेता है। इस दुनिया में सब तरह के खेल चल रहे हैं, लेकिन खेलों के पीछे और छिपे खेल हैं। कोई एकाध चीज तो खोजो जो खेल न हो; जिसमें तुम्हारा अहंकार न जुड़ा हो; जिसमें तुम्हारी हिंसा न जुड़ी हो; हीनता का भाव न जुड़ा हो; ईर्ष्या, प्रतिस्पर्धा इत्यादि न जुड़ी हो। कोई एक चीज खोजो। उसको ही सुन्दरदास प्रेम कहते हैं। उस प्रेम के कोई नियम नहीं। वह प्रेम प्रर्याप्त है। वह जिसके जीवन में उतर आता है, उसके जीवन में शेष सब अपने-आप आ जाता है। उसके जीवन में एक सौंदर्य होता है, एक सत्य होता है—साधा हुआ नहीं। साधे हुए सत्य की तो कोई कीमत नहीं है। उसके जीवन में एक आचरण होता है—अभ्यास किया हुआ नहीं। क्योंकि अभ्यास किये हुए आचरण का तो कोई भी मूल्य नहीं है। वह तो पाखण्ड है। उसके भीतर एक सहज-स्फूर्त आचरण होता है। जिसने परमात्मा को प्रेम किया, उसके जीवन में एक सहज-स्फूर्त आभा होती है। वह परमात्मा के प्रेम के कारण ही हो जाती है। उसमें एक शालीनता होती है—एक दिव्यता, जो अभ्यास से की गई दिव्यता नहीं है, और न अभ्यास से किया गया किसी तरह का चरित्र है। चरित्र तो उसमें होता नहीं। जिसको तुम चरित्र कहते हो वैसा चरित्र नहीं होता उसमें। उसमें एक अनूठे ढंग का चरित्र होता है, जिसको कहने के लिए हमारे पास कोई शब्द नहीं है। एक 'सहज' शब्द है जो उसे प्रगट करता है। वैसा व्यक्ति

सहजिया होता है। क्षण-क्षण जीता है, सहज भाव से जीता है।

सुकरात को जहर दिया जाने का दिन आया। सजा अदालत ने दी थी, उस दिन से उसके पैरों में और हाथों में जंजीरें डाल दी गई थीं। जब जहर देने का दिन आया, मारने का दिन आया, तो उस सुबह उसकी जंजीरें काटकर निकाल दी गईं, हाथ से, पैर से बेड़ियां अलग कर दी गईं। उसके एक शिष्य ने उसे एक खबर दी... शिष्य रोता हुआ आया कि मुझे खबर मिली है कि आज आपके पैर की बेड़ियां और हाथ की जंजीरें अलग कर दी जाएंगी, क्योंकि आज सांझ वे आपको मार डालने के के लिए समय तय कर लिए हैं। वह रो रहा है कि सुकरात मारा जाएगा। और सुकरात ने कहा, भई तू रोता क्यों है? ये जंजीरें बड़ी भारी थीं। और पैर में मेरे घाव पड़ गये हैं। और बड़ा अच्छा हुआ।

और जब उसकी जंजीरें तोड़ी गईं तो वह बड़ा प्रसन्न था। उसके शिष्य रो रहे थे कि मौत करीब आ गई और वह प्रसन्न था। और उसने कहा, तुम रो क्यों रहे हो पागलो? जरा देखो तो मेरा आनन्द! इन जंजीरों की वजह से चल भी नहीं सकता था। हाथ में गड्ढे पड़ गये हैं, पैर में घाव हो गये हैं। दर्द हो रहा था इन जंजीरों के कारण। दर्द मिटा, और तुम रो रहे हो!

उनमें से किसी एक ने कहा, आप भी क्या बात कर रहे हैं? यह दर्द कुछ मामला नहीं है। सांझ जहर दिया जाएगा और मौत होगी।

सुकरात ने कहा, सांझ अभी बहुत दूर है। क्या मैंने तुम्हें जीवन-भर नहीं कहा कि क्षण-क्षण जियो। सांझ अभी बड़ी दूर है—आये न आये, कौन जाने! जब आयेगी तब देखेंगे।

यह सहज जीवन है। इस क्षण में, जो सहजता से हो रहा है। सुकरात प्रफुल्लित है, क्योंकि बेड़ियां कट गईं। फिर सांझ को जहर देने का समय आया, सुकरात लेट गया है, प्रतीक्षा कर रहा है जहर की। बार-बार उठता है, जाकर खिड़की से झांकता है, बाहर जहर घोंटा जा रहा है। और वह पूछता है, भाई, कितनी देर और? आखिर उस जहर घोंटने वाले ने कहा कि मैंने बहुत लोगों को जहर घोंट कर दिया है, यही मेरा काम है जिंदगी-भर से। अदालत जिनको भी मृत्यु का दण्ड देती है, मैं ही उनका जहर तैयार करता हूं। लेकिन तुम पहले आदमी हो जो बार-बार पूछ रहे हो, जैसे कि कोई बड़े सौभाग्य का क्षण हो रहा है। और मुझे तुमसे प्रेम है। मैंने तुम्हारी बातें सुनी हैं। और मैंने तुम्हारी बातों से बड़ा आनंद पाया है। तो मैं देर लगा रहा हूं कि इतनी देर तुम और जी लो। धीरे-धीरे घोंट रहा हूं जहर कि घड़ी-आधा-घड़ी सुकरात और जी ले। तुम्हें क्या जल्दी पड़ी है?

सुकरात ने कहा, जल्दी यही कि जिंदगी तो खूब देखी, अब मौत को देखना है।

जिंदगी तो खूब जी, अब मौत को जीना है। यह मौत क्या है! इसे देखने को मैं आतुर हूं। यह मेरी जिज्ञासा है।

यह एक आचरण है, जो अपूर्व है।

फिर जहर दिया गया सुकरात को। उसके शिष्य रो रहे हैं। और वह उनसे कहता है, रोओ मत। मैं मर जाऊंगा, फिर तुम खूब रो लेना, फिर काफी समय होगा। अभी तो मेरे साथ रह लो, अभी तो थोड़ी मेरी सांस है, अभी तो जहर के चढ़ने में समय लगेगा, जहर का परिणाम होने में समय लगेगा। इतनी देर तुम मेरे साथ और हो लो। किसी को कुछ पूछना हो तो पूछ लो। फिर रोने के लिये तो जिन्दगी पड़ी है, तुम रो लेना, मैं तो चला जाऊंगा। कम से कम मेरे सामने तो मत रोओ। जिन्दगी-भर मैंने सिखाया है कि हंसो, नाचो-गाओ, और तुम रो रहे हो!

चुप होकर शिष्य बैठ गये—किसी तरह छाती में आंसुओं को सम्हाल कर। और सुकरात उनसे कहने लगा, अब मेरे घुटनों तक जहर आ गया, मेरे घुटने ठण्डे पड़ गये हैं। तो इतना हिस्सा मर गया। लेकिन मैं एक बात तुमसे कहता हूं, मुझे भीतर अभी जरा भी नहीं लग रहा है कि मैं मर गया हूं। अब मेरी कमर तक शरीर मर गया।

च्योंटी ले-ले कर देखता है अपने को, पता नहीं चलता। वह कहता है, बड़े आश्चर्य की बात है, कमर तक मैं मर चुका हूं, लेकिन मैं अपने भीतर अनुभव कर रहा हूं—मैं उतना का उतना हूं, कुछ कम नहीं हुआ। और अब मेरे हाथ भी ठण्डे पड़ गये। और अब मेरे हृदय की धड़कन ठण्डी पड़ने लगी। अब मेरी जीभ लड़खड़ा रही है।

आखिरी बात, जो सुकरात ने कही, वह यह कि अब मेरी जीभ लड़खड़ा रही है, शायद मैं दूसरे शब्द आगे नहीं बोल सकूंगा; लेकिन यह वसीयत रहे कि मैं तुमसे कहता हूं, मैं भीतर अब भी अपने को पूरा का पूरा अनुभव कर रहा हूं, जरा भी कमी नहीं हुई है। तो अगर इतना देह के मर जाने के बाद भी मैं हूं तो शायद पूरी देह के मर जाने के बाद भी मैं रहूंगा। मेरी पूर्णता अखण्डित है।

सुकरात ने कभी घोषणा नहीं की थी कि आत्मा अमर है, क्योंकि वह कहता था, मैंने मर कर नहीं देखा तो कैसे कहूं? सुकरात ने आत्मा की अमरता का सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किया। लेकिन इससे सुन्दर और कोई अभिव्यक्ति होगी आत्मा की अमरता की?

यह सहज उद्घोषणा है, यह कोई सिद्धान्त नहीं है। यह कोई तर्क के द्वारा लिया गया निष्कर्ष नहीं है—जीवन्त अनुभव है।

तो जिस व्यक्ति ने परमात्मा से अपना सम्बन्ध जोड़ लिया उसके जीवन में

अनुभव होने शुरू होते हैं। वे अनुभव सब बदल जाते हैं। पुराना कूड़ा-करकट अपने से बह जाता है, जैसे बाढ़ जब आती है तो नदी के किनारों पर इकट्ठा हुआ सारा कूड़ा, सारी गंदगी बहा ले जाती है। ऐसे ही उसके प्रेम की बाढ़ जब आती है तो सब बहा ले जाती है। तुम्हें अपने चरित्र को ठीक-ठाक नहीं करना पड़ता। तुम तो ठीक-ठाक करोगे भी तो गलत ही रहेगा, करने वाले ही तुम रहोगे। तुम ही गलत हो। तुम जो भी करोगे उसमें गड़बड़ होगी। तुम धोखेबाज हो। तुमने औरों को धोखा दिया है, तुम अपने को भी धोखा दे लोगे। तुम बेईमान हो। तुम अपने साथ भी बेईमानी करने से बचोगे नहीं। तुम पर भरोसा नहीं किया जा सकता। उस पर भरोसा है।

भक्तों का भरोसा उस पर है। हम उसकी तरफ अपने को खोल दें—आये उसकी किरण, आये उसकी लहर और हमें बदल जाये! बदल जाती है। कोई नियम की आवश्यकता नहीं होती। प्रेम महा नियम है।

लेकिन एक तुम्हारा प्रेम है; उस प्रेम से तुम सुन्दरदास के प्रेम के भेद को समझ लेना।

तीसरा प्रश्न भी सम्बन्धित है, उसे भी साथ ही ले लें। तीसरा प्रश्न है: भगवान! प्रेम स्वीकार न हो तो...?

ऐसा मैंने कभी सुना नहीं कि परमात्मा से प्रेम करो और स्वीकार न हो। तो यह दूसरे ही प्रेम की बात चल रही है। किसी स्त्री से किया होगा और स्वीकार न हुआ होगा। तुम धन्यभागी हो। असली कठिनाई तो तब आती है जब स्वीकार हो जाता है। फिर तुम कहते कि भगवान, अगर प्रेम स्वीकार हो जाये तो...? फिर तुम बड़ी मुश्किल में पड़ते।

अच्छा ही हुआ, इससे परेशानी न लो। उस स्त्री ने तुम पर बड़ी दया की। आमतौर से स्त्रियां इतनी दया करती नहीं। कोई दयावान देवी मिल गयी होगी, जिसने कहा: क्यों बेचारे को उलझाओ!

मैंने सुना है—

विवाह से पूर्व
पिताजी ने कहा था
बेटा!
विवाह कर तो रहे हो
लेकिन विवाह के बाद
घर में शांति का
साम्राज्य रहना चाहिए।
विवाह के उपरांत

पुत्र ने उनके आदेश का
अक्षरश: पालन किया
और
अपनी पत्नी का नाम
शांति रख दिया।

और क्या करोगे ?... शान्ति का साम्राज्य हो गया ! और फिर आगे और उलझनें बढ़ती हैं, कुछ कम नहीं होतीं।

दूसरी बात भी मैंने सुनी है—

गणित की किताब खोलते हुए
दसवें पुत्र ने
अपने पिता से
नम्रतापूर्वक पूछा—
एक और एक मिलकर
होते हैं कितने ?
पहले दो, फिर ग्यारह !
बाप ने फरमाया।

पहले दो हो जाते हैं, फिर ग्यारह। फिर और फंसते मुश्किल में, फिर पूरा संसार खड़ा हो जाता है।

...जान बची और लाखों पाये, लौट के बुद्धू घर को आये। तुम काहे के लिए परेशान हो रहे हो ? अब तुम पूछने बैठे हो कि प्रेम स्वीकार न हो तो... ? तब उस प्रेम की तलाश करो जो सदा स्वीकार होता है—जो स्वीकार ही है ! अब जरा आकाश की तरफ आंखें उठाओ। जमीन पर बहुत रेंग लिये। कितनी बार प्रेम स्वीकार भी हो चुका है, पाया क्या ? न स्वीकार करने वालों को कुछ मिला है, न जिनका स्वीकार हुआ उन्हें कुछ मिला है। न जिनका स्वीकार नहीं हुआ, उन्हें कुछ मिला है। यहां मिलने को कुछ है ही नहीं। इस संसार में मिलने जैसी कोई चीज ही नहीं है। यहां सिर्फ मिलने के भ्रम हैं। उस प्रेम को तलाशो, जो सदा स्वीकृत है। सिर्फ तुम्हारी तलाश की जरूरत है। उस तरफ हाथ उठाओ, उस तरफ दामन फैलाओ—जहां से सम्पदा बरसने को आतुर है।

लेकिन नहीं, मालिक की तरफ तो आंखें भी नहीं उठाते। यहीं एक-दूसरे भिखमंगे से मांगते हो। उसके पास ही होता प्रेम, जिससे तुमने मांगा, तो भी ठीक था, उसके पास भी कहां है ? वह किसी और से मांगती होगी। ऐसे भिखमंगे भिखमंगों से मांग रहे हैं। किसी की झोली भरती दिखाई नहीं पड़ती।

जिनका प्रेम स्वीकृत हो गया है, जरा उनके पास जाकर उनकी दशा भी तो देखो ! ... दुर्दशा ! और ऐसा नहीं है कि सिर्फ पुरुषों की दुर्दशा होती है, स्त्रियों की उतनी ही दुर्दशा हो रही है। यह स्त्री-पुरुष का सवाल नहीं है। तुम जिसे प्रेम कहते हो वह एक तरह की भ्रामकता है। तुम नकली को असली मानकर चल पड़ते हो। फिर आज नहीं कल, कल नहीं परसों, भ्रम भंग होगा।

एक पागलखाने में ऐसा हुआ, एक राजनेता देखने आया, निरीक्षण के लिए आया। एक कोठरी में सामने ही एक आदमी बन्द था और एक पुरानी, फटी-सी तस्वीर हाथ में लिए था, छाती से लगा रहा था, और रो रहा था और छाती पीट रहा था। उसने पूछा, इसे क्या हो गया है ? तो सुपरिंटेन्डेन्ट ने कहा कि हाथ में तस्वीर देखते हैं, यह स्त्री के प्रेम में था—इसी स्त्री के प्रेम था। उसने इसका प्रेम स्वीकार नहीं किया। सो यह पागल हो गया।

आगे बढ़े, दूसरी कोठरी में एक आदमी सीखचों से सिर मार रहा था, दीवाल तोड़ देने की कोशिशें कर रहा था। भयंकर दीवाना था, भयंकर पागल था। खतरनाक था। हाथ-पैर में जंजीरें भी पड़ी थीं और उस पर पहरा भी लगा था। उस राजनेता ने पूछा, और इस बेचारे का क्या हुआ ? उस सुपरिंटेन्डेन्ट ने कहा, अब आप यह न ही पूछें तो अच्छा है। उस स्त्री ने इससे प्रेम कर लिया और इससे विवाह भी कर लिया।

पहला तड़फ रहा है, क्योंकि उसे स्त्री मिली नहीं और यह दूसरा तड़फ रहा है, क्योंकि इसको वही स्त्री मिली।

यहां मिलने वाले तड़फते हैं, यहां न मिलने वाले तड़फते हैं।

तुम उलझन से बच गये, हालांकि मैं सोचता हूं कि तुम किसी और उलझन में जरूर पड़ गये होओगे। क्योंकि कोई इतनी जल्दी थोड़े ही बचता है। एक जाल से बचे तो किसी दूसरे जाल को तलाश लिया होगा। और शायद इसीलिए भी पहले जाल की याद बार-बार आती है, कि यह दूसरा तो जाल सिद्ध हुआ, मुक्ति पहले में थी।

मुक्ति कहीं भी नहीं है। मुक्ति जाल में होती ही नहीं है। इस जगत के किसी सम्बन्ध में मुक्ति नहीं हो सकती। इस जगत का सम्बन्ध ही स्वभावत: बन्धन में ले जाता है।

और मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि अगर तुम्हारी पत्नी है तो छोड़ कर भाग जाना, या तुम्हारा पति है तो छोड़ कर भाग जाना। इतना ही समझ लेना कि अब आंखें ऊपर उठाने का समय आ गया। तुम भी आंख ऊपर उठाओ, पत्नी को भी आंख ऊपर उठाने दो। अब दोनों बहुत कर चुके एक-दूसरे से प्रेम और सता चुके एक-

दूसरे को काफी। अब जरा आंखें ऊपर उठाओ। अब दोनों उससे प्रेम करो। और तुम चकित होओगे, अगर तुम दोनों प्रार्थनापूर्ण हो जाओ, अगर तुम दोनों परमात्मा के प्रेम में पड़ जाओ, तो तुम दोनों के बीच भी प्रेम की एक धारा बहने लगेगी, जो कभी नहीं बही थी। वह परमात्मा के साथ जुड़ने का अनुषांगिक अंग है।

तूने जिस दौलत के बल पर इश्क की यलगार की
आज उस दौलत के जीवन पर बुढ़ापा आ गया
तूने जिस मलबूस से ढांपे इमारत के जुजाम
हादसों का हाथ उस मलबूस को उलटा गया
तूने जिन महलों में देखे हिज्र के रंगीन ख्वाब
वक्त का भूचाल उन महलों के गुम्बद ढा गया
जम चुका है खून अब तेरे दिले बेसब्र में
दफ्न होना है तुझे अब, हसरतों की कब्र में

यहां इसके सिवाय कुछ भी नहीं होता। तुम्हारे सब सपनों के महल गिर जाते हैं और तुम्हारी सब आशाएं ही तुम्हारा कफन बनती हैं। और तुमने जो-जो आशाएं संजोई थीं, वे ही तुम्हारे डूबने का कारण हो जाती हैं। जो जितने जल्दी जाग जाये उतना शुभ है।

इसलिए मैं कहता हूं, प्रेम स्वीकार नहीं हुआ, अच्छा हुआ। धन्यवाद दो उस स्त्री को। अनुगृहीत होओ उस स्त्री के। और अब परमात्मा की तरफ आंखें उठाओ। जरा पृथ्वी से ऊपर तो देखो--चांद-तारों से भरा आकाश है। जरा देह के पार तो उठो, वहां अमृत का वास है। यहां तो अहंकार और अहंकार के खेल हैं। इतना ही बहुत है कि यहां ज्यादा झंझट न हो। बस ज्यादा से ज्यादा तुम आकांक्षा यही कर सकते हो कि ज्यादा झंझट न हो। जिन्दगी सुविधा से गुजर जाये। ऐसे ही लोगों को हम कहते हैं, अच्छे दम्पति। कोई सुख तो मिलता नहीं, बस एक-दूसरे को ज्यादा दुख न दें, इतना ही लक्ष्य है। इतना ही काफी है। उनको ही हम अच्छे दम्पति कहते हैं--एक-दूसरे को ज्यादा दुख नहीं दे रहे। बस, चल रहा है काम। गाड़ी चले जाती है। ज्यादा उपद्रव नहीं है। किसी तरह समायोजन बिठा लिया है।

मगर पहुंचोगे कहां? यह गाड़ी कब्र में गिरेगी। सुविधा से जी लिए कि असुविधा से, क्या फर्क पड़ता है? आगे मौत आती है। मौत के पहले अमृत को खोज लेना जरूरी है। अमृत से प्रेम करो।

चौथा प्रश्न--

संसार में असफलता अनिवार्य क्यों है?

संसार का स्वभाव। स्वप्न का स्वभाव। स्वप्न यथार्थ नहीं है। इसलिए स्वप्न में कोई सफलता नहीं हो सकती।

तुम ऐसा प्रश्न पूछ रहे हो, जैसे कोई आदमी कागज पर लिखे हुए भोजन को 'भोजन' समझ ले; पाकशास्त्र की किताब से पन्ने फाड़ ले और चबा जाये, और कहे कि पाकशास्त्र में तो सभी तरह के भोजन लिखे हैं, फिर पाकशास्त्र के पन्ने चबाने से तृप्ति क्यों नहीं होती?

कागज पर लिखा हुआ 'भोजन' भोजन नहीं है। सपने में मिला हुआ धन धन नहीं है। संसार में जो भी मिलता है, मिलता नहीं, बस मिलता मालूम पड़ता है। क्योंकि तुम सोये हुए हो--तुम्हारे सोये हुए होने का नाम संसार है।

संसार का क्या अर्थ है? ये वृक्ष, ये चांद, ये तारे, ये सूरज, ये लोग--यह संसार है? तो तुम गलत समझ गये। संसार का मतलब है तुम्हारी आकांक्षाओं का जोड़; तुम्हारे सपनों का जोड़। संसार तुम्हारे भीतर है, बाहर नहीं। तुम्हारी निद्रा, तुम्हारी घनीभूत मूर्च्छा का नाम संसार है। मूर्च्छा में तुम जो भी कर रहे हो उससे कोई तृप्ति नहीं होगी। मूर्च्छा में तुम्हें होश ही नहीं कि तुम क्या कर रहे हो। तुम बेहोशी में चले जा रहे हो। तुम्हारी हालत एक शराबी जैसी है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक रात ज्यादा पीकर घर आया। रास्ते में कई जगह गिरा, बिजली के खम्भे से टकरा गया, चेहरे पर कई जगह चोट आ गयी, खरोंच लग गयी। आधी रात घर पहुंचा, सोचा पत्नी सुबह परेशान करेगी, कि तुम ज्यादा पिये। और प्रमाण साफ है, कि चोटें लगी हैं, खरोंचें लगी हैं चेहरे पर, चमड़ी छिल गई है। तो उसने सोचा कि कुछ इन्तजाम कर लें। तो वह गया बाथरूम में, बेलाडोना की पट्टी उसने लगाई सब चेहरे पर कि सुबह तक कुछ तो राहत हो जायेगी। और इतना तो मैं सिद्ध कर ही सकूंगा कि अगर मैं ज्यादा पिये होता तो बेलाडोना लगाने की याद रहती? गिर पड़ा था रास्ते पर, पैर फिसल गया छिलके पर। घर आकर मैंने मलहम-पट्टी कर ली।

बड़ा प्रसन्न सोया। सुबह पत्नी ने कहा कि यह हालत चेहरे की कैसे हुई? उसने कहा: मैं गिर गया था, एक केले के छिलके पर पैर फिसल गया। और देख ख्याल रखना, मैं कोई ज्यादा वगैरह नहीं पिया था। प्रमाण है साफ कि मैंने सारे चेहरे की मलहम-पट्टी की।

उसने कहा, हां, प्रमाण है, आओ मेरे साथ। आईने पर की थी उसने मलहम-पट्टी। चेहरा तो आईने में दिखाई पड़ रहा था। प्रमाण है--उसकी पत्नी ने कहा--कि मलहम-पट्टी तुमने जरूर की है, पूरा आईना खराब कर दिया है। अब दिन-भर मुझे सफाई में लगेगा।

बेहोश आदमी जो करेगा, उसका क्या भरोसा! कुछ न कुछ भूल होगी ही।

संसार तुम्हारी बेहोशी का नाम है। और इसलिए अनिवार्य है असफलता।

एक और रात मुल्ला नसरुद्दीन ज्यादा पी कर आ गया। जो-जो ज्यादा पीकर आते हैं, उनको बेचारों को घर आकर कुछ और इन्तजाम करना पड़ता है। सरकता हुआ किसी तरह कमरे में घुस गया। आवाज न हो, लेकिन फिर भी आवाज हो गई। पत्नी ने पूछा, क्या कर रहे हो? उसने कहा, कुरान पढ़ रहा हूं। अब ऐसी अच्छी बात कोई कर रहा हो, आधी रात में भी करे तो रोक तो नहीं सकते। धार्मिक कृत्य तो रोका ही नहीं जा सकता। पत्नी उठी और उसने सोचा कि कुरान और आधी रात, और कभी कुरान इसे पढ़ता देखा नहीं! जाकर देखी, सिर हिला रहा है और सामने सूटकेस खोले रखे है।

'कुरान कहां है?'

उसने कहा, सामने रखी है।

आदमी बेहोशी में जो भी करेगा, गलत होगा।

तुम पूछते हो, संसार में असफलता अनिवार्य क्यों है?

क्योंकि संसार तुम्हारी बेहोशी का नाम है। फिर बेहोशियां कई तरह की हैं। कोई शराब की ही बेहोशी नहीं होती। शराब की बेहोशी तो सबसे कम बेहोशी है। असली बेहोशियां तो बड़ी गहरी हैं। जैसे पद की बेहोशी होती है, पद की शराब होती है—पद-मद। जो आदमी पद पर बैठ जाता है, उसको देखो, उसके पैर फिर जमीन पर नहीं लगते। कोई हो गया प्रधान मंत्री, कोई हो गया राष्ट्रपति, फिर वह जमीन पर नहीं चलता, उसको पंख लग जाते हैं। पद-मद! किसी को धन मिल गया तो धन का मद। ये असली शराबें हैं। शराब तो कुछ भी नहीं इनके मुकाबले। पियोगे, घड़ी-दो घड़ी में उतर जाएगा नशा। ये नशे ऐसे हैं कि टिकते हैं, जिन्दगी-भर पीछा करते हैं। चढ़े ही रहते हैं।

बहुत नशे हैं। और जिसे जागना हो उसे प्रत्येक नशे से सावधान होना पड़ता है। जागने के दो ही उपाय हैं—या तो ध्यान की तलवार लेकर अपने सारे नशों की जड़ें काट दो; या परमात्मा के प्रेम से अपनी आंखें भर लो। शेष नशे अपने-आप भाग जायेंगे। उसकी मौजूदगी में नहीं टिकते हैं। या तो परमात्मा के बाहर प्रेम से भर जाओ, आत्मा के ध्यान से भर जाओ। ये दो ही उपाय है। संसार के जाने के ये दो ही द्वार हैं। तुम्हें जो रुच जाये।

तुम पूछते हो: संसार में असफलता अनिवार्य क्यों है?

संसार का स्वभाव ऐसा।

उम्र गंवाकर हमको इतनी आज हुई पहचान।
चढ़ी नदी और उतर गई, पर घर हो गये वीरान॥

जिन्दगी आती है, चली जाती है।
चढ़ी नदी और उतर गई, पर घर हो गये वीरान।

जिन्दगी आती है और चली जाती है, तुम वीरान हो जाते हो, तुम खण्डहर हो जाते हो। जिन्दगी तुम्हें कुछ दे नहीं जाती, तुमसे कुछ ले जाती है। तुम्हारी क्षमता ले जाती है। तुम्हारे अवसर ले जाती है। जिन अवसरों पर परमात्मा से मिलन हो सकता था, वे तुमने दो कौड़ी में बेच डाले। तुमसे तुम्हारी आत्मा ले जाती है।

तह में भी है हाल वही जो तह के ऊपर हाल।
मछली बचकर जाये कहां जब सारा जल ही जाल॥

यहां सारा जल ही जाल है, मछली बचकर जाये कहां? यह खोज ही धर्म है। यहां बचो कैसे? इस तरफ जाओ तो जाल, उस तरफ जाओ तो जाल। पूरब जाओ तो जाल, पश्चिम जाओ तो जाल। धन में जाओ, पद में जाओ, प्रतिष्ठा में जाओ—जाल ही जाल है। नीचे-ऊपर सब तरफ जाल हैं। मगर एक जगह है जहां जाल नहीं हैं। अपने भीतर जाओ!

ग्यारह दिशाएं हैं; दस दिशाओं में जाल है, ग्यारहवीं दिशा में जाल नहीं है। और जो ग्यारहवीं दिशा में जाता है, उसका ही परमात्मा से मिलन होता है। परमात्मा ग्यारहवीं दिशा में है।

अगर जीवन को समझोगे तो एक बात तुम्हे दिखाई पड़ने में ज्यादा देर न लगेगी—

आ गया रास शिकस्तों का शुमार आखिरकार।
छुप गये याद के फूलों में उमीदों के मजार॥
सूरज उभरा है कि डूबा है कि गहनाया है।
या फ़क़त अपने लहू से हुई धरती गुलनार॥
इतनी अर्ज़ां तो न थी दर्द की दौलत पहले।
जिस तरफ जाईये जख्मों के लगे हैं बाजार॥
आदमी लाख बढ़े, फासले घटते ही नहीं।
हटता जाता है मगर, छट नहीं पाता है ग़ुबार॥

ऐसी अवस्था है। जहां देखो वहां जख्म ही जख्मों के बाजार लगे हैं। जरा चारों तरफ आंख तो उठाकर देखो! संसार एक बड़ा अस्पताल है, जहां हर आदमी बीमार है। कभी मुश्किल से, कभी-कभार कोई स्वस्थ आदमी मिलता है—कोई बुद्ध, कोई कृष्ण, कोई कबीर। कभी-कभार कोई मिल जाये दादू, कोई रज्जब, कोई सुन्दरदास। इस पूरी अस्पताल में सब बीमार हैं। कोई इस तरह बीमार, कोई उस

तरह बीमार--बीमारियों के हजार नाम हैं। अलग-अलग तरह की बीमारियां हैं; लोगों ने आरोपित कर ली हैं।

और मजा ऐसा है कि बीमार सिर्फ बीमार नहीं हैं, बीमार पागल भी हैं। क्योंकि बीमारी के पागलपन का सबूत यह है कि वे अपनी बीमारी को बीमारी नहीं मानते। वे अपनी बीमारी को अपना सौभाग्य मान रहे हैं। वे अपनी बीमारी को अपना आभूषण मान रहे हैं। वे अपनी बीमारी का बचाव कर रहे हैं, रक्षा कर रहे हैं।

इधर इन बीस वर्षों में न मालूम हजारों लोगों की बीमारियां देखने का मुझे मौका आया। और हर बार मैं यह अनुभव करता हूं कि आदमी अपनी बीमारियों की रक्षा करता है। अगर उसे उपाय बताया जाये बीमारी से मुक्त होने का, तो नहीं करता। अपनी बीमारी को छिपाता है, बचाता है, बहाने खोजता है, तरकीबें खोजता है, दवा के खिलाफ हर तरह के आयोजन करता है।

इतनी अर्जा तो न थी दर्द की दौलत पहले।
जिस तरफ जाइये जख्मों के लगे हैं बाज़ार।

जरा गौर से देखो उठाकर आंख, सब तरफ तुम छातियां जख्मों से भरी पाओगे। सब आंखें आंसुओं से भरी हैं। सब पैर कंप रहे हैं। क्योंकि मौत आ रही है, आ रही है, आ रही है--आ ही गई है! हम सब मौत के बीच खड़े हैं। हमारी नाव डूबने को ही है! एक बात सुनिश्चित है कि यह नाव डूबेगी जिसमें हम बैठे हैं; और कुछ सुनिश्चित नहीं है। जन्म के बाद मौत के अतिरिक्त और कोई चीज सुनिश्चित नहीं है। और सब अनिश्चित है, मगर मौत निश्चित है।

इस मौत से भरी दुनिया में जख्म न होंगे तो और क्या होगा?

आदमी लाख बढ़े, फासले घटते ही नहीं।
हटता जाता है मगर छट नहीं पाता है गुबार।

और यहां कभी कुछ परिवर्तन नहीं होता। जैसे तुम क्षितिज को छूने चलो, दिखता है यह रहा, यह रहा, पास ही तो है। थोड़े कदम और, जरा और दौड़ लें--और पहुंच जायेंगे। लेकिन क्षितिज पर तुम कभी पहुंच नहीं पाते, क्योंकि क्षितिज है नहीं, सिर्फ भ्रांति है। दिखाई पड़ता है, है नहीं। तुम जितने बढ़ते हो, क्षितिज तुमसे दूर हटता जाता है। तुम्हारे और क्षितिज के बीच फासला बराबर वही रहता है।

आदमी लाख बढ़े, फासले घटते ही नहीं! यह संसार है। तुम बढ़ते रहते हो, फासला उतना का उतना बना रहता है। तुम्हारे पास दस हजार रुपये थे, बीस हजार की आकांक्षा थी! अब बीस हजार हैं, अब चालीस हजार की आकांक्षा

है--फासला उतना का उतना है। कल चालीस हजार भी हो जायेंगे, और अस्सी हजार की आकांक्षा ले आयेंगे। बस फासला उतना का ही उतना। दुगना। तुम दुगना चाहते हो तो दुगना ही चाहते रहोगे। तुम दुगना चाहते पैदा हुए, तुम दुगना चाहते मर जाओगे।

और इस दुगने की दौड़ में तुमने क्या गंवाया, तुम्हें पता भी नहीं। तुमने परमात्मा गंवाया। इस दुगने की दौड़ में तुमने क्या खोया, उसका तुम्हें हिसाब भी नहीं, क्योंकि तुम्हें यही पता नहीं है क्या मिल सकता था, यह जीवन कैसा अपूर्व अवसर था! राम मिलेगा तब तुम जानोगे। जिनको मिल गया है उन्हें तुम पर करुणा आती है। वे तुम्हारे लिए रोते हैं, क्योंकि उनको लगता है कि तुम्हें भी मिल सकता है। तुम भी मालिक हो पाने के। मगर तुम सुनते ही नहीं। सन्त पुकारे जाते हैं, तुम सुनते कहां? वे तुम्हें झकझोरे जाते हैं; सुनने की तो बात दूर, तुम उलटे नाराज हो जाते हो। तुम उनके विरोध में हो जाते हो। तुम कहते हो, हमें शांति से सोने नहीं देते। तुम कहते हो कि हमारा पीछा छोड़ो, हमें जिन्दगी जी लेने दो हमारे मन से।

तुम गड्ढे में गिर रहे हो। जिसे गड्ढा दिखाई पड़ता है वह अगर न पुकारे तो क्या करे? वह पुकारता है गड्ढा है; तुम कहते हो, चुप रहो, क्योंकि मुझे सोने की खदान दिखाई पड़ रही है।

वह कहता है, मैं जा चुका हूं, देख चुका हूं, सोने की वहां कोई खदान नहीं है दूर से चमकता है सब। दूर के ढोल सुहावने! तुम व्यर्थ दौड़ो मत।

मगर तुम कहते हो कि आप चुप रहो। आप मेरी आशाओं पर पानी मत फेरो। अगर मैं तुमसे कहूं --जैसे अभी इसके पहले प्रश्न के उत्तर में मैंने कहा, अच्छा हुआ कि तुम्हारा प्रेम स्वीकार नहीं हुआ--तुम सोचते हो जिससे मैंने कहा वह प्रसन्न होगा? वह मुझ पर नाराज होगा। वह कहेगा कि हम आये थे औषधि लेने, हम आये थे कोई तरकीब मांगने, हम आये थे आशीर्वाद लेने कि आपका आशीर्वाद हो तो घट जाये बात।....

एक और सज्जन ने भी ऐसा ही प्रश्न लिखा है कि मेरी पत्नी भी है, मगर मैं एक दूसरी लड़की के 'सच्चे प्रेम' में पड़ गया हूं! आप ऐसा आशीर्वाद दें कि मेरा 'सच्चा प्रेम', मेरा हृदय से आया हुआ प्रेम, उसके हृदय में भी भी मेरे प्रति प्रेम पैदा कर दे!

अब इन सज्जन को मैं क्या कहूं? कौन-सा आशीर्वाद दूं?

सच्चा प्रेम!--और एक लड़की से हो गया है! तो फिर सुन्दरदास को जो हुआ था, वह झूठा प्रेम था? फिर रज्जब को जो हुआ, वह झूठा प्रेम था? फिर मीरा

को जो हुआ , वह झूठा प्रेम था ?

और इतना ही नहीं कि उन्हें सच्चा प्रेम हो गया है; अब उनके सच्चे प्रेम के बल पर उस स्त्री को भी सच्चा प्रेम इनके प्रति होना चाहिए !

सत्याग्रह करो ! जाकर उसके घर के सामने बिस्तर लगाकर लेट जाओ। और गांव में तो लफंगे तो बहुत हैं ही, वे आ जाएंगे । अखबारों में खबर भी छप जाएगी। ऐसी ही अखबारों में तो खबरें छपती ही हैं । सत्याग्रह कर दो सच्चे प्रेम के लिए, कि जब तक इस स्त्री का प्रेम मुझसे नहीं होगा, भोजन ग्रहण नहीं करेंगे; जब तक यह स्त्री मुसंबी का रस लेकर खुद ही नहीं आयेगी ।...तो तुम्हारा नाम भी जग-जाहिर हो जायेगा, बड़े नेताओं में भी गिनती हो जायेगी, और मौका लगा तो कभी कोई प्रधानमंत्री भी हो सकते हो । ऐसे ही तो लोग प्रधानमंत्री हो जाते हैं । सत्याग्रह करो, चूको मत ।

ऐसा हुआ एक गांव में । हो चुका है, इसलिए कह रहा हूं । एक सज्जन को ऐसा ही सच्चा प्रेम हो गया था जैसा तुम्हें हुआ है । ऐसे दुर्भाग्य कई को घटते हैं । ऐसी मुसीबतें सभी को आती हैं । पहुंच गया किसी राजनैतिक नेता से सलाह लेने कि अब क्या करूं, अब आप ही बताओ, कि आप तो हर चीज का उपाय निकाल लेते हो। और राजनेता क्या जाने, उसने कहा, सत्याग्रह के सिवाय और कोई उपाय नहीं ! और अगर प्रेम सच्चा है तो सत्याग्रह करना ही चाहिये । तुम बिस्तर लगा दो उसके सामने, डटकर बैठ जाओ और दस-पांच लोगों को इकट्ठा कर लो जो शोरगुल पीटें और गांव में खबर करें कि सत्याग्रह हो रहा है । और जब तक वह स्त्री विवाह के लिए राजी नहीं होगी, सत्याग्रह जारी रखो । बदनामी से घबड़ायेगा बाप, मां, और यह भी डर लगेगा कि अब यह सारे गांव में खबर हो गई, अब दूसरे किसी और से विवाह करना भी मुश्किल हो जायेगा । मुसीबत खड़ी कर दो । और बिलकुल पड़ रहना आंख बन्द करके कि मर ही जाओगे ।

उस आदमी ने यही किया । बाप घबड़ाया, भीड़-भाड़ इकट्ठी होने लगी, और लोग नारे लगाने लगे कि सच्चे प्रेम की जीत होनी चाहिये !...जो सच्चा प्रेम हो तो जीत होनी ही चाहिये । बेचारे बाप की कौन सुने ! उस स्त्री की कौन सुने ! यह प्रेमी बिलकुल मर रहा है । जब भी कोई आदमी मरने लगे तो फिर लोग इसकी फिकर नहीं करते कि क्या है सही, क्या है गलत——मरनेवाले की सुनते हैं । यही तो सत्याग्रह की कुंजी है । मरनेवाला एकदम ठीक हो जाता है । जब दांव पर लगा रहा है अपनी पूरी जिन्दगी, तो इसकी बात ठीक होगी ही । देखो तो बेचारा ! मजनू और फरिहाद ने भी जो नहीं किया, यह आधुनिक मजनू कर रहा है । मजनू, फरिहाद को सत्याग्रह का पता नहीं था । गांधी बाबा तब तक हुए नहीं थे ।

बाप बहुत घबड़ाया । उसने कहा, अब करना क्या है ? अपने मित्रों से पूछा, अब मैं करूं क्या ? अखबारों में खबरें छपने लगीं, दबाव पड़ने लगा, फोन आने लगे और घर के चारों तरफ लोग घेरा डालने लगे, कि यह तो अब सत्याग्रह तो पूरा करना ही पड़ेगा, आदमी की जान का सवाल है । उसने पूछा कि इसको सलाह किसने दी है ? पता चला, फलां राजनेता ने, तो उसने...उसके विरोधी के पास जाकर सलाह ले लेनी चाहिये कि अब क्या करना ? क्योंकि राजनेताओं को पता होता है एक-दूसरे की तरकीबें । उसके विरोधी ने कहा, कुछ फिकर मत कर । एक वेश्या को मैं जानता हूं । बस मरने के करीब ही है वह । मर भी गई तो कुछ हर्जा नहीं । और वेश्या है, सड़ चुकी है । उसको ले आ, दस-पांच रुपये का खर्चा है । उसका भी बिस्तर लगवा दे । और यह आदमी पूछे कि भई, माई, तू यहां बिस्तर क्यों लगा रही है, तो उससे कहना कि मुझे तुझसे सच्चा प्रेम हो गया है । तू भी सत्याग्रह करवा दे, अब इसके सिवा कोई उपाय नहीं है और । यह आदमी भाग जायेगा रात में ही, क्योंकि अगर दो सत्याग्रह हो जायें तो बड़ा मुश्किल हो जाता है ।

यही हुआ । जब माई ने आकर बिस्तर लगा दिया, उस आदमी ने पूछा कि माई तू यह क्या कर रही है ? उसने कहा कि मुझे तुझसे प्रेम हो गया है । तेरे सत्याग्रह की खबर मैंने क्या सुनी, सच्चा प्रेम मेरे हृदय में जग गया ।

उसने कहा, तेरे में तो मैं प्रेम जगाना भी नहीं चाहता था । यह तो तीर कुछ गलत जगह लग गया ।

पर उस स्त्री ने कहा कि जब तक तुम मुसम्बी का रस न पिलाओगे, तब तक मैं अब हटनेवाली नहीं, चाहे मर ही न जाऊं । वह तो मरने के करीब थी । रात को बोरिया-बिस्तर बांध कर वह युवक भाग गया । उस गांव से ही भाग गया, क्योंकि अब वह सारा पासा पलट गया ।

तुम पूछ रहे हो कि तुम्हारा सच्चा प्रेम किसी स्त्री से हो गया है ।... सत्याग्रह करो भाई ! तुम्हें मेरी बात अच्छी नहीं लगेगी । तुम अपनी बीमारियों से छूटना ही नहीं चाहते । तुम तो अपनी बीमारियों को अच्छे-अच्छे नाम देते हो ।

तुम्हारा प्रेम कितना प्रेम है ? तुम्हारे प्रेम की गहराई क्या, सच्चाई क्या ? आज है, कल हवा हो जाता है । कपूर की तरह उड़ जाता है । क्षणभंगुर है । पानी का बबूला है । बड़े-बड़े प्रेम यहां मिट्टी में पड़े सड़ गये हैं । सच्चा ही प्रेम अगर हो तो प्रार्थना बनता है । और कोई दूसरा उपाय नहीं ।

ऐसे प्रेम में तो असफलता होगी, ऐसे मोह में असफलता होगी । मगर मन मानता नहीं——मन कहता है, औरों को हुई होगी; मुझे भी हो, यह जरूरी क्या ? मन सदा एक तरकीब का उपयोग करता है——मन तुमसे कहता है कि तुम अपवाद हो, तुम

विशिष्ट हो।

एक आदमी सत्ता में पहुंच जाता है। सत्ता के पहले जो दूसरे लोग सत्ता में थे, वह चिल्लाता था कि सत्ता ने इन्हें भ्रष्ट कर दिया। लेकिन वह स्वयं के बाबत यह सोचता है कि सत्ता मुझे भ्रष्ट नहीं कर पायेगी। सत्ता सभी को भ्रष्ट करती है। सच तो यह है, जो भ्रष्ट होना चाहते हैं वही सत्ता में उत्सुक होते हैं। जो भ्रष्ट नहीं होना चाहता वह सत्ता में उत्सुक क्यों होगा? भ्रष्ट होने की आतुरता, भ्रष्ट होने की सुविधा ही सत्ता की तलाश है।

हर आदमी सोचता है कि दूसरों से चूक हो रही है; दूसरे गलती पर हैं, मैं गलती पर नहीं हूं। और सबसे बड़ी गलती यही है। सबसे बड़ी गलती है कि मैं अपवाद हूं। यहां कोई भी अपवाद नहीं है। यहां सब प्रेम झूठे हैं, सब मोह झूठे हैं। यहां सब नाते-रिश्ते झूठे हैं। निरपवाद मैं कह रहा हूं——सब। इसमें तुम यह मत सोच लेना कि मैं औरों से कह रहा हूं, तुमसे नहीं कह रहा हूं; तुम्हारी तो बात ही और है। किसी की बात और नहीं है। इस संसार में हम जो भी बनाते हैं, सब झूठा है। हमारा बनाया हुआ सब झूठा है। परमात्मा का बनाया हुआ सब सच है। उसका बनाया सच, हमारा बनाया झूठा। उससे ही जुड़ जाओ तो संसार विदा हो जाता है। उससे ही जुड़ जाओ तो असफलता समाप्त हो जाती है। फिर सफलता ही सफलता है। उसके साथ कभी कोई हार नहीं। अकेले-अकेले बस हार ही हार है।

निस दिन दीप जलाए पगली पाये घोर अन्धेरा
कौन कहे अब इसे हठीली, अंत यही है तेरा
रैन की गोदी खाली करके चांद-सितारे भागे,
अंधियारे में पीछे-पीछे ज्योति आगे-आगे
होते होते नैनवा से ओझल हुआ सवेरा
छाया घोर अन्धेरा
अन्त यही है तेरा
दूर-दूर तक एक उदासी, सड़ी-बुसी इक छाया
धरती से आकाश तक उड़कर आशा ने क्या पाया
चारों खूंट चली अंधियारी, चिन्ताओं ने घेरा
छाया घोर अन्धेरा
अन्त यही है तेरा
कौन चुने अब टूटे तारे, जोत कहां से आये?
कौन गगन पर सेज बिछाये? फूल तो हैं मुर्झाए
कौन है इस नगरी में अब आकर करे बसेरा?

निस दिन दीप जलाए पगली पाये घोर अंधेरा
कौन कहे अब इसे हठीली, अंत यही है तेरा

यहां तो सब दीये बुझेंगे। यहां तो सब फूल कुम्हलायेंगे। तुम लाख करो उपाय, अन्यथा नहीं हो सकता। जहां तुम्हें ही मिट जाना है और मर जाना है, वहां तुम्हारे प्रेम का क्या ठिकाना है? जब तुम हो न बचोगे तो तुम्हारे कृत्य क्या बचेंगे? जब तुम ही यहां क्षणभर को हो, तो तुम्हारे सम्बन्ध कैसे शाश्वत हो सकते हैं?

थोड़ा सोचो तो, सीधा-सीधा गणित है। दो क्षणभंगुर लहरों का सम्बन्ध शाश्वत कैसे हो सकता है? दोनों ही गिर जाने को, मिट जाने को। जोड़ना ही तो नाता तो उससे जोड़ लो जो कभी नहीं मिटता है। सागर से जोड़ो नाता। और मजा ऐसा है कि जो सागर से नाता जोड़ता है, उसका सब लहरों से नाता अपने-आप जुड़ जाता है। और जो लहरों से नाता जोड़ना चाहता है, लहर से ही नहीं जुड़ पाता, सागर से तो कैसे जुड़ेगा?

इस रहस्य को समझो। इस रहस्य की समझ जीवन में बड़ी क्रान्ति ले आती है।

अन्तिम प्रश्न——

मैं महापापी हूं, मुझे उबारें!

✱ पाप में भी अहंकार——महापापी! छोटे-मोटे से काम न चलेगा?

आदमी का अहंकार ऐसा है कि अगर पाप की भी बात करे तो भी अपने को महापापी मानना चाहता है। अगर कोई दूसरा तुम्हें मिल जाये और कहे मैं तुमसे भी बड़ा पापी हूं, तो झगड़ा हो जायेगा——कि तू है किस खेत की मूली? तूने अपने को समझा क्या है? मुझसे और बड़ा पापी तू? मुझसे बड़ा पापी कोई भी नहीं है!

आदमी को बड़ा होना ही चाहिये, जहां भी हो। धन हो तो सबसे बड़ा धनी होना चाहिये। पद हो तो सबसे बड़ा पद होना चाहिये। और अगर पाप हो तो भी चलेगा। लेकिन एक बात तो होनी ही चाहिये——महापापी!

क्या पाप किया है तुमने? किसी की जेब काट ली होगी? कहीं डाका डाल दिया होगा। किसी की हत्या कर दी होगी।...महापाप! क्या महापाप किया होगा? सब छोटे-छोटे कृत्य हैं। सब क्षुद्र हैं।

एक बात स्मरण करो, अहंकार हर चीज के पीछे खड़ा होकर अपना पोषण कर लेता है। त्याग के पीछे खड़ा हो जाता है और कहता है——मैं महात्यागी! पुण्य के पीछे खड़ा हो जाता है, कहता है——मैं महापुण्यात्मा! और ज्ञान के पीछे खड़ा हो जाता है और कहता है कि मैं महाज्ञानी! जरा देखो, अब वह पाप के पीछे खड़ा हो गया है! वह कहता है——मैं महापापी!

एक बात अहंकार चाहता है कि मैं अद्वितीय, मैं विशिष्ट, मैं खास !

इस जड़ को काटो ! यही सारे पापों की जड़ है ।

तो पहली तो बात मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि यह 'महा' शब्द छोड़ो । इसके गिरते ही बड़ा फर्क होगा । यह 'महा' का भवन गिर जाये, खंडहर रह जाये, तो निन्यानवे प्रतिशत क्रान्ति तो हो ही गई । क्योंकि आदमी पाप भी करता है तो इसी अहंकार के कारण करता है ।

बुद्ध के समय में अंगुलीमाल हुआ । वह दुनिया का सबसे बड़ा हत्यारा अपने को सिद्ध करना चाहता था । उसने तय कर रखा था कि एक हजार लोगों को काटकर उनको अंगुलियों की माला पहनूंगा । इसलिये उसका नाम 'अंगुलीमाल' पड़ गया । उसकी असली नाम तो भूल ही गया है । सबसे बड़ा पापी होना चाहता था ।

मैंने सुना है, नादिरशाह जब अपनी विजय-यात्राओं से वापिस लौट रहा था तो एक गांव में एक रात उत्सव मनाया गया । उसका जन्म दिन था । और पास के चार-छह गांव फासले दूर से कुछ सुन्दर वेश्याएं नृत्य करने आईं । जब आधी रात वे वेश्याएं वापिस लौटने लगीं, तो वे थोड़ी डरी थीं । रास्ता अन्धेरा था, रात अंधेरी थी, अमावस की रात थी । तो नादिरशाह ने कहा, तुम भयभीत क्यों हो रही हो ? घबड़ाओ मत ! अपने सैनिकों को कहा कि इनके रास्ते में जितने गांव पड़ते हैं, सब में आग लगा दो, ताकि रोशनी हो जाये ।

सैनिक भी थोड़े सहमे कि यह कोई बात हुई ? न मालूम कितने बच्चे मर जायेंगे, औरतें मर जायेंगी, लोग मर जायेंगे, खेत जल जायेंगे! लेकिन नादिरशाह ने कहा, रुकने की जरूरत नहीं । यह याद रहे आनेवाले लोगों को कि नादिरशाह के दरबार में नाची हुई वेश्याएं भी जब लौटती थीं, तो अन्धेरी रात में भी उनके रास्ते रोशन कर दिये जाते थे ! आखिर आग लगवा देनी पड़ी । कोई छह गांव में आग लगवा दी गई । सारे खेत जला दिये गये ।

यह. . .आदमी के भीतर यह रस--यह गंदा रस--कैसे पैदा होता है ? नादिरशाह यह कहना चाहता है कि मुझसे बड़ा हत्यारा कभी कोई नहीं हुआ । मैं महापापी हूं !

पापी सही, मगर 'पापी' से मन नहीं भरता, 'महान' से मन भरता है ।

'महा' से बचो । सामान्य होना पर्याप्त है । और सामान्य जो होने को राजी है, उसको ही मैं धार्मिक कहता हूं ।

दूसरी बात, तुम्हारे धर्मों ने तुम्हें सिखाया है कि हर चीज पाप है--स्वाद पाप, प्रेम पाप, हर चीज पाप है । हर चीज निंदित कर दी गई है । इसलिए तुम जी नहीं पा रहे हो, सिकुड़ गये हो । मैं तुमसे कहता हूं, यहां सब खेल है, पाप इत्यादि कुछ भी

नहीं है । न कुछ पाप है न पुण्य । खेल खेल की बात है । पुण्य जरा अच्छा खेल है । उसमें दूसरों को कम तकलीफ होती है । पाप जरा बुरा खेल है; इसमें दूसरों को तकलीफ होती है । खेल ही खेलना हो तो पुण्य का खेल खेलना; मगर ध्यान रखना : है खेल ही । यहां के पाप भी झूठे, यहां के पुण्य भी झूठे ।

ऐसे ही समझो कि एक रात तुमने सपना देखा कि तुम हत्यारे हो गये और तुमने न मालूम कितने लोग मार डाले । और सुबह जागकर पाया कि अरे, सब सपना था --न कोई मरा, न कोई मारा गया । या तुमने एक रात सपना देखा कि तुम बुद्ध हो गये--भिक्षापात्र लिए, राजमहल छोड़ दिया स्वर्ण-जैसा ! सुन्दर पत्नी छोड़ दी, बच्चा छोड़ दिया, ध्यान लगाए रहे, बोधिवृक्ष के तले बैठे ध्यान लगाए । सुबह हुई, नींद खुली, पता चला--न तो महल था, कोई न पत्नी थी, न तुम बुद्ध हुए, न बोधिवृक्ष था, न कोई ध्यान लगाया । क्या इन दोनों सपनों में तुम कोई फर्क करते हो ? सपने तो दोनों सपने हैं । जागे हुए आदमी के दृष्टिकोण से तो कोई भी फर्क नहीं है, लेकिन सोये हुए आदमी के दृष्टिकोण से फर्क है ।

तो मैं तुमसे कहता हूं, सपना देखना हो तो पुण्य का सपना देख लेना । मगर फर्क सपने ही सपने का है, कोई बहुत बड़ा बुनियादी फर्क नहीं है । सपना ही देख रहे हो तो अच्छा सपना देखो । हत्या का सपना देखोगे तो परेशान खुद भी रहोगे । किसी की हत्या करोगे, तो कुछ आसानी से तो नहीं हो जाती हत्या किसी की । सपने में भी करोगे तो घबड़ाहट लगेगी, दुश्मन पीछा करेंगे, अपनी छाती बचाकर रखनी पड़ेगी । हमेशा भय पकड़ा रहेगा । दुख-स्वप्न है । सपना ही देख रहे हो तो अच्छा सपना देखो ।

बस इतना ही फर्क है मेरी दृष्टि में पाप और पुण्य में--अच्छे और बुरे सपने का । और मैं कह रहा हूं, अच्छा ही सपना देखना है अगर देखना ही है, सपनों ही देखना है । लेकिन असली बात तो यह है कि सपने से जागना है, दोनों सपनो से जागना है-- पापी पाप से जागे, पुण्यात्मा पुण्य से जागे । पापी पाप के बाहर आये, पुण्यात्मा पुण्य के बाहर आये । तभी धर्म की शुरुआत होती है ।

तुम्हारे पाप का जो द्रष्टा है, तुम्हारे पुण्य का जो द्रष्टा है--तुम्हारे भीतर छिपा है, उसकी खोज लो । सपने में बहुत मत उलझो । सपने के ब्यौरे में मत जाओ कि मैंने क्या किया, क्या नहीं किया, अच्छा था कि बुरा था, ऐसा करना था, वैसा करना था । इस ब्यौरे में उलझ गये तो पार न पाओगे ।

हर स्थिति में--निम्न से निम्न स्थिति में और ऊंची से ऊंची स्थिति में-- एक का ही वास है ।

गत में चन्दन-बास का झोंका, तोड़ में कुन्दन रूप ।
नीचे सुर में छांव भरी है, ऊंचे सुर में धूप ।।

उसी का सब खेल है । उसी की धूप, उसी की छांव ।
नीचे सुर में छांव भरी है, ऊंचे सुर में धूप ।

सब उसका है, और तुम्हें छांव से भी मुक्त होना है, धूप से भी मुक्त होना है । तुम्हें जानना है कि मैं द्रष्टा हूं, मैं साक्षी हूं--मैंने धूप देखी, मैंने छांव देखी । मैं दोनों से अलग, पृथक हूं ।

और फिर तुम्हारा कसूर क्या ? तुम्हें परमात्मा ने जैसा बनाया वैसे तुम हो । जैसे सपने देखने को दिये, वैसे सपने तुमने देखे । यह सारा कृत्य उसका है, तुम इसमें कर्ता न बनो । यह सारा का सारा उस पर छोड़ दो । यह भक्ति का मार्ग है ।

होशियारी मत करना कि बुरा-बुरा उस पर छोड़ दो और अच्छा-अच्छा अपना बचा लो । अक्सर लोग यही कर देते हैं । अगर सफल हो गये तो वे कहते हैं, मैं सफल हुआ । और हार गये तो वे कहते हैं, क़िस्मत । अगर हार गये तो--क्या करें, विधि का लेखा ! अगर हार गये तो भगवान ने साथ नहीं दिया । अगर जीत गये तो भगवान की याद ही नहीं आती । तब तुम जीतते हो । भक्त दोनों ही उस पर छोड़ देता है । अच्छा-बुरा, सब तेरा । ऐसे निश्चिन्त हो जाता है ।

यही तो कृष्ण ने अर्जुन को गीता में कहा, सब उस पर छोड़ दे । सब मुझ पर छोड़--माम् एकम् शरणम् व्रज ! अच्छे-बुरे की तू फिकर मत कर । जो परमात्मा कराये, कर । जो परमात्मा दिखाए, देख । तू निमित्त मात्र हो ।

ये वचन सुनो--

ये कायनात अगर तेरे बस का रोग नहीं
तो कायनात बनायी थी किसलिए तूने
इसे बसाके अगर यूं उजाड़ देना था
तो अंजुमन ये सजाई थी किसलिए तूने
ये आदमी के गुनह की सजा सही लेकिन
इसे गुनाह का एहसास क्यों दिया तूने
बनाके बरतरो-आला तमाम चीजों से
बशर को माइले पैकार क्यों किया तूने
खता मुआफ बशर का कोई कुसूर नहीं
तेरे इताब ने नाहक बशर को घेरा है
सबूते-जुर्म नहीं है तो फिर सजा कैसी
गुनाह तूने किया है, कुसूर तेरा है

यह पद सुन्दर, यह वचन ठीक--गुनाह तूने किया है, कसूर तेरा है । मगर दूसरी बात भी याद रखना · जिन्दगी में जब कुछ शुभ हो, सुन्दर हो, आनन्द की वर्षा हो, तब भी याद रखना कि करुणा उसने की है । पाप भी उसके, पुण्य भी उसके, अच्छा उसका, बुरा उसका--सब उसका । ऐसी भावदशा का नाम भक्ति । और उस भक्ति से बड़ी क्रान्ति घटित होती है । भक्ति का कीमिया तुम्हें नहला जायेगा, धुला जायेगा, नया कर जायेगा ।

तो मत अपने को महापापी समझो, और न अपने को महापुण्यात्मा समझना । न महापापी, न महात्मा--सिर्फ द्रष्टा, सिर्फ साक्षी, केवल चैतन्य--शांत, सामान्य, चैतन्य । कर्ता वही । सब बोझ उसके कंधों पर दे दो । निर्भार हो जाओ । और फिर देखो, जिन्दगी कितनी प्यारी है ! और फिर देखो, जिन्दगी कैसा उत्सव है !

आज इतना ही ।

तुम सदा एकरस, राम जी, राम जी

तीसरा प्रवचन : दिनांक ३ जून, १९७८; श्री रजनीश आश्रम, पूना

तो पंडित आये, वेद भुलाये, षट करमाये, तृपताये ।
जी संध्या गाये, पढ़ि उरझाये, रानाराये, ठगि खाये ।।
अरु बड़े कहाये, गर्व न जाये, राम न पाये थाघेला ।
दादू का चेला, भरम पछेला, सुन्दर न्यारा ह्वै खेला ।।

तौ ए मत हेरे, सब हिन केरे, गहिगहि गेरे बहुतेरे ।
तब सतगुरु टेरे, कानन मेरे, जाते फेरे आ घेरे ।।
उन सूर सबेरे, उदै किये रे, सबै अंधेरे नाशेला ।
दादू का चेला, भरम पछेला, सुन्दर न्यारा ह्वै खेला ।।

आदि तुम ही हुए अवर नहिं कोई जी ।
अकह अति अगह अति बर्न नहिं होइ जी ।।
रूप नहिं रेख नहिं, श्वेत नहीं श्याम जी ।
तुम सदा एकरस, राम जी, राम जी ।।

प्रथम ही आप तैं मूल माया करी ।
बहुरि वह कुब्बि करि त्रिगुन ह्वै बिस्तरी ।।
पंच हू तत्व तै रूप अरु नाम जी ।
तुम सदा एकरस, राम जी, राम जी ।।

भ्रमत संसार कतहूं नहीं वोर जी ।
तीनहू लोक में काल कौ सोर जी ।।
मनुषतन यह बड़े भाग्य तै पाम जी ।
तुम सदा एकरस, राम जी, राम जी ।।

पूरि दशहू दिशा सर्ब्ब मैं आप जी ।
स्तुतिहि को करि सकै पुन्य नहीं पाप जी ।।
दास सुन्दर कहे देहु विश्राम जी ।
तुम सदा एकरस, राम जी, राम जी ।।
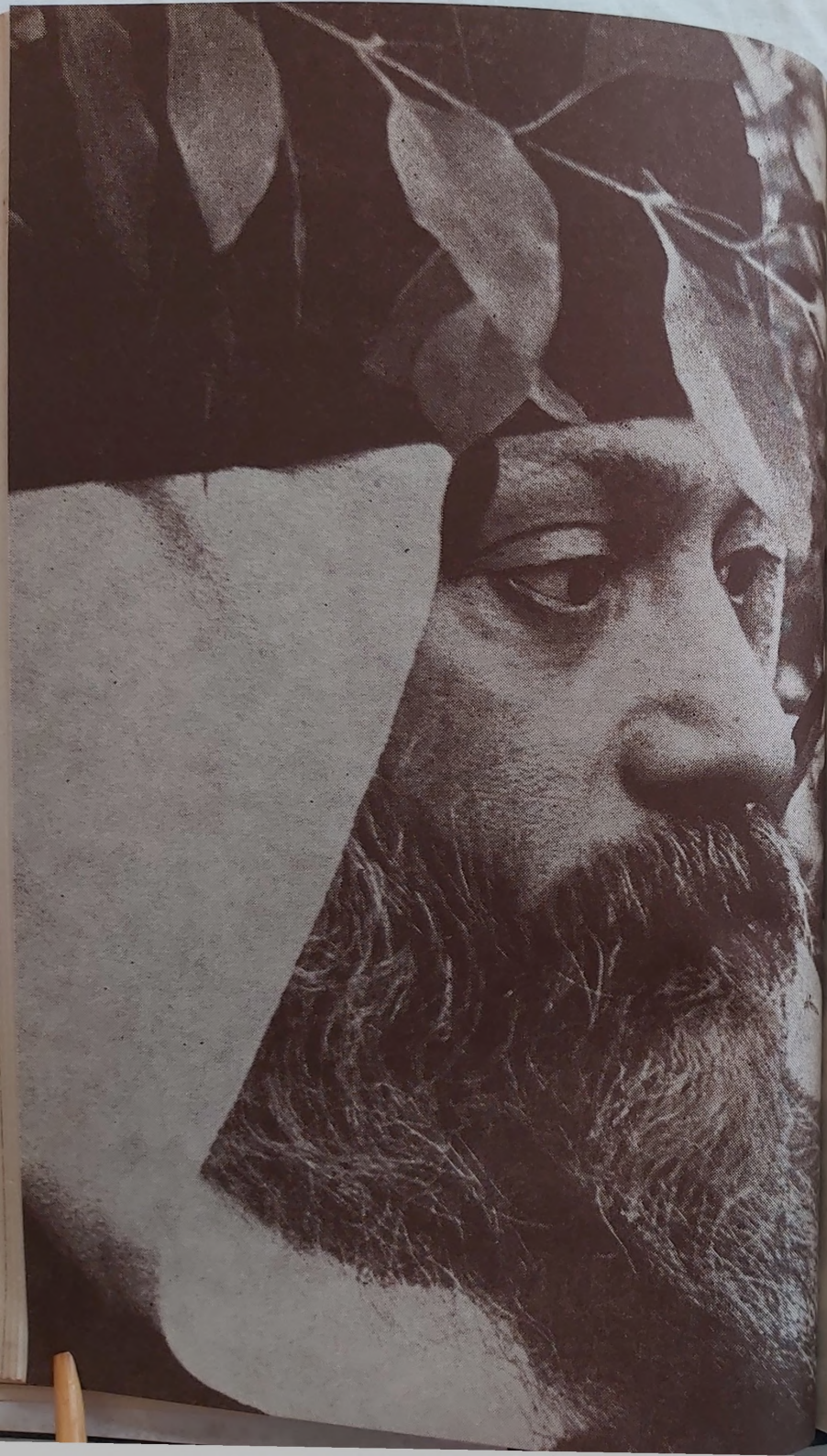
भूल जाना तो गये दूर का दुश्वार न था
एक नादीदा खलिश आती रही समझाने
रेगे माज़ी से झुलसता रहा दिल का गुलशन
फूल खिलते रहे वीराने रहे वीराने

खंदा-ए-जेरलबी है गमे पिन्हां जैसे
गर्मी-ए-शिद्दते-एहसास से जल जाए कोई
और अपने ही बनाये हुए मा'बूद के हाथ
अपनी नाकर्दा गुनाही की सज़ा पाये कोई

ये ख्याल आता है अब मुझको तेरे नाम के साथ
चन्द हर्फों का ये मजमूआ सहीफ़ा तो नहीं ?

वेद में वेद नहीं है और कुरान में कुरान नहीं है। शब्दों के जमाव में निःशब्द की झलक कहां ?

ये ख्याल आता है अब मुझको तेरे नाम के साथ।
चन्द हर्फों का ये मजमूआ सहीफा तो नहीं ?

ये थोड़े-से शब्दों का खेल धर्मग्रन्थ तो नहीं हो सकता है। लेकिन मनुष्य शब्दों के खेल में उलझ गया है। शब्द को भी सत्य मान लिया है। जैसे कोई 'प्रेम' शब्द को प्रेम मान ले, ऐसे 'परमात्मा' शब्द को परमात्मा मान लिया है। अनुभव की तो बात भूल गई है, विचार के जाल में लोग उलझे रह गये हैं। और बड़े जाल हैं विचार के। सदियों का चिन्तन-मनन उन जालों के पीछे खड़ा है।

मनुष्य को परमात्मा से रोकने वाली जो बड़ी-से-बड़ी बाधा हो सकती है वह शास्त्र है। सुनकर एकदम भरोसा भी नहीं आता। क्योंकि हमने तो यही सुना है बार-बार कि शास्त्र के द्वारा भी आदमी परमात्मा तक पहुंचता है। लेकिन मैं तुमसे कहना चाहता हूं : शास्त्र से कोई कभी परमात्मा तक न पहुंचा है, न पहुंच सकता है। हां, जो परमात्मा तक पहुंच जाते हैं, उनके सामने शास्त्र का अर्थ प्रगट हो जाता

है। लेकिन पहुंचना पहले है, शास्त्र का अर्थ पीछे प्रगट होता है।

जो प्रेम जान लेता है उसके सामने प्रेम शब्द का अर्थ भी प्रगट हो जाता है। जो परमात्मा की झलक पा लेता है उसे परमात्मा शब्द फिर शब्द नहीं रह जाता, पुंजीभूत उसकी झलक हो जाती है। लेकिन जिसने अनुभव नहीं किया है उसके पास तो कोरा शब्द है, खाली शब्द है। उस मुर्दा शब्द में कोई प्राण नहीं है। शब्द कितने ही प्यारे हों, मुर्दा हैं। और जीवन्त से मुक्ति है। तुम जीवन्त हो--जीवन्त से ही मुक्त हो सकोगे। शब्दों के बोझ से दब सकते हो, मुक्त नहीं। शब्दों के बोझ से बोझिल हो सकते हो, निर्भार नहीं। शास्त्रों की दीवाल चीन की दीवाल बन जायेगी तुम्हारे चारों तरफ। भ्रान्ति बड़ी पैदा होगी, क्योंकि परमात्मा ही परमात्मा की बात होगी। और बात ही बात में परमात्मा खो जायेगा।

भूल जाना तो गये दूर का दुश्वार न था
एक नादीदा खलिश आती रही समझाने

आदमी तो भूल ही गया होता--बिल्कुल भूल गया होता। कितने वेद हैं, कितने कुरान, कितनी बाइबिल, कितने धम्मपद! आदमी तो भूल ही गया होता, लेकिन कोई एक चुभन है जो आदमी के भीतर उठती ही रहती है। कोई शास्त्र उस चुभन को बुझा नहीं पाता। उस चुभन पर ही भरोसा करो। उस प्यास को ही तलाशो, उकसाओ, बढ़ाओ। उस प्यास को ही प्रज्वलित करो। वही प्यास तुम्हें परमात्मा तक ले जा सकेगी, अन्यथा तुम पण्डितों के हाथ में सिर्फ शोषित किये जाओगे।

पूरी रात, चांद हो आकाश में, फिर झील में उसकी तस्वीर बनती रहे, और तुम झील की एक तस्वीर ले लो--ऐसी हालत शास्त्र की है। चांद है आकाश में, झील में प्रतिबिम्ब बनता है, फिर तुमने झील की तस्वीर ले ली, तो प्रतिबिम्ब का प्रतिबिम्ब तुम्हारी तस्वीर में पकड़ता है। चांद कहां, चांद तो बहुत दूर छूट गया। चांद तो झील की छाया में भी नहीं था, तुम्हारी तस्वीर में तो होगा कहां? तुम्हारे पास तो तस्वीर की तस्वीर है। ऐसी ही स्थिति परमात्मा की है। किसी मुहम्मद में कुरान उतरी, मुहम्मद की चेतना की झील में परमात्मा झलका। या किसी ऋषि में वेद उतरा, परमात्मा झलका। फिर जब ऋषि ने बोला तो झलक की झलक, तस्वीर की तस्वीर हो गई। और बात यहीं समाप्त नहीं होती। जब ऋषियों के बोले हुए शब्द तुम्हारे पास पहुंचते हैं, तो तुम उनमें से क्या अर्थ निकालोगे? यह तो मामला और भी दूर हो गया। तस्वीर की तस्वीर, और फिर उसमें से तुम अर्थ निकालोगे। और तुम अन्धे हो। तुमने कभी चांद देखा नहीं। तुमने सिर्फ चांद शब्द सुना है। तुम्हें चांद का कुछ पता नहीं है। तुम इस तस्वीर में से जो अर्थ निकालोगे, वह

अर्थ तुम्हारा होगा, उसका चांद से कोई भी सम्बन्ध न रह जायेगा। और मजा यह है कि मूल में चांद था। तस्वीर झील की है; झील में चांद की तस्वीर थी, चांद है। अगर चांद को तुम देख लो तो फिर तस्वीर में भी पहचान जाओगे।

इसलिए मैं तुमसे कहता हूं: शास्त्र से कोई सत्य तक नहीं पहुंचता। लेकिन सत्य तक पहुंच जाए, तो सभी शास्त्र सत्य हो जाते हैं। सभी शास्त्र गवाही बन जाते हैं। और अगर यह न हो पाये, तुम्हारे जीवन में परमात्मा का सीधा अनुभव न हो पाये, तो बड़ी मुश्किलें हो जाती हैं।

खन्दा-ए-जेरलबी है गमे-पिन्हां जैसे
गर्मी-ए-शिद्दते-एहसास से जल जाये कोई
और अपने ही बनाए हुए मा'बूद के हाथ
अपनी नाकर्दा गुनाही की सजा पाये कोई

फिर ऐसा मजा होता है, अपने ही हाथ से तुम बना लेते हो मूर्तियां और उन मूर्तियों से उन पापों की सजा पाते हो जो तुमने कभी किये नहीं। वे मूर्तियां झूठीं; तुम्हारे हाथ की बनाई हुई मूर्ति सच नहीं हो सकती। तुम ही अभी सच नहीं हो; तुम्हारे हाथ, तुम्हारी तूलिका, तुम्हारी छैनी-हथौड़ी से सच की तस्वीर नहीं बन सकती, सच की मूर्ति नहीं बन सकती। और अपने ही बनाये हुए मा'बूद के हाथ... और फिर अपने ही हाथ से बनाई हुई इन मूर्तियों के सामने तुम झुकते हो और उन पापों की सजा पाते हो जो तुमने कभी किये भी नहीं।

तुम्हें समझाया गया है: यह पाप, वह पाप...। इतने पाप तुम्हें समझा दिये गये हैं कि तुम्हें लगता है, मैंने बहुत पाप किये। तुम्हारे भीतर अपराध का भाव पैदा होता है और तुम अपने ही हाथ की बनाई हुई मूर्तियों के सामने झुकते हो, प्रार्थना करते हो, क्षमा मांगते हो, सहारे खोजते हो। यह दशा बड़ी विक्षिप्त है। और पागलपन क्या होगा?

फिर तुम कुछ शब्द जोड़ लेते हो, इकट्ठे कर लेते हो। बुद्ध बोले, बुद्ध ने कुछ लिखा नहीं। फिर लोगों ने शब्द इकट्ठे कर लिए। महावीर बोले, शब्द इकट्ठे कर लिए। मुहम्मद बोले, शब्द इकट्ठे कर लिए। फिर उन शब्दों को तुम धर्म-शास्त्र समझ रहे हो। धर्म को खोजना हो तो परमात्मा के विस्तीर्ण विकास में, विस्तीर्ण आकाश में खोजो। इस विस्तार में खोजो। वृक्षों पर उसके हस्ताक्षर हैं। पर्वतों, पहाड़ों पर उसका अंकन है। सरिताओं में उसकी थोड़ी-सी झलक है। सागरों में उसका गर्जन है। जब आकाश में बादल घिरें, तो गौर से सुनना--शायद वेद की कोई ऋचा पकड़ में आ जाये। जब पक्षी बोलें और मोर नाचें, तो जरा गौर से देखना--शायद कृष्ण की कोई अदा भा जाये। जब कोयल गाने लगे तो डूबना

उसके गीत में--शायद कुरान की कोई आयत उतरती हो। मगर आदमी की बनाई हुई किताबों में उसे खोजने मत जाना। उन्हीं किताबों के जंगल में लोग अटक गये हैं।

सुन्दरदास के आज के वचन इसी महत्त्वपूर्ण बात को तुम्हें याद दिलाना चाहते हैं।

तो पण्डित आये, वेद भुलाए, षटकरमाये, तृपताये।
जी संध्या गाये, पढ़ि उरझाये, रानाराये, ठगि खाये।।

अद्भुत वचन हैं! जब भी यहां कभी कोई ज्ञान की ज्योति जलती है, कोई प्रबुद्ध होता है, तो जल्दी ही पण्डित घिर आते हैं, जल्दी ही पण्डित उसके आसपास इकट्ठे हो जाते हैं।

तुमने एक अद्भुत बात सोची कभी? जैनों के चौबीसों तीर्थंकर क्षत्रिय हैं; एक भी ब्राह्मण नहीं है। लेकिन हर तीर्थंकर के आसपास जो उनके प्रमुख शिष्य हैं, वे सब ब्राह्मण हैं। महावीर के ग्यारह गणधर सब ब्राह्मण हैं। महावीर क्षत्रिय हैं। लेकिन उनके शिष्य, उनके आसपास जो एक जाल इकट्ठा हो गया, वह ब्राह्मणों का है, वह पण्डितों का है। वे महावीर के शब्द इकट्ठे कर रहे हैं। वे इस शब्द से बड़ी दुकान चलायेंगे, इस शब्द से बड़ा व्यवसाय चलायेंगे। चलाया उन्होंने। इसी शब्द के जाल में महावीर को डुबाया उन्होंने। जब भी कोई ज्योति जलती है--कोई कबीर उठा, कोई नानक--कि जल्दी ही पण्डित की इतनी बात समझ में आ जाती है। पण्डित चालाक है। उसे यह बात समझ में आ जाती है कि इन शब्दों में हीरों की झलक है। ये शब्द बिकेंगे, ये काम आयेंगे। इनको संजो कर रख लेना चाहिए।

तो पण्डित आये...। जब भी कोई बुद्ध आया तो पण्डित आया। जब भी कोई गीत उतरा किसी के प्राण में तो चालाक और चतुर लोग इकट्ठे हो गये।

तो पण्डित आये, वेद भुलाये....। और इन्होंने वेद भुलवा दिये। तुम सोचते हो, ये वेद के रक्षक हैं? पण्डित और वेद का रक्षक? तो फिर हत्या कौन करेगा वेद की? फिर हत्या किसने की वेद की? पण्डित और पुरोहितों ने। उन्होंने वेद में फिर ऐसे-ऐसे अर्थ डाले कि ऋषि अगर अपनी कब्रों से उठ आयें तो छाती पीटें और रोएं। फिर उन्होंने महावीर की वाणी में ऐसे-ऐसे अर्थ संजो दिये। और कुशलता से, और ऐसी कुशलता से कि तुम तर्क भी न कर सकोगे। .... बड़ी तर्कनिष्ठा से। वेद के ऋषियों ने तो जो कहा था वह तो उनका स्वान्तः अनुभव था। पण्डितों ने उस अनुभव में तर्कजाल फैलाये। उन्होंने तो सिर्फ घोषणाएं की थीं। उन घोषणाओं के पीछे कोई प्रमाण नहीं थे। पण्डितों ने प्रमाण जुटाए।

शायद यह भी हो सकता है--कई बार ऐसा होता है, मनुष्य का दुर्भाग्य है मगर होता है--कि अगर तुम्हें कोई वेद का जीवन्त ऋषि मिल जाये तो शायद उसकी बात

तुम्हारी समझ में न पड़े। क्योंकि वह तुम्हारी भाषा नहीं बोलेगा, वह अपने लोक की भाषा बोलता है। वह उस लोक की भाषा बोलता है जहां उसका निवास है। वहां से बोलता है, दूरी से बोलता है। पण्डित तुम्हारी भाषा बोलता है। तुम्हारे तर्क और गणित का उपयोग करता है। पण्डित जानता है कौन-सी बात तुम्हें रुचेगी वही बोलता है। ऋषि तो वही बोलता है जैसा है। पण्डित वह बोलता है जो तुम्हें रुचेगा। पण्डित तुम पर ध्यान रख कर बोलता है। इसलिए पण्डित की बात तुम्हें जल्दी समझ में आ जाती है। ऋषियों से तुम चूक जाते हो, पण्डितों के कब्जे में पड़ जाते हो। और पण्डित है, जो हत्या करता है।

कृष्ण की गीता की एक हजार व्याख्याएं! ये तो प्रसिद्ध व्याख्याएं हैं। जो इतनी प्रसिद्ध नहीं हैं, वैसी तो और भी हजारों व्याख्याएं हैं। और जिसकी भी व्याख्या तुम पढ़ोगे, लगेगा यही ठीक है, यही कृष्ण ने कहा होगा। सब अपनी व्याख्या कृष्ण पर थोप देते हैं। अगर तुम अद्वैतवादी हो तो तुम कृष्ण में अद्वैतवाद खोज लोगे, अगर द्वैतवादी हो तो द्वैतवाद खोज लोगे। अगर भक्त हो तो भक्ति खोज लोगे। और अगर कर्म खोजना है तो कर्म खोज लोगे। एक बात साफ है कि तुम कृष्ण के दर्पण में अपनी तस्वीर खोजते हो। कृष्ण की तस्वीर से तुम्हें कुछ लेना-देना नहीं है? तुम जो हो वही खोजते हो। तुम अपने लिए सहारा खोजते हो। तुम अपने लिए आभूषण खोजते हो। तुम अपने घर को और मजबूत कर लेते हो। तुम अपने अहंकार को और सजा लेते हो। तुम्हारा शृंगार और बढ़ जाता है।

तो पण्डित आये, वेद भुलाए....। आमतौर से हम समझते हैं, पण्डितों ने वेद की रक्षा की है। उन्होंने ही, उन्होंने ही नष्ट किया है। वे ही जिम्मेदार हैं। सीधे सरल लोग, शान्त लोग, जिनके मन में विचारों की तरंगें नहीं, ऐसे लोग, वेद को पुनः जन्म दे सकते हैं। वे असली रक्षक हैं। और रक्षा का एक ही उपाय है। अगर तुम वेद की रक्षा करना चाहते हो, तो वेद की रक्षा नहीं करनी पड़ती, स्वयं के भीतर वैसी भावदशा करनी पड़ती है पैदा, जहां वेद पुनः पैदा, हो सके, पुनः जन्म सके।

ध्यान में वेद का जन्म होता है; ज्ञान में दब जाता है और मर जाता है। ध्यान और ज्ञान का भेद खूब ख्याल में रख लेना। अगर बनना हो कुछ, पाना हो कुछ, पहचानना हो कुछ, जीवन के राज समझने हों, तो ध्यान पर जोर देना, ज्ञान से बचना।

तो पण्डित आये, वेद भुलाए, षटकरमाये, तृपताये।

उन्होंने बड़ा जाल पैदा कर दिया--षट्कर्म, तर्पण, पूजा, पाठ, हवन! उन्होंने इतना उपद्रव खड़ा कर दिया कि उसके उपद्रव से तुम कभी पार ही न जा पाओगे।

बच्चा पैदा होता है कि पण्डित उसकी गर्दन पकड़ लेता है। पैदा होने से मरने तक, मर जाने के बाद तक पण्डित पीछा करता है। तुम्हें छोड़ता ही नहीं। तुम मर भी जाओगे, तो तुम्हारी लाश पर भी पण्डित कब्जा रखता है। मरने के बाद तीसरा करवायेगा और तेरहवीं करवायेगा। अब तुम मर भी गए, अब भी पण्डित पीछे लगा है। चूस ही लेगा आखिरी दम तक, तन जाने के बाद भी चूसता रहेगा। और मनुष्य फंस जाता है जाल में क्योंकि मनुष्य को कुछ पता नहीं है। क्या है सत्य, उसे कुछ पता नहीं। इसलिए कोई भी झूठ अगर व्यवस्था से, तर्क-नियोजित ढंग से प्रस्तावित किया जाये, तो आदमी माने न तो क्या करे ?

तो पण्डित आये, वेद भुलाए, षटकरमाये, तृपताये। और तृप्ति देते रहे, तुम्हें तर्पण करवाते रहे। और तृप्ति कहां हुई है ? तुम वैसी ही प्यास से भरे हो, जैसे तुम सदा से भरे थे।

रेगे-माजी से झुलसता रहा दिल का गुलशन
फूल खिलते रहे, वीराने रहे वीराने।

तृप्तियां भी चल रही हैं और कहीं कोई तृप्ति मालूम होती नहीं। जरूर फूल झूठे खिल रहे होंगे। क्योंकि वीराने वीराने के वीराने हैं। रेगिस्तान रेगिस्तान का रेगिस्तान है। तो तुम सपने देख रहे हो। पण्डितों ने तुम्हें सपने देखने की कला सिखाई है।

जी सन्ध्या गाये, पढ़ि उरझाये, रानाराये, ठगि खाये। बड़ा आयोजन किया है पण्डितों ने। संध्या गाये.... ! भजन करते, पूजन करते, प्रार्थना करते, अर्चन करते—और सब झूठ, सब ओंठ पर, कंठ तक भी नहीं। हृदय की तो बात ही मत उठाओ।

पण्डितों को पूजा करते देखा है ? यज्ञ करते, बड़े यज्ञ करते—करोड़ों रुपये फुंकवाते रहते हैं। और इनके हृदय में कहीं कोई पूजा का भाव नहीं है, न कोई अर्चना हैं। इनकी आंखों में कहीं कोई दीया जलता दिखाई नहीं पड़ता आरती का। न इनके जीवन में कोई गंध दिखाई पड़ती है। मन्दिरों में धूप-दीप जलाओ, लेकिन जब तक तुम्हारे मन के मन्दिर में धूप-दीप नहीं जलेंगे, क्या होगा ?.... अग्नि में फेंकते रहो घी।

प्रतीक को अंधे की तरह पकड़ लेते हैं लोग। घी प्रतीक है मनुष्य के अहंकार का। दूध से दही बनता, दही से मक्खन बनता, मक्खन से घी बनता। घी दूध की अन्तिम प्रक्रिया है—सूक्ष्मतम प्रक्रिया है। घी आखिरी फूल है। ऐसे ही अहंकार हमारे जीवन की सूक्ष्मतम प्रक्रिया है। अग्नि में कुछ फेंकना हो तो अपने अहंकार को फेंक दो; वह तुम्हारा सूक्ष्मतम रूप है। तुम्हारा अहंकार जल जाये अग्नि में, यज्ञ पूरा हुआ। मगर इस यज्ञ के लिए किसी पण्डित के बीच में आने की कोई

जरूरत नहीं, किसी दलाल की कोई जरूरत नहीं। जीवन-यज्ञ तुम ही कर लोगे। तुम ही अग्नि हो, तुम ही अग्नि में डाले जानेवाले घी, और तुम ही पुरोहित हो। तुम ही यजमान। सब तुम हो।

मगर पण्डित यह तुम्हें याद नहीं दिला सकता। पण्डित तो कहता है, तुम, अकेले तो भटके हो और भटकते रहोगे। मेरा हाथ पकड़ो, मैं तुम्हें ले चलता हूं। और तुम कभी यह भी नहीं देखते इस पण्डित की आंख में झांककर कि इसे क्या मिला है। कभी तुम इसके हृदय में टटोलते भी नहीं। कभी तुम इसके पास सुगंध भी लेने की कोशिश नहीं करते। यह उन्हीं लोभ, उन्हीं माया, उन्हीं मोह, उन्हीं उपद्रवों में घिरा है, जिनमें तुम घिरे हो। शायद ज्यादा ही घिरा हो। तुममें कुछ भेद भी नहीं मालूम पड़ता, फिर भी तुम इसके चक्कर में पड़ जाते हो। क्योंकि इसने तुम्हारे लोभ को प्रज्ज्वलित कर दिया है। और तुम्हारे भय को भी बहुत भड़का दिया है। यह पण्डित के हाथ में शस्त्र है। इन दो के आधार पर तुम्हारा शोषण चला है, चल रहा है। और जब तक इन दो से न जागोगे, शोषण जारी रहेगा। एक तो तुम्हें भय दिया है बहुत, कि अगर तुमने ऐसा न किया तो नर्क में पड़ोगे। ...'अब तुम्हारे पिता चल बसे हैं, अब उनकी तेरहवीं करो। अब तुम्हारे पिता चल बसे हैं, अब एक वर्ष हो गया, अब बरसी करो।' अब जो चल बसे हैं, उनके नाम पर वह शोषण कर रहा है। वह तुम्हें डरवाता है, अगर बरसी न की तो पिता का ऋण नहीं चुकेगा, सड़ोगे जन्मों-जन्मों।

आदमी घबड़ाता है। आदमी वैसे ही घबड़ाया हुआ है। आदमी वैसे ही कमजोर है। उसके पैर वैसे ही कंप रहे हैं। और पण्डित को एक बात समझ में आ गयी है कि तुम्हारे पैर कंपाने में देर नहीं लगती, जरा में कंप जाते हैं। बड़े सूक्ष्म उसने आयोजन कर लिए, वह तुम्हारे पैर कंपा देता है। उसने नर्क के बड़े बीभत्स चित्र खीचे हैं—लपटें हैं जलती हुईं, उन में फेंके जाओगे, सड़ोगे। इतना खतरा कौन मोल ले ! चलो थोड़ा-बहुत खर्च होता है, बरसी भी करवा दो। सुरक्षा रहेगी। फिर उसने लोभ भी दिये तुम्हें, कि ऐसा करोगे तो स्वर्ग में ऐसे-ऐसे लाभ हैं। ऐसे गहरे प्रलोभन दिये। इन दो के बीच में आदमी को कसा है। इन चक्की के दो पाटों के बीच आदमी पीसा जा रहा है।

तो पण्डित आये, वेद भुलाये, षटकरमाये, तृपताये।
जी संध्या गाये, पढ़ि उरझाये...।

और पण्डित तुम्हें सुलझाता नहीं, उलझाता है। सुलझाने में उसका लाभ भी नहीं है कुछ। तुम जितने उलझो उतना ही लाभ है। इसीलिए तुमने देखा, अगर मुसलमान पण्डित है, मौलवी है, तो वह अरबी में बात करता है, अरबी ग्रंथों के

उल्लेख करता है, जो तुम्हारी समझ में नहीं आते । हिन्दू है तो वह संस्कृत के उल्लेख करता है। उन वचनों का अर्थ अगर किया जाये, शायद तुम्हें वे वचन उल्लेख करने जैसे भी न लगें । अगर वह ईसाई है तो हिब्रू, अरेमैक उदधृत करता है। भाषाएं तुम्हारी समझ में नहीं आनी चाहिये क्योंकि सवाल उलझाने का है, सुलझाने का नहीं है ।

अगर तुम वेद का अनुवाद पढ़ो तो तुम बड़े चौंकोगे, इस वेद में है क्या ! सौ में निन्यानवे प्रतिशत कचरा है। हीरे तो कहीं-कहीं हैं। लेकिन जब संस्कृत में उल्लेख किया जायेगा तो तुम्हारी समझ के बाहर होता है ।

तुम देखते हो तुम डॉक्टर के पास जाते हो तो डॉक्टर जब प्रेसक्रिप्शन लिखता है...हिन्दी में, मराठी में लिख दे, गुजराती में, तुम्हें खुद ही समझ में आ जाये कि यह दो पैसे की चीज के लिए दस रुपये !—लेकिन लैटिन और ग्रीक शब्दों का प्रयोग किया जाता है । तुम चमत्कृत होते हो कि कोई बड़ी ऊंची दवा ! चले प्रेसक्रिप्शन लेकर बड़े प्रसन्न, कि लाभ होना ही है । फिर देखते हो डॉक्टर इस ढंग से लिखता है कि सिवाय दूसरे डॉक्टर के कोई पढ़ भी न सके । लिखने की भी कला... क्योंकि लिखा भी इस तरह जाना चाहिये कि तुम्हारी समझ में न आये, नहीं तो जाकर घर में शब्दकोश में देख लो, कि है क्या यह मामला ! सच तो यह है, डॉक्टर इस तरह लिखता है कि पता नहीं खुद भी समझेगा कि नहीं, दुबारा जब पढ़ना पड़े।

यह पाण्डित्य का पुराना जाल है। सन्त लोकभाषा में बोले। सुन्दरदास लोक-भाषा में बोले। लोगों की भाषा। वेद के ऋषि जब बोले थे तो संस्कृत लोगों की भाषा थी। महावीर जब बोले तो प्राकृत लोगों की भाषा थी । बुद्ध जिनसे बोले, उनकी पाली भाषा थी। लेकिन अब बौद्ध भिक्षु अभी भी, बौद्ध पण्डित अभी भी पाली उद्धृत कर रहा है। अब किसी की भाषा नहीं है पाली । न प्राकृत किसी की भाषा है। न संस्कृत किसी की भाषा है। जीसस जब बोले तो अरेमैक भाषा थी लोगों की, इसलिए बोले ।

सन्त सदा लोकभाषा में बोले। बोला जाता है कि लोग समझें, इसीलिए। इसलिए तो नहीं कि लोग समझें न लेकिन पण्डित हमेशा उस भाषा में बोलता है जिसे लोग न समझें। वह वर्षों मेहनत करता है उस भाषा को सीखने की जो लोग नहीं जानते। वहीं उसका राज है, वहीं उसका रहस्य है।

मैंने सुनी है एक सूफी कहानी कि एक आदमी चीन गया । तुर्की था ! और बड़ा प्रभावशाली आदमी था । और चीन में लोगों को धर्म की ऊंची-ऊंची बातें समझाता था, लेकिन समझाता था तुर्की भाषा में । जब वह तुर्की भाषा

बोलता था, लोग चमत्कृत हो जाते थे। नाटकीय था। बड़े ढंग से बोलता था। बड़ी भाव-भंगिमा में आ जाता था। आंसू झरने लगते। कभी-कभी मस्ती में नाचने लगता। मगर बोलता तुर्की में। सैकड़ों लोग सुनने आते थे, भाव-विभोर होते थे। लेकिन फिर ऐसा हुआ कि तुर्क देश से कुछ दस-पन्द्रह लोगों का एक जत्था... खबर पहुंच गई तुर्क देश तक कि वह आदमी बड़ा प्रसिद्ध हो गया है, उसको बहुत ज्ञान उपलब्ध हुआ है, परमात्मा का अनुभव हुआ है... तो एक जत्था उसके दर्शन करने आया। अब वे सब तुर्की जानते थे। जब उसकी बातचीत सुनी तो वे बड़े हैरान हुए, उसमें धर्म का तो उल्लेख ही नहीं था। वह तो अन्ट-सन्ट बोल रहा था । तो कुछ भी बोल रहा था । और लोग मगन होकर सुन रहे थे। हां, नाटक पूरा कर रहा था। तुर्की तो बड़े हैरान हुए, उन्होंने उसे पकड़ लिया। उसकी पिटाई भी की। उसे गांव के बाहर खदेड़ दिया और कहा कि तुम यह क्या कर रहे हो ? वह आदमी जब वापिस लौटा तो उसके गांव के लोगों ने पूछा कि कहो, यात्रा कैसी रही ?

उसने कहा : यात्रा बड़ी गजब की रही! जब तक ये दस-पन्द्रह तुर्की नहीं पहुंचे, तब तक बड़ा आनन्द था । बड़ा रहस्य चल रहा था, मगर इन दुष्टों ने सब खराब कर दिया ।

पण्डित की आकांक्षा सुलझाने की नहीं है, उलझाने की है। पण्डितों की भाषा सुनते हो ? इस तरह की भाषा का उपयोग होता है कि तुम्हें ऐसा लगे कि कोई बड़ी गम्भीर बात की जा रही है, बड़ी गहरी बात की जा रही । और कुछ भी नहीं कहा जा रहा । गहरी बात सदा सरल होती है । कीमती बात सदा सहज होती है और सदा लोकभाषा में होती है। जो लोकभाषा होती है, उसी में कही जाती है।

जी संध्या गाये, पढ़ि उरझाये...।

और पढ़-पढ़कर लोगों को उलझाते हैं, सुलझाते नहीं, क्योंकि उलझाने से ही धन्धा चल सकता है। लोग उलझें तो पूछने आते हैं।

अब मेरे पास लोग आ जाते हैं । धीरे-धीरे उनकी संख्या कम होती चली गई है, क्योंकि उस तरह की बातों में मेरा कोई रस नहीं है। मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे इस तरह के प्रश्न लाते हैं, कि लगें कि बड़े गहरे आध्यात्मिक प्रश्न हैं। लेकिन वे आध्यात्मिक प्रश्न नहीं होते, सिर्फ पण्डितों का उलझाव होता । कोई जैन आ जाता है, वह कहता है : निगोद के सम्बन्ध में कुछ समझाइये । निगोद...! सुना है नाम कभी ? जैनों के अतिरिक्त कोई नहीं जानता कि निगोद क्या है। मैं उससे पूछता हूं, तुझे निगोद का प्रयोजन क्या है ? तू निगोद से चाहता क्या है ? यह तेरा प्रश्न हो नहीं सकता । यह किताबी है, क्योंकि यह और कोई नहीं पूछता;

जिसने तेरी किताब नहीं पढ़ी, वह यह नहीं पूछता कि निगोद क्या है। सारी दुनिया में इतने करोड़-करोड़ लोग हैं, कोई नहीं पूछता कि निगोद क्या है। मुसलमान आता, ईसाई आता, पारसी आता, यहूदी आता, हिन्दू आता, कोई नहीं पूछता निगोद क्या है। तो निगोद कोई जीवन का प्रश्न नहीं हो सकता। हिन्दू भी पूछता है कि क्रोध क्या है, और मुसलमान भी पूछता है कि क्रोध क्या है, क्रोध से कैसे मुक्त हो जाऊं ? फिर चाहे हिन्दुस्तान में रहता हो कोई, चाहे पाकिस्तान में, कुछ फर्क नहीं पड़ता।

कल ही एक मित्र पाकिस्तान से मुझसे शाम को पूछ रहे थे। फिरोज उनका नाम है। बड़े प्यार से भरे पाकिस्तान से आये। पूछ रहे थे कि बड़ा क्रोधी हूं, मेरे क्रोध के लिए कोई उपाय बतायें। यह प्रश्न वास्तविक प्रश्न है। क्योंकि इसका किसी से कोई लेना-देना नहीं। हिंदू भी क्रोधी है, मुसलमान भी क्रोधी, ईसाई भी क्रोधी, जैन भी क्रोधी, बौद्ध भी क्रोधी। निगोद . . निगोद का क्या संबंध ? ये शब्द किताबी है, मगर इन पर लोग बैठे हैं और बड़ा विचार कर रहे हैं। और ऐसे सभी धर्मों में शब्दों का जाल फैला हुआ है। इन शब्दों के जाल से बाहर आना है।

सुन्दरदास कहते हैं--जी संध्या गाये, पढ़ि उरझाये, रानाराये, ठगि खाये। और छोटे-मोटों को तो ठगा तो ठीक है--राना और राय--बड़े-बड़े सम्राटों को भी ठगा। बड़े सम्राट का मतलब बड़े लुटेरे। तो उनको भी पण्डित ने लूटा है। तो कितने ही बड़े लुटेरे रहे हों ... और क्या हैं ? सम्राट का मतलब क्या होता है ? जिसने खूब लूट-खसूट कर ली। छोटे डाकू जेलों में होते हैं, बड़े डाकू इतिहास की किताबों में। बड़े डाकुओं के नाम---नेपोलियन, सिकन्दर, नादिरशाह--ये बड़े डाकुओं के नाम हैं, बड़े हत्यारों के नाम हैं। छोटे-मोटे हत्यारे जेल में सड़ते रहते हैं, बड़े हत्यारे महापुरुष हो जाते हैं। बड़े डाकू महापुरुष हो जाते हैं। लेकिन पण्डित की कुशलता ऐसी है कि वह चाहे सिकन्दर हो कि चाहे नेपोलियन हो, कि चाहे नादिरशाह हो कि चाहे चंगीजखान हो, कोई भी हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। चाहे हिटलर हो, पंडित से नहीं बच सकता।

मैंने एक कहानी सुनी है, कहानी ही होगी, मगर अर्थपूर्ण है। एक यहूदी ज्योतिषी बड़ा प्रसिद्ध था जर्मनी में। यहूदी तो मारे जा रहे थे, लेकिन उस ज्योतिषी को लोग मारने से डरते थे, क्योंकि उसको बड़ी भविष्य की दृष्टि थी। और वह आदमी खतरनाक था। और उसके अभिशाप लग जाते थे। कई बार हिटलर तक खबर आयी कि इस आदमी का क्या करना है ? हिटलर ने कहा, उसे मेरे पास बुलाओ। ज्योतिषी को बुलाया गया। हिटलर ने उससे पूछा कि मैंने सुना है तुम भविष्यवाणी करना जानते हो। तुम मुझे यह बताओ, मेरी मृत्यु कब

होगी ?

उसने हिटलर की तरफ देखा, हाथ हाथ में लिया, रेखाएं पढ़ीं, कुछ गणित बिठाया और उसने कहा कि दो बातें कहना चाहता हूं : एक--मेरे मरने के तीन दिन बाद तुम मरोगे। (... अब यह भी झंझट की बात हो गई।) और जिस दिन भी तुम मरोगे, वह दिन भी मैं बता सकता हूं, अगर तुम चाहते हो तो।

हिटलर थोड़ा घबड़ाया, क्योंकि पहली जो बात उसने कही कि मेरे मरने के तीन बाद, इसमें उसने अपनी रक्षा तो कर ही ली। कहते हैं, हिटलर ने उसके लिए फिर एक अलग स्थान बनवा दिया, और डॉक्टर भी लगा दिये कि जितनी देर यह बचे उतना अच्छा। इसको मारा तो जा ही नहीं सकता। इसको मारा तो तीन दिन बाद तुम गये। अब इतनी झंझट कौन ले ! और हिटलर ने कहा कि ठीक है, दिन भी बता दो। तो उसने कहा कि तुम यहूदियों के पवित्र धार्मिक दिन पर मरोगे। हिटलर ने पूछा, कौन-सा पवित्र धार्मिक दिन, क्योंकि अनेक दिन पवित्र हैं, और अनेक धार्मिक हैं। उसने कहा, अब यह मत पूछो। तुम जिस दिन भी मरोगे, वह यहूदियों के लिए पवित्र धार्मिक दिन होगा।

पण्डित की कुशलता ज्यादा है, बड़े-से-बड़े हत्यारे भी उसके सामने झुक जाते हैं।

जी संध्या गाये, पढ़ि उरझाये, रानाराये ठगि, खाये। बड़े-बड़े ठग--राना और राजा--उनको भी पण्डित ठग कर खा गया।

अरु बड़े कहाये, गर्व न जाये, राम न पाये थाघेला।

सुन्दरदास कहते हैं, एक बात मुझे पता लग गयी है दादू के चरणों में बैठकर। जो मैंने राम की झलक देखी है दादू की आंखों में, उससे एक बात पता चल गयी है कि ये सब बड़े-बड़े पण्डित, महापण्डित, कहने भर को बड़े हैं। और अगर तुम्हारे पास थोड़ी-भी कसौटी हो इनको जांचने की, तो वह कसौटी है : इनके अहंकार को पहचान लेना।

अरु बड़े कहाये, गर्व न जाये...। जहां अहंकार है वहां बड़प्पन नहीं। अहंकार क्षुद्र है। अहंकार होता ही क्षुद्र को है। अहंकार का अर्थ ही यह होता है कि तुम अपने भीतर जानते हो कि तुम हीन भाव से भरे हो। अहंकार हीन भाव से बचने का उपाय है।

पश्चिम का बड़ा विचारक, मनोवैज्ञानिक--अल्फ्रेड एडलर--इस सम्बंध में समझने योग्य है। एडलर का कहना है कि जितने लोग तुम अहंकारी पाते हो, अगर गौर से खोजोगे तो उनके भीतर तुम हीनता की ग्रन्थि पाओगे, इन्फीरियरिटि कॉम्प्लेक्स पाओगे। उनको भीतर से पता लगता है कि हम नाकुछ हैं। यह नाकुछ

का कीड़ा काटता है, चुभता है । यह कांटा पीड़ा देता है । इसमें बचने का एक ही उपाय है कि वे अपने चारों तरफ घोषणा करें और सिद्ध करें कि हम बहुत कुछ हैं । धन पाकर सिद्ध करें कि हम बड़े हैं । पद पाकर सिद्ध करें कि हम बड़े हैं । कुछ न हो सके तो ज्ञान पाकर सिद्ध करें कि हम बड़े हैं । यह भी न हो सके तो त्याग करके सिद्ध करें कि हम बड़े हैं । मगर कुछ करके सिद्ध करना होगा कि हम बड़े हैं, क्योंकि भीतर मालूम उन्हें पड़ रहा है कि हम छोटे हैं ।

जिस आदमी को भीतर पता चलता है कि हम परमात्मा के अंग हैं--कौन छोटा, कौन बड़ा ? जिसको पता चलता है कि मैं परमात्मा हूं वह छोटे-बड़े के बाहर हो गया । अब कोई छोटा नहीं है, अब कोई बड़ा नहीं है, और शेष सब भी परमात्मा हैं । जिसने परमात्मा को जाना, उसने यह भी जाना कि मैं परमात्मा हूं । राह के किनारे पड़ा हुआ पत्थर भी उतना ही परमात्मा है । सोया होगा गहरा परमात्मा पत्थर में, वृक्षों में थोड़ा-थोड़ा जागा है, पशुओं में थोड़ा और, आदमियों में थोड़ा और--बुद्धों में पूरा जागा है । मगर ये भेद जागने के हैं । स्वभावतः यह सारा अस्तित्व परमात्मामय है । यहां कौन छोटा, कौन बड़ा ! कैसा गर्व ?

इसलिए ख्याल रखना, वस्तुतः जिसने जाना है, न तो उसमें गर्व होता है और न विनम्रता होती है । वह दूसरी बात भी ख्याल में रख लेना, क्योंकि विनम्रता गर्व का ही संस्कारित रूप है । यह मत सोचना कि विनम्र आदमी अहंकारी नहीं होता । विनम्र आदमी बहुत अहंकारी होता है लेकिन उसका अहंकार पोलिश्ड है । उसके अहंकार पर शिष्टाचार है । उसने अहंकार पर फूल लगा दिये । उसने अहंकार पर इत्र छिड़क दिया है । उसके अहंकार से बदबू नहीं आएगी । अहंकार के घाव में मवाद भरी है, लेकिन ऊपर से उसने इत्र छिड़क दिया है ।

विनम्र आदमी उतना ही अहंकारी होता है, जितना अविनम्र । वस्तुतः जिस आदमी का अहंकार गया वह न विनम्र होता है, न अविनम्र । जिसका अहंकार गया वह तो होता ही नहीं। एक शून्य भाव होता है, सत्ता मात्र होती है ।

अरु बड़े कहाये, गर्व न जाये, राम न पाये थाघेला ।

राम का अभी कुछ पता नहीं चला, इतनी बात पक्की हो गई। क्योंकि राम का पता चल जाये तो फिर कैसा गर्व, फिर कैसी विनम्रता ! वह बात ही गई । वे तो अहंकार के ही दो खेल थे, अहंकार के ही दो रूप थे । एक अहंकार कहता है, मुझसे बड़ा कोई नहीं; दूसरा अहंकार कहता है, मैं तो आपके चरणों की धूल हूं । मगर हूं !और अब जब कोई आदमी आपसे कहता है मैं आपके चरणों की धूल हूं, जरा उसकी आखों में गौर से देखना । वह यह कह रहा है--'देखो मेरी विनम्रता, अब तो स्वीकारो ! अब तो झुको, अब तो नमस्कार करो ! मैं तुम्हारे चरणों की

धूल हूं !' वह तुमसे यह कह रहा है कि तुम इनकार करो । तुम कहो कि नहीं-नहीं, आप और चरणों की धूल !

अगर कोई तुमसे कहे कि मैं आपके चरणों की धूल हूं और तुम कहो कि हमें तो पहले से ही पता था, बिलकुल ठीक कह रहे हो, आप सच ही कह रहे हो, शत प्रतिशत सच है--तो देखना, वह आदमी नाराज हो जायेगा । वह कह नहीं रहा था, उसके कहने का यह मतलब नहीं था कि आप मान ही लो । उसके कहने का यह मतलब था, आप इनकार करो, आप कहो कि नहीं, नहीं, आप और चरणों की धूल ! आप जैसा महापुरुष, चरणों की धूल ! वह इसकी प्रतीक्षा कर रहा था ।

मैंने सुना है, एक फकीर मर रहा था । उसके शिष्य उसके चारों तरफ इकट्ठे थे । एक शिष्य ने कहा कि हमारा गुरु. . .ज्ञानी बहुत देखे, मगर जो पांडित्य, जो अध्ययन, जो मनन की क्षमता हमारे गुरु की थी, किसी की भी नहीं थी । आज पृथ्वी खाली हो जायेगी ज्ञान से ।

दूसरे ने कहा : ज्ञान तो ठीक है, मगर त्याग में भी जितना हमारे गुरु ने छोड़ा, किसने छोड़ा ? राजमहल छोड़ा धन, संपत्ति छोड़ी, परिवार छोड़ा । कहां फूलों में पला आदमी, कांटों में चला ! इसका त्याग अप्रतिम था ।

और तीसरे ने कहा : इसकी करुणा, इसका प्रेम । और ऐसी वे प्रसंसा करते रहे । और जब सब चुप हो गये, जब सारी प्रशंसा खत्म हो गई, तो गुरु ने आंख खोली और उसने कहा : कोई मेरी विनम्रता की तो बात करो । मेरी विनम्रता भूल ही गये ।

अब विनम्रता की जो याद दिला रहा है, कैसे विनम्र होगा ? जिसे विनम्रता का खुद भी अनुभव हो रहा है, वह कैसे विनम्र होगा ?

राम न पाये थाघेला ।

दादू का चेला, भरम पछेला, सुन्दर न्यारा ह्वै खेला ।

सुन्दरदास कहते हैं : लेकिन मैं दादू के चरणों में क्या झुका, दादू का शिष्यत्व मैंने क्या स्वीकार किया, सब हो गया । जो शास्त्रों को पढ़ने से नहीं होता वह हो गया । जो क्रियाकाण्ड करने से नहीं होता वह हो गया । जो षट्कर्मों में नहीं है, वह घटा । न तो पढ़ने से कुछ मिला, न संध्या करने से कुछ मिला, न यज्ञ-हवन करने से कुछ मिला । वह गुरु की आंख में झांककर मिल गया । दादू का चेला.... !

जीवन्त हो कोई, तो ही तुम उसके साथ जुड़ कर जीवन का अनुभव ले सकते हो । शास्त्र तो मुर्दा है, शास्ता को खोजो । जिससे शास्त्र पैदा होते हैं ऐसे किसी व्यक्ति को खोजो । कृष्ण मिल जायें तो छोड़ना मत साथ । मगर भगवत्-गीता सिर पर लिये मत घूमो । नानक मिल जायें तो छाया बन जाना उनकी, मगर गुरु-ग्रंथ

पर सिर मत फोड़ो। कबीर मिल जायें तो डूब जाना उनकी मस्ती में, फिर भूल जाना सारा सब, फिर जो भी दांव पर लगाना पड़े लगा देना । मगर कबीरपंथी बनकर, और अब बैठे हैं कबीर की साखी लिये और कबीर के सबद का का विचार कर रहे हैं, इससे कुछ भी न होगा। सूरज उगता है, तब नमस्कार करो और जब रात आ जायेगी और सूरज चला जायेगा तब सूरज की तस्वीरों को नमस्कार करते रहना, मगर उनमें रोशनी नहीं होती। दीये की तस्वीर से कहीं रोशनी न होती है; जरा टांगकर अपने कमरे में देख लेना। सुन्दर से सुन्दर दीये की तस्वीर ले आना और टांग लेना अपने कमरे में, जब रात अन्धेरा होगा तो तुम्हें पता चल जायेगा कि सुन्दरदास ठीक कहते हैं। जीवन्त दीया चाहिये।

सद्‌गुरु खोजो।

दादू का चेला, भरम पछेला।

और अगर सद्‌गुरु मिल जाये तो भ्रम ऐसे भाग जाता है जैसे रोशनी होने पर अंधेरा भाग जाता है। .... भरम पछेला। भाग ही जाता है, तुम्हें हटाना नहीं पड़ता। अगर हटाना पड़े तो उसका अर्थ इतना ही हुआ कि सद्‌गुरु से मिलना नहीं हुआ है।

जहां अभी परमात्मा जीवित है, जहां परमात्मा अभी उतर रहा है, बह रहा है, जहां झरना सूख नहीं गया है. . .। अक्सर तो लोग उन नदियों के किनारों पर बैठे हैं, जहां जलधार कब की सूख गई है। प्यासे बैठे हैं। और ऐसा भी नहीं था कि कभी वहां जलधार नहीं बहती थी––कभी बहती थी। अब तो रेत ही रेत पड़ी रह गई है। अब यहां बैठे रहो जन्मों-जन्मों तक, करते रहो पूजा इस नदी की, अब यहां नदी है कहां? अब फिर से खोजो, जहां जलधार बहती हो । और मैं तुमसे कहता हूं : बड़ी से बड़ी नदी भी हो और जलधार न बहती हो तो किस काम की? और छोटे-से झरने से भी तृप्ति हो जाती है। छोटा-सा झरना भी आह्लादकारी है।

तो यह भी हो सकता है कि न मिले बुद्ध जैसा गुरु, न हो उतना महा नद, लेकिन कोई छोटा-सा पहाड़ से फूटता हुआ झरना भी पर्याप्त है । प्यास के लिए बड़ी नदी और छोटी नदी से कोई फर्क नहीं पड़ता। और तुम्हें अगर अपना दीया जलाना है तो कोई जंगल में आग लगे तभी दीया जलाओगे? छोटा-सा जलता हुआ दीया हो तो पर्याप्त है। उसी के पास अपने को ले जाओगे तो जल जाओगे।

दादू का चेला, भरम पछेला, सुन्दरा न्यारा ह्वै खेला।

सुन्दरदास कहते हैं : फिर मैं न्यारा ही हो गया। मैं फिर पण्डितों के चक्कर में नहीं पड़ा, शास्त्र और वेद में नहीं उलझा। मैं भिन्न ही हो गया।

सद्‌गुरु के पास एक न्यारापन पैदा होता है, एक भिन्नता पैदा होती है। एक

अद्वितीयता पैदा होती है। . . .सुन्दर न्यारा ह्वै खेला! . . .और फिर संसार सिर्फ एक खेल हो जाता है। जिसके पास बैठकर संसार एक खेल हो जाये, एक अभिनय हो जाये, वही सद्‌गुरु। जिसके पास बैठकर संसार की सारी गम्भीरता विदा हो जाये, जिन्दगी एक नाटक रह जाये । यहां का कुछ भी मूल्यवान नहीं है–– ऐसा हो तो भी ठीक है, वैसा हो तो भी ठीक है। किसी सद्‌गुरु की आंख में एक बार झांक लेना पर्याप्त है, हजारों वर्ष वेद पढ़ने की बजाय।

लबों पे नर्म तबस्सुम रचा के घुल जायें
खुदा करे मेरे आंसू किसी के काम आयें
जो इब्तिदा-ए-सफर में दीये बुझा बैठे
वो बदनसीब किसी का सुराग क्या पायें

सद्‌गुरु की आंख से झलकती हुई एक आंसू की बूंद ज्ञान के सागरों से ज्यादा बड़ी है। सद्‌गुरु के ओठों पर जरा-सी मुस्कुराहट शास्त्रों में आनन्द की कितनी ही चर्चा की गई हो, उससे बड़ी है, जीवन्त है । वही मूल्य है।

तौ ए मत हेरे, सब हित केरे, गहिगहि गेरे बहुतेरे।
तब सतगुरु टेरे, कानन मेरे, जाते फेरे आ घेरे।।
उन सूर सबेरे, उदै किये रे, सबै अंधेरे नाशेला।
दादू का चेला, भरम पछेला, सुन्दर न्यारा ह्वै खेला।।

तौ ए मत हेरे.! तो ए मतवाद में पड़े पागलो, ए व्यर्थ की बकवास में पड़े हुए पागलो। . . .तो ए मत हेरे! . . . कि मैं हिन्दू, कि मैं मुसलमान, कि मैं ईसाई, कि मैं जैन, कि मैं बौद्ध, कि मैं सिक्ख, कि मैं पारसी..,। ए मत हेरे! तो इन मतों के चक्कर में पड़ गये लोगो।.. सब हित केरे...। ये सब दरवाजे मैं टटोल आया हूं और मैंने यहां परमात्मा नहीं पाया। इन सब द्वारों पर मैंने दस्तक दी है और भीतर अंधेरा पाया है।. . . गहिगहि गेरे बहुतेरे। और बहुत-से लोगों ने इन्हीं को गह लिया है और भटक गये हैं। तब सतगुरु टेरे. . . । सुन्दरदास कहते हैं : मेरा सौभाग्य है कि मैंने सद्‌गुरु की टेर सुन ली।

सद्‌गुरु तो सदा ही टेर रहे हैं। ऐसी कोई सदी नहीं, ऐसा कोई समय नहीं, जब कुछ सद्‌गुरु पृथ्वी पर न होते हों। निश्चित होते हैं। होना ही चाहिये। परमात्मा ने इस पृथ्वी को भुला नहीं दिया है। इसलिए होते ही रहते हैं। उसके संदेशवाहक सदा मौजूद होते हैं। उसके पैगम्बर कभी समाप्त नहीं हो जाते। यह सिलसिला जारी रहा है, यह सिलसिला जारी रहेगा। इस सिलसिले को खतम करने की बहुत कोशिश की जाती है, क्योंकि यह सिलसिला पण्डितों के खिलाफ पड़ता है।

जैसे जैन कहते हैं, चौबीस तीर्थंकर हो गये, अब बस। क्यों? परमात्मा चौबीस में चुक गया? बड़ी जल्दी चुक गया! बड़ा छोटा परमात्मा रहा होगा! बस चौबीस में चुक गया! लेकिन कारण है। क्योंकि अगर दरवाजा खुला रखो और तीर्थंकर आते रहें तो पंडित को बड़ी अड़चन होती है। वह साफ-सुथरा नहीं हो पाता कि कौन-कौन से सिद्धान्त को पकड़ कर बैठ जाये, कौन से सिद्धांत सम-झायें। क्योंकि तीर्थंकर जब भी आयेगा, नई भाषा लायेगा, क्योंकि लोग बदल चुके होंगे, नयी शैली लायेगा, क्योंकि जमाना बदल चुका होगा।

अब मैं वहीं नहीं कह सकता तुमसे, जो महावीर ने कहा था, क्योंकि पच्चीस सौ साल बीत गये। महावीर अगर फिर आएं तो वही नहीं कह सकते जो उन्होंने पच्चीस सौ साल पहले कहा था। महावीर कोई ग्रामाफोन के रिकॉर्ड थोड़ी हैं। आखिर इतना तो दिखाई पड़ेगा कि पच्चीस सौ साल बीत गये, आदमी कुछ से कुछ हो गया। हवा बदल गई। ढंग बदल गए। जीवन के आधार बदल गये। ये और ही तरह के लोग हैं, पच्चीस सौ साल में गंगा का कितना पानी बह गया!

तुम क्या सोचते हो, जीसस आयेंगे तो उसी तरह बोलेंगे? वही बोलेंगे? तो तो कौन सुनेगा? लोग हंसेंगे। आऊट ऑफ डेट मालूम पड़ेंगे।

तुम सोचते हो, कृष्ण आयेंगे तो फिर खड़े हो जायेंगे, एम. जी रोड पर बांसुरी बजायेंगे? पूछेंगे कि कहां हैं बाल-गोपाल? अब बाल-गोपाल हैं ही कहां! ...और गोपियें? अब न गोपियां मिलेंगी। और कहीं अगर खोज-खाज लीं दो-चार गोपियां तो पुलिस के चक्कर में पड़ेंगे।

नहीं, अब कृष्ण को आज का ढंग लेना होगा, आज का रंग लेना होगा। वे दिन और थे। वह दुनिया और थी। अब किसकी मटकी फोड़ोगे? मटकी है कहां? किस का दूध चुराओगे, दूध है कहां! अब मक्खन-मिश्री नहीं चलेगी। न मक्खन है, न मिश्री है। अब दुनिया बदली है——और तरह की दुनिया है। सदा बदलती रही। लेकिन, हिन्दू पंडित को अड़चन होगी। वह कहता है, दरवाजा बंद करो, मामला साफ हो जाये। एक के साथ साफ-सुथरा रहता है। महावीर के साथ जैनों ने बंद कर दिया दरवाजा, अब कोई तीर्थंकर नहीं होगा।

मुसलमान कहते हैं, बस आखिरी पैगम्बर आ गया। आखिरी? तो परमात्मा ने संबंध तोड़ लिया आदमी से अब? उसके सन्देशे नहीं आते? परमात्मा ने पीठ मोड़ ली आदमी से अब? बस आखिरी बार जब उसने सुधि ली थी तो मुहम्मद को भेज दिया था? या मुहम्मद के द्वारा अपनी खबर भेज दी थी, अब सुध नहीं लेता? अब पाती नहीं लिखता आदमी के नाम? यह तो बड़ी उदासी की बात हो गयी। यह तो बड़ी दयनीय दशा हो गई।

और ईसाई कहते हैं कि जीसस एकमात्र बेटे हैं। परमात्मा भी खूब है! मालूम होता है पहले से ही सन्तति-नियमन में भरोसा करता है। एक ही बेटा! मगर एक ही रखना पड़ता है, क्योंकि अगर दूसरा भी बेटा हो और वह आ जाये और वह पहले बेटे ने जो बातें कही हैं उनको अस्त-व्यस्त कर दे, करना ही पड़ेगा, तो पंडित का क्या होगा? पण्डित साफ-सुथरापन चाहता है, उलझन में नहीं पड़ना चाहता। सिद्धांत स्पष्ट हों तो वह उनका मालिक बना रहता है। वह सिद्धांतों में बदलाहट नहीं चाहता। वह जड़ सिद्धांत चाहता है। इसलिए सारे लोग द्वार बंद कर देते हैं।

मैं तुमसे कहना चाहता हूं: उसके संदेश-वाहक आते रहे, आते रहेंगे। जब भी तुम खोजना चाहो, कहीं-न-कहीं से तुम्हें कोई हाथ मिल जायेगा जो तुम्हें उसकी तरफ ले चले। खोजनेवाले चाहिये, उसके सन्देशवाहक आते रहे, आते रहेंगे।

तो ए मत हेरे, सब हित केरे, गहिगहि गेरे, बहुतेरे।

तब सत्गुरु टेरे, कानन मेरे, जाते फेरे, आ घेरे।

तो मेरे कान जो व्यर्थ की बातों में उलझे थे, मेरे कान जो न मालूम कहां-कहां जा रहे थे उनको लौटा ही लिया। मुझे पुकार ही लिया। पुकार तो आती है, लेकिन सुननेवाले चाहिये। क्योंकि पुकार केवल वे ही सुन सकते हैं जिनमें हिम्मत है, जो मर्द हैं, जिनमें थोड़ा साहस है। बहुत कुछ दांव पर लगाना पड़ता है। परमात्मा मुफ्त में तो नहीं मिलता। सारा जीवन चुकाना पड़ता है, मूल्य चुकाना पड़ता है।

तब सत्गुरु टेरे, कानन मेरे, जाते फेरे, आ घेरे।

जा रहा था दुनिया में भटकता, जा रहा था शास्त्रों में भटकता, जा रहा था सिद्धान्तों में उलझता——कि लौटा लिया मुझे।

उन सूर सबेरे, उदै किये रे... जैसे सूरज उग आये, ऐसा सतगुरु उगा। और जैसे सूरज आये और रात मिट जाये और अन्धेरा चला जाये, ऐसे मेरे भीतर सुबह हो गई।

उन सूर सबेरे, उदै किये रे, सबै अंधेरा नाशेला।

फिर मुझे कुछ करना नहीं पड़ा। मैंने अंधेरे को अपने-आप नष्ट होते देखा। यह शिष्य का सौभाग्य है, यह शिष्य की गरिमा है। यह उसका गौरव है। यह उसका अपूर्व अनुभव है कि उसे मिटाना नहीं पड़ता कुछ।

तुम ख्याल रखना, अगर तुम्हें अंधेरे को मिटाना पड़ रहा है तो उसका एक ही मतलब है कि तुम्हारा अभी सद्गुरु से मिलन नहीं हुआ। और याद रखना, यह भी कि अंधेरा मिटाये से मिटता नहीं। कौन मिटा पाया अन्धेरे को मिटाने से?

कोशिश करके देखना, आज रात जब अन्धेरा आये, अपने कमरे में भिड़ जाना अंधेरे को मिटाने में। जितने योगासन इत्यादि आते हों करना। दण्ड-बैठक लगाना, शोर-गुल मचाना, चिल्लाना, धक्के मारना, कोई छुरा-तलवार इत्यादि घर में हो, चलाना। और तुम पाओगे थक कर गिर पड़े हो, अंधेरा अपनी जगह है।

अंधेरे को कोई हटा सकता है? अंधेरा हटाया नहीं जा सकता। प्रकाश लाया जा सकता है। प्रकाश के आते ही अन्धेरा चला जाता है। प्रकाश के आने पर फिर अन्धेरा यह भी नहीं कहता कि मैं अभी नहीं जा सकता, कि अभी मैं जरा बीमार हूं, कि अभी मैं जरा अस्वस्थ हूं, कि अभी मुझे आराम करना है, मैं अभी-अभी तो आया था, अभी-अभी कैसे चला जाऊं? प्रकाश के आने पर अन्धेरा यह भी नहीं कह सकता कि मैं सदियों से इस घर में रह रहा हूं, मैं इसका मालिक हूं। आज अचानक आप आ गये मेहमान की तरह और मालिक बनना चाहते हैं? ऐसे ही नहीं छोड़ूंगा।

नहीं, अंधेरा कुछ भी नहीं कर सकता, प्रकाश आया कि गया। सच तो यह है, यह कहना कि गया, ठीक नहीं है। अंधेरा था ही नहीं। होता तो थोड़ी न बहुत झंझट होती। धक्का-मुक्की करता। होता तो थोड़ी-बहुत अड़चन डालता। होता तो छिपाने की कोशिश करता। होता तो शोरगुल मचाता, अदालत में जाता, मुकदमे चलाता—कुछ न कुछ करता। होता तो कम से कम रोता, गिड़गिड़ाता कि यह क्या हो रहा है, मेरा घर क्यों मुझसे छीना जा रहा है?

तुमने पुरानी कहानी सुनी कि एक बार अंधेरे न जाकर परमात्मा को कहा कि आपका सूरज मुझे बहुत परेशान कर रहा है। मैंने इसका कुछ कभी बिगाड़ा नहीं। इसके रास्ते में कभी आया नहीं। मगर मैं जहां जाता हूं वहीं मेरा पीछा। मुझे चैन ही नहीं है। थका-मांदा रात को सोता हूं, नींद पूरी भी नहीं हो पाती, विश्राम भी नहीं हो पाता, कि सूरज आ जाता है। यह अन्याय है। और मैंने सुना है कि देर है, अन्धेर नहीं। मगर देर की भी सीमा होती है। अरबों-खरबों वर्ष हो गये, मुझे सताया जाता है। मैं सोचता रहा—देर है, पर अन्धेर नहीं; मगर अब अन्धेर हुआ जा रहा है। देर इतनी हो गई कि यही तो अन्धेर है। अब कुछ करें।

और परमात्मा ने सूरज को बुलाया और पूछा कि तू क्यों मेरे अन्धेरे के पीछे पड़ा है? इसने तेरा क्या बिगाड़ा है? पता है, सूरज ने क्या कहा? सूरज ने कहा, कौन अन्धेरा, कैसा अन्धेरा? मेरा कभी मिलना नहीं हुआ। आप उसे मेरे सामने बुला लें। तो मैं पहचान लूं, कौन है यह अन्धेरा, फिर उसे मैं कभी नहीं सताऊंगा।

इस बात को हुए कई करोड़ों वर्ष बीत गये, यह मामला अभी परमात्मा की फाइल में ही पड़ा है। पह फाइल में ही पड़ा रहेगा। यह मामला अभी परमात्मा की फाइल में पड़ा है। यह फाइल में ही पड़ा रहेगा। सरकारी है। यह फाइल से निकल नहीं सकता। न निकलने के कारण हैं। क्योंकि परमात्मा दोनों को एक साथ मौजूद नहीं कर सकता। कहते हैं, परमात्मा सर्वशक्तिमान है। नहीं है, इससे साफ... साफ जाहिर होता है नहीं है। सूरज को अन्धेरे को साथ-साथ खड़ा नहीं कर सकता। कैसे खड़ा करेगा? सूरज होगा तो अंधेरा नहीं होगा, अन्धेरा होगा तो सूरज को नहीं होना चाहिये। दोनों साथ खड़े नहीं हो सकेंगे। अन्धेरा है ही नहीं।

फिर अन्धेरा क्या है? अन्धेरा केवल प्रकाश का अभाव है, अनुपस्थिति है। अन्धेरा किसी चीज की उपस्थिति का नाम नहीं है। अन्धेरे की कोई पोजिटिविटी नहीं है। अन्धेरा केवल प्रकाश के न होने का दूसरा नाम है। अन्धेरा नाममात्र है; उसका कोई अस्तित्व नहीं है। नकार है। इसलिए अन्धेरे को कोई मिटा नहीं सकता। अन्धेरे के साथ कुछ भी करना हो तो सीधा नहीं किया जा सकता। अन्धेरे के साथ कुछ भी करना हो, तो प्रकाश के साथ कुछ करना पड़ता है। इस गणित को खूब समझ लेना। यह जीवन का महत्त्वपूर्ण गणित है। अगर अन्धेरा मिटाना हो, प्रकाश लाओ। अगर अन्धेरा लाना हो तो प्रकाश हटाओ। करना पड़ता है कुछ प्रकाश के साथ। अन्धेरे के साथ सीधा करने का कोई उपाय नहीं है। नहीं तो लोग पड़ोसियों के घर में अन्धेरा डाल आयें। अपना अन्धेरा निकाल कर पड़ोसी के घर में फेंक दें। अन्धेरे के साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता।

इसका क्या अर्थ होगा आध्यात्मिक जगत में? इसका अर्थ होगा: रोशनी के पास आओ, रोशनी जलाओ, अन्धेरा मिट जाता है। और अधिक लोग इसी भूल में पड़े हैं, अन्धेरा मिटाने में लगे हैं। वे कहते हैं: पहले हम क्रोध को मिटायेंगे, लोभ को मिटायेंगे, माया को मिटायेंगे, काम को मिटायेंगे, यह मिटायेंगे वह मिटायेंगे...। ये सब अन्धेरे हैं। ध्यान का दीया जलाओ और प्रेम का दीया जलाओ और प्रीति को जलने दो भीतर। परमात्मा को पुकारो और उसके आते ही सब मिट जाता है।

यह वचन महत्त्वपूर्ण है—दादू का चेला, भरम पछेला, सुन्दरा न्यारा ह्वै खेला।

उन सूर सबेरे, उदै किये रे, सबै अन्धेरे नाशेला।

सद्‌गुरु से आंख जुड़ गई, गांठ बंध गई, फेरा पड़ गया, बस सब हो गया। सूरज उग आया, रात समाप्त हो गई। बिना कुछ किये समाप्त हो गई। ऐसा चमत्कार जहां घट जाये, वहीं सद्‌गुरु है। यही असली चमत्कार है। हाथ से राख निकाल देना कोई चमत्कार नहीं है, मदारीगीरी है। स्विस घड़ियां हाथ से निकाल देना मदारीगीरी है, चमत्कार नहीं है। चमत्कार तो सिर्फ एक है कि जिससे जुड़ कर अन्धेरा मिट जाये; जिससे जुड़ते ही अन्धेरा मिट जाये; जिससे जुड़ते ही जीवन की चिन्ता तिरोहित हो जाये; जिससे जुड़ते ही जीवन एक नये रंग, एक नये

ढंग, एक नये नृत्य में तल्लीन हो जाये।

> कहीं देखी है शायद तेरी सूरत इससे पहले भी
> कि गुजरी है मेरे दिल पे यह हालत इससे पहले भी
> न जाने कितने जल्वे पेश-रौ थे तेरे जल्वों
> तुझी से बारहा की है मुहब्बत इससे पहले भी

जब सद्गुरु से मिलना हो जाता है तब पता चलता है कि इसी आदमी की तलाश थी। इसी के प्रेम में हम भटक रहे थे, खोज रहे थे। न मालूम कितनी यात्रा की है! तुझी से बारहा की है मुहब्बत इससे पहले भी। और जब इस सद्गुरु के द्वारा परमात्मा का अनुभव होगा, तब पता चलेगा, कि सद्गुरु के बहाने भी हमने परमात्मा से ही मुहब्बत की है। जिसको परमात्मा से प्रेम है, वह आज नहीं कल किसी सद्गुरु की शरण हो जायेगा, क्योंकि उस तक जाने का और कोई सेतु नहीं। गुरु ही गुरुद्वारा है।

आदि तुम ही हुते, अवर नहिं कोई जी।

और जब रोशनी हो जाती है, जब आंखें खुलती हैं, जब भीतर का फूल खिलता है, तो क्या अनुभव होता है?--आदि तुम ही हुते! सदा से तुम ही हो। सदा से परमात्मा ही है।... अवर नहिं कोई जी। दूसरा कोई है नहीं, कोई शैतान नहीं है यहां। कोई संसार नहीं है यहां। कोई मैं-तू का झगड़ा नहीं है यहां।

आदि तुम ही हुते, अवर नहिं कोई जी।
अकह अति अगह अति बर्न नहिं होइ जी।

और तब पता चलता है कि कहा जा सके, ऐसा यह अनुभव नहीं--अकह। अति अगह! गहा जा सके, ऐसा भी यह अनुभव नहीं। न तो कहा जा सकता है, न समझा जा सकता है, न समझाया जा सकता है।... । अति बर्न नहीं होइ जी। कुछ ऐसी बात है कि वर्णन नहीं होता।

> मिली जब उन से नजर बस रहा था एक जहां
> हटी निगाह तो चारों तरफ ये वीराने
> वे तक रहे थे हमीं पी गये आंसू
> वे सुन रहे थे हमी कह सके न अफसाने

वाणी खो जाती है। परमात्मा से कहने को एक शब्द भी नहीं मिलता। आंखें खुली रह जाती हैं। प्राण स्तब्ध। धड़कन बन्द। श्वास ठहर जाती है।

> की दमे-नजअ उसने पुरसिशे हाल
> जब पै जुम्बिश हुई, बता न सके

कितनी सजाता है भक्त भावनायें--यह कह देंगे, वह कह देंगे! जैसे सभी

प्रेमी सजाते हैं--मिलेगी प्रेयसी, मिलेगा प्रियतम--यह कह देंगे, वह कह देंगे। जब मिलन होता है, वाणी ठगी रह जाती है, रुकी रह जाती है। क्योंकि जो कहना है, शब्द से बड़ा है। न तो परमात्मा से कुछ निवेदन कर पाता है भक्त, और जब परमात्मा से उतरता है नीचे, लौटता है संसार में, देखता है चारों तरफ लोगों को, तो और मुश्किल होती है--अब क्या कहे? कैसे कहे?

अकह अति अगह! कह नहीं पाता। कहने की कोशिश करता है तो लड़खड़ा जाता है। बड़े-से-बड़े सन्तों के वचन, बड़े से बड़े बुद्धों के वचन भी ऐसे ही हैं जैसे छोटे बच्चे तुतलाते हैं। बड़े प्यारे हैं! छोटे बच्चों का तुतलाना भी बड़ा प्यारा होता है। मगर है तुतलाना ही। बड़े-से-बड़े कुशल--बुद्ध, कृष्ण, महावीर--ऐसे व्यक्तियों ने भी जो कहा है वह भी तुतलाना ही है--अगर तुम ख्याल रखो उसका, तुलना करो उसकी, जो उन्होंने जाना है।

बुद्ध एक जंगल से गुजर रहे हैं। आनन्द ने उससे पूछा: भन्ते! भगवान! एक बात पूछूं? कई दिन से पूछना चाहता हूं, संकोच से रह जाता हूं। क्या आपने सब जो जाना है, हमें समझा दिया है?

पतझड़ के दिन थे, करोड़ों सूखे पत्ते जंगलों में पड़े थे, उड़ रहे थे हवा में, नाच रहे थे हवा में, सूखे पत्तों का गीत चल रहा था चारों तरफ। बुद्ध ने झुक कर कुछ सूखे पत्ते अपने हाथ में उठा लिये और आनन्द से कहा: आनन्द, इन पत्तों को देखते हो?

आनन्द ने कहा: मैं कुछ समझा नहीं! मेरा प्रश्न और इन पत्तों का क्या लेना-देना?

बुद्ध ने कहा: इसलिए कह रहा हूं...मेरे हाथ में देखते हो, ये पत्ते कितने हैं? और पत्ते देखते हो इस जंगल में, सूखे पत्ते, ये कितने हैं? जितने ये सूखे पत्ते हैं, ऐसा कुछ मेरा जानना है। और जो मैंने तुमसे कहा है, ये मेरे हाथ में जितने पत्ते हैं उतना है। थोड़ा-सा कहा है, थोड़ा-सा कह पाया हूं, सब अधूरा-अधूरा है। और ध्यान रखना यह भी कि मैं सूखे पत्ते हाथ में उठाया हूं, क्योंकि जो मैंने जाना है, वह हरा है। और जब तुमसे कहता हूं, सूख जाता है। हरे पत्ते भी उठा सकता था, हरे नहीं उठाये। हरे पत्ते भी लगे हैं वृक्षों में, हरे नहीं उठाये, क्योंकि जो मैं जानता हूं वह तो हरा है, मगर जब कहता हूं तो सूख जाता है। कहते ही सूख जाता है। तुम्हारे पास तक पहुंचते-पहुंचते सूखा पत्ता होता है; शब्द में समाता नहीं।

अकह अति अगह...। और किसी तरह थोड़ा-बहुत पहुंचा दो शब्द में, किसी तरह चेष्टा करके, तो जो सुनता है उसके लिए गहना मुश्किल हो जाता है। वह ग्रहण नहीं कर पाता। कहो कुछ, समझ लेता है कुछ। फिर एक दिन आनन्द ने

बुद्ध से कहा : हमें तो आपको सुनते-सुनते काफी समय हो गया, अब तो हम समझ लेते होंगे जो आप कहते हैं।

बुद्ध ने कहा : आज रात तेरा उत्तर दूंगा।

रात्रि की सभा पूरी हो गई, आनन्द और बुद्ध अकेले रह गये। आनन्द बुद्ध के पैर दबाने लगा, जैसे रोज दबाता था। और उसने कहा, अब मेरे प्रश्न का उत्तर हो जाये। बुद्ध ने कहा : आज तूने ख्याल किया ? जब रात सभा पूरी हुई, और मैंने भिक्षुओं को कहा कि अब सब लोग रात्रि का अन्तिम कार्य करें और फिर सो जायें। तूने सुना था ?

तो आनन्द ने कहा : यह तो आप रोज ही कहते हैं। हमें पता ही है कि रात्रि का अन्तिम कार्य यही है कि सब अब ध्यान में लगें, ध्यान में डूबें और फिर ध्यान में डूबे-डूबे ही सो जायें।

तो बुद्ध ने कहा : वह तो ठीक, आज एक चोर भी आया था सभा में और एक वेश्या भी आयी थी। मैंने जब कहा अब रात देर हो गई, अब तुम अन्तिम कार्य कर लो और फिर सो जाओ, तो वेश्या एकदम चौंकी, उसने सोचा कि ठीक, रात काफी हो गई, अभी मेरे व्यवसाय का समय भी आ गया, मैं कब तक यह धर्म-चर्चा सुनती रहूंगी, जाऊं, अपना धंधा करूं। चोर भी चौंका, उसने कहा कि ठीक कहा, बुद्ध ने भी खूब याद दिलाया ! मैं तो भूल ही गया था। ऐसी-ऐसी प्यारी-प्यारी बातें कि मैं भूल ही गया था। मगर बुद्ध भी अजब हैं, बुद्ध भी गजब हैं, मेरे चोर का भी ख्याल रखा कि अब भाई, रात हो गई, अब ज्यादा देर हुई जा रही है, अब तुम अपना काम करो।

चोर गया, चोरी की, वेश्या ने अपनी दुकान खोल ली, भिक्षु अपना ध्यान करने लगे।

बुद्ध ने कहा : तुम जो समझते हो, तुम्हारे अनुसार समझते हो। मैं जो कहता हूं, मेरे अनुसार कहता हूं; तुम जो समझते हो, तुम्हारे अनुसार समझते हो। तुम्हारे मेरे बीच बड़ा फासला हो जाता है। मैं जो कहता हूं, उसे तुम वैसा ही तो तब समझोगे जब तुम मेरे जैसे ही हो जाओगे। बुद्ध हुए बिना बुद्ध को समझना संभव नहीं, कृष्ण हुए बिना कृष्ण को समझना संभव नहीं। उस चैतन्य की अवस्था में ही उस चैतन्य की बातें और उनके रहस्य खुलते हैं।

अकह अति अगह अति बर्न नहिं होइ जी
रूप नहीं रेख नहिं, श्वेत नहीं श्याम जी।
न तो उसका कोई रूप है, न कोई रेखा है। न सफेद है वह और न काला है।
तुम सदा एकरस, राम जी, राम जी।

लेकिन फिर भी उसका रस एक है, स्वाद एक है। सदियों-सदियों में जिन्होंने उसे जाना है, अनन्त काल में जिन्होंने उसे जाना है, उन्होंने उसका एक ही स्वाद पाया है; यद्यपि कोई रूप नहीं, रंग नहीं, रेखा नहीं। उसका चित्र नहीं बन सकता, उसकी मूर्ति नहीं बन सकती। सब मूर्तियां झूठी हैं, क्योंकि वह निराकार है। सब रंग झूठे हैं, क्योंकि वह निराकार है, रंगहीन है। उसका कोई वर्णन नहीं। लेकिन फिर भी उसका रस एक है। चाहे मीरा को मिले और चाहे महावीर को और चाहे महम्मद को, उसका रस एक है। और जब रस उसका बरसता है तो उसका स्वाद एक है, तृप्ति एक है।

तुम सदा एकरस, राम जी, राम जी !
प्रथम हो आप तैं मूल माया करी।

जब कोई जान लेता है तब उसे अनुभव में आता है कि संसार परमात्मा के विपरीत नहीं है। ये अज्ञानियों के वचन हैं। जिन्होंने तुमसे कहा है संसार परमात्मा के विपरीत है, जानना उन्होंने अभी कुछ जाना नहीं। परमात्मा का विस्तार है, विपरीत नहीं।

प्रथम ही आप तैं मूल माया करी।
आपने ही सब जन्माया, बनाया खेल रचा।
बहुरि वह कुर्बि करि त्रिगुन ह्वै बिस्तरी।
और उसी को विस्तीर्ण से विस्तीर्ण करते चले गये।
पंच हूं तत्त्व तैं रूप अरु नाम जी।
पांच तत्त्व बनाये, रूप बनाये, रंग बनाये।
तुम सदा एकरस, राम जी, राम जी।

लेकिन फिर भी सबके बीच में खड़े तुम एक ही रस हो। यह सब रास चल रहा है। तुम्हारे चारों तरफ माया का बड़ा विस्तार है। खूब रंग हैं, खूब रूप हैं और फिर भी तुम अरूप हो और अरंग हो। तुम्हारें चारों तरफ राग की बड़ी लहरें उठ रही हैं, फिर भी तुम वीतराग हो।

केन्द्र पर सब वीतरागता है और परिधि पर बड़ा राग-रंग है। विपरीतता नहीं है। दोनों एक-दूसरे के परिपूरक हैं। संसार के बिना परमात्मा अधूरा है। परमात्मा के बिना संसार अधूरा है। संसार के बिना परमात्मा केन्द्र है— बिना परिधि का। सागर है बिना लहरों का—मुर्दा-मुर्दा। बिना परमात्मा के संसार विक्षिप्तता है —लहरें ही लहरें, तरंगें ही तरंगें, जिन में कोई संगति नहीं। परमात्माके बिना संसार अर्थहीनता है। संसार के बिना परमात्मा एक शून्य सन्नाटा है। समझ लेना ठीक से।

संसार के बिना परमात्मा ऐसी है वीणा, जिसके अभी तार छेड़े नहीं गये, जिसमें से स्वर नहीं उठे। तुमने देखा, वीणा रखी हो, बिना छेड़ी गई, उदास होती है, मुर्दा मालूम होती है। जीवन्त तो तभी होती है जब तार छेड़े जाते हैं।

परमात्मा का संगीत है संसार। लेकिन अगर परमात्मा के बिना संसार ही हो सिर्फ तो संगीत नहीं है फिर, क्योंकि संगीत के लिए कोई जोड़नेवाला तत्त्व चाहिये जो सबको जोड़े रखे। संगीतज्ञ चाहिये जो सारे स्वरों को जोड़े रखे। नहीं तो सारे स्वर बिखर जाते हैं। शोरगुल मच जायेगा, संगीत नहीं होगा।

इसलिए जो लोग परमात्मा को नहीं मानते उनके सामने यह सवाल उठता है कि जीवन का अर्थ क्या है? जीवन अर्थ है। बात संभव नहीं रह जाती परमात्मा के बिना। जीवन अर्थहीन हो जाता है! इसलिए फ्रेडरिक नीत्से ने जब पश्चिम में घोषणा कर दी कि ईश्वर मर गया, उसके बाद जो बड़े से बड़ा सवाल पश्चिम के दार्शनिक के सामने रहा है वह यही है कि आदमी के जीवन का अर्थ क्या है? परमात्मा मरा तो अर्थ मर गया। फिर सार क्या है? फिर हम यहां क्यों जियें? अल्बर्ट कामू ने घोषणा की है कि एक ही महत्त्वपूर्ण सवाल है, और वह आत्महत्या है और बाकी सब सवाल तो बेकार हैं। हम जियें क्यों? हम आत्महत्या क्यों न कर लें? सार क्या है? पाना क्या है? पहुंचना कहां है? यह गति किसलिए है अगर कोई गन्तव्य नहीं है? यह दौड़-धाप किसलिए अगर कोई मंजिल नहीं है?

परमात्मा न हो तो संसार एक विक्षिप्तता है। ए टेल टोल्ड बाइ एन ईडियट। जैसे कोई मूर्ख कोई कहानी कहे, जिसमें कोई तुक न हो। कहीं से शुरू हो, कुछ भी घटने लगे बीच में, न कोई अन्त हो। तुम जिसमें से कुछ सार न निकाल सको। और अगर परमात्मा अकेला है तो वीणा पड़ी है, जिससे संगीत पैदा नहीं हुआ। अकेला संगीत विसंगीत हो जाता है। अकेली वीणा मुर्दा हो जाती है।

इसलिए परमात्मा और संसार विपरीत नहीं हैं—परिपूरक है, काम्पलिमेंन्टरी हैं। एक-दूसरे के साथ जुड़े हैं। एक-दूसरे के साथ लेन-देन है। एक-दूसरे के बिना अधूरे हैं। परमात्मा अगर पुरुष है, तो संसार प्रकृति है, उसकी माया है। परमात्मा अगर पुरुष है तो संसार उसकी प्रेयसी है। परमात्मा अगर कृष्ण है तो संसार राधा है। परमात्मा अगर बीच में खड़ा है वर्तुल के तो संसार उसके चारों तरफ वर्तुल में नाच रहा है। सब रस बह रहे हैं, मगर परमात्मा एक ही रस है। सब तरंगें उठ रही हैं, उसका सागर शान्त है।

भ्रमत संसार कतहूं नहीं बोर जी। जो तुझे नहीं देख पाते वे भटकते रहते हैं संसार में, उन्हें संसार का कोई अन्त नहीं मिलता। वर्तुल का कोई अन्त नहीं होता। अगर तुम एक वर्तुल खींच दो जमीन पर, एक गोला खींच दो और फिर

उसमें घूमते रहो, घूमते रहो, अन्त पाने के लिए, कभी भी न पाओगे। कोल्हू के बैल की तरह घूमते रहोगे, अन्त तुम्हें कभी भी न मिलेगा। संसार कोल्हू के बैल की तरह घूमते रहना है। लगता है पहुंचे-पहुंचे, अब पहुंचे तब पहुंचे, पहुंचना-वहुचना कभी नहीं होता, यात्रा जारी रहती है। कहीं तुम जा ही नहीं रहे हो। वर्तुल में घूम रहे हो, जाओगे कहां?

भ्रमत संसार कतहुं नहीं बोर जी।

तीनहू लोक में काल कौ सौर जी।।

और कहीं भी जाओ, हर जगह मौत ने कब्जा जमाया हुआ है। परधि पर जो है उसकी अमृत से पहचान नहीं हो सकती। अमृत तो केन्द्र पर है। परिधि पर तो तरंगें हैं। पैदा होंगी, मरेंगी। बनेंगी, मिटेंगी। उठेंगी, गिरेंगी। तीनहू लोक में काल कौ सौर जी। कहीं भी जाओ, नर्क में कि पृथ्वी पर कि स्वर्ग में, सब जगह मृत्यु है, सब जगह मृत्यु का कब्जा है।

मनुषतन यह बड़े भाग्य तै पाम जी।

और यह मनुष्य-देह बड़े भाग्य से पायी है, बड़ी लम्बी यात्रा के बाद पायी है। देहें तो और भी हैं, पशुओं की हैं, पक्षियों की हैं, वृक्षों की है। मगर मनुष्य की देह में एक खूबी है जो कहीं भी नहीं। मनुष्य एक दोराहा है। मनुष्य के साथ स्वतंत्रता जुड़ी है। एक मोर पैदा होता है, मोर की तरह ही मरेगा, कुछ और होनेवाला नहीं है। एब बंधी नियति है, भाग्य है। कुत्ता पैदा हुआ, कुत्ते की की तरह ही मरेगा। तुम किसी कुत्ते से यह नहीं कह सकते कि तुम थोड़े कम कुत्ते हो। मगर किसी आदमी से तुम कह सकते हो कि तुम थोड़े कम आदमी हो। कुत्ते सब बराबर कुत्ते होते हैं। कुत्ता यानी कुत्ता, क्या कम, क्या ज्यादा? मगर आदमी—कोई ज्यादा आदमी होता है, कोई कम आदमी होता है। आदमी सब आदमी की तरह पैदा नहीं होते, सिर्फ संभावना की तरह पैदा होते हैं। फिर अपनी संभावना निर्मित करनी होती है। मनुष्य को अपना निर्माण करना होता है। तो कोई चंगेज खां बन जाता है। कोई गौतम बुद्ध बन जाता है। कोई महा पाप में उतर जाता है, कोई महा पुण्य का अनुभव कर लेता है। कोई विक्षिप्त हो जाता है, कोई विमुक्त हो जाता है। मनुष्य अद्भुत है! ऐसा कहीं भी नहीं है। सारी योनियों में मनुष्य के अतिरिक्त और कहीं होने की स्वतन्त्रता नहीं है। और स्वतन्त्रता ही एकमात्र मूल्यवान चीज है जगत में।

इसलिए ठीक कहते हैं सुन्दरदास— मनुषतन यह बड़े भाग्य तै पाम जी! बड़े भाग्यों से, बड़ी लम्बी यात्राओं, बड़ी आकांक्षाओं के बाद, बड़े इंतजार के बाद—यह देह मिली है। अब इस देह को ऐसे ही नहीं गंवा देना है। और क्या है, जिसे

पा लेने से गंवाना नहीं होगा ? इस देह में अगर मृत्यु को ही जाना तो गंवा दिया। अगर इस देह में अमृत को जान लिया तो पा लिया। इस देह में दोनों हैं। परिधि इसकी, इसका रूप और रंग माया का है। देह माया की बनी है—पंचतत्त्वों की—और इसके भीतर बैठा है विराजमान परमात्मा। ठीक केन्द्र पर कहीं वीतराग। तुम चाहो तो परिधि से बंध जाओ, समझ लो कि मैं देह हूं, तो भटक गये। और तुम चाहो तो जग जाओ और समझ लो कि मैं साक्षी हूं, तो पहुंच गये।

तुम सदा एकरस, राम जी, राम जी। तुम्हारे भीतर एकरस मौजूद है।

तुमने कभी सोचा ? शायद न सोचा हो। कौन-सी ऐसी चीज है जो तुम्हारे भीतर सदा एकरस है ? वही परमात्मा है। तुमने कभी अपने भीतर कोई चीज एकरस देखी ? तुम्हारा प्रेम बदल जाता है; एकरस नहीं है। अभी प्रेम है, अभी घृणा हो सकता है। जिसके लिए तुम मरने को तैयार थे, उसी को मारने को तैयार हो सकते हो। जिस पर करुणा आयी थी, उसी पर क्रोध आ जाता है। करुणा क्रोध में बदल जाती है। क्रोध करुणा में बदल जाता है। ये सब बदलते रहते ह, ये कोई एकरस नहीं हैं। तुम्हारे भीतर कोई चीज है जो एकरस है ? रात सो जाते हो, दिन भूल जाता है। दिन में कौन पत्नी थी, याद भी नहीं आती रात की नींद में। गरीब हो कि अमीर, हिन्दू कि मुसलमान, कुछ पता नहीं चलता। सुबह जागे, रात भूल गई। रात क्या बन गये थे—सम्राट बन गये थे, सोने के महलों में थे, सुन्दर परियां थीं, रानियां थीं—सब गया। फिर वापिस यहीं। दिन में रात बदल जाती है, रात में दिन बदल जाता है।

तुम्हारे पास लेकिन एक चीज है साक्षी, जो कभी नहीं बदलती। वही दिन में देखता है बाजार, वही रात में देखता है सपने—वह देखनेवाला कभी नहीं बदलता। वही देखता है क्रोध उठा, वही देखता है करुणा उठी। वही देखता है प्रेम, वही देखता है घृणा। वही देखता है सुख, वही देखता है दुख। वही देखता है जवानी, वही देखता है बुढ़ापा। तुम्हारे भीतर एक तत्त्व है साक्षी का, द्रष्टा का—तुम्हारे दर्शन की क्षमता, वह एकरस है। बस उस एकरस को पकड़ लो और धीरे-धीरे उसी में रम जाओ और तुम राम जी को पा जाओगे। क्योंकि राम जी का स्वरूप एकरस है। तुम सदा एकरस, राम जी, राम जी।

पूरि दशहूं दिशा सर्ब मैं आप जी।

सब दशों दिशाओं में और सब में तुम्हीं हो।

स्तुतिहि को करि सकै पुन्य नहिं पाप जी।

मैं तुम्हारी स्तुति भी कैसे करूं ? तुम्हारे अतिरिक्त कोई भी नहीं है। कौन स्तुति करे, किसकी करे ? मेरे भीतर भी तुम हो, मेरे बाहर भी तुम हो। न कुछ

पुण्य है यहां, न कुछ पाप है यहां। पाप में भी तुम, पुण्य में भी तुम सब तुम्हारा खेल है।

दास सुन्दर कहे देहु विश्राम जी।

तुम सदा एकरस, राम जी, राम जी ।।

मांगी है जो बात, बड़ी अद्‌भुत मांगी है ! मांगी है बात विश्राम की। कह रहे हैं : और कुछ नहीं मांगता, विश्राम दो। थक गया हूं, बहुत परिधि पर दौड़ते-दौड़ते। कोल्हू का बैल बने-बने बहुत थक गया हूं, अब और कुछ भी नहीं मांगता। मोक्ष नहीं मांगा है—मगर विश्राम ही मोक्ष है। बैकुंठ नहीं मांगा है—विश्राम ही बैकुंठ है। आनन्द नहीं मांगा है। क्योंकि विश्राम के पीछे आनन्द ऐसे ही चला आता है जैसे तुम्हारे पीछे तुम्हारी छाया है।

विश्राम शब्द बड़ा प्यारा है। इसका अर्थ होता है : अब और नहीं दौड़ना है। अब और नहीं दौड़ाओ। दौड़-दौड़ कर देख लिया। दौड़-दौड़ कर कुछ भी न पाया। अब ठहर जाने दो। अब मुझे बैठ जाने दो। इतनी ही प्रार्थना है कि अब मुझे बैठना सिखा दो। यह दौड़ने की आदत वापिस ले लो। अब मैं और तरंग नहीं बनना चाहता। अब और नये-नये रूप नहीं रखना चाहता। अब नये-नये स्वांग नहीं रचना चाहता। अब और नाटकों में पात्र नहीं बनना चाहता। अब मुझे अवकाश दो। अब मुझे विश्राम पर जाने दो। अब मुझे अपने में डुबा लो। अब मुझे अपने से दूर परिधि पर मत भेजो। तुम एकरस हो, मुझे भी एकरस बना लो।

संसार का हमारा अनुभव सिवाय पीड़ाओं के, परेशानियों के, चिन्ताओं के सन्ताप के—और क्या है ?

कितने दीप बुझते हैं, कितने दीप जलते हैं।
अज्मे-जिन्दगी लेकर फिर भी लोग चलते हैं।।
कारवां के चलने से कारवां के रुकने तक।
मन्जिलें नहीं यारो रास्ते बदलते हैं।।
मौज मौज तूफां है, मौज मौज साहिल है।
कितने डूब जाते हैं, कितने बच निकलते हैं।।
बह्रोबर के सीने भी जीस्त के सफीने भी।
तीरगी निगलते हैं, रोशनी उगलते हैं।।
एक बहार आती है, एक बहार जाती है।
गुंचे मुस्कुराते हैं, फूल हाथ मलते हैं।।
कितने दीप बुझते हैं, कितने दीप जलते हैं।
अज्मे-जिन्दगी लेकर फिर भी लोग चलते हैं।।

यहां दीप जलते रहते हैं, बुझते रहते ह । आदमी पैदा होते रहते, मरते रहते । रोज कोई जन्मता, रोज कोई मरता । कहीं बजी शहनाई, कहीं उठी अर्थी । इसे तुम देखते भी रहते हो । यही तुम्हारे साथ भी होने को है । लेकिन शायद जब किसी की अर्थी उठती है तो तुम यह ख्याल भी अपने में उठने नहीं देना चाहते कि आज नहीं कल मेरी अर्थी उठेगी । हर बार तुम्हारी ही अर्थी उठती है । जब भी किसी की अर्थी उठती है, तुम्हारी ही अर्थी उठती है । लेकिन तुम इस भ्रान्ति में जीते हो : और लोग मरते हैं, मैं तो कभी नहीं मरता । मुझे थोड़े ही मरना है । ये और लोग मर रहे हैं । ये औरों का भाग्य, मैं तो मजे से जी रहा हूं । अब तक जिया हूं, आगे भी जीता रहूंगा ।

एक आदमी सौ साल का हो गया । तो पत्रकार उसकी भेंट-वार्ता लेने आये । उतनी उम्र मुश्किल से कोई पाता है । उसकी भेंट-वार्ता ली । वह आदमी मस्त था, उसने सब बातें कीं । चलते वक्त पत्रकारों ने कहा : प्रभु से हम प्रार्थना करते हैं कि अगली बार भी, अगले वर्ष भी आपके दर्शन होंगे । और इस बूढ़े आदमी ने पता है क्या कहा ! उसने कहा कि मैं कोई कारण नहीं देखता कि दर्शन क्यों नहीं होंगे । तुम सभी अभी जवान मालूम पड़ते हो ।. . . मैं कोई कारण नहीं देखता कि दर्शन क्यों नहीं होंगे । तुम सभी अभी जवान मालूम पड़ते हो ।

पत्रकार थोड़े झंझट में पड़े । कहना कुछ और चाहते थे, यह क्या हुआ ! एक पत्रकार ने हिम्मत जुटा कर कहा कि हम यह कह रहे हैं कि अब आप काफी बूढ़े हो गये, इसलिए पता नहीं अगली बार मिलना हो या न हो ।

उस बूढ़े ने कहा : फिक्र छोड़ो, सौ साल का मेरा अनुभव है कि मरा नहीं, तो एक साल में कैसे मर जाऊंगा ? सौ साल बचा हूं, दो-चार-दस साल की तो बात ही क्या है !

ऐसी मैंने एक कहानी और सुनी है कि एक आदमी नब्बे साल का हो गया और बीमा-कम्पनी के दफ्तर में गया । बीमा-कंपनीवाले भी थोड़ी मुश्किल में पड़े, क्योंकि इस उम्र का आदमी कभी बीमा करवाने आया भी नहीं था । तो उन्होंने कहा : भई, इस उम्र के बाद हम बीमा नहीं करते । नब्बे साल ! और वह लाखों का बीमा करना चाहता था । उसने कहा : तुम नासमझ हो । तुम्हें धंधा करना आता है कि नहीं? जरा अपने आंकड़े उठाकर देखो, नब्बे साल के बाद बहुत कम लोग मरते हैं ।

वह बात तो ठीक ही कह रहा है । नब्बे साल तक जीते ही नहीं, तो मरेंगे कैसे ? मगर वह आदमी यह कह रहा है कि नब्बे साल के बाद बहुत कम लोग मरते हैं, मुश्किल से कोई मरता है, जरा अपने आंकड़े उठाकर देखो । तुम घबड़ा क्यों

रहे हो ?

हर आदमी यह सोचकर चल रहा है कि मैं जीऊंगा, जीता रहूंगा, सदा जीता रहूंगा । और यहां दुनिया है, जो कुछ का कुछ समझती रहती है । तुम मर भी रहे हो तो दुनिया नहीं समझती कि तुम मर रहे हो । सब मर रहे हैं यहां, लेकिन लोग एक-दूसरे को सहारा दिये जाते हैं । सब उदास हैं यहां, लेकिन एक-दूसरे से लोग कहे जाते हैं कि बड़े प्रसन्न हैं आप, सब ठीक चल रहा है । और वे भी कहते हैं, सब ठीक चल रहा है । एक-दूसरे को देखकर मुस्कुराने लगते हैं । सब अपने-अपने आंसू छिपा रहे हैं । और सब यहां मरने को तैयार खड़े हैं ।

मैंने ये पंक्तियां पढ़ी हैं--

एक नर्तकी नाच रही है :
एक रक्क़ासा थी--किस-किस से इशारे करती
आंखें पथराईं, अदाओं में तवाजुन न रहा
डगमगाई तो सब अतराफ़ से आवाज आयी--
'फ़न के इस औज पे इक तेरे सिवा कौन गया ?'
फ़र्शे-मरमर पे गिरी, गिर के उठी, उठ के झुकी
खुश्क होंटों पे जबां फेर के पानी मांगा
ओक उठाई तो तमाशाई संभल कर बोले
' रक्स का यह भी एक अन्दाज है--अल्ला, अल्ला ! '
हाथ फैले रहे, सिल सी गई होंटों से जबां
एक रक्क़ास किसी सिम्त से नागाह बढ़ा
पर्दा सरका तो मअन फन के पुजारी गरजे
' रक्स क्यों खतम हुआ ? वक्त अभी बाकी था !'

एक नर्तकी नाच रही है । नाचते-नाचते थक गयी है । जिन्दगी हो गयी है । इशारे करते-करते थक गई है । एक रक्क़ासा थी, एक नर्तकी थी । किस-किस से इशारे करती । खुद एक थी, चाहने वाले बहुत थे । किस-किस से इशारा करती ! आंखें पथराईं । आखिर एक समय आ जाता है, जब आंखें पथरा जाती हैं । अदाओं में तवाजुन न रहा । अदाओं में जिन्दगी न रही । भीतर से आत्मा खिसकने लगी । डगमगाई । एक दिन नाच रही है और डगमगा गई कमजोरी के कारण । मौत करीब आ रही है । डगमगाई तो सब अतराफ से आवाज आई । सब तरफ से आवाज आई । कौन नाचने वालों को, नाच देखने वालों को क्या प्रयोजन हैं--कौन मर रहा है, कौन जी रहा है । वे तो नाच देखना चाहते हैं । डगमगाई तो सब अतराफ से आवाज आयी--फन के इस औज पे इक तेरे सिवा कौन गया ।' दर्शकों ने तो समझा कि

यह भी कोई एक नृत्य की कला है। यह डगमगाना, समझे होंगे मस्ती है। समझे होंगे डगमगा कर लुभाती है। फन के इस औज पे इक तेरे सिवा कौन गया! कला की इस ऊंचाई को तेरे सिवा किसने पाया!

फर्शे मरमर पे गिरी, गिर के उठी, उठ के झुकी
खुश्क होंटों पे जबां फेर के पानी मांगा
ओक उठाई तो तमाशाई संभल कर बोले
रक्स का यह भी एक अन्दाज है--अल्ला, अल्ला!

क्या खूब! तमाशाईयों ने कहा, यह भी एक नृत्य का अन्दाज! यह ओक बनाना हाथ की, यह पानी मांगना!

हाथ फैले रहे, सिल सी गई होंटों से जबां
एक रक्क़ास किसी सिम्त से नागाह बढ़ा

पर्दा सरका तो मअन फन के पुजारी गरजे, रक्स क्यों खत्म हुआ? वह तो मर ही गई, पर्दा गिराना ही पड़ा। लेकिन पर्दा सरका तो मअन फन के पुजारी गरजे। वे जो तमाशबीन थे, वे गरजे--'रक्स क्यों खत्म हुआ? वक्त अभी बाकी था!' वक्त सदा बाकी है। पर्दा गिरता है बीच में ही। वक्त कभी पूरा नहीं होता। हमेशा बीच में ही आदमी मरता है। कौन अपना काम पूरा करके मरता है! कौन अपनी बात पूरी कह कर मरता है! कौन जिन्दगी पर पूर्ण विराम लगा कर मरता है! यह दौड़ चलती रही है, चलती रहती है, अब भी चल रही है।

सुन्दरदास कहते हैं, इससे विश्राम मिल जाये। और बहुत हो गया, अब बहुत देख लिया। इतनी ही प्रार्थना है, और तुझसे क्या मांगें? अब अपने में वापिस लीन कर ले।

इसी प्रार्थना का नाम आवागमन से मुक्ति, या मोक्ष, या जो भी तुम नाम देना चाहो देना। यही प्रार्थना तुम्हारे भीतर उठे, इसी की तलाश करो अब।

विश्राम मिले तो राम मिले।
राम मिले तो विश्राम मिले।

आज इतना ही।

जीवन समस्या नहीं--वरदान है

चौथा प्रवचन : दिनांक ४ जून, १९७८; श्री रजनीश आश्रम, पूना

मनुष्य की वस्तुतः अंतिम खोज क्या है ?

कल प्रवचन के पहले, आपके प्रणाम के स्वीकार होते ही रोआं-रोआं कंपन से भर गया, आंखें आंसू बहाती रहीं, आंख-कान बंद हो गये, फिर भी आभा के बीच आपको देखता ही रहा। भीतर अपूर्व आनंद हो रहा था। आंखें बंद थीं, फिर भी खुली आंखों से ज्यादा आपको देख सका। भगवान! कबीर नहीं समझा, नहीं सुलझा। कृपा कर समझाएं।

भारतीय मनीषी अर्थहीनता और ऊब की उतनी चर्चा नहीं करते--जितनी प्रेम की, ध्यान की, आनंद की करते हैं। क्या प्रेम, ध्यान और आनंद की सीधी चर्चा जीवन की अर्थहीनता और ऊब को जानने में उपयोगी है ?

भगवान! हिन्दू धर्म पांच हज़ार साल पुराना है। बौद्ध और जैन धर्म ढाई हजार साल पुराने हैं। इस्लाम केवल सोलह सौ साल पुराना है; वह नया होने के बावजूद भी इतना पुराना क्यों लगता है ?
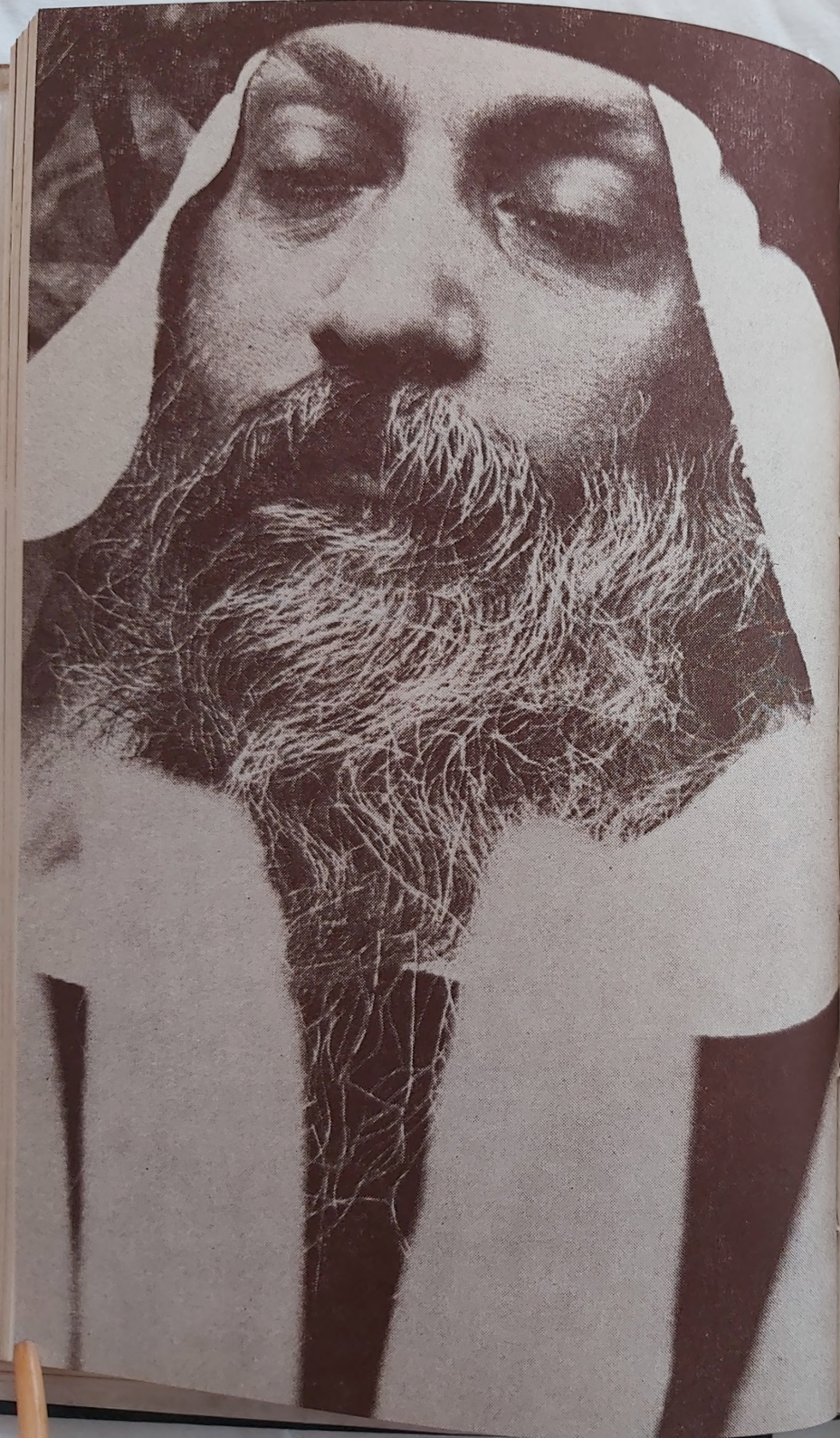
पहला प्रश्न : मनुष्य की वस्तुतः अन्तिम खोज क्या है ?

❋ अपनी ही खोज, अपने से ही पहचान। मनुष्य अकेला है सृष्टि में जिसे स्व-बोध है, जिसे इस बात का होश है कि मैं हूं। पशु हैं, पक्षी हैं, वृक्ष हैं--हैं तो जरूर, लेकिन अपने होने का उन्हें कोई बोध नहीं। होने का बोध नहीं है, इसलिए दूसरा प्रश्न असंभव है उठना कि मैं कौन हूं! मनुष्य अकेला है जिसे इस बात का बोध है कि मैं हूं, अनिवार्यरूपेण दूसरा प्रश्न उठेगा कि मैं हूं कौन! हूं सच, पर कौन हूं ? और जिसके जीवन में यह दूसरा प्रश्न नहीं उठा, वह पशु तो नहीं है, मनुष्य भी नहीं है। कहीं बीच में अटका रह गया-- घर का न घाट का। उसके जीवन में पशु की शांति भी नहीं होगी और उसके जीवन में परमात्मा की शांति भी नहीं होगी। वैसा आदमी बीच में त्रिशंकू की तरह अटका, सदा अशान्त होगा।

पशु शांत हैं, चिन्तित नहीं हैं, बेचैन नहीं हैं। चिन्ता और बेचैनी के लिए जितना बोध चाहिये, उतना बोध नहीं है; मूर्च्छा में जिये जाते हैं, बेहोशी में जिये जाते हैं। एक तरह की शांति है, एक तरह का सन्नाटा है। एक तरह की मस्ती है--मूर्च्छित है; सुन्दर है फिर भी।

इसलिए प्रकृति के निकट जाओ, सौन्दर्य की अनुभूति होती है। प्रकृति के पास आओ, सब शांत हो जाता है। मनुष्य के पास आओ, बेचैनी बढ़ जाती है। आदमी की भीड़ में खड़े हो जाओ, थक जाते हो। कुछ न करो तो थक जाते हो।

भीड़ से घर लौट कर बहुत बार देखा है या नहीं? कुछ गंवा कर लौटते हो। जैसे कुछ छीन लिया गया। जैसे लुट गये। जैसे विश्राम की जरूरत आ गयी है। थके-मांदे, टूटे हुए ! आदमी इतना बेचैन है कि उसकी बेचैनी की तरंगें तुम्हारे चित्त को भी तरंगित कर जाती हैं। और चारों तरफ भीड़ हो बेचैन लोगों की तो कैसे अपने को बचा कर आ सकोगे ?

महावीर या बुद्ध समाज को छोड़कर जंगल चले गये थे, उसके पीछे और

कोई कारण नहीं था––अशान्त लोगों की भीड़ में, बीमार लोगों की भीड़ में, विक्षिप्त लोगों की भीड़ में, सार क्या है ? जंगल में वृक्षों से दोस्ती बना ली, पशु-पक्षियों से नाता जोड़ा, आदमी से नाता तोड़ा। जरा सोचो, आदमी का कितना बड़ा अपमान हुआ है उसमें ! ख्याल करो, पशु-पक्षी जीत गये तुमसे, पौधे-पहाड़ जीत गये, महावीर को उन्होंने बेचैनी न दी, न बुद्ध को परेशान किया। तुम्हारे बीच खड़ा होना मुश्किल हो गया था।

पशु-पौधे के जीवन में एक आनंद-मग्नता है–– मूर्च्छित। फिर बुद्धों के जीवन में, सिद्धों के जीवन में एक आनंद-मग्नता है–– सचेत, जागरूक। एक मस्ती वहां भी है। पर उस मस्ती में बोध का दीया जलता है। उतना ही भेद है। प्रकृति और परमात्मा में उतना ही भेद है। प्रकृति यानी सोया हुआ परमात्मा, परमात्मा यानी जाग गई प्रकृति। बस उतना भेद है। जो दोनों के बीच में है, उसकी परेशानी समझो। वहीं तुम हो। वहीं सब हैं। वह जो बीच में अटका हुआ आदमी है––न सीढ़ी के इस पार न सीढ़ी के उस पार, न इस किनारे न उस किनारे, मंझधार में जिसकी नाव अटक गयी है, जो दोनों तरफ खींच रहा है. . .। एक मन कहता है लौट चलो पीछे, फिर हो जाओ पशु जैसे. . . । इसलिए तो दुनिया में इतनी हिंसा है। . . .वह एक मन चहता है लौट चलो पीछे, हो जाओ पशु जैसे।

हिंसा में इतना रस क्या है? अगर रास्ते में दो आदमी लड़ते हों, तो हजार काम छोड़ कर, साईकिल किनारे टिका कर देखने लगते हो। इतना रस क्या है ? दो आदमी लड़ रहे हैं, तुम्हें क्या मिलेगा ? मगर बड़ी उत्सुकता जग जाती है। हिंसा में एक रस है। तुम न भी करो, दूसरा कर रहा है, तो भी देखने का मजा है। चले पशु के जगत में। लौट चले पशु की दुनिया में। गिरने लगे आदमी के तल से नीचे।

और कभी तुमने देखा, घड़ी-भर खड़े रहो, झगड़ा चलता रहे, गाली-गलौच हो, लेकिन मारपीट न हो, या कोई बीच-बचाव पड़ जाये या पुलिस का आदमी बीच में आ जाये, या उन दोनों को कुछ बुद्धि आ जाये, तो तुम कुछ उदास-से लौटते हो, कि कुछ होना था जो नहीं हुआ। सब मजा किरकिरा हो गया।

फिल्म देखने तुम जाते हो, अगर हिंसा न हो फिल्म में, मारकाट न हो, हत्या न हो, कामवासना के उद्दाम वेग न उठें, तो तुम जाओगे ही नहीं। जितनी कामवासना के उद्दाम वेग हों, जितनी हत्या हो, जितनी हिंसा हो, चोरी हो, डकैती हो, उतनी फिल्म तुम्हें आकर्षित करती है। ये पशु के जगत में लौटने की इच्छाएं हैं।

या फिर कभी तुम शराब पी लेते हो, शराब पीकर तुम क्या कर रहे हो? तुम इतना ही कह रहे हो कि यह थोड़ा-सा जो होश है, हे प्रभु ! इसे हमसे ले लो। यह

होश हमसे नहीं सम्हाला जाता। हमें बेहोश कर दो, हमें लौटा दो वापिस।' यह पुराना किनारा तुम्हें खींच रहा है। लेकिन तुम कुछ भी उपाय करो, तुम पशु हो नहीं सकते। अतीत में लौटने की कोई संभावना नहीं है। पीछे यात्रा होती ही नहीं। जवान कितना सोचे कि मैं बच्चा हो जाऊं, अब नहीं हो सकता। और बूढ़ा कितना ही सोचे कि मैं जवान हो जाऊं, अब नहीं हो सकता। मुर्दा कितना ही सोचे कि मैं जी जाऊं, अब नहीं हो सकता। पीछे लौटना होता ही नहीं। जहां से हम गुजर चुके, गुजर चुके। अब वहां जाना कभी नहीं होगा, लेकिन आकांक्षा बनी रहती है। इसीलिए तो लोग जवान भी हो जाते हैं, बूढ़े भी हो जाते हैं, तो भी बचपन के गीत गाते हैं। कहते हैं, 'अहा ! कैसे सुन्दर दिन थे वे !' यह बात मूढ़तापूर्ण है। मूढ़तापूर्ण इस-लिए है कि अगर बचपन सुन्दर था, तो फिर शेष जीवन तुम क्या करते रहे? सौन्दर्य को निखारा नहीं? सौन्दर्य को संवारा नहीं ? उस सौन्दर्य को नये-नये आयाम, नई ऊंचाइयां नहीं दीं? तो फिर करते क्या रहे जिन्दगी-भर ?

लोग कहते हैं : बचपन में कैसा सुख था ! तो शेष समय तुमने क्या किया ? सुख की सम्पदा लेकर आये थे, उसको बढ़ाना था, कुछ और सुख कमाना था ! उस सुख को और सूक्ष्म बनाना था। वह तो कुछ किया नहीं, उलटे उसे गंवा बैठे। तो पीछे की आकांक्षा बनी रहती है––फिर बच्चे हो जायें, फिर वैसे ही दिन हों। ऐसे लोग अतीत का स्मरण करते रहते हैं कि कैसे प्यारे दिन थे––जो बीत गये ! बीते दिन सदा प्यारे मालूम होते हैं। सोने के मालूम होते हैं। रामराज्य था। सत-युग था।

लोग बैठकर चर्चा करते हैं बीते दिनों की। यह पीछे लौटने की आकांक्षा है। शराबी भी वही कर रहा है। जरा स्थूल ढंग से कर रहा है। वह यह कहता है, हमसे तो नहीं होता लौटना, लेकिन शराब के सहारे लौट जाऊंगा। पी लूंगा शराब, भूल जाऊंगा आदमियत, भूल जाऊंगा आदमियत की चिन्ता, खोज, परेशानी, भूल जाऊंगा सारे उपद्रव, जाल, लौट जाऊंगा वापिस, गिर पडूंगा नाली में, हो जाऊंगा पत्थर की भांति, या वृक्ष की भांति, या पौधों की भांति, जी लूंगा थोड़ी देर प्रकृति को। लेकिन वापिस लौटना पड़ेगा, शराब थोड़ी-बहुत देर के लिए बेहोश कर दे, फिर होश में आना पड़ेगा। थोड़ी-बहुत देर के लिए भुलावा हो सकता है। वस्तुतः यथार्थ स्थिति नहीं बदलती। फिर वापिस वहीं मंझधार में।

आदमी की असली खोज इसलिए एक ही है कि उस पार कैसे पहुंचूं। एक बात का मुझे पता है कि मैं हूं, अब मुझे दूसरी बात का कैसे पता हो जाये कि मैं कौन हूं। उस दूसरी बात के पते में ही सारे धर्मों का जन्म हुआ है–उस दूसरी खोज से ही। 'मैं कौन हूं' का उत्तर मिल जाये, तो सब मिल गया। क्योंकि उस उत्तर

में ही परमात्मा का अनुभव हो जाता है ।

तुम परमात्मा हो । तत्त्वमसि ! तुम स्वयं ब्रह्म हो । सोये हुए । भटके हुए । भ्रान्त । अपने से अपरिचित । बाहर-बाहर दौड़ते रहे हो । भीतर जाने का मार्ग भूल गया । या द्वार-दरवाजे इतने दिन से नहीं खोले हैं कि जंग खा गये हैं । या चाबियां खो गई हैं, ताले खुलते नहीं हैं । या भीतर इतना अन्धकार हो गया है, क्योंकि न मालूम कितनी सदियों से तुमने दीया नहीं जलाया वहां, कि अब भीतर जाने में डर लगता है ।

मैं कौन हूं, यह मनुष्य का एकमात्र प्रश्न है । यही उसकी एकमात्र खोज है । इसी खोज से फिर आनन्द के झरने बहते हैं । यह खोज जिस दिन पूरी हो जाती है, उस दिन तुम्हें वह सब मिल जाता है—जो पशुओं को है, जो पक्षियों को है, चांद-तारों को है—और साथ में कुछ और मिल जाता है, जो उनके पास नहीं है । साथ में प्रकाश मिल जाता है । साथ में होश मिल जाता है । इसलिए इस अवस्था को हमने बुद्धत्व कहा है । बोध मिल जाता है ।

बुद्ध भी उसी आनन्द में हैं जिसमें प्रकृति लवलीन है । लेकिन प्रकृति मूर्च्छित है, बुद्ध होश से भरे हैं । और होश का आनंद गुणात्मक रूप से भिन्न हो जाता है । तुम्हें कोई क्लोरोफॉर्म दे दे, और फिर स्ट्रेचर पर तुम्हें बगीचे में ले जाया जाये, घुमाया जाये, हवाएं आयेंगी ताजी, पक्षियों के गीत भी उठेंगे, शायद दूर मूर्च्छा में दबे हुए कहीं-कहीं कुछ स्वर भी सुनाई पड़ेंगे—टूटे-फूटे । फूलों की गंध आयेगी, नासापुटों को छुएगी । शायद थोड़ी-सी याद भी सरकती हुई भीतर पहुंच जायेगी । हालांकि तुम बगीचे से ले जाये जा रहे हो, लेकिन यह भी कोई ले जाना हुआ ? फिर तुम एक दिन होश से बगीचे में आओ । वृक्षों के साथ नाचो, पक्षियों के साथ गीत गाओ, फूलों से दोस्ती करो, नासापुट तुम्हारे सुगंध से भरें, ताजी हवा तुम्हें डुलाये, तुम मगन होकर नाचो उस बगीचे में, वे शीतल हवाएं तुम्हारे तन-मन को शीतल करें—इसमें और पुरानी यात्रा में फर्क होगा या नहीं ? स्ट्रेचर पर लाये गाये थे । क्लोरोफॉर्म दिया हुआ था । गुजरे यहीं से थे । मगर अब जो गुजर रहे हो होश से भरकर, इसमें और उसमें कुछ भेद है—स्थान एक है, लेकिन स्थिति भिन्न है ।

इसलिए पतंजलि ने अपने योगसूत्रों में कहा है कि सुषुप्ति और समाधि में थोड़ा-सा ही भेद है । दोनों ही अवस्थाओं में आदमी परमात्मा में लीन होता है । तुम रोज अपनी गहरी सुषुप्ति में परमात्मा में लीन हो जाते हो । इसलिए तो सुषुप्ति तुम्हें ताजा कर जाती है । मूल स्रोत से जुड़ गये, एक डुबकी मार ली परमात्मा में । यद्यपि बेहोश है डुबकी, कुछ पता नहीं क्या हो रहा है, लेकिन सुबह, जिस दिन रात गहरी नींद आ गई हो, स्वप्न-रहित निद्रा आ गई हो, उठकर तुम कहते हो : बड़ा

आनन्द ! बड़ी ताजगी ! बड़ी जीवन्तता ! पुनरुज्जीवित हुए जैसे ! सब थकान गई, सब हारापन गया, सब दुख गया—जैसे फिर से तुम नये होकर लौट आये हो ! कौन कर गया नया ? कौन-सा जादू तुम्हें नया कर गया है ? तुम्हें कुछ पता नहीं । अब होश आया है तो याद आता है इतना ही सिर्फ, कि रात गहरी नींद थी, स्वप्नों की गहरी तरंगें भी न थीं । स्वप्न की तरंगें न थीं, इसका मतलब था कि मन बिलकुल शान्त हो गया था । कोई विचार न उठ रहे थे । समाधि लग गई थी । मगर समाधि मूर्च्छित थी । यही समाधि बुद्ध को लगी, यही मीरा को लगी, यही कबीर को, यही दादू को, यही रज्जब को, यही सुन्दरदास को—मगर होशपूर्वक लगी । गये इसी अवस्था में—तरंग-रहित, विचार-रहित, मन-रहित—इसी अमनी दशा में गये, मगर होश कायम रहा । जागे-जागे रहे । देखते रहे, क्या हो रहा है । विचार जा रहे हैं, देखते रहे । विचार कम होते जा रहे हैं, देखते रहे । विचार नहीं रहे, देखते रहे । विचार समाप्त हो गये, कुछ दिखाई नहीं पड़ता, मगर देखनेवाला मौजूद रहा । कुछ दिखाई नहीं पड़ता, कोई विषय-वस्तु मौजूद न रही, पर्दा बिलकुल खाली हो गया—मगर देखनेवाला जागा रहा, जागा रहा, जागा रहा । आखिरी छोर तक डुबकी मारी, तलहटी तक उतर गये, गहराई से गहराई में पहुंच गये—मगर जागे रहे, जागे रहे, देखते रहे, देखते रहे । तब जो लौटना होता है, बुद्ध होकर लौटे । फिर गई सारी चिन्ता, फिर गई सारी बेचैनी, क्योंकि अब मंझधार में न रहे ।

आदमी बीच में है । आदमी संक्रमण की अवस्था है । इसलिए आदमी में तनाव है । तनाव का मतलब ही इतना है कि आदमी हो रहा है । कुछ होने के रास्ते पर है । अभी हो नहीं गया है । यात्रा चल रही है, अभी मंजिल मिल नहीं गई है । इसलिए आखिरी खोज तुम पूछते हो, क्या है ? प्रथम कहो, चाहे आखिरी कहो, खोज एक है—कि आदमी जानना चाहता है कि मैं कौन हूं ? मेरा स्वभाव क्या है ? उसी स्वभाव को जानने से नियति का पता चल जायेगा । क्योंकि जो स्वभाव है वही नियति है । मेरा मूल-स्रोत क्या है, उसे जानने से मेरा गन्तव्य क्या है, यह भी पता चल जायेगा । क्योंकि अन्ततः मूल-स्रोत ही गन्तव्य है । और जिसने जाना कि मैं कौन हूं, जिसके भीतर आत्मज्ञान का दीया जला, उसने आनन्द भी जाना, सच्चिदानन्द जाना ।

आगोश में आ कि जिंदगानी कर लूं
कुछ रोज खुशी से जिंदगानी कर लूं
एक जाम मए-तरब पिला दे साकी
फानी है हयात जाविदानी कर लूं

जिंदगी क्षणभंगुर है । अब गई तब गई । मौत आती ही चली जाती है । और

अपना पता नहीं है । इसलिए मिटने का भय भरा हुआ है । मौत पैर डगमगा रही है ।

क्या है खोज आदमी की ? खोज है कि किस भांति अमृत को जान लें । फानी है हयात. . .। जिंदगी क्षणभंगुर है। . . .जाविदानी कर लूं । इसे कैसे अमर कर लूं ? आगोश में आ कि जिंदगानी कर लूं । और परमात्मा तुम्हारी गोद में हो और तुम परमात्मा की गोद में हो, तो ही जिंदगी मिली, अन्यथा बस जिंदगी नाम की ही थी, काम की नहीं थी । उसमें अर्थ कुछ न था, शोरगुल बहुत था ।

आगोश में आ कि जिंदगानी कर लूं । यह खोज है आदमी की कि अभी जो जिंदगी है कोरी-कोरी, थोथी-थोथी, असली नहीं है ।

आगोश में आ कि जिंदगानी कर लूं
कुछ रोज खुशी से जिंदगानी कर लूं ।
एक जाम मए-तरब पिला दे साकी ।

साधक, भक्त परमात्मा से कहता है कि जरा-सा ढाल दो, मेरे कण्ठ में थोड़ी-सी उतार दो सत्य की शराब । एक जाम मए-तरब पिला दे साकी ! जीवन का एक प्याला मुझे पिला दो । फानी है हयात, जाविदानी कर लूं । यह तो जो मैंने अब तक जाना है, क्षणभंगुर है, पानी का बबूला है, यह तो मिटा-मिटा, इसे मैं सम्हाल न सकूंगा, कोई कभी सम्हाल नहीं सका, मैं उसे जान लेना चाहता हूं जो अमृत है और कभी नहीं मिटता है ।

और उसे जानने के लिए मरने तक मत रुके रहना । जिन्दगी में ही जानना है, अभी जानना है, यहीं जानना है—कल पर भी मत टालना, क्योंकि कल का कोई भरोसा नहीं । कल कभी आता है ? कल सिर्फ भरमाता है । और लोग कल पर टाले चले जाते हैं।

एक मित्र ने प्रश्न पूछा है कि आपने मुझे बहुत झंझट में डाल दिया । मैं तो सोचता था जिन्दगी के अन्त में कर लेंगे याद परमात्मा की । सोचता था कि मरते समय भी अगर नाम ले लेंगे तो मुक्ति हो जायेगी ।

शास्त्रों में कहानियां हैं ऐसी, कि किसी ने मरते समय परमात्मा का नाम ले लिया और मुक्त हो गया । अजामिल की कहानी तो तुम जानते ही हो, मरते वक्त उसने बुलाया नारायण, नारायण । और 'नारायण' को बुला नहीं रहा था, उसके बेटे का नाम नारायण था, लेकिन ऊपर के नारायण धोखे में आ गये । मर गया नारायण को बुलाते, सीधा वैकुण्ठ गया ।

किन चालबाजों ने, किन बेईमानों ने ये कहानियां गढ़ी होंगी ? किन धोखे-बाजों ने? और इन धोजबाजों ने तुम्हारे मन में भी यह धारणा बिठा दी है ।...

...तो उन मित्र ने पूछा है कि मैं तो सोचता था कर लेंगे याद अन्त में, कर लेंगे भजन-भाव अन्त में, अभी क्या पड़ी है? अभी तो जिन्दगी है, जी लें । आपने सब अस्त-व्यस्त कर दिया । आप कहते हैं : अभी या कभी नहीं । आपने मुझे बेचैन कर दिया ।

जरूर बेचैनी लगेगी शुरू में, क्योंकि तुम एक सपने में जी रहे थे । मगर यह बेचैन हो जाना बेहतर है । यह सपना टूट जाये तो बेहतर है। कुछ कर लो अभी तो बेहतर है । अभी बुला लो उसे अपने आगोश में । अभी तलाश लो उसकी गोद । अभी मांग लो उससे, जब तक जबान मांग सकती है, जब तक जबान लड़खड़ा नहीं गई है । जब तक हृदय धड़क रहा है तब तक द्वार खोल लो अपने, उसे निमंत्रण दे दो ।

ऐसा मत सोचो कि जिन्दगी-भर तो कुछ करते रहोगे और मरते वक्त परमात्मा का नाम ले लोगे । मरते वक्त तुम्हारी जिन्दगी-भर का निचोड़ तुम्हारे कण्ठ में होता है । जिस आदमी ने धन खोजा है, मरते वक्त धन की ही याद होती है। लोग गलत नहीं कहते कि धनी, कंजूस, कृपण मर कर अपने गड़े धन पर सांप बनकर बैठ जाता है। इसमें जरूर सचाई होगी । यह बात मनोवैज्ञानिक मालूम पड़ती है । जो आदमी जिन्दगी-भर अपने गड़ाये धन की ही रक्षा करता रहा, वह मरने के बाद तुम सोचते हो, इतनी आसानी से छोड़ देगा ? जिन्दगी-भर एक ही अभ्यास किया, अस्सी साल तक एक ही अभ्यास किया अपने धन पर पहरा देने का। अस्सी साल का अभ्यास एकदम से टूट नहीं जायेगा। अस्सी साल का संस्कार ! कहानी में अर्थ मालूम होता है । लौट आयेगा सांप बन कर, बैठ जायेगा कुण्डली मार कर अपने धन पर कि कोई ले न जाये ।

तुमने जिन्दगी-भर एक काम किया, तुम सोचते हो मरते वक्त एकदम से रूपान्तरित हो जाओगे ? जिन्दगी में बदल न सके, जब शक्ति थी, और जब सारी शक्ति जा रही होगी, तब तुम बदल जाओगे ?

मैंने सुना है एक आदमी था एक गांव में। चम्पू नाई उसका नाम था। चम्पी करता था, चम्पू उसका नाम था । फिर आजादी आई, वह नेता हो गया । गांवभर के लोग उसकी मान्यता भी रखते थे, सबकी चम्पी करता था, सबकी मालिश करता था। तो चम्पू की जगह वह चम्पा लाल हो गया। चुनाव में जब जीत गया तो बाबू चम्पा लाल जी हो गया। फिर मौत भी आई, मौत आई तो बड़े बूढ़े सब इकट्ठे हुए । उसके मुंह से फसूकर गिर रहा है। किसी ने उसे हिलाया और कहा : बाबू चम्पा लाल जी, अब यह समय परमात्मा के याद करने का है। अब कुछ प्रार्थना कर लो परमात्मा से । अब कुछ कह लो, सुन लो, जिन्दगी तो यूं

ही गंवा दी। पहले चम्पी में गंवाई, फिर बाद में नेतागिरी में गंवाई। वह भी एक तरह की चम्पी है। उसमें चमचे ही काम आते हैं। ऐसी जिन्दगी चम्पी में गंवा दी, चमचागिरी में गंवा दी, अब तो कुछ परमात्मा को याद कर लो।

हिलाया किसी ने। उसने बामुश्किल आंख खोली और कहा : 'सुन, सुन, सुन! अरे बेटा सुन! इस चम्पी में बड़े-बड़े गुन!'... जिन्दगी-भर यही गाता रहा, तुम सोचते हो मरते वक्त हरिनाम निकलेगा? जिन्दगी-भर का अभ्यास एकदम नहीं चला जा सकता। जब उसने कहा था, सुन, सुन, सुन...,तो लोगों ने सोचा शायद भगवान से कह रहा है।

आदमी मरते वक्त एकदम रूपान्तरित नहीं हो सकता। रूपान्तरण इतना मुफ्त नहीं है। जीवन दांव पर लगाना होता है। तो तुम कहते हो, तुम परेशान हो गये हो। अच्छा है कि परेशान हो गये हो। भगवान करे इस परेशानी को तुम समझा-बुझा कर, लीप-पोत कर मिटा मत देना। अगर तुम परेशान हो गये हो, सौभाग्य है, कुछ करो! इस दुनिया से 'मैं कौन हूं' यह जाने बिना मत जाना।

अब रही बात यह कि जाना तो तुम्हारे हाथ में नहीं है। जब जाना पड़ेगा, तब जाना पड़ेगा। यह नहीं कह रहा हूं कि जब जाने का मौका आ जाये तो कहना, 'अभी मैंने अपने को नहीं जाना, तो मैं कैसे जाऊं? मैं तो तभी जाऊंगा जब अपने को जान लूंगा।' कोई सुननेवाला नहीं है। मौत तुम्हें ले जायेगी। और तुमसे पूछेगी भी नहीं। मौत खबर देकर आती भी नहीं। मौत तो आ ही जाती है। एक क्षण का भी अन्तराल नहीं होता आने और ले जाने में।

नहीं, जब मैं कह रहा हूं कि मैं बिना स्वयं को जाने नहीं जाऊंगा, तो उसका अर्थ यह है कि अभी जो क्षण मेरे हाथ में है... अभी तो जिंदा हो, इस क्षण तो अभी जिंदा हो, इस क्षण को परमात्मा की खोज में लगा दो। और परमात्मा की खोज से यह मत सोचना कि परमात्मा आकाश में बैठा हुआ कोई व्यक्ति है। परमात्मा तुम्हारे ही भीतर छिपी हुई तुम्हारी परम अवस्था है। आत्मा की परम अवस्था का नाम परमात्मा है। आत्मा को जान लेना परमात्मा को जान लेना है। और जो अपने को ही नहीं जानता, वह और क्या जानेगा?

मुझे दे दे—

> रसीले होंट, मासूमाना पेशानी, हसीं आंखें
> कि मैं एक बार फिर रंगीनियों में गर्क हो जाऊं
> मेरी हस्ती को तेरी इक नज़र आगोश में ले ले
> हमेशा के लिए इस दाम में महफूज हो जाऊं
> जिया-ए- हुस्न से ज़ुल्माते दुनिया में न फिर आऊं

> गुजश्ता हसरतों के दाग मेरे दिल में धुल जायें
> मैं आनेवाले गम की फिक्र से आजाद हो जाऊं
> मेरे माझी व मुस्तकबिल सरासर महब हो जाएं
> मुझे वो इक नजर इक जाविदानी-सी नजर दे दे

एक अमृत की दृष्टि! मांग लो उसे, वह तुम्हारी है। तुम्हारा हक, तुम्हारा अधिकार। न मांगो तो नहीं मिलेगी। मांगो तो मिली ही है। न खोजो तो नहीं मिलेगी। खोजो तो तुम्हारे पास ही है। जितनी त्वरा से खोजोगे, उतनी पास पाओगे। अगर परिपूर्ण त्वरा से खोजो तो इसी क्षण मिल सकती है। आत्मा दूर थोड़े ही है, कहीं जाना थोड़े ही है, किन्हीं पहाड़ों की यात्रा थोड़े ही करनी है— थोड़ी आंख बन्द करनी है। थोड़े विराम में उतर जाना है। थोड़ी विश्रान्ति में शरण लेनी है। थोड़ी चुप्पी साधनी है। और सारा चिन्ताओं के जाल से अपने को हटाकर भीतर देखना है।

> मेरे माझी व मुस्तकबिल सरासर महब हो जाएं

कहो परमात्मा से कि मेरा अतीत और मेरा भविष्य ये दोनों छीन लो मुझसे, इन्हें डुबा दो!

है ही क्या तुम्हारा मन और? अतीत की स्मृतियां, भविष्य की कल्पनायें। इसके अतिरिक्त तुम्हारे मन की सम्पदा क्या है? न तो स्मृतियों में कोई जीवन है अब, जा चुका, और कल्पनाएं अभी हुई नहीं हैं। दोनों ना-कुछ हैं। इसी कचरे में डूबे बैठे हो।

> मेरे माझी व मुस्तकबिल सरासर महब हो जायें
> मुझे वो इक नजर इक जाविदानी सी नजर दे दे

बस एक नजर चाहिये, एक दृष्टि चाहिये। एक आंख चाहिये, जो अमृत को पहचान ले। यहां दोनों हैं। यहां मृत्यु भी है, यहां अमृत भी है। मृत्यु परिधि पर है। तुम्हारी देह में मृत्यु है, तुम में अमृत है। घड़ा मृत्यु का बना है, पात्र मृत्यु का बना है, क्योंकि मिट्टी का बना है। मिट्टी यानी मृत्यु। लेकिन मर्त्य में अमृत भरा है। नज़र के बदलने की बात है। घड़े को ही देखते रहे तो मरते ही रहोगे। घड़े में जो भरा है, अगर उसे देख लिया, मृत्यु समाप्त हो गई। और जहां मृत्यु समाप्त होती है, वहीं जानना कि ज्ञान का अवतरण हुआ। वहीं जानना कि जाना, कि कौन हूं।

अमृतस्य पुत्रः! तुम अमृत के पुत्र हो। तुम्हारे भीतर परमात्मा बह रहा है प्रतिपल।

जिस्म की नौ रस कली में !
एक एहसासे-जमाल——
जैसे ठण्डक छाओं की
दिल की नाजुक धड़कनों में
एक नादीदा ख्याल
जैसे आहट पाओं की
रात की तारीकियों में
जौफिगन शम्मे-विसाल
जैसे खुलकर पौ फटे

अभी फट सकती है यह पौ । यह सुबह अभी हो सकती है । जिस्म की नौ रस कली में ! यह तुम्हारी जो देह है, मन्दिर है । इसमें परमात्मा विराजमान है । और कहां खोजते हो ? किस काशी, किस काबा जाते हो ? व्यर्थ की दौड़-धूप में मत पड़ो । जरा भीतर टटोलो ।

जिस्म की नौ रस कली में । यह जो देह का फूल है, इसमें ही सौन्दर्य छिपा है । सौन्दर्य इसके सहारे लेकर पृथ्वी पर उतरा है ।

एक एहसासे जमाल जैसे ठण्डक छाओं की !

जरा भीतर चलो और सौन्दर्य की परम अनुभूति होने लगेगी । जरा अपने देह के इस फूल में उतरो, इस कमल के भीतर चलो ! हजार पंखड़ियों वाला कमल है यह । इसकी सारी पंखुड़ियों के पार जाना है । पंखुड़ी-पंखुड़ी के पार जाना है । और भीतर तुम पाओगे उस सन्नाटे को, उस शून्य को——जो तुम्हारी आत्मा है । पाओगे उस पूर्ण को——जो परमात्मा है । एक एहसासे जमाल ! सौन्दर्य का एक परम अनुभव होगा । . . . जैसे ठण्डक छाओं की !

बहुत जी लिये धूप में, बहुत जी लिये दौड़-धाप में, बहुत जी लिये आपा-धापी में । पसीने-पसीने हो गये हो, कितने तो थक गये हो ! कितने जन्मों से तो चल रहे हो ! कितनी तो धूल जम गई तुम्हारे चेहरे पर ! जरा अपनी आखों को ख्याल तो करो——कितनी गर्द-गुबार !

दिल की नाजुक धड़कनों में
एक नादीदा ख्याल
जैसे आहट पाओं की ।

जरा सरको तो भीतर ! जरा अनदेखे को देखना शुरू करो ! जरा अनचीन्हे को चीन्हना शुरू करो !

दिल की नाजुक धड़कनों में . . . यह जो धीमी-सी नाजुक धड़कन है दिल की,

इसी में परमात्मा की धड़कन भी समाई हुई है । तुम नहीं धड़क रहे हो, वही धड़क रहा है । . . . जैसे आहट पाओं की ! जरा भीतर सरको, उसकी पगध्वनि सुनाई पड़ने लगेगी । रात की तारीकियों में . . . माना कि अन्धेरा है, और बहुत अन्धेरा है; मगर अन्धेरा सिर्फ बाहर है । भीतर तो रोशनी ही रोशनी है । भीतर तो सदा प्रभात है । बाहर तो सदा रात है । बाहर अमावस, भीतर पूर्णिमा है ।

बुद्ध के जीवन में प्यारी कहानी है कि वे पूर्णिमा के दिन ही पैदा हुए, और पूर्णिमा के दिन ही उन्हें सम्बोधि मिली, और पूर्णिमा के दिन ही वे मरे । उसी पूर्णिमा के दिन——एक ही पूर्णिमा वैशाख की । ऐसा हुआ हो न हुआ हो, पर बात अर्थपूर्ण है । पूर्णिमा में ही पैदा हो, पूर्णिमा में ही जियो, पूर्णिमा में ही जगो, पूर्णिमा में ही तिरोहित हो जाओ । यह हो सकता है । भीतर जो देखता है, उसे निश्चित हो जाता है ।

रात की तारीकियों में
जौफिगन शम्मे विसाल

माना कि अन्धेरा बहुत है, मगर भीतर एक दीया जल रहा है । शम्मे विसाल! एक ऐसी ज्योति जल रही है ! जो ज्योति परमात्मा से मिलन की ज्योति है ! जो उसके आलिंगन की ज्योति है !

रात की तारीकियों में
जौफिगन शम्मे विसाल
जैसे खुलकर पौ फटे!

जैसे अचानक बदलियां हट जायें, सूरज प्रगट हो जाये, ऐसा अचानक तुम्हारे भीतर हो सकता है । इस अचानक की खोज आदमी की आत्यन्तिक खोज है । प्रथम भी, अन्तिम भी । और जब तक यह न हो जाये, तब तक अपने को आदमी मत मान लेना । तब तक आदमी मानने की भ्रान्ति में मत पड़ जाना । तब तक इतना ही कहना कि मैं आदमी होने की तलाश कर रहा हूं । मार्ग पर हूं, अभी पहुंचा नहीं हूं ।

आदमी तो बस थोड़े हुए हैं——कोई बुद्ध, कोई कृष्ण, कोई कबीर, कोई क्राइस्ट, कोई मुहम्मद । आदमी तो थोड़े हुए हैं, बाकी तो सब झूठे आदमी हैं, दिखावा है, वेश है । भीतर कुछ भी नहीं है । अनुभव नहीं है तो कुछ भी नहीं । जो है, अगर न जाना जाये तो न होने के बराबर होता है ।

किसी भिखमंगे की जेब में हीरा पड़ा है और वह भीख मांग रहा है और उसे हीरे का कुछ पता नहीं । क्या तुम कहोगे, उसके पास हीरा है ? कहने का कोई अर्थ न होगा । अगर उसे पता हो कि हीरा है तो भिखमंगापन बन्द हो जाये ।

जिसने अपने भीतर की रोशनी देख ली, इस जगत में वह भिखमंगा नहीं रह जाता। कुछ भी नहीं मांगता—न पद, न प्रतिष्ठा। कुछ भी नहीं मांगता। मांगने का सवाल ही नहीं है। देना शुरू करता है। बांटता है। उसके भीतर अजस्र स्रोत खुल जाता है। रोशनी बांटता है। आनंद बांटता है, प्रेम बांटता है, ध्यान बांटता है, असली सम्पदा बांटता है।

दूसरा प्रश्न—

कल प्रवचन के पहले आपके प्रणाम के स्वीकार होते ही रोआं-रोआं कम्पन से भर गया, आंखें आंसू बहाती रहीं, आंख-कान बंद हो गये, फिर भी आभा के बीच आपको देखता ही रहा और भीतर अपूर्व आनंद हो रहा था। आंखें बन्द थीं, फिर भी खुली आंखों से ज्यादा आपको देख सका। भगवान, कबीर नहीं समझा, नहीं सुलझा। कृपा करके समझाने की अनुकंपा करें।

※ पूछा है कबीर भारती ने

शुभ हुआ, एक संकेत मिला। उसका उपयोग करना है। एक सीढ़ी तुम्हारी आंख के सामने आयी। एक द्वार खुला। कुछ है जो आंख खोल कर देखा जा सकता है और कुछ है जो केवल आंख बन्द करके ही देखा जा सकता है। जो आंख खोल कर देखा जा सकता है उसका कोई बड़ा मूल्य नहीं है। मूल्य तो उसी का है जो आंख बन्द करके देखा जा सकता है।

मुझसे जिनकी सच्ची पहचान होगी, वह आंख बन्द करके देखने वाली पहचान है। जिन्होंने आंख खोल कर ही देखा है, वे मेरी देह को देखेंगे। आंखें देह की हैं, देह से ज्यादा उनकी पकड़ नहीं है। अगर हाथ से मुझे छुओगे तो मुझे नहीं छू पाओगे, देह को ही छुओगे। हाथ की सामर्थ्य हाथ से ज्यादा की नहीं हो सकती। अगर कानों से मुझे सुनोगे तो मेरे शब्दों को ही सुनोगे, मेरे शून्य को न सुन पाओगे। वह कान की सामर्थ्य नहीं।

आंख देख सकती है, कान सुन सकता है। कान देख नहीं सकता, आंख सुन नहीं सकती। ऐसे ही आंख खोल कर कुछ दिखाई पड़ता है और कुछ आंख बंद करके दिखाई पड़ता है। जो खोल कर दिखाई पड़ता है, वह स्थूल है। जो बंद करके दिखाई पड़ता है, वही सूक्ष्म है, वही सार है।

मेरे साथ आंख बन्द करके सम्बन्ध जोड़ो; वही असली सम्बन्ध है। जो कहता हूं वह तो सुना; जो नहीं कहता हूं, वह भी सुनो। जो मैं दिखाई पड़ता हूं वह तो देखो, लेकिन जो मैं दिखाई नहीं पड़ता हूं वह भी देखो। क्योंकि ऐसे ही तुम अपने भीतर भी उसे देख सकोगे जो दिखाई नहीं पड़ता और वह सुन सकोगे जो सुनाई नहीं पड़ता। ऐसे अगम की यात्रा शुरू होती है। अच्छा हुआ कबीर!

तुम कहते हो : 'कबीर नहीं समझा, नहीं सुलझा।' समझने की बात नहीं है यह। समझने चलोगे, चूक जाओगे। यह तो दीवानों की बात है। समझदार कभी आंख बन्द करते हैं? वे तो आंख खोल कर ही देखते रहते हैं। वे तो आंख फाड़ कर देखते रहते हैं। समझदार को तो जो आंख से दिखाई पड़ता है, वह उसको ही मानता है। वह कहता है : जो दिखाई नहीं पड़ता, उसे हम मानते ही नहीं। वह तो कहता है : जो छूने में आता है, उसे ही हम मानते हैं। जो छूने में नहीं आता उसे हम नहीं मानते।

इसलिए तो समझदारों ने ईश्वर को इन्कार कर दिया है। आत्मा को इन्कार कर दिया है। प्रेम को इन्कार कर दिया है, सौन्दर्य को इन्कार कर दिया है। जीवन में जो भी बहूमूल्य है, सभी इन्कार कर दिया है। यह समझदारों का परिणाम है कि दुनिया कचरा हो गई है। कचरे ही कचरे का ढेर लग गया है। क्योंकि कचरा पकड़ में आता है। जाओ, गुलाब के फूल के पास खड़े हो जाओ। और कोई कहे सुन्दर है। और तुम कहो : 'कहां है सौन्दर्य? लाल तो दिखाई पड़ता है, फूल है। यह भी दिखाई पड़ता है। लेकिन सौन्दर्य कहां है? ले जाऊंगा इसे वैज्ञानिक के पास, रसायनविद के पास, केमिस्ट के पास, इसकी जांच-पड़ताल करवाऊंगा।' करवा लेना जांच-पड़ताल, सब रस छांट कर रख देगा रसायनविद। बता देगा : कितनी मिट्टी है, कितना पानी है, कितना सूरज है, कितनी हवा है—सब बता देगा। पंच तत्त्व तोड़ देगा अलग-अलग। और जब तुम उससे पूछोगे सौन्दर्य कहां है, तो कंधे बिचगायेगा। वह सौन्दर्य इसमें कहीं था नहीं। और अगर तुम्हें ज्यादा दिक्कत हो तो तुम वजन तौल सकते हो। फूल का वजन तौल लिया था, ये सब चीजें रखी हैं फूल में से निकाल कर संशलिष्ट इनका वजन तौल लो, दोनों का वजन बराबर है।

जो तराजू की तौल में आता है वही सब कुछ है? जिन्दा आदमी था, मर गया, दोनों का वजन तौल लो, बराबर है। तराजू की तौल से कुछ चूक जाता है। अभी बोलता था, अब नहीं बोलता—वजन बराबर है। अभी डोलता था, अब नहीं डोलता—वजन बराबर है। अभी इसे तुम घर में मेहमान बना कर रखने को राजी थे,अब चले अर्थी पर बांध कर। कुछ फर्क हो गया। कुछ बात बदल गई। सत्तर साल यहां रहा, अब सात घन्टे तुम घर में नहीं रोकना चाहते इसे। क्योंकि अब बदबू फैलेगी, अब सड़ेगा। कोई पक्षी उड़ गया भीतर से, लेकिन पक्षी कोई ऐसा उड़ा है जिसमें वजन नहीं है, जो वजन के बाहर है। कोई चैतन्य तिरोहित हो गया।

वजन में ही सब समाप्त नहीं होता। खुली आंख से ही सब दिखाई नहीं पड़ता। समझदारी सभी कुछ नहीं पकड़ पाती। और जब हम समझदारी के चमचे से सब

कुछ पकड़ने चलते हैं, समझदारी के आधार को ही सब कुछ मान लेते हैं, मापदण्ड बना लेते हैं, तो जो भी महत्त्वपूर्ण है, चूक जाता है; जो भी सार्थक है, चूक जाता है। अगर आज दुनिया में आदमी अनुभव करता है जीवन व्यर्थ है, तो कोई और जिम्मेदार नहीं, हमारे तथाकथित समझदार जुम्मेवार हैं।

तो कबीर! समझदारी की फिक्र छोड़ो। मैं यहां समझदारी देने को हूं भी नहीं, समझदार तुम वैसे ही काफी हो, मैं तुम्हें थोड़ा ना-समझदार बना सकूं तो काम हो जाये। बुद्धिमान तुम वैसे ही काफी हो। मैं तुम्हें थोड़ा दीवाना बना सकूं तो काम हो।

यहां तो पागल समझ पायेंगे और समझदार पागल की तरह छूट जायेंगे। बाहर रह जायेंगे। यह दीवानों की बस्ती है। यहां समझदारी का हिसाब ही मत लगाना। वह कसौटी यहां काम की नहीं है।

तुम कहते हो : 'कबीर नहीं समझा।' नहीं समझ सकते हो, क्योंकि यह बात समझने की नहीं है। अगर समझ को पकड़े रहे तो यह बात चूक जायेगी। अगर इस बात को पकड़ना हो, समझ छोड़ो। इसलिए श्रद्धा का इतना मूल्य है। श्रद्धा का अर्थ क्या होता है? —— समझ के पार भी कुछ है। अदृश्य भी कुछ है। अगोचर भी कुछ है। श्रद्धा का और क्या अर्थ है? श्रद्धा का इतना ही अर्थ है कि मैं बुद्धि पर समाप्त नहीं करता अस्तित्व को; बुद्धि के पार भी अस्तित्व का फैलाव है, यह अंगीकार करता हूं; यद्यपि सिद्ध न कर सकूंगा, क्योंकि सिद्ध तो वही होता है जो बुद्धि के भीतर हो। मैं असिद्ध को भी मानता हूं। असिद्ध में भी मेरी श्रद्धा है। जो तर्क से निर्णीत नहीं होता, उसका भी मुझे एहसास होता है।

तुम प्रेम को सिद्ध कर पाओगे? लेकिन प्रेम का अनुभव होता है। तुम काव्य को सिद्ध कर पाओगे? काव्य सिद्ध नहीं होता, विज्ञान सिद्ध होता है। लेकिन विज्ञान आदमी को यन्त्र देता है—और यन्त्रवत बना देता है। यान्त्रिकता भी दे देता है। काव्य मनुष्य को पंख देता है——आकाश में उड़ने का आमन्त्रण देता है। काव्य मनुष्य को अलौकिक की तरंग देता है।

आंख बन्द करके जो होगा वह काव्य है। आंख खुला-खुला जो हो रहा है, वह सब ज्ञान-विज्ञान है।

एक झरोखा खुला था आंख बन्द करके। समझने की कोशिश मत करना, नहीं तो झरोखा बंद हो जायेगा। ये झरोखे बड़े नाजुक हैं। समझदारी जैसा पत्थर ये नहीं सह पाते। ये फूल जैसे नाजुक हैं। तुमने उठाया, तर्क का पत्थर दे मारा, फूल नष्ट हो जायेगा। और यह मत सोचना कि जो नष्ट हो गया वह व्यर्थ था। और जो बच गया वह सार्थक है। क्योंकि क्षुद्र हमेशा ही बच जाता है। व्यर्थ बच

जाता है, सार्थक ही नष्ट होता है। जितनी बहुमूल्य चीज हो, उतनी जल्दी नष्ट हो जाती है, उतनी नाजुक होती है। इस जगत में श्रद्धा से नाजुक और कुछ भी नहीं। बड़ी छुई-मुई है। जरा में नष्ट हो सकती है। जरा-सा सन्देह, जरा-सा तर्क —और श्रद्धा तिरोहित हो जाती है। श्रद्धा को टिकाना कठिन से कठिन कला है—और जिसे आ गई, वही धार्मिक है।

तो कबीर! समझने की कोशिश मत करो। और तुम कहते हो: 'कबीर नहीं समझा, नहीं सुलझा।' सुलझाने का सवाल ही नहीं है। यह कोई उलझन थोड़े ही है, जिसे सुलझाना है। यह तो रहस्य है, जिसमें उतरना है, डुबकी मारनी है।

जीवन को समस्या की तरह देखने का ढंग उचित नहीं है। अगर तुम मेरी बात ठीक से सुन रहे हो——तो जीवन को समस्या बना देने में ही भूल है। जीवन रहस्य है——जीने के लिए। नाचो! गाओ! गुनगुनाओ! सुलझाना क्या है? सुलझाओगे क्या? सुलझा-सुलझा कर मिलेगा क्या? दस हजार वर्ष से दर्शनशास्त्र सुलझा रहा है, क्या सुलझा पाया है? कुछ भी नहीं सुलझा पाया। सच तो यह है, बात और उलझ गई। सुलझाने में उलझ गई। सुलझाने चले थे, उलझती चली गई। असल में सुलझाने का भाव ही इस बात की स्वीकृति है कि तुमने मान ही ली——एक बात तो तुमने मान ही ली——कि जगत उलझा हुआ है, तुम्हें सुलझाना है।

मैं तुमसे कहना चाहता हूं: यहां कुछ उलझा ही नहीं है। सब सुलझा ही सुलझा है। सब सीधा-साफ है। लेकिन, अगर तुम सुलझाने का मजा लेना चाहते हो तो फिर उलझाना पड़ेगा। फिर तुम्हें ऐसे प्रश्न उठाना पड़ेंगे जो जिन्दगी को उलझा दें। फिर एक खेल में तुम पड़ गये: खुद उलझाते हो, खुद सुलझाते हो। फिर इसका कोई अन्त नहीं है। अगर उलझाने की आदत बन गई तो तुम उलझाए चले जाओगे। हर प्रश्न का उत्तर दस नये प्रश्न खड़े कर देगा।

इस जिन्दगी को समस्या की तरह लेना ही मत। जिन्दगी वरदान है, समस्या नहीं है। भेंट है परमात्मा की, प्रसाद है, अनुग्रह है। झेलो! जितना ले सको ले लो, पियो! पचाओ! तुम्हारी मास-मज्जा में घुल जाने दो। तुम्हारे रोएं-रोएं में समा जाने दो।

इसलिए धार्मिक व्यक्ति वह है, जो जीवन को सुलझाना नहीं चाहता——सुलझाने के उलझाव में पड़ता ही नहीं। धार्मिक व्यक्ति वह है, जो जीवन जीता है। चांद निकलता है तो चांद के साथ आनन्दित होता है; चिन्ता में नहीं पड़ता कि चांद पर क्या है——मिट्टी है कि पत्थर है कि झील है कि पहाड़ है? सूरज निकलता है तो सूरज के सामने झुक जाता है आह्लाद से। सूर्य-नमस्कार में! प्रकाश का आगमन हुआ है। आनन्दित हो उठता है। रात कटी। अन्धेरा होता है तो

अन्धेरे की शान्ति अनुभव करता है। रोशनी होती है तो रोशनी की स्पष्टता अनुभव करता है।

जो भी होता है उसको अनुभव करता है; लेता है, अपने भीतर लेता है। और समस्या बनाता नहीं, प्रश्न-चिह्न लगाता नहीं। किसी चीज पर प्रश्न-चिह्न न लगाना धार्मिक आदमी का लक्षण है। वह पूछता ही नहीं क्यों?

फर्क समझना! दार्शनिक वृत्ति का आदमी आता है मेरे पास, वह पूछता है: 'ईश्वर है या नहीं? आत्मा है या नहीं? मोक्ष है या नहीं? धार्मिक वृत्ति का व्यक्ति मेरे पास आता है, वह कहता है: 'ईश्वर को हम कैसे जियें?' ईश्वर के साथ हम कैसे लवलीन हो जायें?' अगर ईश्वर शब्द का उपयोग न करना हो, न करो—कहो: 'अस्तित्व के साथ हम कैसे लवलीन हो जायें? जो है, उसके साथ हम कैसे लवलीन हो जायें?' यह आकांक्षा बड़ी भिन्न है। सुलझाव का सवाल नहीं है। वह सिर्फ इस विराट अस्तित्व में डुबकी मारने की कला सीखना चाहता है।

सुलझाना क्या है? सुलझाने-योग्य समय भी कहां है? यह छोटी-सी जिन्दगी, इसे सुलझाने-सुलझाने में नष्ट हो जाओगे। मौत आयेगी और तुम प्रश्नों से घिरे बैठे रहोगे। जाने दे प्रश्नों को।

बुद्ध के पास जब भी कोई नया आदमी आता था और प्रश्न पूछता था, तो बुद्ध अक्सर कहते थे, तू दो साल रुक। दो साल मत पूछ। दो साल मेरे पास बैठ, उठ, जी—बिना पूछे। ध्यान कर, शान्त हो, प्रसन्न हो, आनंदित हो, मगर प्रश्न मत उठा। दो साल बाद फिर पूछ लेना।

एक दिन ऐसा ही हुआ। मौलुंकपुत्र नाम का प्रसिद्ध दार्शनिक बुद्ध के पास आया, और उसने कहा कि मेरे पास कुछ प्रश्न हैं जिनके उत्तर मैं तलाश रहा हूं, जिन्दगी मेरी हो गई है। बड़े-बड़े सन्तों के पास गया हूं, कोई उत्तर नहीं पाया है। अब आखिरी आशा से आपके पास आया हूं। अगर आपके पास उत्तर न मिला तो मैं बहुत निराश हो जाऊंगा, क्योंकि और सब हार गये, बड़े-बड़े हार गये।

बुद्ध ने कहा: मौलुंकपुत्र! तू दो साल रुक, चुपचाप बैठ। मुझे जी। मेरे पास रह। मेरी उपस्थिति को अनुभव कर। ध्यान में डूब। शान्त हो। फिर दो साल बाद पूछ लेना। जो फिर भी तुझे पूछना हो, मैं उत्तर दूंगा। मैं आश्वासन देता हूं, जरूर उत्तर दूंगा।

मौलुंकपुत्र सोचने लगा—दो साल! प्रश्नों के उत्तर के लिए! फिर बुद्ध ने कहा: तू जिनके भी पास गया था, उन्होंने तक्षण उत्तर दे दिये थे। कुछ तुझे मिला नहीं। मैं तुझे तत्क्षण उत्तर नहीं देता चाहता हूं। नहीं तो तुझे फिर भी कुछ नहीं मिलेगा। तू रुक, तू इतना धैर्य रख।

सोच कर मौलुंकपुत्र ने कि सब जगह भटक भी चुका हूं, ठीक है, दो साल ये भी जायें। दांव पर लगाना है, जुआ खेलना है। और क्या भरोसा, दो साल बाद यह आदमी जो उत्तर देगा वे मेरे काम के होंगे कि नहीं, मुझे तृप्त करेंगे कि नहीं? जब वह यह सोच ही रहा था, तभी बुद्ध का एक दूसरा शिष्य पास के ही बृक्ष के नीचे मस्त बैठा था। वह खिलखिला कर हंसने लगा। मौलुंकपुत्र ने पूछा: इसमें हंसने की क्या बात है? उस शिष्य ने कहा: पूछना हो अभी पूछ लो। यही धोखा मुझे दिया गया था। ये दो साल गुजर गये। अगर पूछना हो तो अभी पूछ लो। मैं भी दो साल पहले ऐसे ही आया था। मैं धोखा खा गया।

पर बुद्ध ने कहा: तुझे पूछना है, तो तू अब पूछ। वह भिक्षु कहने लगा: यही तो मेरी मुश्किल है। इन दो साल में प्रश्न तिरोहित हो गये। जीवन में इतना आनन्द है!

जीवन अपने में समाधान है।

इसलिए तो हम ध्यान की परम अवस्था को समाधि कहते हैं। समाधि और समाधान एक ही शब्द से बनते हैं। समाधान प्रश्नों के उत्तर में नहीं है। समाधान तो चित्त की उस समाधि-अवस्था में है जहां कोई प्रश्न नहीं रह जाते, निर्विचार दशा फलित होती है।

मौलुंकपुत्र रुका। दो साल पूरे हो गये। बुद्ध ने याद रखा था। दो साल पूरे होने पर, ठीक, बुद्ध ने कहा: मौलुंकपुत्र! दो साल पूरे हो गये, अब तू पूछ ले।

मौलुंकपुत्र हंसने लगा। उसने कहा: आपने मुझे भी धोखा दिया। वह भिक्षु ठीक कहता था। अब मेरे पास पूछने को कुछ भी नहीं। पूछने में ही गलती थी। उत्तर सब सही थे, मगर पूछने में ही गलती हो रही थी। आज मैं कह सकता हूं कि जो-जो उत्तर मुझे मिले थे, सब सही थे। लेकिन पूछने में ही गलती हो गई थी।

पूछा जिसने वह उतर कभी नहीं पा सकता। इसलिए तुम यह तो कहो ही मत कबीर, कि सुलझा नहीं। सुलझाने की बात ही नहीं है यहां। यहां हम मानते ही नहीं कि कुछ उलझा है। सब सुलझा ही है। देखते नहीं, चांद-तारे कितनी व्यवस्था से चल रहे हैं! ऋतुएं कितनी व्यवस्था से आती हैं! जीवन कैसा चुपचाप कितना नियोजित, संगीतपूर्ण चल रहा है! देखते नहीं इस विराट को, यहां सब सुलझा है! उलझा कहां है? इस कोयल की कुहू-कुहू से लेकर चांद-तारों तक सब सुलझा है। उलझे हो तो तुम उलझे हो।

और तुम्हारा उलझाव क्या है? तुम्हारी पहली मान्यता कि जीवन प्रश्न है। वहीं भूल हो गई। पहले कदम पर भूल हो गई। और जिसका पहला कदम गलत पड़ जाता है, फिर उसकी पूरी यात्रा गलत हो जाती है।

लौटो, वापिस आओ ! पहला कदम वापिस लो। प्रश्न जाने दो--उत्तर आयेंगे। और यह चमत्कार है। जब तक प्रश्न होते हैं, उत्तर नहीं आते। जब प्रश्न नहीं होते, उत्तर आते हैं। यह कहना ठीक नहीं--उत्तर आता है। क्योंकि एक ही उत्तर है।

तीसरा प्रश्न--

भारतीय मनीषी अर्थहीनता और ऊब की उतनी चर्चा नहीं करते जितनी प्रेम की, ध्यान की और आनन्द की करते हैं। क्या प्रेम, ध्यान और आनन्द की सीधी चर्चा जीवन की अर्थहीनता और ऊब को जानने में उपयोगी है? कृपा करके कहें।

❋ पश्चिम में चर्चा होती है कि जीवन ऊब है, अर्थहीन है, व्यर्थ है, कोई सार नहीं, असार है। उस चर्चा का परिणाम ही यह हुआ है कि लोगों ने धीरे-धीरे यह स्वीकार कर लिया कि जीवन व्यर्थ है, असार है। लोग उदास हो गये हैं। लोगों ने अपने जीवन में जड़ें खो दी हैं। लोग यूं ही जी रहे हैं। बस मरने की राह जैसे देख रहे हों। जीवन की उत्फुल्लता चली गई है।

और यद्यपि पश्चिम के विचारक जो कहते हैं उसमें थोड़ी सच्चाई है, पर आधी सच्चाई है। केवल आधी। जीवन ऊब है, जीवन व्यर्थ है और जीवन असार है। हमारे मनीषियों ने भी कहा है कि जीवन व्यर्थ है और असार है। लेकिन उतना ही कह कर चुप नहीं रह गये। वह आधा वचन है। जीवन असार है, क्योंकि एक और भी जीवन है, जो सार है। यह जीवन असार है, मगर जीवन मात्र असार नहीं है। यह जीवन व्यर्थ है, मगर एक और भी आयाम है जीवन का, जो सार्थक है।

यह आधा वचन है कि जीवन असार है। जीवन असार तभी कहा जा सकता है जब कहीं सार हो। नहीं तो असार भी कैसे कहोगे? किस तुलना में कहोगे? किसी आदमी को गरीब कह सकते हो, क्योंकि अमीर होते हैं। अगर अमीर होते ही न हों, तो किसको गरीब कहोगे? किसी को सुन्दर कहते हो, क्योंकि असुन्दर होता है कोई। अगर असुन्दर कुछ होता ही न हो, तो सुन्दर किसे कहोगे? और अगर सुन्दर होता ही न हो, तो फिर असुन्दर कहने में क्या अर्थ है?

पश्चिम के मनीषियों के वक्तव्य बेमानी हैं। यह कहना कि जीवन अर्थहीन है--पर्याप्त नहीं है, अधूरा है। किसकी तुलना में? किस अपेक्षा में? किस पृष्ठ-भूमि में? पूरब के मनीषी पृष्ठभूमि की भी बात करते हैं। एक आनंद की संभावना है आदमी को, इसलिए यह जीवन दुख है। यह जीवन कांटा है, क्योंकि एक फूल खिल सकता है। और स्वभावतः उनका जोर फूल पर ज्यादा है। क्योंकि कांटे पर क्या जोर देना? कांटे को तो तुम जानते ही हो। कांटा तो तुम्हारी छाती में चुभा ही है। घाव तो तुम्हारी जिन्दगी में बने ही हैं। अब इसकी और क्या बात करनी! तुम्हारे घावों को और क्या उकसाना!

पूरब का मनीषी उस दूसरे जगत की चर्चा करता है--ध्यान की, प्रेम की, आनंद की, महोत्सव की--ताकि तुम्हें यह याद आ जाये कि जिस जिन्दगी को तुमने जिन्दगी समझा, वह काफी नहीं है। अभी और बहुत बाकी है, और थोड़े आगे चलो। वह आगे की बात करता है, ताकि तुम आगे चलो।

एक सूफी कहानी है। एक लकड़हारा जिन्दगी-भर लकड़ी काटता रहा। एक फकीर उसे रोज लकड़ी काटते देखता। और जब भी वह फकीर के पास से गुजरता तो औपचारिक रूप से, जैसा पूरब के लोग करते हैं, फकीर के चरण छूता। फकीर उससे कहता : और आगे। वह जरा हैरान होता कि यह फकीर कुछ झक्की मालूम होता है। हम करते हैं राम-राम, यह कहता है : और आगे! यह कोई उत्तर हुआ? लेकिन उसे यह उत्तर परेशान करने लगा। चला जाये, मगर सोचे कि और आगे! यह भी कोई उत्तर हुआ! हमने सिर्फ जयराम जी की थी, झुक कर नमस्कार किया था; 'और आगे' का क्या मतलब? यह आदमी पागल है। मगर यह उत्सुकता उसकी बढ़ती गई कि कहीं कुछ मतलब हो ही न! एक दिन उसने पैर पकड़ लिये, उसने कहा : महाराज! और आगे का मतलब समझा दें। मेरी कुछ समझ में नहीं आता!

फकीर ने कहा : लकड़ी ही काटता रहेगा जिन्दगी-भर?--और आगे! जरा आगे जा। तू यहीं से लकड़ी काटकर ले जाता है! जरा आगे तो जा आज और देख।

वह आदमी आगे गया। वह चकित हो गया! वहां उसे एक तांबे की खदान मिल गई! अब तो वह बेच लेता एक दिन तांबा ले जाकर बाजार में, महीने-पन्द्रह दिन के लिए निश्चिन्त हो जाता। फकीर का बड़ा अनुगृहीत था। रोज आता नमस्कार करने, लेकिन फकीर था कि वही कहे चला जाता--और आगे! एक दिन उसने कहा कि अब और क्या आगे? फकीर ने कहा : वहीं मत रुक जा पागल! और भी आगे अभी जंगल है, तू जरा जा।

वह आगे गया, और उसे चांदी की खदान मिल गई। और ऐसे ही कहानी चलती रही, और फकीर कहता रहा--और आगे! एक दिन उसे सोने की खदान मिल गई। अब तो कहना ही क्या था! अब तो उसने फकीर के पास नमस्कार करने भी आना बन्द कर दिया था। अब सार ही क्या था? सोना, मतलब आखिरी चीज मिल गई। लेकिन फकीर भी एक ही था, जिस दिन उसने आना बन्द किया वह उसके द्वार पर जाकर दस्तक मारने लगा कि 'और आगे!' उस आदमी ने कहा, मुझे माफ करो। अब मुझे कहीं नहीं जाना। अब बहुत मिल गया--अपने लिए नहीं, पीढ़ी-दर-दर पीढ़ी के लिए काफी मिल गया। लेकिन फकीर था कि आता ही रहा

और कहता रहा कि--'और आगे!' आखिर उत्सुकता जगी उस आदमी को--कब तक? जैसे मैं तुमसे रोज कहे चला जाता हूं। कब तक? और आगे! एक दिन उसने कहा, एक दफा कोशिश करके देख ली जाये, इतने दिन तक तो यह आदमी सही साबित हुआ, पता नहीं... । हीरों की खदान मिल गई। तब बड़ा दुखी हुआ कि सुनी नहीं मैंने बात। लेकिन वह फकीर तो एक ही था, वह तो कहे ही चला जाये--और आगे! अब तो उसने बड़ा महल बनवा लिया था। अब तो वह लकड़हारा सम्राटों की तरह रहने लगा था। लेकिन वह फकीर था कि आता चला जाये।

एक दिन उस लकड़हारे ने कहा कि अब और आगे क्या हो सकता है? बात खतम हो गई। उस फकीर ने कहा : और आगे मैं हूं। हीरे पर बात खतम नहीं होती। बात तो परमात्मा पर खतम होगी। और जब तक तू परमात्मा को नहीं खोज लेता, तब तक मैं कहे चला जाऊंगा--और आगे!

पूरब के मनीषी आनन्द की बात करते हैं, क्योंकि वहां पहुंचना है। तुम्हारे दुख की चर्चा उठा कर ज्यादा सार नहीं है। थोड़ी-बहुत चर्चा करते हैं, ताकि तुम्हें याद आ जाये कि तुम दुख में हो। तुम तो भुलाकर बैठे हो कि दुख में हो। अगर भुलाओ न तो इतनी आसानी से बैठ भी नहीं सकते। दुकान पर बैठे हो, भुलाए बैठे हो। घर में बैठे हो, भुलाए बैठे हो। दुख बहुत है। कोई पूछता है : कहो जी कैसे हो? तुम कहते हो : 'सब चंगा है।' चंगा कहीं दिखाई पड़ता नहीं। 'सब ठीक है।' क्या ठीक है? खाक ठीक है। मगर एक उपचार है। कहने की बात है। कहनी चाहिए सब ठीक है, तो कहते हो।

तो पूरब के मनीषी तुम्हें थोड़ी याद भी दिलाते हैं कि सब ठीक नहीं है, सब गलत है अभी। जरा और आगे चलो, सब ठीक होने का समय आ सकता है। सब ठीक हो सकता है, मगर अभी है नहीं।

पश्चिम में जो अस्तित्ववादी विचारक हैं, जिनकी इस सदी पर बड़ी छाप पड़ी है, वे सिर्फ इसी की बात करते हैं कि यह व्यर्थ, वह व्यर्थ। स्वभावतः अगर सब व्यर्थ है और कुछ सार्थक कहीं है ही नहीं, और सार्थक कभी होगा भी नहीं, तो मनुष्य के जीवन का रस एकदम छिन जाता है। फिर आदमी जिये क्यों? फिर आदमी आत्मघात क्यों न कर ले? फिर जीने का प्रयोजन क्या है? फिर यह बोझ क्यों ढोना, अगर वह बिलकुल ही निरर्थक है? अगर यह खेती से कभी कुछ मिलेगा नहीं, अगर इस फुलवारी में कभी फूल आयेंगे ही नहीं, अगर यह गीत कभी जमेगा ही नहीं, यह वीणा कभी बजेगी ही नहीं--तो फिर सार क्या है, तोड़ क्यों न दें इसे? वह भी बात उठनी शुरू हो गयी है।

अल्बर्ट कामू ने लिखा है : आत्मघात के अतिरिक्त और कोई असली दार्श-

निक समस्या नहीं है। एक ही असली दार्शनिक समस्या है कि आदमी जिये क्यों? और पश्चिम में आत्मघात बढ़ा है--बड़ी संख्या में बढ़ा है। रोज संख्या बढ़ती जा रही है आत्मघात की। और न केवल व्यक्तिगत रूप से आत्मघात की संख्या बढ़ रही है, बल्कि किसी अचेतन प्रक्रिया में पूरी मनुष्य-जाति सामूहिक आत्मघात का आयोजन कर रही है। तुम्हारे अणुबम, तुम्हारे उद्‌जन बम, तुम्हारे नाइट्रोजन बम --और क्या हैं? एक सामूहिक आत्मघात का आयोजन! इस पृथ्वी को नष्ट कर डालने का आयोजन।

वैज्ञानिक कहते हैं : अब हमारे पास इतनी क्षमता है कि इस पृथ्वी को हम सात बार नष्ट कर सकते हैं। मगर फिर भी आयोजन चलते जा रहे हैं, अभी बढ़ते ही जा रहे हैं। बमों के ढेर लगते जा रहे हैं। अब तो कोई जरूरत भी नहीं, सात बार मार सकते हो एक-एक आदमी को। कहां तक बचेगा आदमी? पहली दफा में मर जाता है, कोई आदमी इतनी ताकतवर चीज थोड़े ही है। सात बार मार सकते हैं हम एक-एक आदमी को। हम भूत-प्रेतों को भी बचने न देंगे। अब किसलिए आयोजन? अब काफी नहीं हो गया आयोजन? मगर आयोजन चल रहा है। राशि बढ़ती चली जाती है। विस्फोट किसी भी दिन हो सकता है। यह पूरी पृथ्वी, ऐसा लगता है, किसी अचेतन आत्महत्या की आकांक्षा से भरी है। और उसके पीछे इसी तरह के विचारों का हाथ है--जो कहते हैं : कुछ भी सार नहीं। जब सार ही नहीं तो ठीक है, मरने में फिर क्या बुराई है?

पूरब ने भी कहा है कि जिन्दगी में सार नहीं, लेकिन सिर्फ इसीलिए कहा है --एक और जिन्दगी है। बुद्ध ने भी कहा है, जीवन दुख है। अब यह बड़े मजे की बात है कि बुद्ध कहते हैं जीवन दुख है, और बुद्ध से ज्यादा आनन्दित आदमी तुमने कहीं देखा? बुद्ध कहते हैं जीवन व्यर्थ है, और बुद्ध से ज्यादा सार्थक जीवन तुमने कभी देखा? और बुद्ध कहते हैं यहां कुछ भी नहीं है, और बुद्ध से ज्यादा समृद्धि तुमने कहीं देखी?

पूरब का मनीषी जब कहता है जीवन असार है तो इसीलिए कहता है, ताकि तुम भीतर मुड़ सको। पश्चिम का विचारक 'जीवन असार है' कह कर रुक जाता है। और आधे सत्य असत्यों से भी खतरनाक हो जाते हैं। और यह जीवन असार क्यों है? फिर इतने लोग जी क्यों रहे हैं? उन्हें इसमें भी कहीं कुछ सार दिखाई पड़ रहा है। जैसे चांद झलका हो झील में; मगर झील में जो चांद झलक रहा है, वह कितना ही झूठा हो, एक बात तो पक्की है कि किसी असली चांद की झलक दे रहा है। असली चांद न हो, तो झील में झूठा चांद भी नहीं झलक सकता। माना कि जब तुम आईने के सामने खड़े होते हो तो आईने में तुम्हारी जो तस्वीर होती है

वह झूठी है, उसका कोई अस्तित्व नहीं है। लेकिन तुम्हारे बिना वह तस्वीर नहीं हो सकती। तुम हो, वह तस्वीर तुम्हारी खबर दे रही है।

दिल की धड़कन तेरी पलकों की झपक में उमड़ी
देर तक राज़ रहे राज़ तो खुल जाता है
अपनी किरनों को समेटे हुए हंगामे-सफर
चांद शबनम में उतरता है तो ढल जाता है

घास की एक पत्ती पर, ओस की बूंद जमी, पूरा चांद आकाश में दौड़ रहा है, अपनी यात्रा पर निकला है, ओस की छोटी-सी बूंद में चांद झलक रहा है। चांद असली है, ओस की बूंद क्षणभंगुर; लेकिन ओस की बूंद में चांद झलक रहा है-- बड़ा प्यारा चांद!

अपनी किरनों को समेटे हुए हंगामे-सफर
चांद शबनम में उतरता है तो ढल जाता है

लेकिन यह एक बूंद सरकी-सरकी, हवा का यह झोंका आया, सरकी, सरकी, गई, मिट्टी में गिरी, खो गई। इस बूंद में जो झलकता था चांद वह भी ढल गया। मगर असली चांद नहीं ढल गया है। असली चांद अब भी आकाश में है। दर्पण को तोड़ दो, तुम थोड़े ही टूट जाओगे।

हमने संसार में जो सार देखा है, वह भी परमात्मा की झलक है।

संसार असार है। इसको ही जो सार मान लेता है वह गलती में पड़ा है। लेकिन सार की तरफ इशारा है। झलक इसमें जिसकी पड़ रही है, वह सच है। संसार दर्पण है। इसलिए हम दर्पण की भी बात करते हैं, उसके दुख की भी बात करते हैं, लेकिन ज्यादातर हम उस परमात्मा की बात करते हैं, जिसकी छाया इस दर्पण में पड़ रही है। तुम्हें छाया से मुक्त करना है। उस छाया का नाम ही माया है। और तुम्हें छाया के मालिक की तरफ ले चलना है।

पूरब का विचार तुम्हें एक यात्रा पर गतिमान करता है। पश्चिम का विचार तुम्हें घबड़ा देता है, बीच में थका कर बिठा देता है। पश्चिम का विचार तुम्हें निस्तेज कर देता है, तुम्हारे पैर की गति छीन लेता है। नाच तो दूर, चलना तक भुला देता है। पूरब का विचार चलना तो सिखाता ही है, नाच भी सिखाता है। वही पैर जो सिर्फ चलना जानते थे, जब नाचने लगते हैं, जब उनमें घूंघर बजते हैं, जब कोई मीरा नाच उठती है--तब पूरब का विचार प्रतिफलित होता है।

पूरब परम आनंद में भरोसा करता है, इसलिए कहता है कि जीवन दुख है। उतनी ही बात को मानकर जो चल पड़ेगा वह अड़चन में पड़ जायेगा। पश्चिम ने अभी पूरी बात सुनी नहीं।

और फिर मैं दोहरा दूं: अधूरे सत्य असत्यों से भी खतरनाक होते हैं, क्योंकि उनमें सच्चाई होती है। सच्चाई की वजह से बल होता है। मगर अधूरी सच्चाई लोगों को भटकाती है, भरमाती है।

आई न फिर नजर कहीं, जाने किधर गई
उन तक तो साथ गर्दशे शामो-सहर गई
कुछ इतना बेसबात था, हर जलवा-ए-हयात
लौट आई जख्म खाके जिधर भी नजर गई
आ देख मुझसे रूठने वाले तेरे बगैर
दिन भी गुजर गया, मेरी शब भी गुजर गई
नादिम है अपने-अपने करीने पर हर नजर
दुनिया लहू उछाल के कितनी निखर गई
मिलती है हर्फे-जर्फ मये-गम भी ऐ नदीम
तकदीर जो बिगड़ न सकी वो संवर गई
शबनम हो, कहकशां हो, सितारे हों, फूल हों
जो शै तुम्हारे सामने आई निखर गई
'बाकी' दिले हजीं के संभलने की देर थी
हर चीज अपनी-अपनी जगह पे ठहर गई

सिर्फ दुखी हृदय के संभलने की बात है। 'बाकी' दिले हजीं के संभलने की देर थी। बस दुख से भरे हृदय के संभल जाने की बात है। हर चीज अपनी-अपनी जगह पे ठहर गई। इधर भीतर तुम्हारे विचार रुक जाएं, बाहर सब रुक जाता है। मन रुके, सारा संसार रुक जाता है। मन रुके कि तुम परिवर्तन के बाहर हो गये। तुम प्रवाह के बाहर हो गये, तुम्हारा शाश्वत से नाता हो गया। वह शाश्वत ही परमात्मा है--जो सदा है, सदा था, सदा होगा। उस सदा के साथ सम्बन्ध जोड़ने में ही आनन्द की वर्षा है।

क्षणभंगुर में तो दुख होगा ही। बबूलों से प्रेम करोगे, बबूले टूट जायेंगे, पछताओगे, रोओगे। बबूलों से आसक्ति लगाओगे, कितने दिन तक आंसुओं को रोक सकोगे? जाते के साथ सम्बन्ध जोड़ोगे, फिर पछताओगे, फिर पीड़ा उठेगी, फिर जख्म हो जायेंगे। जो न आता, न जाता, जो सदा है, उससे सम्बन्ध जोड़ लो उससे ही असली नाता है।

'बाकी' दिले हजीं के संभलने की देर थी
हर चीज अपनी-अपनी जगह पर ठहर गई
शबनम हो, कहकशां हों, सितारे हों, फूल हों

जो शै तुम्हारे सामने आई निखर गई।

और एक बार शाश्वत से सम्बन्ध जुड़ जाए, तो फिर सब चीजें निखर जाती हैं। फिर कांटे भी फूल हो जाते हैं। फिर रातें भी दिन हो जाती हैं। फिर मृत्यु में भी अमृत के दर्शन होते हैं।

चौथा प्रश्न--

भगवान! हिन्दू धर्म पांच हजार साल पुराना है, बौद्ध और जैन धर्म ढाई हजार साल पुराने हैं। इस्लाम केवल सोलह सौ साल पुराना है; वह नया होने के बावजूद भी इतना पुराना क्यों लगता है?

❋ पूछा है पाकिस्तान से आये हुए मित्र फिरोज ने।

मनुष्य एक ही सदी में हों तो भी एक ही सदी में नहीं होते। यह बीसवीं सदी है। सभी लोग बीसवीं सदी में नहीं हैं। अभी तुम्हें जंगल में ऐसे आदमी मिल जायेंगे, जो पांच हजार साल पहले रह रहे हैं। आदिवासी हैं--वे अभी भी, पांच हजार साल पहले जैसा आदमी जीता था, वैसे जी रहे हैं। उनको तुम बीसवीं सदी का हिस्सा नहीं मान सकते। उनके धर्म, उनके विचार इस सदी के नहीं हैं, पांच हजार साल पुराने हैं। अगर उन आदिवासियों से जाकर मुझे बात करनी पड़े, तो जो बात मैं तुमसे कर रहा हूं, यह बात इसी तरह उनसे नहीं कर सकूंगा। मुझे उनकी भाषा में बात करनी पड़ेगी। मुझे उनके ढंग में बात करनी पड़ेगी। मुझे अनुवाद करना होगा पांच हजार साल पुरानी बात में, तब कहीं वे समझ पायेंगे।

इसलिए धर्मों के अलग-अलग जन्म हुए, अलग-अलग देशों में, अलग-अलग परिस्थितियों में। हिन्दू धर्म पांच हजार साल पुराना है, ज्यादा पुराना भी हो सकता है। पांच हजार साल पुराना है, इतना तो तय ही है। लेकिन यह देश हजारों साल से धर्म की दिशा में बड़ा मन्थन करता रहा है, बड़ा चिन्तन करता रहा है। इसने बड़े परिष्कार किये। तो पांच हजार साल पहले भी वेदों ने जो ऊंचाई ले ली, वह बाद में आनेवाले धर्म न ले सके। क्योंकि बाद में आनेवाले धर्म इतनी परिष्कृत संस्कृति में पैदा नहीं हुए।

मुहम्मद को जिन लोगों से बात करनी पड़ी, उनसे अगर वे उपनिषद की भाषा बोलते, उपनिषद जैसे वचन बोलते तो वे समझते ही नहीं। मुहम्मद को तो उनकी ही भाषा में बोलना पड़ा। इस्लाम जहां पैदा हुआ वह संस्कृति अपरिष्कृत थी, परिष्कृत नहीं थी। बहुत जड़ अंधविश्वासी लोग थे। मुहम्मद की पूरी जिन्दगी इसी झंझट में बीती। मुहम्मद शान्ति का संदेश लाये, लेकिन हाथ में तलवार रखनी पड़ी। क्योंकि वहां तलवार के सिवा दूसरी कोई भाषा समझी नहीं जाती थी। मुहम्मद ने अपनी तलवार पर खोद रखा था--'शान्ति मेरा संदेश है।' तलवार पर खोदना

पड़े--शान्ति संदेश है!

'इस्लाम' शब्द का अर्थ होता है शांति। शांति का धर्म। खबर तो देनी थी शांति की, मगर लोग लड़ाक थे, खूंखार थे, युद्ध के सिवा दूसरी चीज जानते नहीं थे। मरना और मारना, यही उनकी भाषा थी। मुहम्मद जिन्दगी-भर भागते फिरे, अपने को बचाते फिरे।

तुम जरा सोचो, बुद्ध पर ऐसा नहीं गुजरा कि तलवार लिए और भागते फिरे, छिपते फिरे--एक गांव से दूसरे गांव। बुद्ध को अगर ऐसा झेलना पड़ता, तो बुद्ध जो बोले, वह नहीं बोल सकते थे। फिर उन्हें मुहम्मद की भाषा में बोलना पड़ता। मुहम्मद को अगर बुद्ध जैसे लोग मिले होते चारों तरफ, तो मुहम्मद बुद्ध की भाषा में बोलते। इस पर निर्भर करता है कि किन लोगों से बोली जा रही है बात।

मुहम्मद को बहुत कठिनाई से अपनी बात पहुंचानी पड़ी। मुहम्मद का प्रयास बुद्ध के प्रयास से ज्यादा बहुमूल्य है, क्योंकि बुद्ध तो साफ-साफ कह रहे हैं, सुनने वाले लोग साफ-साफ सुनने में समर्थ हैं। तुम्हें पता है, इस देश में हमने किसी बुद्ध को सूली नहीं दी। किसी बुद्ध को मारा नहीं, हत्या नहीं की। वह इस देश की भाषा नहीं। पांच हजार साल निरन्तर सोचने-विचारने का यह परिणाम हुआ कि सोचने-विचारने में एक उदारता आ गई।

मुहम्मद जिन लोगों के बीच जिये वे उदार नहीं थे--कठोर लोग थे, खूंखार लोग थे। हालांकि कठोर और खूंखार होने के बावजूद उनमें एक खूबी थी, जो हमेशा कठोर लोगों में होती है। जितना जंगली आदमी होता है उतना सीधा-सरल भी होता है। और जितना परिष्कृत आदमी होता है उतना जटिल और चालबाज भी होता है। बुद्ध को हमने मारा नहीं, क्योंकि यह परिष्कृत देश है। लेकिन बुद्ध को मिटाने की हमने परिष्कृत कोशिश की।

फर्क समझ लेना। हिन्दुओं ने कथा लिखी है बुद्ध के बाबत। बुद्ध को स्वीकार कर लिया कि ये दसवें अवतार हैं हमारे-- वैसे ही जैसे कृष्ण, जैसे राम। ये बड़े होशियार लोग थे जिन्होंने कहा कि बुद्ध हमारे दसवें अवतार हैं-- भगवान का अवतार हैं! मगर कहानी जो घड़ी वह यह कि भगवान ने दुनिया बनाई, नर्क बनाया स्वर्ग बनाया, मगर लोग पाप करते ही नहीं थे तो नर्क कोई जाता नहीं था। नर्क खाली ही पड़ा था। नर्क में शैतान बैठा है अपने सिंहासन पर, अपने सिपाहियों को लिए, न कोई आता न कोई जाता। सदियां बीत गईं, आखिर शैतान भी परेशान हो गया। उसने भगवान से कहा कि सार क्या है नर्क को रखने का? अगर कोई पाप करता नहीं, कोई दण्डित होता नहीं, तो मुझे छुटकारा दो, हम नाहक दण्ड पा रहे हैं। हम वहां बैठे क्या करें? यह दफ्तर चलता ही नहीं। यह बन्द करो, यह खाता

समाप्त करो।

तो भगवान ने कहा : तू ठहर, मैं जल्दी ही बुद्ध के रूप में अवतार लूंगा, लोगों को भ्रष्ट करूंगा। और जब लोग भ्रष्ट हो जायेंगे तो नर्क में ऐसी भीड़ मचेगी, तुझसे सम्हले न सम्हलेगा।

अब सुन रहे हो यह कहानी? बुद्ध की गर्दन नही काटी, मगर किस होशियारी से काटी! शब्द से काटी। तर्क से काटी। भगवान भी मान लिया। इतने परिष्कृत लोग थे कि एकदम इनकार भी नहीं कर सके, आदमी तो महिमाशाली था! मगर इनके सारे धर्म के विपरीत था। इनके सारे क्रियाकाण्ड के विपरीत था। इनके हवन-यज्ञ के विपरीत था। इनके पाण्डित्य, पुरोहित के विपरीत था। आदमी तो बहुमूल्य था, मगर इनके विपरीत था। ये इनकार भी नहीं कर सके कि इस आदमी में कुछ महत्त्वपूर्ण है। तो भगवान का अवतार भी मान लिया, पीछे के दरवाजे से यह कहानी भी जोड़ दी— 'मानना मत बुद्ध को, नहीं तो नरक जाओगे। बुद्ध भगवान के अवतार हैं।' यह देखते हो तरकीब? और बुद्ध धर्म को उखाड़ फेंका भारत से।

मुहम्मद के पीछे लोग तलवार लेकर पड़े रहे। मगर मुहम्मद को उखाड़ नहीं पाये। हिन्दुस्तान में बुद्ध के पीछे तलवार लेकर नहीं पड़े और बुद्ध को उखाड़ दिया।.. चालबाज!

जितना सुंस्कृत आदमी होता है, उतना ही चालबाज भी हो जाता है, चालाक हो जाता है।

मुहम्मद कठोर लोगों के बीच में थे, मगर सीधे-सादे, भोले-भाले लोगों के बीच में थे। जंगली आदमी अक्सर भोले-भाले होते हैं। दोनों बातें होती हैं। जूझेंगे तो तलवार से लड़ लेते हैं और अगर झुक गये तो गर्दन सामने कर देते हैं। न मारने से डरते हैं, न मरने से डरते हैं। और मरने-मारने की सीधी भाषा बोलते हैं। कोई तर्क वगैरह का सवाल नहीं है। एक ही तर्क जानते हैं—सीधा प्रकृति का तर्क। तो मुहम्मद को कठिनाई भी बहुत थी। बिलकुल अविकसित लोगों के बीच धर्म की खबर पहुंचानी थी। और दूसरी तरफ सरलता भी बहुत थी।

तो इस्लाम अपरिष्कृत धर्म है। इसलिए तुम्हारा कहना ठीक है फिरोज, कि चौदह सौ साल पुराना धर्म है, लेकिन ऐसा लगता है बहुत पुराना हो। उससे तो हिन्दू धर्म बहुत पुराना है, लेकिन उतना पुराना नहीं लगता। अब जैसे कोई चोरी करे, उसके हाथ काट दो। अब यह बात बेहूदगी की है। यह ऐसा लगता है जैसे बहुत जंगली जमाने की बात आ गई। और पाकिस्तान में अभी किया जा रहा है—'कोई चोरी करे, उसके हाथ काट दो। बलात्कार कोई कर दे तो उसकी गर्दन काट दो।' सजा मिलनी ठीक है, मगर यह जरा जरूरत से ज्यादा हो गई।

मेरी एक संन्यासिनी ईरान में थी—कमल। उसे तो रीति-रिवाज ईरान के कुछ पता नहीं। पश्चिम की लड़की है। पश्चिम की खुली हवा में पली है। वह एक पहाड़ी झरने पर मस्त होकर नहा रही थी और वहां पर कोई था भी नहीं, कि चार-पांच ईरानी आ गये और उन्होंने बलात्कार किया। फिर वे पकड़े गये। जब वे पकड़े गये, तब कमल बहुत घबड़ायी। उसने मुझे पत्र लिखा वहां से, कि जल्दी से मुझे खबर करें मैं क्या करूं? क्योंकि अगर मैं कहती हूं कि मेरे साथ बलात्कार हुआ है तो ये पांच आदमियों को फांसी लग जायेगी।

यह जरा जरूरत से ज्यादा है। जिसके साथ बलात्कार हुआ है, वह लड़की लिख रही है कि यह जरा जरूरत से ज्यादा है। इनको सजा तो मिलनी चाहिये, मगर फांसी! और ये पांच आदमी मारे जायें, तो मैं जिन्दगी-भर इस अपराध से मुक्त न हो सकूंगी कि मुझे लगेगा कि मेरी जुम्मेवारी है।

तो मैंने उसे लिखा कि तू जो ठीक समझे वैसा कर! उसने इनकार कर दिया अदालत में, कि मेरे साथ बलात्कार नहीं हुआ है।

यह एक परिष्कृत संस्कृति की बात हुई। बलात्कार हुआ है, क्रुद्ध थी बहुत। उसके साथ ज्यादती की गई। उसके साथ जो बुरा से बुरा हो सकता वह किया गया। लेकिन, फिर भी एक परिष्कृत संस्कृति का लक्षण है कि अदालत में उसने इनकार कर दिया कि मेरे साथ कोई बलात्कार नहीं हुआ है। यह खबर झूठी है।

यह पांच आदमियों की हत्या हो जाये, यह बात उसकी समझ में नहीं आयी। उसको भरोसा ही नहीं आया। इनको दो-चार साल की सजा हो जाती, ठीक था। लेकिन इनको रास्ते पर खड़ा करके इनकी गर्दन काट दी जायेगी, तो वह घबड़ा गई कि यह पांच आदमियों की कटती हुई गर्दन सदा मेरा पीछा करेगी। मुझे लगेगा मेरा हाथ है। इतना तो कुछ बड़ा कसूर न था।

इस्लाम चौदह सौ साल पुराना धर्म है, लेकिन उसकी अपरिष्कृत दशा देखकर अगर सोचो तो वह हिन्दुओं से ज्यादा पुराना धर्म है। और बौद्धों से तो बहुत ही ज्यादा पुराना धर्म है। जैनों से तो बहुत ही पुराना धर्म है। क्योंकि कहां बुद्ध की करुणा, और कहां चोर चोरी कर ले, उसके हाथ काट डालना!

ताओ पांच हजार साल पुरानी परम्परा है चीन में और मुझे सदा से कहानी प्रिय रही है, मैंने बहुत बार कही है। लाओत्सु एक दफा न्यायाधीश बना दिया गया था। तो पहला ही मुकदमा आया, एक आदमी ने चोरी की थी। गांव के सबसे बड़े साहूकार के घर चोरी की थी। और उसने मुकदमा सुना और उसने दोनों को छह-छह महीने की सजा दे दी—साहूकार को भी, और चोर को भी!

यह ढाई हजार साल पुरानी घटना है। मार्क्स इत्यादि को पीछे छोड़ दिया।

साहूकार तो समझा ही नहीं। उसने कहा कि यह माजरा क्या है ! होश में हो? मेरे घर में चोरी हुई और मुझे सजा दी जा रही है !

लाओत्सु ने कहा : हां। क्योंकि तुमने इतना धन इकट्ठा कर लिया है कि अब चोरी न हो तो और क्या हो ? यह आदमी नम्बर दो का कसूरवार है, नम्बर एक का कसूरवार तुम हो। तुमने सारे गांव का धन इकट्ठा कर लिया है। चोरी तो होगी ही। तुम चोरी पैदा करने के मूलस्रोत हो। तुम धन्यभागी हो कि मैं तुम्हें बराबर सजा दे रहा हूं; नहीं तो तुम्हें ज्यादा सजा मिलनी चाहिये। इस आदमी ने तो सिर्फ चोरी की है थोड़ी-बहुत, यह करे क्या ?

सम्राट तक अपील गई। सम्राट को भी बात तो जची, लेकिन यह तो खतरनाक बात है। अगर यह बात सच है तो सम्राट खुद ही चोर है! उसने लाओत्सु से हाथ जोड़कर क्षमा मांगी कि आप विदा हों, यह आपका काम नहीं।

मगर देखते हो यह परिष्कार! ढाई हजार साल पहले लाओत्सु वह कह रहा है जो कम्युनिज्म को भी पीछे छोड़ दे, साम्यवाद को पीछे छोड़ दे, समाजवाद को पीछे छोड़ दे।

चीन परिष्कृत देश है। कन्फ्यूसियस और लाओत्सु जैसे लोगों ने उसको परिष्कार दिया। हजारों साल की पुरानी कथा है, लाओत्सु के पहले हजारों साल तक चीन परिष्कृत होता रहा। मुहम्मद के पहले तुम कोई नाम ले सकते हो अरब में ? कोई नाम नहीं है। मुहम्मद से अरब का इतिहास शुरू होता है। मुहम्मद के पहले कोई नाम नहीं है, एक भी नाम नहीं है। इस देश में तुम अगर नामों की गिनती करो तो गिनते चले जाओ, गिनते चले जाओ, गिनती न कर पाओ। फिर मुहम्मद के बाद भी कोई ऐसा नाम नहीं है जो मुहम्मद की ऊंचाई पर आता हो। इस देश में बुद्धों पर बुद्ध हुए हैं, एक-दूसरे से बढ़-चढ़ कर हुए हैं। चमकते सूरज ! उनका सिलसिला जारी रहा है।

मुहम्मद को बड़े अंधेरे से लड़ना पड़ा है--बड़े पुराने अंधेरे से ! और बड़े जंगली लोगों के बीच संदेश देना पड़ा है। इसलिए भाषा सन्देश की बहुत जड़ है।

मुझसे लोग कहते हैं कि मैं कुरान पर क्यों नहीं बोल रहा हूं ? इसलिए बचाए जाता हूं। क्योंकि कुरान पर बोलूं तो मैं ईमानदारी नहीं कर सकूंगा। मुझे कुछ बातें छोड़ देनी पड़ेंगी। वे मैं नहीं कह सकूंगा। मुझे कुछ बातों का विरोध भी करना पड़ेगा। जिस भांति मैं उपनिषद से पूरा-पूरा राजी हो जाता हूं, वैसा मैं पूरा-पूरा कुरान से राजी नहीं हो सकूंगा। क्योंकि मैं जिनसे बोल रहा हूं वे दूसरे तरह के लोग हैं।

मुहम्मद ऐसे हैं जैसे प्राईमरी स्कूल में कोई शिक्षक। इस देश में बोलने का मतलब होता है, विश्वविद्यालय की अन्तिम कक्षा। इसलिए फिरोज तुम्हारा कहना ठीक है, कि चौदह सौ साल पुराना होने पर भी इस्लाम इतना पुराना क्यों मालूम होता है ? अपरिष्कृत है। और फिर एक तरह की जड़ता पकड़ गई, क्योंकि जड़ लोग थे जिन्होंने मुहम्मद का अनुगमन किया। जो लड़े, वे भी जड़ थे; जो उनके साथ आये वे भी जड़ थे। वहां जड़ ही लोगों का जमाव था। जो साथ आ गये वे भी जड़ थे। उन्होंने मतांध होकर मुहम्मद ने जो कहा, उसे पकड़ लिया। फिर उसमें कोई सुधार नहीं किया।

यह जानकर तुम हैरान होओगे, कुरान पर कोई टीका नहीं लिखी जाती। इधर हम परिष्कार करते चले जाते हैं। हर सदी में हम फिर से टीका लिखते हैं ब्रह्मसूत्र पर, उपनिषद् पर, गीता पर, क्योंकि सदी में कुछ बढ़ाव हो गया। हमें उपनिषद को खींच कर इस सदी तक लाना पड़ता है। इस सदी को हमें समाहित कर देना होता है।

जब मैं बुद्ध पर बोलता हूं, तो क्या तुम सोचते हो सिर्फ बुद्ध पर बोल रहा हूं ? ढाई हजार साल में जो हुआ है वह भी उसमें सम्मिलित कर रहा हूं। बुद्ध को मैं आधुनिक कर रहा हूं। क्योंकि मैं बोल ही नहीं सकता बुद्ध पर बिना ढाई हजार साल को सम्मिलित किये। मैं ढाई हजार साल बाद आया हूं, तो ढाई हजार साल में जो कुछ घट गई हैं, इतनी दुनिया में बातें, आदमी ने जो-जो अनुभव कर लिए हैं, जो विचार कर लिए हैं, वे सब उसमें सम्मिलित हो रहे हैं। कुरान वहीं के वहीं है। चौदह सौ साल पुरानी थी, वहीं के वहीं है। कुरान बन्द डबरा हो गया, उपनिषद अभी भी बहती धारा है। अभी भी लोग आते हैं और उपनिषद को आगे बहा देते हैं। इसलिए उपनिषद का रोज-रोज नया संस्करण होता चला जाता है। कुरान वहीं के वहीं ठहरा हुआ है।

तो एक अर्थ में हिन्दू, जैन, बौद्ध बहुत पुराने हैं और एक अर्थ में बहुत नये हैं। तो कुरान बहुत नया है एक अर्थ में और दूसरे अर्थ में बहुत पुराना है। फिरोज का प्रश्न ठीक है। कुरान को भी खींच कर लाने की जरूरत है। कुरान को भी आधुनिक बनाने की जरूरत है, उसमें भी हीरे पड़े हैं। उसमें भी बड़ी बहुमूल्य बातें छिपी हैं। मगर वे हीरे अनगढ़ हैं। जैसे खदान से निकाले गये हों। उन पर बड़ी छैनी मारनी पड़ेगी। उनको बड़ा तराशना पड़ेगा। उनको बड़ा काटना पड़ेगा।

तुम्हें पता है, जब कोहिनूर हीरा मिला था, तो अभी उसका जितना वजन है, इससे तीन गुना ज्यादा था। वजन तो ज्यादा था लेकिन कीमत कुछ भी नहीं थी। अब वजन तो तीन गुना कम है लेकिन कीमत करोड़ गुनी है। क्या हुआ, वजन कम हुआ और कीमत बढ़ी! खूब तराशा गया है ! नये-नये पहलू निकाले गये हैं। जो-जो

व्यर्थ था झाड़ दिया गया है।

कुरान अनतराशा है। हीरा है खदान से निकला हुआ। उस पर तराशा नहीं गया। और जिन लोगों ने कुरान को स्वीकार किया उनमें इतनी हिम्मत नहीं थी कि उसको तराशें। उन्होंने तो जैसा है बस वैसा रखने की कोशिश की। उन्होंने उसे सुरक्षित रखा है--ठीक वैसा का वैसा सुरक्षित रखा है; जरा भी हेर-फेर नहीं होने दिया। रक्षा तो पूरी की है, लेकिन हीरा अनगढ़ रह गया है। उस पर नयी टीकाएं चाहिये। उस पर नए वक्तव्य चाहिए। उस पर नये मनीषियों के बोल चाहिए। मगर नये मनीषियों के बोल सहने की हिम्मत मुसलमान की नहीं। वह तो नाराज हो जाये। वह तो बर्दाश्त ही न करे, अनुग्रह की तो बात अलग।

सारी दुनिया में मेरे संन्यासी हैं--पाकिस्तान को छोड़ कर। पाकिस्तान से मित्र आते हैं, ऐसा नहीं है कि नहीं आते--आते हैं, छिपे-छिपे आते हैं। फिरोज का ही आना हुआ है छिपे-छिपे। फिरोज संन्यासी होना चाहता है, लेकिन नहीं हो सकता, क्योंकि वहां गैरिक वस्त्र... कि जिन्दा रहना मुश्किल हो जाये। गले में माला...कि गले का बचना मुश्किल हो जाये।

मुसलमान स्वागत नहीं करेंगे, अगर कुरान में नये विचारों के आविर्भाव हों, नयी शाखाएं उगायी जायें, नयी कलमें लगायी जायें अर्थ की। तो बजाय इसके कि वे धन्यवाद करें, एकदम नाराज हो जायेंगे। इसलिए कुरान जड़ हो गया है। होना नहीं चाहिये ऐसा।

कुरान प्यारी किताब है। थोड़ी-सी प्यारी किताबों में एक किताब है। उसमें खूब रहस्य हैं, मगर निखार की जरूरत है। बड़े निखार की जरूरत है। और मुसलमान की तैयारी नहीं है उस निखार के लिए। मुसलमान छूने नहीं देता। वह कहता है, कुरान में संशोधन हो ही नहीं सकता। तो कहता है, कुरान आखिरी किताब है; परमात्मा ने अपना अन्तिम संदेश भेज दिया। परमात्मा अपना अन्तिम संदेश कभी भेज नहीं सकता। परमात्मा के सभी संदेश आते रहेंगे, बदलते रहेंगे। समय बदलेगा, स्थिति बदलेगी, लोग बदलेंगे, संदेश बदलेगा। अन्तहीन है यह सिलसिला। इसलिए इस्लाम पुराना मालूम पड़ता है।

मैंने सूफियों पर बोलना शुरू किया, क्योंकि मुसलमानों में सूफी ही एकमात्र थोड़े हिम्मतवर लोग हैं। लेकिन उनके साथ मुसलमानों ने कोई अच्छा सलूक नहीं किया। मुसलमान उन्हें कुछ मुसलमान मानने को राजी नहीं हैं। मन्सूर को फांसी लगा दी। सूफी फकीरों को सताया गया है, परेशान किया है। और सूफी फकीर भी बोलते हैं तो जैसे जबान पर ताले पड़े हों।

घटना प्यारी है, तुम्हारी समझ में आये तो अच्छा होगा--

अलहिलाज़ मन्सूर ने घोषणा की अनलहक की--अहं ब्रह्मास्मि। इस देश में कोई ऐसी घोषणा करता है तो कोई ऐसी घबड़ाहट नहीं हो जाती। हम जानते हैं कि यह परम सत्य है। कभी-कभी लोग वहां तक पहुंचते हैं। और चाहे कोई पहुंचे चाहे न पहुंचे, यह हमारा अनुभव है कि वस्तुतः हम सब वही हैं; या कम से कम हमारी श्रद्धा है कि वस्तुतः हम सब वही हैं--परमात्म-स्वरूप हैं।

तो जब अलहिलाज़ मन्सूर ने कहा, अनलहक, मैं सत्य हूं, मैं परमात्मा हूं... अगर हिन्दुस्तान में कहा होता तो हमने उसे सिर पर उठा लिया होता; हमने उसे उपनिषद के ऋषियों के साथ गिना होता। लेकिन मुसलमानों ने बड़ी दिक्कत दे दी, मारने को तैयार हो गये। मन्सूर का गुरु था--जुन्नैद। खुद भी उपलब्ध व्यक्ति था, सिद्ध पुरुष था। जुन्नैद ने मन्सूर को पास बुलाया और कहा: सुन, तू क्या सोचता है, तुझे ही पता चला है अनलहक का, हमको पता नहीं चला? हमको भी पता है, लेकिन मुंह पर ताले डाले हैं। मुंह बंद कर ले, नहीं तो जिन्दगी गंवानी पड़ेगी।

मन्सूर ने कहा: अगर मैं कह रहा होता तो मुंह बंद कर लेता, वही कह रहा है। अब उसका मुंह मैं कैसे बंद करूं? जब कहेगा तो कहेगा, जब नहीं कहेगा तो नहीं कहेगा। और आपने मुंह पर ताले डाले हुए हैं, यह बात सुनकर शर्म से मेरा सिर झुका जाता है, कि मेरे गुरु ने अपने मुंह पर ताले डाले हुए हैं।

जुन्नैद व्यर्थ की झंझट में नहीं पड़ना चाहता था। जो बातें उसे कहनी होती थीं, अपने शिष्यों को कहता था। समूह में कहना व्यर्थ की झंझट थी। लेकिन मन्सूर ने घोषणा समूह में करनी शुरू कर दी। वही हुआ जो होना था। जुन्नैद ने उसको फिर बुलाकर कहा कि देख, तू अपनी मृत्यु को पास बुला रहा है। तू नाहक मारा जायेगा। मुझे दुख होता है। तू मेरे प्यारे शिष्यों में एक है, मेरे पहुंचे हुए शिष्यों में एक है। और तू जो कह रहा है, ठीक कह रहा है; लेकिन अब तेरी मौत करीब आ रही है। क्योंकि राजा के अंदेशे मेरे पास आने लगे हैं, संदेशे मेरे पास आने लगे हैं कि मन्सूर को रोको। राजा तो यह भी धमकियां दे रहा है, चूंकि मेरा शिष्य है तू, मैं भी झंझट में पडूंगा। तो राजा ने कहा, या तो मन्सूर को रोको या मन्सूर को त्याग दो। ज़ाहिर कर दो वह तुम्हारा शिष्य नहीं है।

मन्सूर ने कहा: जैसी आपकी मर्जी। लेकिन मैं क्या कर सकता हूं? जब घोषणा होगी तो होगी।

जुन्नैद ने यह सोच कर कि यह यहां से जाये, कहा कि तू काबा की परिक्रमा कर आ।

पता है, मन्सूर ने क्या किया? वह उठा, उसने जुन्नैद की परिक्रमा की। उसने कहा : मेरे काबा आप! मेरे मन्दिर आप!

जुन्नैद ने उसे त्याग दिया। हिम्मतवर न रहा होगा। जुन्नैद के त्यागे जाने पर उसकी हत्या की गई, उसे मारा गया। एक लाख आदमी इकट्ठे हुए थे उसकी हत्या देखने। उसे पत्थर मारे गये, कूड़ा-करकट फेंका गया, गालियां दी गईं। लोग जब पत्थर फेंक रहे थे, तब वह हंस रहा था। यह दिखाने को कि जुन्नैद भी उसकी हत्या से सहमत है, जुन्नैद भी गया। और उसने सिर्फ एक फूल फेंक कर मारा, ताकि लोग समझें कि वह भी कुछ मार रहा है। उसके फूल के गिरते ही मन्सूर रोया। पास खड़े किसी आदमी ने पूछा कि इतने पत्थर मारे जा रहे हैं, तुम हंसते रहे हो; इस फूल के मारे जाने से क्यों रोते हो ? तो उसने कहा : और सब तो अनजाने मार रहे हैं, माफ किये जा सकते हैं; लेकिन यह जिसने मारा है, वह जानता है कि मैं सही हूं। यह फूल भी चोट करता है। वे पत्थर भी चोट नहीं करते थे।

मन्सूर को इस तरह मारा गया, जैसे कभी किसी को नहीं मारा गया था--जीसस को भी नहीं मारा गया था। पहले उसके पैर काट दिये। फिर उसके हाथ काट दिये। फिर उसकी आंखें फोड़ दीं। ऐसा अंग-अंग . . . घन्टों चला यह काम। फिर उसकी जबान काट दी। फिर उसे, तड़फती उस लाश को पड़ा रहने दिया वहां कि वह मर जाये अपने-आप।

सुकरात को यूनानियों ने जहर दिया था, मगर जहर दे दिया, बात खतम हो गई। जीसस को सूली पर लटका दिया, बात खतम हो गई। लेकिन यह कौन-सी सूली थी ? यह सताया जाना था। मगर मन्सूर भी खूब था ! पैर काटे गये, वह हंसता रहा। हाथ काटे गये, वह हंसता रहा। आंखें फोड़ी गईं और उसने आंखें ऊपर उठाईं और हंसा और जबान काटने के पहले उसने फिर उद्घोषणा की--अनलहक ! उसने कहा : अब इसके बाद मेरी जबान न बचेगी, फिर मैं घोषणा न कर सकूंगा, फिर परमात्मा मुझसे न बोल सकेगा। तो आखिरी बार घोषणा कर देता हूं--अहं ब्रह्मास्मि !

लोगों ने उससे पूछा कि तुम इतने आनन्द से क्यों मर रहे हो ? मरता कोई आनन्द से नहीं है। तो उसने कहा : मैं नहीं मर रहा हूं, इसलिए आनन्द से मर रहा हूं। मैं जानता हूं कि जो मेरे भीतर है वह अमृत है। तुम कितना ही मारो मुझे, मार न सकोगे।

कृष्ण ने कहा न--नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः। न मुझे शस्त्र छेद सकते हैं, न मुझे आग जला सकती है।

मगर इस्लाम सूफियों को भी न पचा सका। सूफियों को पचा लेता तो इस्लाम नया धर्म हो जाता। सूफी इस्लाम के गहरे से गहरे व्यक्ति हैं, और ऊंचे से ऊंचे फूल। सूफियों को इस्लाम पचा लेता तो इस्लाम आधुनिक रहता। इस तरह का जड़ न रहता, जैसा है। मगर सूफियों को न पचा सका। सूफियों को भी मारा। सूफियों को भी त्याग दिया। इस्लाम बुरी तरह पण्डित, पुरोहित और मौलवी के हाथ में पड़ा है। इसलिए पुराना मालूम पड़ता है। मगर हीरे वहां हैं, और कीमती हीरे वहां हैं। उनको अगर निखारा जा सके, उनको अगर तराशा जा सके, तो बड़े कोहिनूर पैदा हो सकते हैं।

आज इतना ही।

सुन्दर सहजै चीन्हियां

पांचवां प्रवचन : दिनांक ५ जून, १९७८; श्री रजनीश आश्रम, पूना

हिन्दू की हदि छाड़िकैं, तजी तुरक की राह ।
सुन्दर सहजैं चीन्हियां, एकैं राम अलाह ॥

मेरी मेरी करत हैं, देखहु नर की भोल ।
फिरि पीछे पछिताहुगे (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥
किये रुपइया एकठे, चौकूंटे अरु गोल ।
रीते हाथिन वैं गये (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥

चहल-पहल सी देखिकैं, मान्यौ बहुत अंदोल ।
काल अचानक लै गयौ (सु) हरि बोलौ हरि बोल । ।
सुकृत कोऊ ना कियौ, राच्यौ झंझट झोल ।
अंति चल्यौ सब छाड़िकैं (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥

पैंडो ताक्यौ नरक कौ, सुनि-सुनि कथा कपोल ।
बूड़े काली धार में (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥
माल मुलक हय गय घने, कामिनी करत कलोल ।
करहुं गये बिलाइकैं, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥
मोटे मीर कहावते, करते बहुत डफोल ।
मरद गरद में मिलि गये, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥
ऐसी गति संसार की, अजहूं राखत जोल ।
आपु मुये ही जानिहै, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥
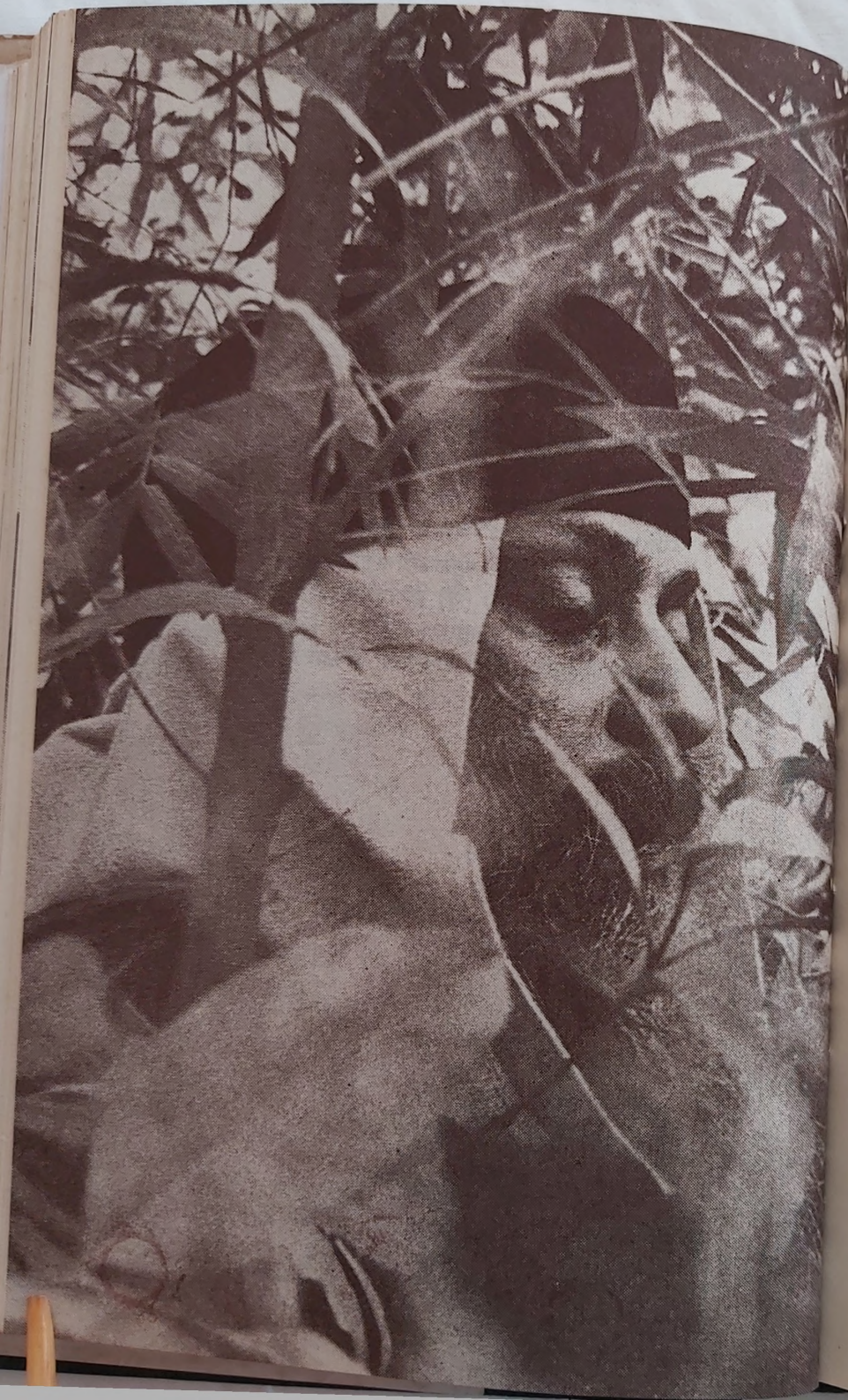
ख्यालो-शेर की दुनिया में जान थी जिनसे
फजाए-फिक्रो-अमल अरगवान भी जिनसे
वो जिनके नूर से शादाब थे महो-अन्जुम
जुनूने-इश्क की हिम्मत जवान थी जिनसे
वो आरजूएं कहां सो गई हैं मेरे नदीम ?
वो नासबूर निगाहें, वो मुन्तजिर राहें
वो पासे जब्त से दिल में दबी हुई आहें
वो इन्तिजार की रातें, तबील तीरह-व तार
वो नीम-ख्वाब शबिस्तां, वो मखमली बाहें
कहानियां थीं कहीं खो गई हैं मेरे नदीम !
मचल रहा है जिंदगी में खूने-बहार
उलझ रहे हैं पुराने गमों से रूह के तार
चलो, कि चलके चिरागां करें दियारे-हबीब
है इन्तिजार में अगली मोहब्बतों के मजार
मोहब्बतें जो फना हो गई हैं मेरे नदीम !

यहां जो भी है सब खो जाता है। यहां जो भी है खोने को ही है। यहां मित्रता खो जाती है, प्रेम खो जाता है; धन, पद, प्रतिष्ठा खो जाती है। यहां कोई भी चीज जीवन को भर नहीं पाती; भरने का भ्रम देती है, आश्वासन देती है, आशा देती है। लेकिन सब आशाएं मिट्टी में मिल जाती हैं, और सब आश्वासन झूठे सिद्ध होते हैं। और जिन्हें हम सत्य मानकर जीते हैं वे आज नहीं कल सपने सिद्ध हो जाते हैं। जिसे समय रहते यह दिखाई पड़ जाये उसके जीवन में क्रान्ति घटित हो जाती है। मगर बहुत कम हैं सौभाग्यशाली जिन्हें समय रहते यह दिखाई पड़ जाये। यह दिखाई सभी को पड़ता है, लेकिन उस समय पड़ता है जब समय हाथ में नहीं रह जाता। उस समय दिखाई पड़ता है जब कुछ किया नहीं जा सकता। आखिरी घड़ी में दिखाई

पड़ता है। श्वास टूटती होती है तब दिखाई पड़ता है। जब सब छूट ही जाता है हाथ से तब दिखाई पड़ता है। लेकिन तब सुधार का कोई उपाय नहीं रह जाता। जो समय के पहले देख लें, और समय के पहले देखने का अर्थ है, जो मौत के पहले देख लें। मौत ही समय है।

ख्याल किया है तुमने, हमने मृत्यु को और समय को एक ही नाम दिये हैं-- काल। काल समय का भी नाम है, मृत्यु का भी। अकारण नहीं, बहुत सोचकर ऐसा किया है। समय मृत्यु है; मृत्यु समय है। मृत्यु आ गई, फिर कुछ करने का उपाय नहीं। मृत्यु के पहले जो जागता है उसके जीवन में संन्यास फलित होता है; उसकी जीवन-यात्रा नये अर्थ लेती, नयी दिशाएं लेती। यदि जो हम यहां इकट्ठा कर रहे हैं व्यर्थ है तो स्वभावतः हमारी इकट्ठे करने की दौड़ कम हो जाती है। करनी नहीं पड़ती, हो जाती है कम। हमारी जो पकड़ है, शिथिल हो जाती है। आयोजन नहीं करना पड़ता शिथिल करने का; अभ्यास नहीं करना पड़ता। अगर राख ही है तो तुम मुट्ठी को जोर से बांधकर रखोगे कैसे? हीरा मानते थे तो मुट्ठी जोर से बांधी थी; समझ में आनी शुरू हो गई राख है, मुट्ठी खुल गई। सहज ही खुल जाती है। इसलिए संन्यास सहज ही है।

और जो संन्यास आयोजित करना पड़ता है, व्यवस्था जमानी पड़ती, अभ्यास करना पड़ता है, जिस संन्यास के लिए संघर्ष करना पड़ता है, वह झूठ है। संन्यास साधना नहीं है, जीवन की व्यर्थता का बोध है। और जीवन व्यर्थ है, उसमें सार्थकता देखना चमत्कार है। रोज कोई मरता है, फिर भी तुम्हें अपनी मौत दिखाई नहीं पड़ती! रोज किसी की अर्थी उठती है, मगर तुम सोचते हो तुम्हारी शहनाई सदा बजती रहेगी। रोज तुम देखते हो, कोई उठ गया और सब पड़ा रह गया, फिर भी तुम पकड़े चले जाते हो, फिर भी तुम दौड़े चले जाते हो, उसी सबको इकट्ठे करने में लगे रहते हो। और ऐसा नहीं है कि दूर अपरिचित लोग मरते हैं; ऐसा कोई घर कहां है जहां मृत्यु न घटी हो? तुमने बुद्ध की कहानी तो सुनी है न?

किसा गौतमी नाम की एक स्त्री का बेटा मर गया। एक ही बेटा था; पति पहले ही जा चुका था, विधवा का बेटा था। सारा सहारा था। अचानक उसकी मृत्यु हो गई। रात सोया, सुबह नहीं जगा। बीमारी भी नहीं हुई; बीमारी भी होती तो इलाज करने का तो कम से कम आयोजन कर लेती, कुछ उपाय कर लेती। कुछ उपाय का भी मौका न मिला, उतनी सांत्वना भी न मिली। किसा गौतमी पागल जैसी हो गई। छाती पीटती थी और गांव भर में अपने बेटे की लाश को लेकर घूमती थी कि कोई मेरे बेटे को जिला दो। लोग समझाते कि पागल, जो मर गया

सो मर गया; उसके जीने का कोई उपाय नहीं है। ऐसा कभी हुआ नहीं। लेकिन उसकी आशा, उसकी कामना, पीछा न छोड़ती।

फिर किसी ने सलाह दी कि बुद्ध का गांव में आगमन हुआ है; तू उनके पास जा। शायद उनके आशीष से कुछ हो जाए। किसा गौतमी ने बुद्ध के चरणों में ले जाकर अपने बेटे की लाश रख दी और उसने बुद्ध से कहा, जिला दो मेरे बेटे को। तुम्हारे आशीर्वाद से क्या न हो सकेगा? तुम एक बार कह दो कि मेरा बेटा जी उठे। बुद्ध ने कहा, जिला दूंगा, जरूर जिला दूंगा, लेकिन पहले एक शर्त पूरी करनी पड़ेगी। और शर्त यह है कि तू गांव में जा, और किसी के घर से थोड़ी-सी सरसों के दाने मांग ला; मगर घर ऐसा हो जिसमें मौत कभी न घटी हो।

मोह में, आशा में, उत्फुल्लता से भरी हुई किसा गौतमी गांव में दौड़ी घर-घर। उस गांव में सारे किसान ही थे। सभी के घरों में सरसों के बीज थे। यह भी कोई शर्त बुद्ध ने लगाई है! मगर उस किसा गौतमी को अपने मोह में यह दिखाई न पड़ा कि शर्त ऐसी है कि पूरी हो न सकेगी। जिस घर में कोई मृत्यु न हुई हो? द्वार-द्वार जाकर उसने झोली फैलाई और कहा, मुझे थोड़े-से दाने दे दो, शर्त एक ही है कि तुम्हारे घर में कोई मृत्यु न हुई हो। ऐसा कोई तो घर होगा। लेकिन लोग कहते, किसा गौतमी, तू पागल है, सब घरों में मृत्यु हुई है। मृत्यु जीवन की अनिवार्यता है; इससे कोई नहीं बच सकता। भिखमंगे से लेकर सम्राट के द्वार तक किसा गौतमी गई, सांझ होते-होते उसे सूझ आई। सांझ होते-होते उसे खयाल आया कि बुद्ध ने यह शर्त क्यों लगाई है--यही दिखाने को कि मौत सब जगह होती है; तू निरपवाद रूप से जान ले कि मौत सबकी होती है। मरना ही है। मरण जीवन का स्वभाव है। सांझ होते-होते हर द्वार से लौटी, खाली हाथ दिखाई पड़ा।

सांझ जब लौटी बुद्ध के चरणों में, उसने कहा, मेरे बेटे को मत जिलाएं; अब तो ऐसा कुछ करें कि मेरी मौत के पहले मैं जान लूं कि यह जीवन क्या है। बेटा तो गया; मैं भी जाऊंगी, यह भी स्पष्ट हो गया है। जो यहां हैं, सभी जायेंगे। अब मेरी सुबह की जिज्ञासा नहीं है, वह बात समाप्त हो गई। मुझे दीक्षा दें। अगर मृत्यु होनी ही है तो हो गई मृत्यु। अब जो थोड़े दिन बचे हों, थोड़ी सांस बची हों, इन थोड़ी सांसों से अमृत से सम्बंध जोड़ लूं, उससे सम्बंध जोड़ लूं जो मिलता है तो कभी खोता नहीं। अब पानी के बबूलों से और सम्बंध नहीं जोड़ने हैं। अब शाश्वत से नाता मेरा बना दें।

बुद्ध ने कहा, इसीलिए किसा गौतमी तुझे घर-घर भेजा था ताकि तेरी भ्रांति टूट जाये।

लोग ऐसा ही मानकर जीते हैं कि कहीं तो कोई अपवाद होगा। कहीं कोई

अपवाद नहीं है। समय रहते जो जाग जाता है, वह रूपान्तरित हो जाता है। लेकिन हम अपने को समझाये चले जाते हैं। हम कहते हैं, मौत होगी कल, आज तो अभी नहीं हुई है। अभी तो नहीं हुई है। अभी तो जी लें। सच तो यह है कि हम उलटे तर्क बना लेते हैं। हम कहते हैं, कल मौत होनी है इसलिए आज ठीक से जी लें। खाओ, पियो, मौज करो, क्योंकि कल मौत है।

ये दो तर्क हैं। दोनों मौत को तो मानते हैं। एक तर्क कहता है, कल मौत है इसलिए सोच लो, समझ लो, ध्यान-कर लो, जाग लो। दूसरा तर्क कहता है, कल मौत है, समय मत गंवाओ ध्यान-प्रार्थना इत्यादि में, भोग लो, चूस लो रस जितना संभव हो। ये दोनों एक ही बात को मानकर चलते हैं कि मौत है। अगर मौत है तो रस चूसकर भी क्या होगा ? ये थोड़ी-सी देर के स्वाद कितने दूर तक काम आयेंगे ? भुलावा हो जायेगा। थोड़ी देर के लिए मूर्च्छा सम्हल जायेगी। थोड़ी देर के लिए और सो लोगे। एक करवट और बदल लोगे। एक नया सुख यानी एक और करवट। फिर थोड़ी चादर ओढ़ ली, फिर एक झपकी ले ली, मगर नींद टूटनी ही है। सुबह होनी ही है।

आज की रात साजे-दर्द न छेड़ !

दुख से भरपूर दिन तमाम हुए
और कल की ख़बर किसे मालूम
दोशो-फ़र्दा की मिट चुकी हैं हुदूद
हो न यो अब सहर किसे मालूम
जिन्दगी हेच! लेकिन आज की रात
एज़दियत है मुमकिन आज की रात
आज की रात साजे-दर्द न छेड़

कल का तो कुछ पक्का नहीं है। सुबह हो न हो। कम से कम आज तो दर्द की बात मत उठाओ। आज तो साज मत छेड़ो दर्द का। कल तो मौत है, भुलाओ उसे। कुछ तो थोड़े रंगीन गीत गा लें।

अब न दोहरा फ़सानहार अलम,
अपनी क़िस्मत पे सोगवार न हो।
फ़िक्रे-फ़र्दा उतार दे दिल से
उम्रे-रफ्ता अश्कबार न हो
अहदे-गम की हिकायतें मत पूछ
हो चुकीं सब शिकायतें मत पूछ
आज की रात साजे-दर्द न छेड़

मत छेड़ो साजे-दर्द; किसी तरह आज की रात रंगीन कर लो। पी लो मदिरा, नाच लो, गा लो।

क्या फ़र्क पड़ेगा?

कल मौत आयेगी, और सब धूल में मिला जायेगी। वे क्षण, जो तुमने सोचे थे मस्ती के थे, केवल भुलावे के सिद्ध होंगे। आदमी डरता है इस सत्य को देखने से। इसलिए दुनिया में धर्म की बात तो बहुत होती है, धार्मिक आदमी बहुत कम होते हैं। लोग बात ही करते हैं, धर्म की यात्रा पर निकलते नहीं। निकलने में एक ही खतरा है कि मौत स्वीकार करनी पड़ेगी। और मौत कौन स्वीकार करना चाहता है !

सच तो यह है तुममें से बहुतों ने आत्मा अमर है, इसीलिए मान रखा है कि तुम मौत को स्वीकार करना नहीं चाहते। तुमने आत्मा अमर है, इस सिद्धान्त के पीछे भी अपने को छिपा लिया है। आत्मा अमर है, इस कारण तुम धार्मिक होने से बच रहे हो। यह बात तुम्हें उलटी लगेगी। तुम तो सोचते हो कि मैं मानता हूं, आत्मा अमर, इसलिए मैं धार्मिक हूं। मैं तुम्हें याद दिलाना चाहता हूं; तुम धार्मिक होने के कारण नहीं मानते हो कि आत्मा अमर है, तुम धार्मिक नहीं होना चाहते हो, इसलिए तुम मान लिए हो कि आत्मा अमर है। मरना कहां है? भोगो, जियो।

न केवल तुमने भोग के यहां आयोजन कर लिए, तुमने इन्हीं भोगों के आयोजन स्वर्ग में भी कर लिए हैं। तुम्हारा बैकुण्ठ भी तुम्हारे यहां से बहुत भिन्न नहीं है, बस ऐसा ही है। थोड़ा और परिष्कृत, थोड़ा और रंगीन, थोड़ा और रूपवाला। तुम्हारे स्वर्ग में तुम्हारी वासनाओं की झलक है, तुम्हारे वासनाओं के ही गीत हैं। सुधरे हुए, सुधारे हुए। यहां गुलाब की झाड़ी में थोड़े कांटे भी होते हैं, वहां तुमने कांटे भी अलग कर दिये हैं—कल्पना में—फूल ही फूल बचा लिये। यहां आदमी के जीवन में दुख-दर्द भी होते हैं; वहां दुख-दर्द अलग कर दिये, सुख ही सुख बचा लिये। तुमने दिन ही दिन बचा लिया; रात काट डाली। तुमने जीवन ही जीवन बचा लिया; मौत अलग कर दी।

और मैं तुमसे कहना चाहता हूं, ये सब भुलावे हैं। तुम्हारे यहां के सुख भी धोखे हैं; तुम्हारे स्वर्ग के सुख भी धोखे हैं। इस धोखे से जो जागता है, सुख के धोखे से जो जागता है, उसे पहली बार पता चलता है कि सुख क्या है। उस सुख का नाम आनंद है। और वह आनंद न तो यहां है, न वहां है। वह आनंद तुम्हारे भीतर है, वह आनंद तुम हो, वह सच्चिदानंद तुम हो। बाहर की खोज भटकाती रहेगी। बाहर ही तुम्हारी दुनिया है, बाहर ही तुम्हारे स्वर्ग हैं। भीतर कब आओगे ?

जब आदमी मर जाता है तो देखते हैं, हम अर्थी उठाते हैं और कहते हैं: राम-

नाम सत है। मुर्दे के सामने दोहरा रहे हो, राम-नाम सत है! इस आदमी को जिंदगी में स्वयं जानना था कि राम-नाम सत है और सब असत हैं। जैसे यहां राम-नाम सत कहते हैं, ऐसे बंगाल में हरि बोलौ हरि बोल कहते हैं। जब आदमी मर जाता है, उसकी अर्थी उठाते हैं, तो कहते हैं हरि बोलौ हरि बोल। जिन्दगी-भर हरि न बोला, अब दूसरे बोल रहे हैं, इसके तो होंठ अब कंपेंगे भी नहीं।

और दूसरे भी अपने लिए नहीं बोल रहे हैं, खयाल रखना। इस मुर्दे के लिए बोल रहे हैं कि भई, अब तेरा तो सब समाप्त हुआ, हरि बोलौ हरि बोल! नमस्कार! अब हमसे पिंड छूड़ा। अब हमें क्षमा कर। अब जा, अब हमें मत सता। फिर घर लौट गए। मुर्दे के लिए बोले, अपने लिए नहीं। मुर्दा भी रहा जिन्दा जब तक, नहीं बोला।

जो आदमी जीवित बोल देता है, हरि को स्मरण कर लेता है, उसके जीवन में स्वर्ण की आभा उतर आती है, उसके जीवन में शाश्वत की किरणें उतर आती हैं।

हरि को पुकारना है तो जीते जी पुकार लो। तुम पुकारो तो ही पुकार पाओगे, दूसरे तुम्हारे लिए नहीं पुकार सकते। यह पुकार उधार नहीं हो सकती। और हरि को न पुकारा तो गया जीवन व्यर्थ। हारा तुमने जीवन अगर हरि को न पुकारा।

हरि को पुकारने का अर्थ केवल इतना ही है कि इस जीवन में, इस जीवन की पर्तों में छिपा हुआ कुछ हीरा पड़ा है, कुछ ऐसा पड़ा है जो मिल जाये तो तुम सम्राट हो जाओ, जो न मिले तो तुम भिखारी बने रहोगे।

बीत बई सुखबेला
दूर कहीं शहनाई बाजी, कोई हुआ अकेला
बीत गई सुखबेला
होनी प्रीत के होने खेल में फांक लिए अंगारे
पग-पग अंधियार बरसाएं धुंदले चांद-सितारे
छेड़ गया चिन्ता-नगरी में आज सुनहला अंधेला
बीत गई सुखबेला
सांस कटारी बन-बन अटके अंखिया भर-भर आयें
कुन्दन की तपती भट्टी में झुलस गईं आशाएं
आशाओं की चिता पे नाचे, दुखड़ा नया नवेला
बीत गई सुखबेला।
परबत और पाताल मिला के सुपन ने जोत जगाई
बैरी लेख से नैन मिले तो टूट गई अंगड़ाई

अब मन सोचे पड़े अकेले क्यों अग्नि से खेला
बीत गई सुखबेला
दूर कहीं शहनाई बाजी, कोई हुआ अकेला
बीत गई सुखबेला

सब बीता जा रहा है। संसार का अर्थ है, जो बीत रहा, जो थिर नहीं है, जो नदी की धार है। यह धार भागी जा रही है। इस धार में दुबारा भी उतरना संभव नहीं है। तुम्हारी मुट्ठी से सब बहा जा रहा है। तुम खुद बहे जा रहे हो।

अब मन सोचे पड़ा अकेला, क्यों अग्नि से खेला
बीत गई सुख बेला

लेकिन चिता पर पड़े हुए सोचोगे भी तो बहुत देर हो गई होगी। फिर करने का कोई उपाय न बचेगा। अभी पुकार लो: हरि बोलौ हरि बोल। अभी बुला लो। अभी तलाश लो। अभी खोज लो। अभी खोद लो। घर में आग लगे इसके पहले कुआं तैयार कर लो। ऐसा मत सोचना, जब लगेगी घर में आग तब कुआं तैयार कर लेंगे। अभी तैयार कर लो। आग तो लगनी सुनिश्चित है। जिस घर में तुम रह रहे हो, इस घर में आग लगनी ही है। यह लपटों में जलने को ही बना है, चिता पर चढ़ने को ही बना है। यह इसकी नियति है। इसकी नियति से इसे भिन्न नहीं किया जा सकता। यह इसका अन्तर स्वभाव है। तुम्हारा जो घर है, साधारण घर, वह जले न जले, मगर तुम्हारी देह तो जलेगी। यह इतनी सुनिश्चित बात है, इस में कोई संदेह करने का प्रश्न ही नहीं उठता। ईश्वर को मत मानो, आत्मा को मत मानो, मोक्ष को मत मानो, जरूरत नहीं है। इतना तो मानो कि यह देह चिता पर चढ़ेगी। इतने से ही क्रांति हो जायेगी।

ये तुम गैरिक वस्त्र देखते हो संन्यासियों के, यह चिता की अग्नि का रंग है। संन्यास का अर्थ होता है: मरने के पहले हम चिता पर चढ़े, कि हमें यह बात स्वीकृत हो गई कि हमें चिता पर चढ़ना है, कि हमने यह अग्निवेश धारण किया, कि हमें यह याद दिलाता रहेगा यह वेश, कि हम अग्नि पर चढ़े हैं। यह देह अग्नि पर चढ़ी ही है। देर-अबेर से कुछ फर्क नहीं पड़ता। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों। मगर संन्यासी यह घोषणा कर रहा है अपने समक्ष और संसार के समक्ष कि मैं अग्नि पर चढ़ा हूं, इस तथ्य को मैं झुठलाना नहीं चाहता, इस तथ्य को मैं अपने जीवन का केन्द्र बना लेना चाहता हूं। और इसी केन्द्र पर मैं सारे जीवन के वर्तुल को घुमाना चाहता हूं।

तुम्हारे जीवन का केन्द्र क्या है? किसी का धन है, किसी का पद है, किसी का काम, किसी का लोभ, किसी का मोह। मगर ये सब छिन जायेंगे, ये असली केन्द्र

नहीं हैं। तुम्हारे जीवन के केन्द्र को कुछ ऐसा बनाओ कि मौत उसे छीन न सके। तुम मौत से पार जानेवाली कोई किरण अपने भीतर पकड़ो। उस किरण को भक्तों ने प्रेम कहा है, ज्ञानी ने ध्यान कहा है। वे एक ही बात के दो नाम हैं।

आज के सूत्र।

हिन्दू की हद छाड़िकै, तजी तुरक की राह।
सुन्दर सहजै चीन्हियां, एकै राम अलाह।।

बड़ा प्यारा वचन है। अमूल्य अर्थों से भरा वचन है। हिन्दू की हद जब तक है तब तक तुम बेहद को न पा सकोगे। जब तक सीमा में तुम बंधे हो तब तक असीम से कोई तुम्हारा सम्बन्ध न हो सकेगा। अगर हिन्दू हो तो धार्मिक नहीं हो सकते; अगर मुसलमान हो तो धार्मिक नहीं हो सकते। तुम्हारी हद है। बेहद से कैसे जुड़ोगे ?

गंगा अगर जिद करे कि मैं गंगा ही रहूंगी तो सागर से न मिल पायेगी, इतना पक्का है। गंगा कहे कि मैं तो अपने किनारों में ही आबद्ध रहूंगी, मैं तो अपने व्यक्तित्व को बचाऊंगी, मैं गंगा हूं, मैं ऐसे सागर में नहीं उतर सकती, अगर गंगा गंगा होने की जिद रखे तो सागर में न उतर पायेगी। सागर में उतरने के पहले गंगा को एक बात तो तय कर लेनी होगी कि अब मैं नहीं हूं। सीमा छोड़ देनी होगी।

फिर सीमाएं किसी भी तरह की हों, सभी सीमाएं मनुष्य को कारागृह में डालती हैं, जंजीरों से बांधती हैं। हिन्दू हो तो तुमने एक जंजीर पहन ली; ईसाई हो तो दूसरी जंजीर पहन ली। क्यों अपने को छोटा करते हो ? बड़े से मिलने चले हो, विराट से मिलने चले हो, क्यों अपने को क्षुद्र में आबद्ध करते हो ? भारतीय हो, चूकोगे। चीनी हो, चूकोगे।

और हमारी तो हद है। हिन्दू होने से भी हमारा काम नहीं चलता, वह भी सीमा बड़ी मालूम पड़ती है। उसमें भी कोई ब्राह्मण है, कोई शूद्र है। ब्राह्मण होने से भी हमारा काम नहीं चलता; वह भी सीमा बड़ी मालूम पड़ती है। तो उसमें कोई कानकुब्ज ब्राह्मण है, कोई कोकनस्थ है, कोई देशस्थ है, और उसमें भी फिर सीमाएं हैं, सीमाएं हैं, और सीमाएं हैं। तुम छोटे से छोटे होते चले जाते हो।

और अनहद की तलाश पर चले हो। और परमात्मा को पुकारना चाहते हो : हरि बोलौ हरि बोल ! हिन्दू रहकर हरि को पुकारना चाहते हो ? तुम्हारी पुकार नहीं पहुंचेगी। इतनी संकीर्ण पुकारें नहीं पहुंचतीं। पुकार विराट से जोड़नी है तो पुकार हृदय से जुड़नी चाहिये। और मजा ऐसा है कि मुसलमानों की किताब भी कहती है कि परमात्मा असीम है और हिन्दुओं की किताब भी कहती है कि परमात्मा असीम है। और हिन्दू भी दोहराते हैं कि परमात्मा असीम है और मुसलमान भी दोहराते हैं कि परमात्मा असीम है। लेकिन दोहराने से उन्हें यह बात याद नहीं आती कि

हम कब असीम होंगे। अगर परमात्मा असीम है और हम उससे जुड़ना चाहते हैं तो कुछ तो उसका रंग लें, कुछ तो उसका रूप लें, कुछ तो उसका ढंग लें, कुछ तो उसकी हवा बहने दें अपने भीतर।

लोग संकीर्ण हो गये हैं ? और जितने संकीर्ण हो गये हैं, उतने ही परमात्मा से दूर हो गये हैं। तुम देह में ही आबद्ध नहीं हो, देह से भी बड़े बंधन तुम्हारे मन में हैं। तुमने वहां तय कर रखा है कि झुकेंगे तो मस्जिद में, झुकेंगे तो गुरुद्वारा में। झुकने पर भी सीमा लगा ली !

यह आकाश किसका है? चांद-तारे किसके हैं? ये वृक्ष, ये पक्षी, ये लोग किसके हैं? झुकने में क्या सीमा लगा रहे हो? जहां खड़े हो वहीं झुको; जहां बैठे हो, वहीं झुको। भूमि का प्रत्येक कण उसका तीर्थ है। सब पत्थर काबा के पत्थर हैं, और सब घाट काशी के घाट हैं। कैलाश ही कैलाश है। चलते वहीं हो, उठते वहीं हो, जीते वहीं हो, मरते वहीं हो। सीमाएं तोड़ो। सुन्दरदास ठीक कहते हैं--हिन्दू की हद छाड़िकै। हद छोड़ दी हिन्दू की, उस दिन जाना। हद छोड़ते ही ज्ञान अवतरित होता है। तजि तुरक की राह। और मुसलमान की राह भी छोड़ दी। परमात्मा को राह से थोड़े ही पाना होता है !

राह तो बाहर जाने के लिए होती है, भीतर जाने की कोई राह नहीं होती। मार्ग तो दूर से जोड़ने के लिए होते हैं। जो पास से भी पास है उसे जोड़ने के लिए किस मार्ग की जरूरत है? चले कि भटके! रुको। सब राह जाने दो। सारे पंथ जाने दो। तुम तो आंख बंद करो, अपंथी हो जाओ, अमार्गी हो जाओ। परमात्मा दूर नहीं है कि रास्ता बनाना पड़े। परमात्मा तुम्हारे अन्तस्तल में विराजमान है। कोई रास्ता बनाने की जरूरत नहीं है, तुम वहां हो ही। सिर्फ आंख खोलनी है। सिर्फ बोध जगाना है। सिर्फ स्मरण करना है--हरि बोलौ हरि बोल। तुम मतलब समझते हो ?

इसका मतलब है कि बस इतने से ही हो जायेगा, स्मरण मात्र से हो जायेगा। सुरति काफी है। आदमी ने परमात्मा को खोया नहीं है। खो देता तो बड़ी मुश्किल हो जाती। खो देता तो कहां खोजते ? कैसे खोजते इस विराट में, अगर खो देते ?

बामुश्किल चांद तक पहुंच पाये हो। अस्तित्व बहुत बड़ा है। पहले तारे पर पहुंचने के लिए कितना समय लगे अगर हमारे पास ऐसे यान हों जो प्रकाश की गति से चलें? प्रकाश की गति बहुत है--एक लाख छियासी हजार मील प्रति सैकेन्ड। उसमें साठ का गुना करना, तो एक मिनिट में प्रकाश उतना चलता है। फिर उसमें चौबीस का गुना करना। चौबीस घण्टे में उतना चलता है। फिर उसमें तीन सौ पसठ का गुना करना। तो वह सबसे छोटा प्रकाश का मापदण्ड है--एक प्रकाश-वर्ष। प्रकाश

को नापने का वह तराजू है। सबसे छोटा माप, जैसे सोने को रत्ती से नापते हैं ऐसी वह रत्ती है। एक वर्ष में जितना प्रकाश चलता है, वह सबसे छोटा मापदण्ड है। और एक सैकेण्ड में एक लाख छियासी हजार मील चलता है। अगर हमारे पास प्रकाश की गति से चलनेवाले यान हों जिसकी अभी कोई संभावना दिखाई नहीं पड़ती, तो सबसे निकट के तारे में पहुंचने में चालीस वर्ष लगेंगे। और यह निकट का तारा है।

फिर इससे और दूर तारे हैं, बहुत दूर तारे हैं। ऐसे तारे हैं जिन तक पहुंचने में अरबों-खरबों वर्ष लगेंगे। जियेगा कहां आदमी? ऐसे तारे हैं जिनसे रोशनी चली थी उस दिन जब पृथ्वी बनी; अभी तक पहुंची नहीं। और ऐसे तारे हैं जिनकी रोशनी तब चली थी जब पृथ्वी नहीं बनी थी और तब पहुंचेगी जब पृथ्वी मिट चुकी होगी। उन तारों की रोशनी का मिलना ही नहीं होगा पृथ्वी से। पृथ्वी को बने करोड़ों वर्ष हो गये, और करोड़ों वर्ष अभी जी सकती है, अगर आदमी पगला न जाये। जिसकी बहुत ज्यादा सम्भावना है कि आदमी पागल हो जायेगा और अपने को नष्ट कर लेगा। तो उन तारों की रोशनी को पता नहीं चलेगा कि पृथ्वी बीच में बनी, गई, खो गई; कभी थी या नहीं। उन तक हम कैसे पहुंचेंगे?

उसके पार भी विस्तार है। विस्तार अन्तहीन है। अगर परमात्मा खो जाये तो कहां खोजेंगे, कैसे खोजेंगे, किससे पूछेंगे उसका पता-ठिकाना? नहीं, असंभव हो जायेगी बात फिर। परमात्मा मिल जाता है, क्योंकि खोया नहीं है। मेरी इस बात को खूब गांठ बांधकर रख लेना: परमात्मा मिलता है, क्योंकि खोया नहीं। मिला ही हुआ है इसलिए मिलता है: सिर्फ याद खो गई है, परमात्मा नहीं खोया है। हीरा खीसों में पड़ा है, तुम भूल गये हो। कभी-कभी हो जाता है न, आदमी चश्मा आंख पर रखे रहता है और चश्मा ही खोजने लगता है; कलम कान में खोंस लेता है और कलम खोजने लगता है। ऐसी ही दशा है, विस्मरण हुआ है।

'हरि बोलौ हरि बोल' में यही तुम्हें याद दिलाया जा रहा है। अगर तुम पुकार लो मन भर कर, पूरे हृदय से, रोएं-रोएं से, श्वास-श्वास से तो बस बात हो जायेगी। और कुछ करना नहीं है।

हिन्दू की हद छाड़िकै, तजी तुरक की राह।

सुन्दर सहजै चीन्हियां...। और जैसे ही हिन्दू को छोड़ा, मुसलमान को छोड़ा, सहज ही उसकी पहचान आ गई। इन्हीं की वजह से पहचान अटकी थी। तुम जरा और मुश्किल में पड़ोगे। मेरी बात तुम्हें जरा और झंझट में डालेगी। हिन्दू होने की वजह से बाधा पड़ रही है। तुम्हारे वेद बीच में आ रहे हैं। तुम्हारी गीता, तुम्हारी रामायण बीच में आ रही है। तुम्हारे राम-कृष्ण बीच में आ रहे हैं। मुसलमान होने से बाधा पड़ रही है। तुम्हारा कुरान बीच में आ रहा है। तुम्हारी नमाज बीच

में आ रही है। तुम्हारी मस्जिद, तुम्हारे मौलवी बीच में आ रहे हैं। उसकी याद के लिए किसी मध्यस्थ की कोई जरूरत नहीं है। उसकी याद तो सीधी उठनी चाहिये। उसकी याद के लिए तुम्हें किसी शास्त्र में जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। अपने भीतर जाना है। शास्त्र में नहीं, स्वयं में जाना है। इसलिए मैं कहता हूं, यह वचन बहुत अद्भुत है--

हिन्दू की हद छाड़िकै, तजी तुरक की राह।

सुन्दर सहजै चीन्हियां...। और सहज ही पहचान हो गई। इन्हीं की वजह से पहचान नहीं हो रही थी। अब जिसने सोच रखा है कि भगवान तो वही है जो मन्दिर में धनुष-बाण लिए खड़े हैं--राम ही भगवान है--इसको अड़चन होगी। यही प्रतिमा इसके लिए बाधा बनेगी। यही आकृति निराकार में न जाने देगी। यह जिसने सोचा है, भगवान तो वही जो मोर-मुकुट बांधे मन्दिर में खड़े हैं, बांसुरी बजा रहे हैं, अब यह जिस तलाश में चल पड़ा यह कल्पना की तलाश है।

ऐसा नहीं है कि कृष्ण कभी हुए नहीं। हो भी गए, उठी लहर, वह नाच भी हुआ, वह बांसुरी भी बजी, और खो भी गये। उनको हमने भगवान कहा, क्योंकि उनमें सागर की झलक हमें सुनाई पड़ी, सागर की गरिमा का हमें उनमें थोड़ा सा बोध हुआ। हमने उन्हें भगवान कहा। ठीक कहा। लेकिन मंदिर में उनकी मूर्ति रख कर बैठोगे तो चूक हो जायेगी। वह लहर की प्रतिमा है, सागर की नहीं। सागर की कोई प्रतिमा नहीं होती। सागर विराट है। लहर से सागर को पहचान लो बस। लहर का साथ मिल जाये तो थोड़ी दूर तक चल लो, मगर लहर को पूजते मत बैठे रहो। सदियां बीत गई हैं, और अब तुम लहर को ही पूज रहे हो। अब वह लहर कहां है? कब की सागर में खो गई और लीन हो गई, कब की विराट में एक हो गई! विराट में एक हो गए थे, इसलिए तो हमने उन्हें भगवान कहा था। अपनापन छोड़ दिया था, आपा छोड़ दिया था, इसलिए भगवान कहा था। कोई अहंकार भाव नहीं रह गया था, इसलिए भगवान कहा था। देह गिर गई तो भीतर तो शून्य हो ही गये थे। देह के गिरते ही शून्य शून्य में मिल गया, आकाश आकाश में खो गया। घड़ा फूट गया। तुम किसकी बातें कर रहे हो? अब घड़े की प्रतिमा बनाकर बैठे हो! उसकी पूजा में लगे हो! वही बाधा बन रही है।

बुद्ध ने कहा है, अगर मैं भी तुम्हारे मार्ग पर आ जाऊं तो तुम तलवार उठा कर मेरे दो टुकड़े कर देना।

मुझे कुछ दिन पहले अमरीका से एक पत्र मिला। कहीं मैंने बुद्ध के इस वचन का उल्लेख किया है: इफ यू मीट मी ऑन दि वे, किल मी। किसी ने बड़े क्रोध से मुझे पत्र लिखा है कि आप कौन हैं? कैसे आप यह कह सकते हैं कि बुद्ध रास्ते में

मिल जायें तो उनकी हत्या कर दें। उसे पता नहीं कि यह मैंने कहा नहीं, यह बुद्ध ने ही कहा हुआ है, यह बुद्ध का वचन ही मैंने उद्धृत किया है। उस आदमी को बड़ा क्रोध आ गया है कि कोई यह कैसे कह सकता है। मगर समस्त बुद्धों ने यही कहा है। कहेंगे ही। अगर यह न कह सकें तो वे बुद्ध नहीं।

बुद्धों ने कहा है : हमसे पार हो जाओ, हममें अटक मत जाना। हम द्वार हैं, हमसे गुजर जाओ। हम पर रुक मत जाना। हम सेतु हैं, उस पार निकल जाओ। सेतु पर घर मत बना लेना। मगर तुमने सेतु पर घर बना लिया। तुम द्वार की ही पूजा करते बैठे हो। तुम भूल ही गये कि द्वार गुजरने को है, पार जाने को है। द्वार के पार जाना है। द्वार पर अटक नहीं जाना। कितना ही सुन्दर हो द्वार, कितनी ही प्यारी नक्काशी हो, और बहुमूल्य से बहुमूल्य लकड़ी का बना हो, सोने का बना हो, कि चांदी का बना हो, कि हीरे-जवाहरात जड़े हों, कितना ही मूल्यवान हो द्वार, मगर द्वार का अर्थ ही होता है : जिससे गुजर जाना। आगे कुछ है। द्वार से देखो आकाश आगे तक।

सुन्दरदास कह रहे हैं : सुन्दर सहजै चीन्हियां, एकै राम अलाह। पहचान सरलता से हो गई जिस दिन हिंदू न रहे, जिस दिन मुसलमान न रहे। जिस दिन सीमा छूटी उस दिन असीम से पहचान हो गई। असीम से पहचान होने में बाधा ही क्या है? असीम की तरफ से कोई बाधा नहीं है, तुम्हारी तरफ से बाधा है। तुम सीमा को पकड़े बैठे हो। सीमा को जाने दो, और असीम प्रवाहित होगा। और उस असीम के ही सब नाम हैं। एकै राम अलाह। और तब तुम जानोगे, मन्दिर में जो पूजा जा रहा है वह वही है; और मस्जिद में जो पूजा जा रहा है वह वही है। आकार में भी वही है, निराकार में भी वही है। जो मानते हैं परमात्मा में वे भी उसकी ही बात कर रहे हैं, और जैसे बुद्ध और महावीर जो नहीं मानते हैं परमात्मा में, वे भी उसीकी बात कर रहे हैं। हां भी उसी का रूप है, नहीं भी उसी का रूप है। क्योंकि वह द्वन्द्वातीत है। पर तुम सीमा के पार जाओगे, असीम का स्वाद मिलेगा, तो ही यह अनुभव होगा।

अब यह बड़े मजे की बात है : राम में उलझ जाओ, तो राम अलाह के विपरीत हैं, अलाह में उलझ जाओ तो अलाह राम के विपरीत। कृष्ण में उलझ जाओ तो कृष्ण राम के विपरीत हैं, राम में उलझ जाओ तो राम कृष्ण के विपरीत हैं। और अगर तुम सारी उलझनों से छूट जाओ, तुम पाओगे कि वे सब एक ही अनुभव के नाम हैं, अलग-अलग नाम हैं। भाषा के भेद हैं, व्याख्याओं की भिन्नता है, पर इशारा एक ही तरफ है।

तो मैं तुमसे यह भी कह दूं कि जो हिन्दू है कभी भी धार्मिक नहीं हो पाता;

हालांकि जो धार्मिक है वह जान लेता है कि हिन्दू सच हैं, मुसलमान भी सच हैं, ईसाई भी सच हैं, जैन भी सच हैं, बौद्ध भी सच हैं। शास्त्रों में उलझ कर कोई सत्य तक नहीं पहुंचता, लेकिन जो सत्य तक पहुंच जाता है उसके लिए सभी शास्त्र सत्य हो जाते हैं। इसलिए सारे शास्त्रों पर मैं बोल रहा हूं, सिर्फ इसी बात की तुम्हें याद दिलाने के लिए——एकै राम अलाह।

और यह सहज शब्द भी खूब समझ लेने जैसा है। सुन्दर सहजै चीन्हियां। सहज का मतलब होता है : बिना प्रयास के, बिना साधना के, बिना साधे, बिना किसी योजना के, बिना यत्न के, अपने से हो गया। बस इतना ही किया कि दरवाजा खोल दिया। जैसे सुबह सूरज निकला और दरवाजा खोल दिया, पर्दा खोल दिया, और रोशनी भर गई। यह रोशनी को जाकर बाहर बांध-बांध कर भीतर नहीं लाना पड़ता, रोशनी अपने से आ जाती है। द्वार खुला कि अपने से आ जाती है। यह सहज है। ठीक ऐसे ही परमात्मा से तुम भर जाओगे, अगर तुम हद छोड़ दो।

मगर हद को हम बड़ी जोर से पकड़े हैं। हद हमारा प्राण बन गई है। हद हमारे लिए इतनी मूल्यवान हो गई है कि हम मरने-मारने को तैयार हैं। मुसलमान हिन्दू को काटने को तैयार है; हिन्दू मुसलमान को काटने को तैयार है। ईसाई यहूदियों को काटते रहे हैं। काटने के लिए तैयार हैं, मरने-मारने के लिए तैयार हैं। हद ज्यादा मूल्यवान हो गई, और बेहद की बातें हो रही हैं। आदमी की मूढ़ता देखते हो! अगर बेहद की बात हो रही है तो फिर मारना-काटना क्या? धर्म के नाम पर हत्या कैसी?

और जब भी तुम किसी को मारते हो, उसी को मार रहे हो एकै...राम अलाह। किसको मार रहे हो? तुम सोचते हो हिन्दू को, मुसलमान को, तुम उसी को मार रहे हो। तुम जो भी नष्ट कर रहे हो, उसी के विपरीत तुम्हारा आयोजन चल रहा है। चाहे तुम उसका नाम लेकर ही क्यों न करो। चाहे उसके नाम पर ही क्यों न करो।

जागो तो सहज ही पहचान हो जाती है। एक ही काम करना है : हद छोड़ देनी है।

मेरी उपदेशना यही है : हद छोड़ो। यहां मैं तुम्हें यही सिखा रहा हूं कि हद छोड़ो। तो मेरे संन्यासी में कोई हिन्दू है तो कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है, कोई यहूदी, कोई बौद्ध, कोई जैन। मगर उसकी सब हदें गईं। वे स्मरण मात्र रह गये। वह अतीत हो गया। जैसे सांप सरक जाता है, पुरानी चमड़ी से छोड़ देता है खोल को पीछे, ऐसे संन्यासी अपनी खोलों को छोड़ कर पीछे सरक आया है। अब सिर्फ धार्मिकता रह गई है। सिर्फ एक सत्य की खोज की आकांक्षा रह गई है——शुद्ध अभीप्सा

--एक लपट कि जानना है कि क्या है। बस, फिर सहज ही हो जाता है।

मेरी मेरी करत हैं देखहु नर की भोल।
फिरि पीछे पछिताहुगे हरि बौलौ हरि बोल।

मेरी-मेरी करत है। हद पर इतना आग्रह है कि कहते हैं मेरा धर्म, मेरी किताब, मेरी प्रतिमा, मेरा सिद्धान्त, मेरा दर्शनशास्त्र। मेरी मेरी करत है, देखहु नर की भोल। फिर पीछे पछिताहुगे हरि बोलौ हरि बोल। समय मत गंवाओ, इन व्यर्थ की भूलों में भटको मत। झांको किसी की आंखों में, जिसने हरि को पुकारा हो, जिसके भीतर हरि की पहचान हुई हो। सुन्दर सहजै चीन्हियां। कहीं कोई मिल जाये सुन्दरदास तो उसकी आंखों में झांको, जहां सहज पहचान हुई हो।

तुम अगर जाते भी हो तो उनके पास जाते हो जो अभी खुद ही साध रहे हैं। कोई आसन लगाये बैठा है; कोई शीर्षासन लगाये बैठा है; कोई उपवास कर रहा है। उन्हें अभी मिला नहीं है। अभी तो साधना चल रही है।

और साधने से कभी किसी को मिलता नहीं है। परमात्मा तो मिला ही हुआ है; शीर्षासन करने की कोई आवश्यकता नहीं। परमात्मा कोई पागल तो नहीं है कि तुम सिर के बल खड़े होओ तब मिले। अगर सिर के बल खड़े होने से मिलता था तो तुम्हें पहले से ही सिर के बल खड़ा करता। पैर पर खड़े होने की जरूरत क्या थी? यह भूल क्यों करता? परमात्मा कुछ पागल तो नहीं है कि जब भूखे मरो और उपवास करो तब मिले। भूखे ही मारना होता तो भूखे ही मारता; भूख ही न देता। पेट ही न देता, उपवास ही उपवास चलता। कोई परमात्मा तुम्हारी भूख-प्यास से थोड़े ही मिल जानेवाला है। तुम कर क्या रहे हो? करने का प्रश्न ही नहीं है, कृत्य की बात ही नहीं है, सिर्फ स्मरण की बात है।

मगर जब तुम्हें करनेवाला मिल जाता है, तुम्हें बहुत प्रभाव होता है। कोई आदमी भूखा पड़ा है, महीने भर का उपवास किया है, तुम झुके। कोई कांटों पर लेटा है, तुम झुके। किसी ने अपने शरीर को सुखा लिया है धूप में खड़े होकर, बस तुम गिरे चरणों पर। कृत्य से परमात्मा के पाने का क्या सम्बन्ध है? क्या तुम सोचते हो कि सूखे वृक्ष में परमात्मा ज्यादा होता है हरे वृक्ष की बजाय? तुम कौन-सा गणित पकड़े हो? अगर होगा तो हरे में ज्यादा होगा, सूखे में क्या होगा? सूखने का मतलब ही होता है कि परमात्मा सूख गया, अब वृक्ष में प्राण-ऊर्जा नहीं बहती है। तुम्हारे महात्मा, तुम्हारे साधु उदास बैठे हैं। उनके जीवन का आनंद खो गया है। कम से कम तुम आनन्दित तो हो, चलो भ्रांत ही सही। तुम्हारा आनंद क्षणभंगुर ही सही, उनके पास क्षणभंगुर आनंद भी नहीं रहा है। बैठे हैं मुर्दों की भान्ति। लेकिन जब तक कोई महात्मा मुर्दा न हो जाये बिलकुल तब तक तुम उसे पूजते नहीं, क्योंकि तब

तक वह तुम्हारे जैसा मालूम पड़ता है। जब तक जीवित है, कपड़े पहनता है, भोजन करता है, सोता-उठता-बैठता है, जैसे तुम सोते-उठते-बैठते हो, जब तक वह ठीक सामान्य होता है, तब तक तुम्हें जंचता नहीं, क्योंकि तुम्हें लगता है, हमारे ही जैसा है।

तुम्हारी आत्मनिंदा अद्भुत है! तुम यह मान ही नहीं सकते कि तुम्हारे भीतर परमात्मा हो सकता है। और यही तुम्हारी मान्यता अटका रही है। परमात्मा तुम्हारे भीतर है। लेकिन तुम इतनी आत्मनिंदा से भर गये हो, तुम इतने अपराध-भाव से भर गये हो कि तुम सोचते हो तुम्हारे भीतर तो हो ही नहीं सकता, तुम्हारे जैसा जो मालूम पड़ता है उसके भीतर भी नहीं हो सकता। कुछ भिन्न होना चाहिये। अब सिर के बल कोई खड़ा है वह भिन्न मालूम होता है। उपवास कोई कर रहा है वह भिन्न मालूम पड़ता है। कोई जंगल में जाकर बैठ गया है, धूप सह रहा है, सर्दी सह रहा है, वह तुम्हें विशिष्ट मालूम पड़ता है। यह विशिष्ट नहीं है, सिर्फ विक्षिप्त है।

परमात्मा सामान्य में व्याप्त है। यह सारा जगत उससे भरा है। किसने तुम्हें सिखा दिया है। तुम्हारे भीतर नहीं है? और अगर यह बात तुमने मान ली है, तो निश्चित ही तुम कैसे स्मरण कर पाओगे? अगर यह बात ही मान ली कि मेरे भीतर नहीं हो सकता, कृत्य करने पड़ेंगे कुछ, उपलब्धियां करनी पड़ेंगी कुछ, सिद्धियां करने पड़ेंगी कुछ, असहज मिलेगा--तो तुम चूकते रहोगे।

परमात्मा सहज मिलता है, सिद्धियों से नहीं। परमात्मा मिला ही हुआ है, सिर्फ स्मरण से मिलता है।

गर्मी-ए-शौके-नजारा का असर तो देखो।
गुल खिले जाते हैं वो साया-ए-दर तो देखो॥
ऐसे नादां भी न थे जां से गुजरने वाले।
नासहो, पंदगरो, राहगुज़र तो देखो॥
वो तो वो हैं तुम्हें हो जायेगी उल्फत मुझसे।
एक नजर तुम मेरा महबूबे-नजर तो देखो॥

अगर किसी सहज उपलब्ध व्यक्ति के पास पहुंच जाओगे तो परमात्मा की तो फिकर छोड़ो, उसकी आंख में झांकने से सब हो जायेगा। वो तो वो हैं तुम्हें हो जायेगी उल्फत मुझसे...तुम्हें उससे प्रेम हो जायेगा। तुम्हारे भीतर प्रार्थना अंकुरित होने लगेगी। तुम्हारे भीतर आह्लाद का जन्म हो जायेगा। तुम्हारे भीतर कोई शराब का चश्मा बहने लगेगा। एक नजर तुम मेरा महबूबे-नजर तो देखो। जिसने प्यारे को देख लिया है, उसकी आंख में भी अगर तुम झांक लोगे तो प्यारे की थोड़ी

झलक तुम्हारे पास आ जायेगी।

परमात्मा तुम्हारे भीतर मौजूद है; कोई जगानेवाला चाहिये, कोई पुकार देनेवाला चाहिये। किसी का बजता गीत तुम्हारे भीतर सोये हुए गीतों को जगा देता है। कहते हैं। अगर कोई कुशल वीणा-वादक वीणा बजाये और दूसरी वीणा पास रख दी जाये तो बिना बजाये बजने लगती है। क्योंकि वीणावादक जब अपनी वीणा पर संगीत छेड़ देता है तो वे तरंगें पास में रखी खाली वीणा पर, जिसे कोई छेड़ नहीं रहा है, उसके तारों को कंपाने लगती हैं। ठीक ऐसी ही घटना गुरु और शिष्य के बीच घटती है। एक की वीणा बज उठी है, तुम्हारी वीणा अभी ऐसी ही पड़ी है। वीणा पूरी है। जरा कम नहीं है। जरा भिन्न नहीं है। किसी की बजती वीणा के पास तुम बैठ गये कि तुम्हारे तार थरथराने लगेंगे, तुम्हारी आंखों में छिपे आनन्द के आंसू बहने लगेंगे। तुमने देखा है किसी नर्तक को नाचते? तुमने अपने पैर में थिरक अनुभव नहीं की? कोई नर्तक जब नाचता है, तुम्हारे पैर थाप नहीं देने लगते हैं? तुम संगीत में मस्त होकर सिर नहीं हिलाने लगे हो? मृदंग बजती देखकर तुम्हारे हाथ ताल नहीं देने लगे हैं? बस, ऐसा ही, ठीक ऐसा ही, जिसके भीतर की मृदंग बज उठी है उसके पास बैठकर तुम ताल देने लगोगे। जहां यह ताल देने की घटना घटने लगे वहीं सत्संग हो रहा है।

वो तो वो हैं तुम्हें हो जायेगी उल्फत मुझसे।
एक नजर तुम मेरा महबूबे-नज़र तो देखो।।
वो, जो अब चाक गिरेबां भी नहीं करते हैं।
देखनेवाले कभी उनका जिगर तो देखो।।
दामने-दर्द को गुलज़ार बना रखा है।
आओ, इक दिन, दिले पुरखूं का हुनर तो देखो।।
सुबह की तरह झमकता है शबे-गम का उफ़क़।
'फैज़' ताबंदगी-ए-दीद-ए-तर तो देखो।।

कोई गीली आंख तो देख लो; रात का अंधेरा भी सुबह की तरह झलकने लगेगा। कहीं कोई परमात्मा से भीग गई आंखें देख लो। चूंकि अनुभूति साधना का परिणाम नहीं है वरन् सहज स्मरण है, इसलिए सत्संग में घट जाती है।

सुन्दरदास को घट गई, दादू की आंख में देखते-देखते। और छोटे ही थे। शायद इसलिए घट गई, क्योंकि छोटे थे। अभी ज्ञान और अकड़ और दूसरे पागलपन पैदा नहीं हुए थे। सात ही साल के थे। छोटा बच्चा--भोला-भाला होगा, निर्दोष होगा। घट गई। दादू की आंख में झांका होगा इस भोले-भाले बच्चे ने। अभी शास्त्रों की परतें नहीं थीं। अभी इसे कुछ हद भी नहीं थी। इसे खयाल भी नहीं था कि

मैं हिन्दू कि मुसलमान कि ईसाई कि क्या। अभी तो सब साफ था; अभी किताब पर कुछ लिखा नहीं गया था। अभी किताब खाली थी। अभी सब कोरा था; आकाश में कोई बादल नहीं थे। देखी होंगी दादू की आंखें जो उस प्यारे के रस से लबालब हैं, झुक गया होगा। यह बजती वीणा दादू की; और उसके भीतर कोई स्वर थिरक उठे होंगे। यह नृत्य दादू का और इसके भीतर नाच आ गया होगा। यह मृदंग दादू की और यह बच्चा फिर नहीं रुक सका होगा; झुक गया होगा। सात वर्ष की उम्र में!

हमें हैरानी होती है। लेकिन अभी इस पर बड़ी वैज्ञानिक शोध चलती है और जो नई से नई शोधें हैं वे यह कहती हैं कि छोटे बच्चे अगर बिगाड़े न जायें--हम बिगाड़ते हैं, हमने बिगाड़ने के अच्छे-अच्छे नाम रखे हैं, शिक्षा, धर्म-शिक्षा इत्यादि-, इत्यादि--अगर छोटे बच्चे बिगाड़े न जायें, अगर उनके भोलेपन को हम बचा सकें अगर उनकी निर्दोषता को हम बचा सकें, उसे ढांकें न, तो यह दुनिया बहुत सुन्दर हो जाये। यह दुनिया वैसी हो जाये जैसी होनी चाहिये। लेकिन हमने बड़े आयोजन कर रखे हैं। जैसे बच्चा पैदा हुआ कि हमारे आयोजन शुरू हुए। बच्चा पैदा हुआ कि बस पण्डित आया, पुरोहित आया, मौलवी आया, बप्तिस्मा शुरू, खतना शुरू। बच्चा पैदा नहीं हुआ कि हमने आयोजन शुरू किये कि इसको जल्दी से बांधो और अपनी व्यवस्था इसके ऊपर लादो। इसे हिन्दू बनाओ, मुसलमान बनाओ, ईसाई बनाओ। इसे आदमी न रहने देना है। आदमी से बड़ा खतरा मालूम होता है। इसे मंदिर ले चलो, मस्जिद ले चलो। इसके पहले कि यह कहीं जाग जाये, सुला दो; इसे जहर पिला दो। इसे कण्ठस्थ करवा दो रामायण, इसे गीता की पंक्तियां याद करवा दो। इसे तोता बना दो। इसके पहले कि इसमें बोध जागे, इसे यन्त्रवत स्मृति से भर दो।

और हम कहते हैं ये बड़ी ऊंची बातें हम कर रहे हैं, हम धर्म सिखा रहे हैं। यह धर्म नहीं सिखाया जा रहा; इसी की वजह से दुनिया में अधर्म है। किसी बच्चे को धर्म सिखाया नहीं जा सकता; बच्चा तो धर्म लेकर ही आता है। अगर उसे हम नष्ट न करें, अगर हम उसके साथ ज्यादा छेड़खानी न करें, अगर उसको हम सिर्फ सहारा दें, जो उसके भीतर छिपा है उसको प्रगट होने के लिए सहारा दें, तो यह पृथ्वी बड़े सौन्दर्य से भर जाये। लेकिन यह हम बर्दाश्त नहीं कर सकते। मां-बाप को तो मौका मिल जाता है, बच्चे की गर्दन पकड़ो, बच्चे को बनाओ जैसा बनाना चाहते हो। बाप जो नहीं बन पाया, वह बच्चे को बनाना चाहता है। बाप बड़ा धनी होना चाहता था, नहीं हो पाया। अब वह बच्चे की छाती पर चढ़कर महत्त्वाकांक्षा का भूत बनकर बच्चे पर सवार हो जायेगा। वह बच्चे को कहेगा कि

बेटा, हम नहीं कर पाये, तू करना।

मैंने सुना है, एक आदमी मर रहा था। उपद्रवी आदमी था। उसके चारों बेटे इकट्ठे थे। उस आदमी ने कहा कि बेटो, मेरी एक ही इच्छा है मरते वक्त, पूरी कर दोगे तो मेरी आत्मा को बड़ी शान्ति मिलेगी। कहो, पूरी करोगे? बड़े तीनों बेटे चुप रहे, क्योंकि वे बाप को भलीभांति जानते थे कि वह किसी झंझट में डाल जायेगा। जिंदगी भर झंझट में डाला उसने। छोटा छोटा था अभी, उसने कहा, आप कहें, जो भी हो सकेगा हम करेंगे। बाप ने कहा, तू मेरे पास आ। और उसके कान में बोला कि जब मैं मर जाऊं तो मैं तो मर ही गया, मेरी लाश के टुकड़े करके मोहल्ले वालों के घर में डाल देना, और पुलिस में रपट लिखवा देना। ये सब के सब बंधे ही जाते होंगे पुलिस थाने की तरफ, मेरी आत्मा को बड़ी शान्ति मिलेगी। जिंदगी भर इनसे झंझटें रहीं, मरते वक्त इनके हाथ में जंजीरें देख लूं, मैं तो मर ही जाऊंगा। अब तो बात ही खतम हो गई। इसलिए तुम फिकर मत करना, काट कर, मेरे शरीर को टुकड़े-टुकड़े करके डाल देना सबके घरों में, सबको फंसवा देना।

जिंदगी भर भी वह यही आयोजन करता रहा था। अब मरते वक्त भी वह यही आयोजन कर के जा रहा है। इतने सीधे-सीधे आयोजन सभी लोग नहीं करते। मगर बड़े सूक्ष्म आयोजन यही हैं। तुमने अपने बेटे को सिखाया कि तू हिन्दू हो जा, तब तुमने क्या सिखाया? हिन्दू मुसलमानों से लड़ते रहे हैं। तुमने अपने बेटे को सिखाया, तू मुसलमान हो जा। मुसलमान हिन्दुओं से लड़ते रहे हैं। तुम लड़ाई सिखा रहे हो। तुम वैमनस्य सिखा रहे हो। तुम दुश्मनी सिखा रहे हो। तुम इस पृथ्वी को प्रेम का स्थान नहीं बनने देना चाहते हो। जब तुमने कहा, किताब कण्ठस्थ कर ले तो तुम उधार थे, इसको भी उधार किये जा रहे हो।

और परमात्मा सहज घटता है। बच्चा जितनी आसानी से परमात्मा के पास पहुंच सकता है, बूढ़े नहीं पहुंच सकते। क्योंकि बच्चा अभी आया है, स्रोत से अभी बहुत करीब है। अभी दूर नहीं निकला है। अभी उसे याद दिलायी जा सकती है।

मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैं, आप छोटे-छोटे बच्चों को संन्यास दे देते हैं, यह तो ठीक नहीं है। मैं उनसे कहता हूं कि बच्चे निकटतम हैं। बूढ़े के भीतर तो पहले बहुत कुछ काटना-छांटना पड़ेगा। जिंदगी भर का कूड़ा-कचरा है, सफाई करनी पड़ेगी। बच्चा अभी दर्पण की तरह है; अभी धूल जमी नहीं। अगर इसको परमात्मा की तरफ मोड़ा जा सके, इसको हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध बनने से बचाया जा सके, इसे सिर्फ आदमी का भाव दिया जा सके, तो यह अभी हद के बाहर हो सकता है। क्योंकि अभी यह हद के भीतर हुआ ही नहीं, हद के बाहर ही है। इसमें क्रान्ति सुगमता से घट सकती है। शायद दादू के पास सुन्दरदास

में इसीलिए क्रान्ति घट गई। सात वर्ष का छोटा बच्चा था।

जीसस ने कहा है, जब तक तुम छोटे बच्चों की भांति न हो जाओगे तब तक परमात्मा को न जान सकोगे। न जान सकोगे। छोटे बच्चों की भांति पुनः हो जाना जरूरी है। लेकिन लोग मेरी-मेरी कर रहे हैं।

मेरी मेरी करत है, देखहु नर की भोल।
फिरि पीछे पछिताहुगे हरि बोलौ हरि बोल ।।

यह मेरी-मेरी जाने दो। यह मेरी-मेरी का उपद्रव छोड़ो। क्या मेरा, क्या तेरा, सब उसका! मेरे का दावा अहंकार का दावा है। जरा इस दावे को छोड़ो और तुम्हारी जिंदगी में सत्संग की सुगंध आने लगेगी।

फिर हरीफे बहार हो बैठे
जाने किस किस को आज रो बैठे
थी, मगर इतनी रायगां न थी
आज कुछ जिन्दगी से खो बैठे
सारी दुनिया से दूर हो जाये.
जो जरा तेरे पास हो बैठे
सुबह फूटी तो आसमां पे तेरे
रंगे रुख्सार की फुहार गिरी
रात छाई तो रूए-अलम पर
तेरे जुल्फों की आबशार गिरी

जरा परमात्मा के पास कोई बैठने लगे, सारी दुनिया से दूर हो जाये। जो जरा तेरे पास हो बैठे! जरा से पास हो उठो। सुबह फूटी आसमां पे तेरे, रंगे रुख्सार की फुहार गिरी। हर चीज में उसी की झलक दिखाई पड़ने लगी। सुबह होगी, आकाश पर लाली फैलेगी। और जो भी उसके थोड़ा पास सरका है उसे लगेगा उसके ही कपोलों का रंग! सुबह फूटी तो आसमां पे तेरे रंगे रुख्सार की फुहार गिरी। रात छाई तो रूए अलम पर, तेरे जुल्फों की आबशार गिरी। रात का अंधेरा ऐसा लगेगा जैसे उसके बाल पृथ्वी पर गिर गये हैं। जैसे उसने अपने आंचल में सारी पृथ्वी को ले लिया। जो उसके पास थोड़ा सरका उसके जीवन के कोण, देखने के ढंग, अनुभूति की प्रक्रियाएं बदलनी शुरू हो जाती हैं। फिर फूल नहीं खिलते, वही खिलता है। फिर बादल नहीं घिरते, वही घिरता है। फिर कोयल नहीं कूकती, वही कूकता है। फिर लोग नहीं दिखाई पड़ते चलते-फिरते, वही चलता है। इतने-इतने रंग, इतने-इतने रूपों में! सारा जगत एक महोत्सव का रूप ले लेता है।

किये रुपैया इकठे, चौकूंठे अरु गोल।

रीते हाथिन बे गये, हरि बोलौ हरि बोल ।।

क्या कर रहे हो यहां ? रुपये इकट्ठे कर रहे हैं लोग । सुन्दरदास ने जब यह पद लिखा, तो तरह के रुपये होते थे; गोल भी होते थे, चौखटे भी होते थे । किये रुपैया इकठे चौकूंठे अरु गोल । रीते हाथ बे गये... । और सब, जिन्होंने भी इकट्ठे किये, सब रीते हाथ गये । खाली आये, खाली गये । सच तो यह है, मुट्ठी बंधी आती है, जब बच्चा पैदा होता; जब आदमी मरता है मुट्ठी तो खुली होती है । शायद कुछ लेकर आता है, वह भी गंवा देता है । रीते हाथिन बे गये, हरि बोलौ हरि बोल ।

अब देर न करो । स्मरण करो उसका, जिसके स्मरण मात्र से हाथ भर जाते हैं; हाथ ही नहीं, प्राण भी भर जाते हैं । संपदा तो एक ही है, वह सत्य की है, वह समाधि की है । और कोई संपदा नहीं है इस जगत में । धोखे में मत रहो । तुम्हारी जिन्दगी झूठी है

चहल पहल सी देखिकै, मान्यौ बहुत अंदौल ।

काल अचानक ले गयै, हरि बोलौ हरि बोल ।।

चहल-पहल यहां बहुत है, दुनिया में आपाधापी बहुत है । भाग-दौड़ बहुत है, लेकिन पहुंचता कोई भी नहीं । चलते हैं, चलते हैं; गिर जाते हैं । लोग गिरते जाते हैं, और उनके करीब जो लोग हैं वे चलते जाते हैं । वे यह नहीं देखते कि यह गिरा एक आदमी, यह गिरा दूसरा आदमी, यह गिरा तीसरा आदमी, अब मेरी भी बारी आती होगी । लोग गिरते जाते हैं । इतना ही नहीं कि तुम लोगों को गिरते देख कर चौंकते नहीं; लोगों की गिरी हुई लाशों पर पैर रखकर सीढ़ियां बना लेते हो । तुम थोड़ी और तेजी से ऊपर उठने लगते हो, सोचते हो यह भी अच्छा हुआ, प्रतिद्वंद्वी मरा, अब जरा सुगमता है, थोड़े रुपये जरा ज्यादा इकट्ठा कर लूंगा । तुम मुर्दे के खीसे में भी कुछ रुपये हों तो वे भी निकाल लोगे । तुम मुर्दे की मृत्यु को नहीं देखोगे । तुम्हारी दौड़ जारी रहेगी ।

चहल पहल सी देखिकै मान्यौ बहुत अंदौल ।

और चूंकि चहल-पहल बहुत मची हुई है, शोरगुल बहुत मचा हुआ है--यह भ्रांति होती है कि बड़ा आनंद मनाया जा रहा है, बड़ा आनंद उत्सव हो रहा है । मान्यौ बहुत अन्दौल । मान्यता की ही बात है । कहां आनंद? तुम जब बैंड-बाजे बजाते हो तब भी कहां आनंद है ? तुम्हारी शहनाई भी गाती कहां, रोती है । तुम हंसते भी हो तो हंसते कहां हो ? तुम्हारी सब हंसी झूठी है । ओंठ ही ओंठ पर है, चिपकी है, चिपकाई गई है, ऊपर-ऊपर लगाई गई है । जैसे स्त्रियां लिपिस्टिक लगाये हुए हैं, वह प्रतीक है तुम्हारी जिंदगी का । लाली भी ओंठ के भीतर से नहीं आ रही है, वह भी ऊपर से लगा ली गई है । मुस्कुराहट भी वैसे ही ऊपर से लगा ली गई है । कुछ

आश्चर्य न होगा, कुछ दिनों में कोई स्प्रे बन जाये कि जब मुस्कुराना हुआ स्प्रे कर लिया, एकदम से हंसी आ गई ।

मैंने सुना है, अमरीका में एक बड़ी फैक्टरी है जो एक खास तरह का स्प्रे बनाती है । उसे पुरानी कारों में छिड़क देने से नई कार की बास आने लगती है । बनाया तो था पुरानी कारों के लिए ही, लेकिन अब मजे की बात यह घटी है कि नई कारें बनाने वाले भी स्प्रे कर रहे हैं । उसी को, नई कार में भी । क्योंकि वह स्प्रे इतना अच्छा आया है कि पुरानी कार को स्प्रे कर दो तो नई कार से भी बेहतर खुशबू उसमेंआ रही है । तो अब नई करों में भी उसी को स्प्रे करना पड़ रहा है ।

झूठ ऐसे बढ़ता चला जाता है । झूठ बड़ी सफलताएं पाता है जिन्दगी में, क्योंकि जिन्दगी झूठ है । वहां झूठ ही सफलता पाता है । वहां सच कहां सफल हो पाता है? यहां सच को सूली लग जाती है; झूठ सिंहासन पर बैठ जाते हैं । चहल-पहल बहुत है । शोरगुल बहुत है । ऐसी भ्रान्ति होनी बिलकुल स्वाभाविक है कि बड़ा आनंद मनाया जा रहा है । सभी लोग हंसते मालूम पड़ते हैं । सभी लोग सजे-बजे जा रहे हैं । मगर जरा इनकी जिंदगी में झांक कर देखो; यह सब बाहर-बाहर है ।

जब तुम घर से बाहर निकलते हो आईने के सामने सज-बज कर तब यह तुम्हारा असली चेहरा नहीं है । असली चेहरे और हैं जो तुम घर ही छोड़ आये । जब कोई मेहमान तुम्हारे घर में आ जाये तो चेहरा तुम उसे दिखलाते हो वह असली नहीं है । भीतर तो शायद तुम सोच रहे हो कि यह दुष्ट कहां से आ गया; ऊपर से कहते हो स्वागत, अतिथि तो देवता हैं, आइये ! विराजिये ! और भीतर दिल हो रहा है कि गरदन उतार दें इसकी । ऊपर से कहते हो, आप से मिलकर बड़ा आनंद हुआ, और भीतर सोच रहे हो कि आज पता नहीं दिन कैसा गुजरे, इस दुष्ट को सुबह-सुबह देख लिया । भीतर कुछ है, बाहर कुछ है । तुम जरा जांचना अपनी ही जिंदगी; उससे तुम्हें सबकी जिंदगियों का पता चल जायेगा । जब हंसी भी नहीं आती तब तुम हंसते हो । जब प्रेम नहीं आता तब प्रेम दिखलाते हो । और इस तरह तुम दूसरों को धोखा दे रहे हो । दूसरे तुमको धोखा दे रहे हैं । शोरगुल बहुत है ।

चहल-पहल सी देखिकै मान्यौ बहुत अंदौल ।

लेकिन यह सब चहल-पहल रह जायेगी रखी, पड़ी रह जायेगी । काल अचानक लै गये हरि बोलौ हरि बोल । उठा लिये जाओगे इस भरी भीड़ में से; यह सब चहल-पहल यहीं पड़ी रह जायेगी । और जब तुम्हें ले जाने लगेगी मौत तो कोई बीच में बाधा नहीं देगा । कोई बाधा दे नहीं सकता है । और यह चहल-पहल ऐसी ही जारी रहेगी ।

कब ठहरेगा दर्दे दिल कब रात बसर होगी

सुनते थे वो आएंगे, सुनते थे सहर होगी
कब जान लहू होगी कब अश्क गोहर होगा
किस दिन तेरी सुनवाई दीदा-ए-तर होगी
कब चमकेगी फस्ले गुल कब बहकेगा मयखाना
कब सुब्हे सुखन होगी, कब शामे नजर होगी

कभी होती नहीं। पूछते रहो, सोचते रहो, विचारते रहो, कभी कुछ होता नहीं।

कब ठहरेगा दर्दे दिल कब रात बसर होगी,
सुनते थे वो आयेंगे, सुनते थे सहर होगी। '

सुनते ही रहो कि सुबह होती है। बाहर सुबह होती नहीं, बाहर तो रात ही रात है--अमावस की रात है। सुबह तो भीतर होती है। सुबह ही सुबह है भीतर। वहां कुछ और नहीं है। लेकिन यहां तो सुनते हो, बातें सुनते रहते हो। सोचते रहते हो, अब हुआ, अब हुआ। इतना और मिल जाये तो सब ठीक हो जायेगा। इतना धन और कमा लूं, इस पद पर और पहुंच जाऊं तो बस।

कब ठहरेगा दर्दे दिल कब रात बसर होगी
सुनने थे वो आयेंगे सुनते थे सहर होगी
कब जान लहू होगी कब अश्क गुहर होगा

आंसू मोती कब बनेंगे ? कभी नहीं बनते। कविताओं में बनते हैं, असलियत में नहीं बनते। लेकिन आदमी आशाएं संजोये रहता है। आशाओं में जिये चला जाता है।

किस दिन तेरी सुनवाई दीदा-ए-तर होगी
कब चमकेगी फस्ले गुल....

कब आयेगा वसन्त कब चमकेगी फस्ले गुल, कब बहकेगा मयखाना। कब आयेगी मस्ती ? कब हम नाचेंगे ?कब हम झूमेंगे आनंद से ? कभी यह नहीं होता। बस करो प्रतीक्षा, करो प्रतीक्षा और मौत आती है, और कुछ भी नहीं आता। न सुबह आती है, न मयखाना मस्त होता, न वसन्त आता, न फूल खिलते।

कब सुब्हे सुखन होगी, कब शामे नज़र होगी।

नहीं, बाहर तो कभी कुछ हुआ नहीं, मृग-मरीचिका है। चहल-पहल बहुत है, परिणाम कुछ भी नहीं।

सुकृत कोऊ न कियौ, राच्यों झंझट झोल।

कभी कुछ अच्छा न किया। अच्छा करते कैसे ? यहां तो बुरा करनेवाले को सफलता मिलती है। और मजा ऐसा है कि जब कोई सफल हो जाता है, कहते हैं जो

भी किया, अच्छा किया। यहां सफलता सब बुराइयों पर सील लगा देती है अच्छाई की। देखते हो तुम, जो पद पर पहुंच जाता है वही ठीक। और जब तक पद पर होता है तभी तक ठीक। जैसे ही पद से उतरा कि गलत। फिर देर नहीं लगती गलत होने में। जो गुहार मचाते थे ठीक होने की, वे ही गुहार मचाने लगते हैं गलत होने की। वे ही लोग प्रसन्नता के गीत गाते थे, वे ही निंदा के नारे लगाने लगते हैं। जो स्वागत में झंडे दिखाते थे, वे ही काली झण्डियां बना रखते हैं। वही के वही लोग। बड़ा आश्चर्यजनक है। तुम देखते रहते हो, मगर समझोगे कब ?

सुकृत कोऊ न कियौ...। सुकृत तो कोई कर ही नहीं सकता, अगर बाहर से उसकी आशा जुड़ी है। अगर सोचता है थोड़ा और धन, थोड़ा और पद तो जीवन में सब ठीक हो जायेगा, तो सुकृत नहीं कर सकता। सुकृत तो उसी से होता है जिसके भीतर परमात्मा की सहज स्मृति झलकने लगती है। उससे सुकृत होता है। जो भीतर स्वयं सत्य हुआ, उसी से सुकृत बहता है। कृत्य तो पीछे है, आत्मा पहले है। आचरण पीछे है, अन्तस पहले है। जब भीतर रोशनी होती है तो तुम्हारे कृत्यों में भी रोशनी होती है। अपने-आप हो जाती है। लेकिन साधारणतः जो आदमी संसार में सफलता चाहता है वह सुकृत कर नहीं सकता। सुकृत करनेवाले को सफलता मिलती कहां है?

मैंने सुना है एक भिखमंगे ने एक अमीर आदमी को रास्ते में रोका और कहा कि कुछ मिल जाये, चार दिन का भूखा हूं। अमीर ने आदमी को गौर से देखा, भिखमंगा तो जरूर था, कपड़े पुराने थे, फटे थे, मगर कीमती थे। वे कभी कीमती रहे होंगे। ढंग के बने थे। भिखमंगे की चाल में भी एक सुसंस्कार था, चेहरे पर भी एक सुसंस्कार था। भिखमंगेपन की धूल जम गई थी बहुत, लेकिन सुसंस्कार था। एक प्रसाद था, गरिमा थी, एक भाव-भंगिमा थी। उस अमीर ने सौ रुपये का नोट निकालकर उसे दिया और कहा कि एक बात पूछना चाहता हूं। तुम्हें देखकर, तुम्हारी भाषा से, तुम्हारे बोलने के ढंग से, तुम्हारे चलने के ढंग से, तुम्हारे वस्त्रों से, तुम्हारे चेहरे, तुम्हारी आंखों से ऐसा लगता है कि तुम अच्छे कुलीन घर से आते हो। क्या हुआ ? कैसे बरबाद हुए ? वह आदमी हंसने लगा। उसने कहा, अब आप मत पूछो। जिस तरह आप सौ-सौ रुपये बांट रहे हैं भिखमंगों को, अभी मुझे दे दिया, अगर ऐसी हालत रही तो कुछ दिन में यही हालत आपकी हो जायेगी। ऐसी ही मेरी हालत खराब हुई। सुकृत किये, उसी में बरबाद हुआ। जो भी दे सकता था दिया, उसी में बरबाद हुआ।

यहां तो सुकृत करनेवाला बरबाद हो जाता है। यहां तो दुष्कृत्य करनेवाले सफल हो जाते हैं, सिर पर बैठ जाते हैं। और जब सिर पर बैठ जाते हैं तो स्वभावतः सब ठीक हो जाता है। सब दुष्कृत्यों पर पानी फेर दिया जाता है। इतिहास फिर से

लिख दिये जाते हैं। जब स्टैलिन हकूमत में आया, उसने सारा इतिहास बदलवा दिया रूस का। अपने दुश्मनों के चित्र निकलवा दिये तस्वीरों में से। ट्राटस्की के चित्र निकलवा दिये तस्वीरों में से, नाम हटवा दिये। सारा इतिहास बदलवा डाला। वह जब तक सत्ता में रहा तब तक उसकी जय-जयकार होती रही। इस तरह जय-जयकार हुई कि जैसे वेद में देवताओं की प्रशंसा में ऋचाएं कही जाती हैं। उस तरह कम्युनिस्ट सारी दुनिया में उसकी जय-जयकार करते रहे। फिर मरा तो जहां उसकी लाश दफनाई गई थी, क्रेमलिन के निकट लेनिन की समाधि के पास, वहां से उखाड़ी गई। यह उसके योग्य नहीं मानी गई जगह। वहां से लाश निकलवा कर——अक्सर लोग मुर्दों को इतना कष्ट नहीं देते——यहां से मुर्दा निकाला गया, और किसी साधारण कब्रिस्तान में दफनाया गया। और स्टैलिन का नाम इतिहास में से पोंछ दिया गया। उसकी तस्वीरें अलग कर दी गई। आज स्टैलिन को जाननेवाला रूस में कोई भी नहीं। सौ पचास साल बाद यह पता ही नहीं चलेगा कि स्टैलिन कभी हुआ था रूस में, इतिहास में नाम ही नहीं बचने दिया।

तुम देखते हो, भारत में भी वही हो रहा है। सारी दुनिया में वही होता है। इन्दिरा ने कालपत्र गाड़ा था, मोरारजी ने निकलवा लिया। उनका नाम उसमें नहीं था। अब जब तक उनका नाम उसमें न हो जाये, इन्दिरा का न निकल जाये, तब तक कालपत्र नही गाड़ा जायेगा। मगर ऐसे क्या होगा? पांच-सात साल बाद कोई दूसरा कालपत्र निकालेगा! इन्दिरा पर मुकदमे की बात चलती है और जिन पर मुकदमे चलते थे, उन सब पर से मुकदमे वापिस ले लिये गये हैं। खूब मजा है। जो सत्ता में है वह ठीक मालूम पड़ता है। वह जो करता है ठीक मालूम पड़ता है। जैसे ही सत्ता से उतरता है गलत हो जाता है। इन्दिरा वापिस लौट आयी कभी तो वे जो मुकदमे वापिस ले लिये गये हैं, बड़ौदा डायनामाइट काण्ड इत्यादि, वे सब वापिस शुरू हो जायेंगे। फिर से फाइलें खुल जायेंगी। फिर से मुकदमा चलने लगेगा। वे ही लोग मुकदमा चलानेवाले थे, वे ही आफिसर, उन्होंने ही वापिस ले लिये हैं। वे फिर चला देंगे। जिसकी सत्ता है वह ठीक। जिसके हाथ में ताकत है वह ठीक। दुनिया बहुत बदली नहीं है। जिसकी लाठी उसकी भैंस, अभी भी वही नियम चालू है। जंगल का नियम। अभी भी आदमी जंगली है। और ऐसा लगता है, बाहर के हिसाब से, आदमी सदा जंगली रहेगा।

सुकृत कोऊ न कियौ, राच्यों झंझट झोल।

अच्छा तो करने की फुरसत कहां है यहां? अच्छा करनेवाला तो मुश्किल में पड़ जाता है। अच्छे करनेवाले की तो खबर भी नहीं छपती। अगर तुम ध्यान करते हो, अगर तुम किसी की हत्या करो, तब अखबारों में खबर छपती है। चोरी

करो, बेईमानी करो, जाहिर हो जाओगे। घर में बैठ कर ध्यान करते हो, प्रार्थना करते हो, पूजा करते हो तो कौन तुम्हारी फिकर करता है! तुम थे या नहीं, कभी तुम्हारी कहीं खबर न होगी। कभी तुम्हारा नाम कहीं सुना न जायेगा।

अच्छे समाचार को लोग समाचार मानते ही नहीं; समाचार बुरा हो तो ही समाचार होता है। बर्नार्ड शा ने समाचार की व्याख्या की है। अगर कुत्ता आदमी को काटे तो यह कोई समाचार नहीं, आदमी कुत्ते को काटे तो यह समाचार है। जब तक कुछ उलटा न करो तब तक तुम ख्यातिलब्ध नहीं होते।

इस जगत में झंझटें ही खड़ी की जाती हैं। जितनी बड़ी झंझट खड़ी करते हो उतनी ही ऊंचाई पर पहुंच जाते हो। झंझटों की सीढ़ियां बनाते हैं लोग; झंझटों की सीढ़ियों पर चढ़ते हैं। ...राच्यों झंझट झोल।

अब देखते हो तुम? इस देश में आज जो सत्ता में पहुंच गये हैं, झंझट करके पहुंच गये हैं। और अब अगर दूसरों को सत्ता में पहुंचना है तो झंझट खड़ी करनी पड़ेगी। क्यों झंझट खड़ी की जा रही है? जब झंझट इतनी हो जायेगी ज्यादा कि सत्ता में रहने का मजा चला जायेगा। जो सत्ता में हैं उनके लिए झंझट ज्यादा हो जायेगी सत्ता में रहने के मजे से, तो ही वे हटेंगे। उसके पहले कोई हटता नहीं है। इस दुनिया में तो लोग झंझटों से जीते हैं। सुकृत करने की सुविधा कहां है?

अंति चल्यौ सब छाड़ि कै... फिर आखिर में सब चला जाना पड़ेगा। सब झंझटें पड़ी रह जायेंगी, सब शोरगुल पड़ा रह जायेगा। हरि बोलौ हरि बोल। उसके पहले हरि को बोल लो। उसके पहले हरि को बुला लो, हरि को पुकार लो। उसे निमंत्रण दे दो।

मूंछ मरोरत डोलई एंठयो फिरत ठठोल।
ढेरी ह्वै है राख की हरि बोलौ हरि बोल।।

समय रहते, इसके पहले कि राख में मिल जाओ, पुकार लो उसे; अमृत से नाता जोड़ लो। उसके साथ भांवर पाड़ लो।

मूंछ मरोरत डोलई। मगर लोग तो मूंछ मरोरते डोल रहे हैं! मूंछ मोरड़ने के लिए ही लोग उपाय करते रहते हैं जिन्दगी भर। कोई एक तरह से मरोड़ता है मूंछ, कोई दूसरी तरह से मरोड़ता है। नहीं है जिनकी मूंछ वे भी मरोड़ रहे हैं। ऐसा मत सोचना कि नहीं मरोड़ रहे हैं। कोई मूंछ होने की जरूरत नहीं है मरोड़ने के लिए। मूंछ ही मरोड़ रहे हैं लोग। कोई धन कमा कर करेगा, कोई पद से, कोई ज्ञान से, कोई प्रतिष्ठा से, मगर मूंछ मरोड़ कर दिखा देना है।

मैंने सुना है, एक गांव में एक सरदार था। राजस्थानी कहानी है। राजस्थानी सरदार! मूंछ मरोड़ कर चलता था। और इतना ही नहीं कि खुद मूंछ मरोड़ता

था, किसी दूसरे को गांव में मरोड़ने नहीं देता था । क्योंकि फिर मजा ही क्या ? जब सब मूंछ मरोड़ रहे हों तो फिर क्या सार? अकेले ही मरोड़ता था । और सारे गांव की मूंछ नीची रखवाता था । सारे गांव के लिए आज्ञा थी कि अपनी मूंछ दोनों तरफ झुकी रखो । एक नया-नया बनिया गांव में आया । उसको भी मूंछ मरोड़ने की बात थी । उसके पास धन काफी था । होगा सरदार अपने घर का । वह मूंछ मरोड़ कर गांव में निकला यह सरदार को बर्दाश्त के बाहर हो गया । उसने कहा मूंछ नीची कर । इस गांव में बस एक ही मूंछ मरोड़ी जा सकती है । दो एक साथ नहीं । एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं । मूंछ नीची कर ले ।

बनिया भी होशियार तो था । बनिये तो होशियार होते ही हैं । बनियां ने कहा कि ठीक, तो नहीं रहेंगी दो तलवारें । तो हो जाये टक्कर । तो या तो यह गर्दन या वह गर्दन बचेगी । मगर इसके पहले कि हम जूझें, मैं जरा घर जाकर अपनी पत्नी-बच्चों का सफाया कर आऊं । क्योंकि पता नहीं मैं मर जाऊं तो नाहक पत्नी-बच्चे क्यों दुख पायें मेरी मूंछ के पीछे । मैं तुझसे कहता हूं, तू भी जा और घर सफा कर आ । क्योंकि यह बात ठीक नहीं है, तू मर जाये हो सकता है, फिर पत्नी-बच्चे विधवा हो जायें, भीख मांगें, फिर तेरी मूंछ मरोड़ने के पीछे उनकी हालत को सोच । बात सरदार को भी जंची कि बात तो ठीक है ।

दोनों घर गये । सरदार ने जाकर फौरन सफाया कर दिया—पत्नी, बच्चे, सब को मार कर घर से लौट कर आ गया । और बनिया अपनी मूंछ नीची करके आ गया । उसने कहा, मैंने सोचा, क्या झझंट करनी ! जरा-सी मूंछ के पीछे क्यों मार-पीट करनी !

अब तुम देखते हो किसकी मूंछ ऊंची रही ! कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि मूंछ नीची करके भी लोग मरोड़ लेते हैं । यह बनिये ने नीची करके मरोड़ ली । तो कभी-कभी विनम्रता भी मूंछ मरोड़ने का एक ढंग होता है, कहते हैं कि हम तो आपके पैर की धूल हैं । तो ऊपर-ऊपर मत देखना कि मूंछ मरोड़ी है कि नहीं । लोग तो गोंद इत्यादि लगाकर मरोड़ते हैं, कि अब गोंद न लगाओ तुम, तो क्या पता हवा चले जोर की, मूंछ झुक जाये, चार आदमी में फजीहत हो जाये । रास्ते पर निकलो, पानी गिर जाये । बालों का क्या भरोसा? अकड़े ही रहें! अब बाल कोई आदमी तो हैं नहीं । तो गोंद इत्यादि लगाकर, बिलकुल मरोड़ कर ... ।

मगर तुम देखोगे, जिंदगी में लोग वही कर रहे हैं—अलग ढंग से । हर आदमी मूंछ मरोड़े बैठा है । जब उसे मौका मिल जाता है तो दिखा देता है कि देख ले । रास्ते पर खड़ा पुलिसवाला है — तुम्हें बता देता है मौके पर कि देख लो, किसकी मूंछ ऊंची है! रेलवे स्टेशन पर बैठा टिकट बेचनेवाला भी बता देता है तुमको, कि मूंछ

किसकी है ऊंची । चपरासी, तहसीलदार भी । वह तुम्हें मजा चखा देता है, खड़े रहो! होओगे अपने घर के मालिक और राजा, इधर मूंछ किसी और की चलती है ।

हर आदमी एक-दूसरे के पीछे पड़ा है ।

मूंछ मरोरत डोलई ऐंठया फिरत ठठोल । और लोग हंसी-मजाक कर रहे हैं, जैसे जिन्दगी बस हंसी-मजाक है ! जैसे जिन्दगी एक मखौल है ! जिंदगी गम्भीर मामला है । मौत आ रही है । इसे यूं ही मत गंवा दो । लेकिन लोग ताश खेलने में गंवा रहे हैं । लोग सिनेमा देखने में गंवा रहे हैं । लोग गपशप करने में गंवा रहे हैं । और उन्हें पता नहीं है, समय कितना मूल्यवान है ।

ढेरी ह्वै है राख की हरि बोलौ हरि बोल ।

इसके पहले कि ढेरी हो जाओ राख की, पुकार लो हरि को । जोड़ लो उससे नाता ।

ख्वाब ही ख्वाब कहां तक झलकें
खस्तगी रात की उठता हुआ दर्द
आहनी नींद से बोझल पलकें
ओस खिड़की के खुनक सीसे पर
बर्स के दाग की सूरत तारे
तन्ज एक रात के आईने पर
नींद आखों की बिखर जाती है
सर्द झोकों में वो आहट है अभी
जुम्बिशे-दिल में ठहर जाती है
रात कटती नहीं कट जायेगी
और तेरे ख्वाब की दुनिया ऐ दोस्त
वक्त की धूल में अट जायेगी

लोग कहते हैं, समय नहीं कट रहा है ।

रात कटती नहीं कट जायेगी ।
और तेरे ख्वाब की दुनिया ऐ दोस्त,
वक्त की धूल में अट जायेगी ।

जल्दी सब नष्ट हो जायेगा । कल का भी कुछ भरोसा नहीं है । कल भी तुम होओगे इसका कुछ पक्का नहीं है । आज ही पुकारो ।

ढेरी ह्वै है राख की हरि बोलौ हरि बोल ।
पैंडो ताक्यों नरक कौ सुनि-सुनि कथा कपोल ।

कैसी कपोल कल्पनाओं में लोग उलझे हैं! धन से कुछ मिल जायेगा, यह कपोल

कल्पना है। किसी को कुछ नहीं मिला, तुम्हें कैसे मिल जायेगा ? धन में कुछ है ही नहीं तो तुम्हें कैसे मिल जायेगा? पद से कभी किसी को नहीं मिला। कपोल कल्पना है कि तुम पद पर बैठ जाओगे तो तुम्हें कुछ मिल जायेगा। कितनी ही ऊंची कुर्सी पर बैठो, तुम तुम ही रहोगे। यह अज्ञान ऐसा का ऐसा रहेगा। यह दुख और दर्द ऐसे के ऐसे रहेंगे। यह पीड़ा ऐसे की ऐसी रहेगी। बढ़ जायें भला, मिटनेवाली नहीं है, क्योंकि पद की झंझटें हैं। पद पर कोई आसानी से थोड़े ही बैठने देगा। चारों तरफ से लोग खींचातानी करेंगे। कोई टांग खींच रहा है, कोई पैर खींच रहा है, कोई कुर्सी ही सरकाने की कोशिश कर रहा है। तुम्हें आनंद मिल नहीं सकता पद पर—न धन, से, यश से।

पैंडो ताक्यों नरक कौ, सुनि-सुनि कथा कपोल।

लेकिन इन कपोल कल्पनाओं में नरक बना लिया है जीवन को।

बूड़े काली धार में, हरि बोलौ हरि बोल।

यह जो काली धार है जिंदगी की, यह असली धार है, क्योंकि यह मौत में समाप्त होती है। इस स्याह काली रात में हरि को पुकार लो, दीये जला लो उसके स्मरण के। थोड़ी सी रोशनी जनमा लो।

माल मुलक हय गय घने ...सब छिन जायेगा। माल भी, मुलक भी, हाथी घोड़े भी।... कामिनि करत कलोल। ये सुन्दर स्त्रियां, ये प्यारे चेहरे, ये सब छिन जायेंगे।

कतहूं गये बिलाइकै हरि बोलौ हरि बोल।

पता भी नहीं चलेगा कि कहां बिला गये, कहां खो गये! कितनी सुन्दर स्त्रियां इस पृथ्वी पर रहीं। किल्यौपैतरा और मुमताज महल और कितने सुन्दर लोग इस पृथ्वी पर रहे। सब खो गये। मिट्टी से उठे, मिट्टी में गिर गये।

लेकिन आदमी यह देखना नहीं चाहता, यह देखने में डर लगता है। फिर उसके सपनों का क्या होगा? आदमी तो बड़े सपने देखता है।

कभी-कभी तेरे ओठों की मुस्कुराहट से
मुझे बहार की आहट सुनाई देती है।
तेरी निगाह की यह बेहिसाब सरगोशी
मुझे फवार सी पड़ती दिखाई देती है।
जब आस्मां पै लपकता है बांकपन तेरा
तभी कमान से कोई तीर छूट जाता है।
तेरे बदन के जबां साल जमजमे सुनकर
गरूर मेरी समाअत टूट जाता है।
महकी हुई गुफ्तार में फूलों का तबुस्सुम

बहकी हुई रफ्तार में झोंकों की रवानी।
मुमकिन है खिजाओं का तस्व्वुर ही बदल दे
ऐ जाने-बहारां, तेरी गुलपोस जवानी।

जब हम भरते हैं सौन्दर्य के मोह से, युवापन के मोह से, तो हम भूल ही जाते हैं कि ये सपने बहुत बार देखे गये हैं; ये कुछ नये नहीं हैं। यह प्रेम बहुत बार हुआ है; यह कुछ नया नहीं है। कितने मजनू और कितने फरिहाद प्रेम करते रहे और गलते रहे और गिरते रहे। प्रेम ही करना हो तो परमात्मा से करो। उसके साथ प्रेम जुड़ जाता है तो व्यक्ति परिवर्तन के पार हो जाता है। जहां तक परिवर्तन है वहां तक दुख है। जैसे ही परिवर्तन के पार गये कि वहां शाश्वत शान्ति है।

माल मुलक हय गय घने, कामिनि करत कलोल।

कतहूं गये बिलाइकै, हरि बोलौ हरि बोल।।

मगर जवानी सो जवानी, बुढ़ापे में भी लोग बीती जवानी की याद कर-करके जीते हैं। आंखें बूढ़ी हो गईं, देह टूटने लगी, कब्र करीब आ गई, एक पांव कब्र में उतर गया, दूसरा अब उतरा, तब उतरा; तब भी उनकी याद्दाश्त जवानी की ही बनी रहती है। वे पुराने दिन लौट-लौट कर उनके ध्यान में तैरते रहते हैं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मरते समय सौ में से निन्यानबे लोगों के मन में कामवासना का विचार होता है। और इससे जिन्होंने आत्मिक जीवन खोज की है उनकी पूर्ण सहमति है। होगी ही। क्योंकि जिन्दगी भर वही विचार,सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वही विचार था। उसी के इर्द-गिर्द जीवन कोल्हू के बैल की तरह घूमा है। मरते वक्त तो और भी प्रगाढ़ होकर प्रकट होगा। और चूंकि मरते वक्त कामवासना का विचार ही चित्त में होता है, तत्क्षण नया जन्म हो जाता है किसी गर्भ में। क्योंकि फिर कामवासना की यात्रा शुरू हो गई। मरते वक्त राम का खयाल रहे, काम का नहीं, तो मुक्ति है। फिर दुबारा गर्भ को गंदगी में उतरने की संभावना न रही। फिर दुबारा यही वर्तुल शुरू न होगा।

लेकिन राम का नाम कोई अन्त में एकदम से नहीं ले सकता, जब तक जीवन भर अपने को राम के नाम से सिक्त न किया हो।

कभी-कभी मेरे अहसास के हिजाबों में
किसी की याद दुल्हन बनकर मुस्कुराती है
निशातो-नूर में भीगी हुई फजाओं से
किसी के गर्म तनफ्फुस की आंच आती है।
दमागो-रूह में जलते हैं जमजमों के दिये

तसव्वुरात में खिलती हैं मरमरी कलियां
बुझी-बुझी आंखों में फैल जाती हैं ।
वे झेंपती हुई राहें वे शरमगीं गलियां
जहां किसी ने बड़ी मुल्तफित निगाहों से
धनुक के रंग बिखेरे थे मेरे सीने में
तरबनवाज बहारों का रंग उंडेला था
खिजां नसीब के ख्यालों के आबगीने में
उजड़ चुकी है वो सपनों भरी हसीं दुनिया
सुलगते जहन पै माजी का है असर फिर भी
न अब वो दिल हैं न अब दिल के हैं वो हंगामे
हयात साकिनो-खामोश हैं मगर फिर भी. . .
कभी-कभी मेरे अहसास के हिजाबों में
किसी की याद दुल्हन बन कर मुस्कुराती है
निशातो-नूर में भीगी हुई फजाओं से
किसी के गर्म तनफ्फुस की आंच आती है

जब सब खो जाता है, सब सपने टूट जाते. . .

उजड़ चुकी है वो सपनों भरी हसीं दुनिया
सुलगते जहन पर है माजी का असर फिर भी

लेकिन फिर भी बीत गये अतीत के संस्कार मन पर जमे रहते हैं, जमे रहते हैं।

उजड़ चुकी है वो सपनों भरी हसीं दुनिया
सुलगते जहन पर माजी का असर है फिर भी ।
न अब वो दिल हैं, न दिल के हैं वो हंगामे
हयात साकिनो-खामोश है मगर फिर ।

उस 'मगर फिर भी' पर ध्यान दो। आदमी मरते-मरते भी सपनों में खोया रहता है। जीता है सपनों में, मरता है सपनों में। जागोगे कब? और जो जागा नहीं वह व्यर्थ ही जिया और व्यर्थ ही मरा।

मोटे मीर कहावते करते बहुत डफोल।

बड़े रईस समझते हैं लोग अपने को। बड़े अहंकारी! यह समझते हैं, और बड़ा आडम्बर और बड़ी डींगें हांकते हैं।

मोटे मीर कहावते करते बहुत डफोल।
मरद-गरद में मिलि गये हरि बोलौ हरि बोल ।।

बड़े-बड़े मरद, बड़े-बड़े हिम्मतवर लोग, बड़े साहसी, दुस्साहसी, वे भी मिट्टी

में मिल जाते हैं। कायर भी मिल जाते मिट्टी में और बहादुर भी मिल जाते हैं मिट्टी में। कुछ बहुत भेद नहीं है। धनी और गरीब, सफल और असफल एक साथ गिर जाते हैं। मौत कुछ फर्क नहीं करती, मौत बड़ी समाजवादी है। कहना चाहिये, साम्यवादी है। इसलिए छोटी-छोटी बातों में मत उलझो कि गरीब हूं तो अमीर कैसे हो जाऊं, कायर हूं तो वीर कैसे हो जाऊं? इन छोटी-मोटी बातों में मत उलझो। रस तो एक ही बात है, जिसमें लेना, कि बाहर हूं, भीतर कैसे हो जाऊं; आंखें बाहर की तरफ खुली हैं, भीतर की तरफ कैसे खुल जायें। मरद गरद में मिल गये, हरि बोलौ हरि बोल। वही है हरि का स्मरण!

ऐसी गति संसार की, अजहूं राखत जोल ।
आप मुये ही जानिहै हरि बोलौ हरि बोल ।।

क्या मरोगे तभी जानोगे? ऐसी गति संसार की... ।जरा देखो, गौर करो। इतने लोग मर गये हैं, इतने लोग मर रहे हैं। जरा गौर से पहचानो। ऐसी गति संसार की। यह गति है, संसार की व्यवस्था है, उसका नियम है: यहां जो जनमा है वह मरेगा। यहां सब मिट्टी में मिल जानेवाला है। ऐसी गति संसार की अजहूं राखत जोल। और फिर भी तुम जोर मार रहे हो, इस नियम के विपरीत। अभी भी जोर लगा रहे हो कि शायद मैं निकल भागूं। जो सिकन्दर को नहीं हुआ, शायद मुझे हो जाये। ... अजहूं राखत जोल ।आप मुये ही जानि है...। क्या तुमने तय ही कर रखा है, जब मरोगे तभी जानोगे? मगर तब चूक जाओगे, बहुत देर हो जायेगी। फिर करने का कोई उपाय न रह जायेगा। फिर पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत! हरि बोलौ हरि बोल।

इसके पहले कि मौत आ जाये, परमात्मा को पुकार लो। इसके पहले कि मौत द्वार पर दस्तक दे, अमृत को निवासी बना लो, अमृत के अतिथि को बुला लो। फिर मौत नहीं आती है। आती भी है तो तुम्हारी नहीं आती। फिर देह गिरेगी; देह तो गिरनी है। देह तुम्हारी है भी नहीं। रंग-रूप सब गिर जायेगा और मिट जायेगा। तुम रहोगे, सदा रहोगे।

मृत्यु को जीता जा सकता है, अमृत को पुकार कर। और ऐसा भी नहीं है कि अमृत बहुत दूर है, वह तुम्हारी पहुंच के भीतर है। तुम अमृत-कलश हो। अमृतस्य पुत्रः। जरा हाथ भीतर बढ़ाओ, अमृत के कलश को पा लोगे। और एक घूंट अमृत का पी लिया, एक बार स्मरण आ गया, एक बार हरि की तरफ आंख उठ गई...

हिन्दू की हद छाड़िकै तजि तुरक की राह,
सुन्दर सहजै चीन्हियां एकै राम अलाह।

एक बार राम और अलाह एक हैं, उस एक का पता चल गया, बस यात्रा पूरी हुई। गन्तव्य आ गया। तुम अपने घर आ गये। फिर सुख ही सुख है। फिर शान्ति ही शान्ति है। फिर मौन, फिर आनन्द, फिर संगीत, और फिर एक मस्ती है जो टूटती नहीं। फिर एक बेखुदी, एक बेहोशी, जिसमें होश का भी दीया जलता है। एक अपूर्व अनुभव। उस अपूर्व अनुभव का नाम ही समाधि है।

हरि बोलौ हरि बोल।

आज इतना ही।

जो है, परमात्मा है

छठवां प्रवचन : दिनांक ६ जून, १९७८; श्री रजनीश आश्रम, पूना

परमात्मा कहां है ?

हम तो खुदा के कभी कायल ही न थे, तुमको देखा खुदा याद आया।

ऐसा लगता है कि कुछ अन्दर ही अन्दर खाये जा रहा है, जिसकी वजह से उदासी और निराशा महसूस होती है ।

संसार से रस तो कम हो रहा है और एक उदासी आ गयी है। जीवन में भी लगता है कि यह किनारा छूटता जा रहा है और उस किनारे की झलक भी नहीं मिली। और अकेलेपन से घबड़ाहट भी बहुत होती है और इस किनारे को पकड़ लेती हूं। प्रभु, मैं क्या करूं ? कैसे वहां तक पहुंचूं ?

क्या आप मुझे पागल बना कर ही छोड़ेंगे ?

चूक-चूक मेरी, ठीक-ठीक तेरा !
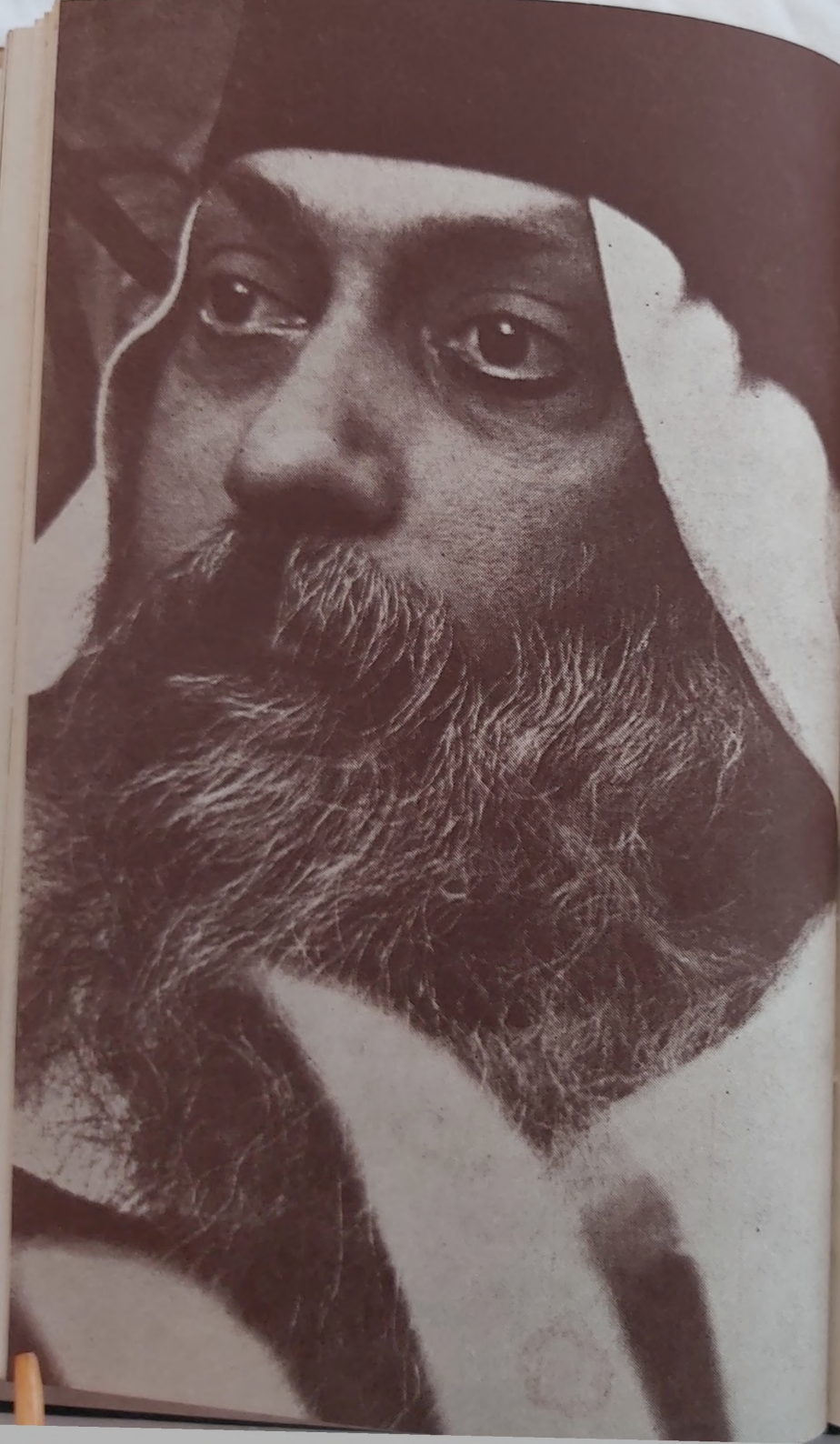
पहला प्रश्न : परमात्मा कहां है ?

☀ परमात्मा कहां है, ऐसा पूछने में ही भूल हो जाती है। और प्रश्न गलत हो तो ठीक उत्तर देना असंभव हो जाता है। पूछो, परमात्मा कहां नहीं है ? क्योंकि केवल वही है। ज्यादा ठीक होगा कहना कि 'जो है' उसका ही दूसरा नाम परमात्मा है। परमात्मा शब्द छोड़ दो तो भी चलेगा। जो है, यह सारी समग्रता, यह छोटे-से कण से लेकर विराट आकाश, यह जीवन का सारा विस्तार--इस सबका इकट्ठा नाम परमात्मा है।

परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है कि तुम पूछो : कहां है ? परमात्मा का कोई पता नहीं हो सकता। 'समग्र' का क्या पता होगा ? सीमित का पता हो सकता है, और सीमित की तरफ हम अंगुली उठा सकते हैं--वह रहा। सीमित को हम दिशा में रख सकते हैं--पूरब में है, पश्चिम में है, दक्षिण है, उत्तर है, ऊपर है, नीचे है।

'परमात्मा' शब्द ने भी बड़ी भ्रांति पैदा की है। उस शब्द में ऐसा लगता है कि कोई है। उस शब्द के कारण ही फिर हमने उसके हाथ बनाये, पैर बनाये, मुंह बनाया। फिर हमने मूर्तियां रचीं, और उन मूर्तियों के सामने झुके, प्रार्थना की। अपनी ही बनाई हुई मूर्तियां, उन्हीं के सामने झुके। ऐसी मूढ़ता चली। परमात्मा शब्द के कारण भ्रांति हो गयी।

परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, जिसके सामने तुम झुको। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है जिसे तुम पुकार सको। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है जिसके सामने तुम निवेदन कर सको। परमात्मा तो सिर्फ निवेदन करने का बहाना है। असली बात निवेदन है, परमात्मा नहीं। परमात्मा तो सिर्फ झुकने के लिए एक तरकीब है। असली बात झुकना है, परमात्मा नहीं। परमात्मा तो केवल एक निमित्त है। निमित्त को तुम ज्यादा मूल्य मत दो। परमात्मा से ज्यादा मूल्यवान प्रार्थना है--हरि बोलौ हरि बोल ! परमात्मा तो सिर्फ इसलिए है कि बिना परमात्मा के तुम झुक सको, इतनी अभी तुम्हारी सामर्थ्य नहीं है। झुक सको तो परमात्मा की कोई जरूरत नहीं

है। बिना परमात्मा के तुम प्रार्थना न कर सकोगे, इसलिए तुम्हारी जरूरत के हिसाब से परमात्मा की धारणा है।

पतंजलि ने ठीक कहा कि परमात्मा केवल एक उपाय है। और सब उपायों में एक उपाय है, एक डिवाइस, एक उपाय। इसके आधार से कुछ लोग सत्य तक पहुंच गये हैं। जैसा मैंने तुमसे कहा है बार-बार छोटे बच्चे को हम कहते हैं, 'आ' आम का। बस ऐसा ही। 'आ' का आम से क्या लेना-देना है? लेकिन बच्चे को कैसे समझाएं? सिखाना है 'आ' और बच्चे का 'आ' में कोई रस नहीं है; आम में रस है। आम का स्वाद उसे पता है। 'आम' शब्द उठते ही उसके मुंह में रस बह जाता है। आम के बहाने हम 'आ' सिखा देते हैं।

ऐसे ही परमात्मा के बहाने हम प्रार्थना सिखाते हैं। जिस दिन प्रार्थना आ गई, परमात्मा चला जायेगा। प्रार्थना काफी है, पर्याप्त है। तुम अकेले रस-विमुग्ध नहीं हो सकते। तुम्हारी सदा ही अब तक की आदत रही है, दूसरे की मौजूदगी चाहिए तुम्हें। तुम से अगर कोई कहे प्रेम करो, तो तुम पूछते हो—किसको? तुम सिर्फ प्रेम नहीं कर सकते। तुम सिर्फ प्रेममय नहीं हो सकते। तत्क्षण सवाल उठता है—किसको?

मेरे पास लोग आते हैं, मैं उनसे कहता हूं: ध्यान करो। वे कहते हैं: किसका? तत्क्षण जो सवाल उठता है वह—किसका? अब ध्यान तो तुम्हारी चित्त की एक शान्त दशा है। इसका किसी से कोई सम्बन्ध नहीं। ध्यान किसी का होता है? अगर किसी का ध्यान है तो ध्यान ही नहीं हैं, क्योंकि अभी विचार की तरंग मौजूद रहेगी। अगर तुमने राम का ध्यान किया, तो राम का विचार मौजूद है और कृष्ण का ध्यान किया तो कृष्ण का विचार मौजूद है। बुद्ध का ध्यान किया तो बुद्ध का विचार मौजूद है, और जब तक विचार मौजूद है, निर्विचार कहां? और ध्यान यानी निर्विचार।

तो जब तुम पूछते हो, 'ध्यान किसका', तो तुम ध्यान से भ्रष्ट होने का उपाय पूछ रहे हो। मगर तुम्हारी तकलीफ भी मैं समझता हूं। तुम सदा विचार से भरे रहे हो। कभी दुकान का विचार किया, कभी मंदिर का, कभी संसार का विचार किया कभी मोक्ष का—मगर विचार जारी रहा है। एक बात सदा चलती रही है—विचार की धारा। आज अचानक तुमसे मैं कहूं निर्विचार हो जाओ, असंभव मालूम होता है। तुम्हारा अनुभव नहीं है, तो तुम्हारे अनुभव के लिए एक कल्पित बात जोड़ ली जाती है। कल्पित—कि परमात्मा का ध्यान करो। यह बहाना है सिर्फ। हरि बोलौ हरि बोल। उसका कोई नाम थोड़े ही है! 'हरि' बोलने से कोई हरि थोड़े ही है कहीं बैठा, जो सुन लेगा। लेकिन हरि बोलने से धीरे-धीरे-धीरे-धीरे तुम शान्त होते जाओगे। और एक घड़ी ऐसी आयेगी हरि भी हाथ से छूट जायेगा। तभी

'जो है', प्रगट हो जाता है। 'जो है' उसका दूसरा नाम परमात्मा है।

तुम पूछते हो: परमात्मा कहां है? पहले तो 'कहां' शब्द गलत है। कहां नहीं है? दूसरा, 'परमात्मा' शब्द को भी ठीक से समझ लेना। कहीं भी भूल-चूक से परमात्मा कोई व्यक्ति है, ऐसी कोई धारणा तुम्हारे भीतर न बनी रहे, अन्यथा वही तुम्हें अटका देगी। यह सब...ये वृक्ष, ये पक्षी, ये लोग, ये पत्थर, ये पहाड़, ये चांद, ये तारे—ये सब, इन सबके जोड़ का नाम परमात्मा है। इन सबको कोई जोड़े हुए है। इन सबके बीच कुछ तार फैले हुए हैं। ये सब संयुक्त हैं। उस संयुक्तता का नाम परमात्मा है। समग्रता का नाम परमात्मा है।

वृक्ष देखते हो, पृथ्वी से जुड़े हैं। ऊपर उठे हैं, सूरज से जुड़े हैं। हवाओं से जुड़े हैं। वर्षा के बादल आयेंगे, उनसे जुड़े हैं। अब वर्षा करीब आ रही है, वृक्ष प्रफुल्लित हैं, आनंदित हैं।

परसों अखबारों में खबर आयी है कि लंदन के कुछ वैज्ञानिकों ने एक नया यंत्र आविष्कृत किया है, जो वृक्षों की अन्तर-तरंगों को संगीत में रूपान्तरित कर देता है। अन्तर-तरंगों का अध्ययन तो आठ-दस वर्षों से चल रहा है। और यह बात अब वैज्ञानिक रूप से सत्य सिद्ध हो चुकी है कि वृक्षों के भाव होते हैं, अन्तर-भाव होते हैं। जैसे तुम्हारे भाव होते हैं—कभी दुख कभी सुख, कभी प्रफुल्लित कभी उदास, कभी राग और कभी विराग। यह बात तो अब प्रमाणित हो चुकी है, लेकिन अब तक जो उपाय थे वे ऐसे ही थे जैसे कार्डियोग्राम में ग्रॉफ बनता है। तो तुम तो ग्रॉफ में कुछ पढ़ नहीं सकते, उनके लिए चिकित्सक चाहिए, डॉक्टर चाहिए—जो समझे ग्रॉफ की भाषा। सामान्यजन को तो सिर्फ लकीरें खींची मालूम पड़ती है—ऊंची-नीची। उन लकीरों में राज छिपा है, हृदय की धड़कनें छिपी हैं, हृदय की गति छिपी है। हृदय की लयबद्धता या लयहीनता वहां प्रगट है। पर साधारण आदमी कैसे समझे? उसके लिए विशेषज्ञ चाहिए।

अभी इंग्लैण्ड के कुछ वैज्ञानिकों ने एक नया यंत्र आविष्कृत किया है। उसे जोड़ देते हैं वृक्ष से, तो वृक्ष के जो अंतर-भाव हैं, वे संगीत में रूपान्तरित हो जाते हैं। और बड़ी हैरानी के अनुभव हुए हैं। वृक्ष गाते हैं, गुनगुनाते हैं। और उनका गीत सुनकर...भाषा नहीं है उसमें, ध्वनियों का गीत। उनकी ध्वनियां सुनकर तुम समझ पाओगे कि इस वक्त वृक्ष आनंदित है, दुखी है, परेशान है, प्रफुल्लित है—वृक्ष की क्या मनोदशा है? और वृक्ष, जब कोई भी नहीं होता बगीचे में, तब एक-दूसरे से भी अन्तरंग-वार्ता करते हैं।

पूरे बगीचे को यंत्र से जोड़ दिया गया और चकित हुए वैज्ञानिक: कोई वृक्ष चुप ही खड़ा है, तो घंटों चुप खड़ा रहता है, बोलता ही नहीं, ध्यान में है। और

कोई वृक्ष हैं कि बस बकवास कर रहे हैं; एक-दूसरे से गुफ्तगू चल रही है; जवाब-सवाल चल रहे हैं। एक बोलता है, दूसरा चुप हो जाता है। दूसरा बोलता है, पहला चुप हो जाता है। और ऐसा ही नहीं है कि वृक्षों से बोल रहे हैं, जानवर आते हैं तो उनसे बोलते हैं। और तत्क्षण भाषा बदल जाती है, ढंग बदल जाता है। इतना ही नहीं है कि जानवर से बोलते हैं; एक आदमी आया बगीचे में, तो और भी ढंग बदल जाता है। तत्क्षण ध्वनियां भिन्न हो जाती हैं। साधारणतः तुम्हें सन्नाटा दिखाई पड़ रहा है।

वृक्ष भी जुड़े हैं। वृक्ष भी उतने ही आत्मवान हैं, जितने तुम हो। उतनी ही भाव-दशाएं वहां भी हैं। महावीर ने सुन लिये होंगे ये गीत, बिना यंत्र के सुन लिये होंगे। इसलिए वृक्ष को भी चोट मत पहुंचाना, वृक्ष को भी मत काटना——ऐसे विचार का आविर्भाव हुआ होगा। जो पच्चीस सौ साल बाद वैज्ञानिक समझ पाये, महावीर किसी अन्तर भाव में इसे सुने होंगे, गुने होंगे, पहचान लिया होगा। बारह वर्ष तक मौन जंगल मे खड़े थे। बारह वर्ष लम्बा वक्त है। और बारह वर्ष तक मौन कोई जंगल में खड़ा रहे और नग्न वृक्षों जैसा ही—— वृक्ष ही जैसे हो गये होंगे। जैन तीर्थंकरों की कथाएं हैं कि इतने दिनों तक, इतने वर्षों तक जंगल में, एकान्त में, चुप-चाप खड़े रहे कि वृक्ष चढ़ गये, लताएं उनके शरीर पर चढ़ गयीं। पक्षियों ने उनके बालों में घोंसले बना लिये। भूल ही गये, लताएं भूल ही गयीं कि कोई आदमी खड़ा है। समझा होगा कि वृक्ष है। इतने ही सरल भी रहे होंगे। धीरे-धीरे वृक्षों के अन्तर-भाव भी उनके सामने प्रगट हो गये होंगे।

और जब वृक्षों की ऐसी दशा है, तो क्या पशुओं की कहो, क्या पक्षियों की कहो! आज नहीं कल वैज्ञानिक खोज लेंगे कि पहाड़ भी गुनगुनाते हैं। पत्थर भी बोलते हैं, पाषाण भी जीवंत हैं।

यह समग्र का जो जीवन है उसका नाम परमात्मा है। परमात्मा कहीं दूर आकाश में किसी सिंहासन पर बैठा नहीं है——यहां छितरा है, सब तरफ छितरा है, सब तरफ बिखरा है——तुम्हारे बाहर, तुम्हारे भीतर।

अच्छा होगा, 'परमात्मा' की जगह तुम 'जीवन' शब्द का प्रयोग करो। तब तुम ऐसा प्रश्न न बना सकोगे। तब तुम यह न कह सकोगे कि जीवन कहां है? जीवन तो है ही; नास्तिक भी स्वीकार करेगा, अधार्मिक भी स्वीकार करेगा। जीवन को ही धार्मिक 'परमात्मा' कहता है। उसके कहने के कारण हैं। क्योंकि जीवन को वह इतना गहरा प्रेम करता है कि 'जीवन' शब्द उसे पर्याप्त नहीं मालूम होता। जीवन शब्द में कुछ कमी मालूम होती है। जीवन शब्द कुछ वैज्ञानिक मालूम पड़ता है—— रूखा-रूखा, सूखा-सूखा। धार्मिक ने इतने प्रेम से जाना है जीवन को कि वह इस जीवन

को अपना प्यारा कहना चाहता है, प्रियतम कहना चाहता है——महबूब, मेरे प्यारे! उस प्यार की भाषा में जीवन परमात्मा हो गया है। ऐसा सोचोगे, ऐसा देखोगे, ऐसा परखोगे, तो तुम्हारी सोचने की दिशा एक नये आयाम में प्रवेश करेगी।

सबा के हाथ में नरमी है उनके हाथों की
ठहर-ठहर के होता है आज दिल को गुमां
वो हाथ ढूंढ रहे हैं बिसाते-महफिल में
कि दिल के दाग कहां हैं निशस्ते-दर्द कहां

अगर तुम थोड़े शब्दों के जाल से छूट जाओ और जीवन को पहचानो, तो तुम पाओगे परमात्मा तुम्हें तलाश रहा है। तुम्हारे भीतर गई श्वास में वही आया है। तुम्हारे भीतर गये भोजन में भी वही आया है। तुमने जो जल पिया, उसमें भी वही है। उसके सिवा कुछ भी नहीं है। खाओ तो उसे, पियो तो उसे, पहनो तो उसे। और कोई उपाय नहीं है। हम उसी को खाते हैं, उसी को पीते हैं, उसी को पहनते हैं, उसी को ओढ़ते हैं, उसी को बिछाते हैं——और पूछते हैं, परमात्मा कहां है! तुम भी उसकी एक तरंग हो।

दार्शनिक प्रश्न मत उठाओ। दार्शनिक प्रश्न व्यर्थ प्रश्न हैं। सार्थक प्रश्न उठाओ। पूछो : कहां नहीं है?

आस्मां पर बदलियों के काफिलों के साथ-साथ
पल में आगे पल में पीछे, दाएं-बाएं दोनों हाथ
दिलरुबा तारों की बजती घंटियां!
डोलती पगडंडियों पर नर्म बातों का खिराम
नुक्रई आवाजे-पा गाहे झिझकता-सा सलाम
था तो अंदेशा नहीं लेकिन यहां——
वो हवा के निस्बतन इक तुंद झोंके का नुजुल
सरसराहट, हल्का-हल्का शोर, कुछ उड़ती-सी धूल
झनझना उट्ठीं सुनहरी बालियां!
लहलहाती आरजूओं का जहां, गंदुम का खेत
वक्त के बाड़े में भेड़ें-बकरियां बच्चों समेत
जिनकी शादाबी जुनूं की दास्तां!
और फिर शीशम के पेड़ों पर बड़े-छोटे तयूर
अपने-अपने साज पर लहरा कर नग्मों का सरूर
ढल रहे हैं रोशनी में बेगुमां!
आस्मां पर बदलियों के काफिलों के साथ-साथ

पल में आगे पल में पीछे, दाएं-दाएं दोनों हाथ
दिलरुबा तारों की बजती घंटियां!

यह सब, यह समस्त उत्सव, यह सारा संगीत, ये ध्वनियां, ये चुप्पियां—वही है। उसे व्यक्ति मत मानकर चलो। वह अव्यक्ति है। वह ऊर्जा है, शक्ति है। तब तुमने ठीक प्रश्न पूछा। और तब ठीक प्रश्न ठीक उत्तर में ले जा सकता है। जरा-सा गलत प्रश्न और गलत यात्रा शुरू हो जाती है। फिर तुम जिंदगी-भर पूछते रहोगे, कोई उसका उत्तर न दे सकेगा; या जो उत्तर दिये जायेंगे, वे उतने ही व्यर्थ होंगे; या जो देंगे वे इतने ही नासमझ होंगे जितने नासमझ तुम हो। क्योंकि तुम्हारे गलत प्रश्न का उत्तर वही दे सकता है, जिसे अभी पता ही न हो कि उत्तर है क्या। जो अभी यह भी नहीं जानता कि गलत प्रश्न क्या है, वही उत्तर देगा। तुम पूछो: ईश्वर कहां है? और कोई बता दे आकाश की तरफ, उसे कुछ भी पता नहीं है। तुम पूछो : ईश्वर कहां है? कोई उत्तर दे दे कि पूरब में हैं, पश्चिम में है, उसे कुछ पता नहीं है। तुम्हारा प्रश्न गलत है, उसका उत्तर गलत है।

मनुष्य यदि ठीक प्रश्न पूछना सीख जाये तो उत्तर बहुत करीब है, बहुत पास हैं—ठीक प्रश्न में ही छिपे हैं। तो मैं तुमसे निवेदन करता हूं, पूछो : परमात्मा कहां नहीं है? क्योंकि मैंने ऐसी कोई जगह नहीं देखी जहां न हो। बहुत खोजा कि ऐसी कोई जगह मिल जाये जहां न हो, सब तरह के उपाय किये कि ऐसा कोई स्थान मिल जाये जहां परमात्मा न हो; नहीं मिल सका।

तुमने सुनी न नानक की कहानी! गये काबा। रात लेटे हैं, काबा के पुजारी बहुत नाराज हो गये। सुन तो रखा था कि हिन्दुस्तान से यह आदमी आया है, बड़ा ज्ञानी है। मगर इसका व्यवहार बड़ा अज्ञानपूर्ण है! यह काबा के पवित्र पत्थर की तरफ पैर करके सोया हुआ है। उन्होंने कहा कि शर्म नहीं आती? धार्मिक होकर, फकीर होकर, काबा के पवित्र पत्थर की तरफ पैर करते हो! परमात्मा की तरफ पैर किये सो रहे हो!

तो नानक ने कहा : मेरे पैर उस जगह कर दो जहां परमात्मा न हो। मैं क्षमा-याची हूं। लेकिन मैं क्या करूं? तुम मेरे पैर उस तरफ कर दो जहां परमात्मा न हो। क्योंकि मैंने बहुत खोजा, ऐसी कोई जगह पायी नहीं जहां परमात्मा न हो! सारा अस्तित्व उसका मंदिर है।

कहानी तो और भी आगे जाती है। यहां तक तो सच मालूम होती है। इसके आगे कहानी सार्थक तो है, लेकिन सच नहीं है। क्रोध में थे पुजारी, उन्होंने नानक के पैर पकड़कर घुमा दिये दूसरी तरफ। कहानी कहती है, काबा भी उसी तरफ घूम गया। घूम जाना चाहिए, अगर काबा में थोड़ी भी अक्ल हो। मगर घूमा नहीं

होगा, क्योंकि काबा पत्थर है, कैसे घूमेगा? इतनी अक्ल कहां? कहानी सच नहीं है, इसलिए नहीं कह रहा हूं कि नानक पर मुझे कुछ शक है; काबा का पत्थर इतना समझदार नहीं है। पत्थर पत्थर है। लेकिन अगर थोड़ी भी अक्ल हो तो घूम तो जाना चाहिए था। इसलिए कहता हूं, कहानी सार्थक है। बहुत कोशिश की पुजारियों ने, जहां पैर फेरे वहीं काबा मुड़ गया। सार्थक इसलिए है कि इतनी बात कही जा रही है इस कहानी के द्वारा कि जहां भी पैर करो, वहीं परमात्मा है। सिर करो कि पैर करो, परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। खोजना शुरू करो कि कहां नहीं है—और तुम उसे सब जगह पाओगे। और खोजना शुरू करो कि कहां है—और तुम उसे कहीं भी नहीं पाओगे।

इसलिए मैं कहता हूं : तुम्हारा प्रश्न गलत है। और गलत प्रश्न से शुरू मत करना। तुम्हारा प्रश्न ऐसा है जो तुम्हें नास्तिकता में ले जायेगा। अगर तुमने खोजना शुरू किया कि कहां है, तुम कहीं भी नहीं पाओगे। मेरी सुनो : खोजो, कहां नहीं है? खोदो जगह-जगह। पूछो, कहां नहीं है? और तुम चकित हो जाओगे, जहां खोदोगे वहीं उसी को पाओगे—उसी की अन्तःधारा! तुम पाओगे; काबा चारों तरफ घूम रहा है, ठहरा हुआ नहीं है। चारों तरफ परमात्मा की ही गति है, क्योंकि 'जो है' परमात्मा उसी का पर्यायवाची है।

दूसरा प्रश्न—

भगवान! हम तो खुदा के कभी कायल ही न थे,
तुमको देखा, खुदा याद आया।

❋ रतन प्रकाश! देखना आ जाये, तो हर बात से खुदा याद आयेगा, बात-बात से खुदा याद आयेगा। देखना आ जाये, आंख खुले, तो यह कैसे हो सकता है कि खुदा याद न आये?

यह कोयल की दूर से आती आवाज! यही तो इबादत है, यही तो प्रार्थना है। इसे अगर गौर से सुनो तो सारा अस्तित्व तत्क्षण माधुर्य से भर जाता है। सुनो! उसकी रसधार बहने लगती है।

वृक्षों की हरियाली को जरा गौर से देखो, वही हरा है! खिले फूलों को जरा देखो, उसी का नृत्य हो रहा है! उसी के रंग, उसी के इंद्रधनु आकाश में फैलते हैं! सूरज निकलता है तो वही निकलता है! वह जो लाली फैल जाती है सुबह आकाश पर, उसके ही कपोल की लाली है!

देखना आ जाये, तो और कुछ देखने को बचता ही नहीं। देखना आ जाये तो जहां सिर करो, परमात्मा है; जहां आंख खोलो, परमात्मा है; जहां हाथ फैलाओ, परमात्मा है। जिसे छुओगे, वह परमात्मा है। जिसे स्वाद लोगे, वह परमात्मा है।

लेकिन तुम्हारी बात भी मैं समझता हूं। सबसे पहले गुरु में दिखाई पड़ता है, क्योंकि सबसे पहले गुरु के पास ही आंख खोलने की हिम्मत आती है। गुरु का अर्थ क्या होता है? जिस पर इतना भरोसा आ जाये कि तुम आंख खोल सको। और तो कुछ अर्थ नहीं होता। किसी की बात सुनकर, किसी का जीवन देखकर, किसी के रंग-ढंग से प्रभावित होकर, प्रेरित होकर, इतनी हिम्मत आ जाती है कि तुम आंख खोल लेते हो।

डर के मारे तुम आंख बंद किये हो। तुम्हें भय है कि आंख खोलकर जो दिखेगा, कहीं वह इससे बदतर न हो! अभी तो तुम सपनों में हो। आंख बंद है, सपने तुम्हारे हैं और तुमने सपनों को खूब रंगा है, खूब निखारा है। जनम-जनम से तुमने सपनों पर शृंगार किया है। अभी तो तुम अपने-अपने सपने में लीन हो। आंख खोलने से डरते हो, कहीं सपना टूट न जाये! और कौन जाने, जो दिखाई पड़े वह कहीं सपने से भी बदतर न हो!

सत्य सुन्दर ही होगा, इसकी कोई गारंटी है? सत्य जीतेगा, इसकी कोई गारंटी है? कहते हैं ऋषि : सत्यमेव जयते! दिखता तो कुछ उलटा ही है। कहते हैं कि सत्य सदा जीतता है, जीतता तो झूठ मालूम पड़ता है। जीवन-भर का अनुभव तुम्हें कहता है कि झूठ जीतता है, सत्य नहीं जीतता। सत्य कहा कि तुमने हारी बाजी। सत्य के साथ सम्बन्ध जोड़ा, कि चले उतार पर, कि हारे, कि गये काम से! यहां तो झूठ के सोपान पर लोग चढ़ रहे हैं। यहां तो जितना बड़ा झूठ और जितनी हिम्मत से लोग बोल सकते हैं, उतने सफल हो जाते हैं। यहां सच बोलने वाला डूबता मालूम पड़ता है। और ऋषि कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे, मगर पता नहीं किस दुनिया की कहते हैं? किस लोक की कहते हैं? कहां यह नियम लागू होता है, जहां सत्यमेव जयते चलता हो?

और ऋषि तो यह भी कहते हैं, सत्य ही सुन्दर है। सत्यं शिवं सुन्दरम्! वही सुंदर है, वही शिव है। लेकिन हमने तो कुछ और जाना है। हमने तो झूठ में सौंदर्य जाना है। जैसे-जैसे सच्चाई का पता चलता है वैसे-वैसे हमने सौंदर्य को तिरोहित होते देखा है। सागर-तट पर तुम एक स्त्री के सौंदर्य से मोहित हो जाते हो। दूरी है, फासला है। और दूर के ढोल सुहावने! वह तुम पर मोहित हो जाती है। दूरी है, फासला है। दूर के ढोल सुहावने होते हैं। आकर्षित होते हो। एक-दूसरे के निकट आते हो। एक-दूसरे को बांध लेना चाहते हो सदा को। इतना सौन्दर्य कोई छोड़ कैसे दे! इतना सौन्दर्य फिर मिले कि न मिले! फिर गठ-बन्धन में बंध जाते हो। विवाह कर लेते हो। साथ-साथ जीते हो। फिरे धीरे-धीरे सौन्दर्य विदा होने लगता है और असौन्दर्य प्रगट होता है। वह जो सागर-तट पर स्त्री देखी थी, कोई और ही

रही, ऐसा मालूम पड़ने लगता है; या ऐसा शक होता है कि धोखा दिया गया है। क्योंकि इस स्त्री में से तो असुन्दर ही निकलने लगता है, कुरूपता निकलने लगती है। इसके मुंह से ऐसे वचन निकलने लगते हैं, जो तुमने सोचे भी नहीं थे कि इस हसीन चेहरे से निकल सकेंगे, इस सुंदर चेहरे से निकल सकेंगे! ये सुन्दर और प्यारे ओंठ, ऐसे भद्दे और बेहूदे शब्द तुम से बोलेंगे, ऐसे कठोर और कठिन घाव तुम पर करेंगे, सोचा भी नहीं था! इस स्त्री ने भी नहीं सोचा था कि तुम्हारी असलियत ऐसी कुरूप होगी। वह जो सपना देखा था प्रेम का सागर के तट पर, वह टूटने लगता है। यथार्थ उसे उखाड़ने लगता है।

मनुष्य का अनुभव तो यह है कि सत्य कुरूप है, और झूठ सुन्दर है। ऋषि कहते हैं सत्यं शिवं सुंदरम्। पता नहीं, किस लोक की कहते हैं! पता नहीं, कहीं ऐसा लोक है भी या नहीं!

सिगमण्ड फ्रायड या उस जैसे मनोवैज्ञानिक तो मानते हैं कि ये सब कपोल-कल्पनाएं हैं, ये सान्त्वनाएं हैं। यहां जिन्दगी बड़ी कुरूप है। इस कुरूपता को ढांकने के लिए ये सुन्दर-सुन्दर वचन हैं। ये सिर्फ आदमी की आकांक्षाएं हैं, ये सत्य की सूचनाएं नहीं हैं। सत्यमेव जयते––यह सिर्फ आकांक्षा है। ऋषि यह कह रहा है : सत्य जीतना चाहिए। मगर जीतता कहां है? ऋषि यह कह रहा है : सत्य सुन्दर होना चाहिए। मगर है कहां?

जिन्दगी के यथार्थ बड़े कुरूप हैं। ऊपर कुछ, भीतर कुछ पाया जाता है। ऊपर सोने की चमक, भीतर पीतल भी नहीं मिलता। ऊपर फूल की दमक, भीतर कांटा है।

मछली को पकड़ने जाते हैं न, बंसी लटकाते हैं न, कांटे पर आटा लगाते हैं न––वैसी हालत है। मछली आटे को पकड़ने आती है, कांटे को पकड़ने नहीं। पकड़ी जाती है कांटे से, आती है आटे को लेने। आटा आकर्षित करता है, फिर फंस जाती है। फिर निकलना मुश्किल हो जाता है।

जो सौंदर्य तुम एक-दूसरे में देखते हो, कहीं आटा ही तो नहीं? पूछो अनुभवियों से, वे कहेंगे, आटा ही है। पीछे कांटा मिलता है। सुख तो केवल द्वार पर बन्दनवार है––झूठा। द्वार के भीतर प्रविष्ट हुए, द्वार बन्द हुआ कि दुख ही दुख है।

मैंने सुना है, एक राजनेता ने एक सपना देखा। रात सपने में देखा कि मर गया है और नर्क के द्वार पर खड़ा है। उसे हैरानी भी हुई और हैरानी नहीं भी हुई। हैरानी हुई कि सदा सोचता था स्वर्ग मुझे मिलेगा, क्योंकि यही सुनता आया था कि जो भी दिल्ली में मरता है सब स्वर्गीय हो जाते हैं।

यहां तो, हमारे मुल्क में तो जो भी मरता है उसको हम 'स्वर्गीय' कहते हैं। 'नारकीय' तो किसी को हम कहते ही नहीं। कोई भी मरे! राजनीतिज्ञ भी मरता

है तो 'स्वर्गीय' हो जाता है। अगर राजनेता स्वर्ग जाते हैं, तो नर्क कौन जायेगा?

सोचा तो उसने यही था कि स्वर्ग जाऊंगा, नर्क के द्वार पर मैं क्या कर रहा हूं? लेकिन फिर यह भी समझ में आया कि जा कैसे सकता हूं स्वर्ग? जो मैंने किया है, वह स्वर्ग जाने-योग्य तो नहीं। लोग ऐसे ही कहते होंगे।

लोग तो मरे हुए आदमियों के सम्बन्ध में अच्छी बातें कहते हैं। जिंदा आदमी के सम्बन्ध में कोई अच्छी बात नहीं कहता। लोगों ने बड़े अजीब नियम बना रखे हैं। जिंदा आदमी के सम्बन्ध में निंदा, मर जाये तो स्वर्गीय हो गया! 'क्या गजब का आदमी था! अद्वितीय! जिसकी पूर्ति अब कभी नहीं होगी।' दो दिन बाद कोई याद नहीं करता उन सज्जन को, जिनकी पूर्ति कभी नहीं होगी! . . . 'अपूर्णीय क्षति हो गई। अब कभी संसार में उनका स्थान भरा नहीं जा सकेगा!'

लेकिन अपने कृत्यों का उसे खयाल आया, तो सोचा कि ठीक है। भीतर प्रविष्ट हुआ, तो और भी दंग हुआ! स्वागत-कक्ष में बिठाया गया, बड़ा सौंदर्य था! ऐसा सुन्दर भवन उसने दिल्ली में भी देखा नहीं था। राष्ट्रपति का भवन भी कुछ नहीं, ऐसे जैसे नौकर-चाकर का मकान हो। भवन यह था! स्वर्ण का था, हीरे-जवाहरात जड़े थे। बड़ा स्वागत किया गया, मिष्ठान्न लाये गये, फल लाये गये, फूलमालाएं पहनाई गयीं। वह तो बड़ा हैरान हुआ! उसने कहा कि भाई, यह नर्क है? मुझे तो स्वर्ग से बेहतर मालूम हो रहा है।

शैतान ने कहा, अब आप ही सोचिए। एकतरफा बात चल रही है दुनिया में। परमात्मा की किताबें तो चल रही हैं—बाइबिल और वेद और कुरान; मेरी कोई किताब नहीं। मेरे साथ ज्यादती हो रही है। तो तुम्हें एक पक्ष की बातें सुनने में मिली हैं कि नर्क बुरा है और स्वर्ग अच्छा; वह सब विज्ञापन है। जैसे हर कम्पनी अपना विज्ञापन करती है, परमात्मा अपना विज्ञापन करता रहता है। मेरा कोई विज्ञापन करनेवाला नहीं। मैं सीधा-सादा आदमी। मैं अपनी यह दुकान लिये यहां बैठा हूं, कोई जब आ जाता है तो असलियत तो अपने-आप पता चल जाती है। अब आप खुद ही देख लो।

उस राजनेता ने कहा कि बिलकुल तय करके जाता हूं कि यही जगह रहने-योग्य है। और तभी उसकी नींद खुल गयी। फिर जब वह मरा, वस्तुतः मरा कोई दस साल बाद, तो मरते वक्त उसने एक ही कामना की कि नर्क जाऊं। वह सौंदर्य उसे भूलता नहीं था। मरकर नर्क पहुंचा। न भी करता आकांक्षा तो भी पहुंचना था! होता तो वही है जो होना है; तुम्हारी आकांक्षा से कुछ नहीं होता। कभी-कभी तुम्हारी आकांक्षा मेल खा जाती है तो तुम सोचते हो सफल हो गये। बड़ा खुश था, लेकिन जैसे ही नर्क में घुसा, शैतान ने उसकी जोर से झपटकर गर्दन पकड़ी

और लगा घूंसे मारने। और दस-पांच लोग उस पर टूट पड़े। और बड़ी कुरूप अवस्था थी, चारों तरफ भयंकर वातावरण था। अग्नि की लपटें जल रही थीं और कड़ाहे चढ़ाये जा रहे थे और तेल उबल रहा था और लोग फेंके जा रहे थे। उसने कहा, भाई, यह माजरा क्या है? मैं पहली दफा आया था, तब तो कुछ बात ही और थी!

शैतान ने कहा कि वह स्वागत था, वह टूरिस्टों के लिए है, जो ऐसे ही चले आते हैं, तफरीह के लिए, घूमने के लिए। अब यह असलियत है। यह अब यथार्थ है। उस दफे तो आप ऐसे ही सपने में आ गये थे। तो वह तो प्रलोभन है: वह कक्ष बनाया गया है, अतिथियों के लिए है। यह नर्क का यथार्थ है।

नर्क तक में भी आटा है, कांटा पीछे छिपा है। जिन्दगी का अनुभव तो यह कहता है कि सत्य कुरूप है, सपने सुन्दर हैं।

मनोवैज्ञनिक तो कहते हैं कि आदमी सपने ही इसलिए देखता है कि सत्य कुरूप है। सपने न देखे तो क्या करे? कैसे जिये? सत्य इतना कुरूप है कि सपनों से अपने मन को उलझाये रखता है, भुलाये रखता है। जीवन इतना कुरूप है, इसलिए कविताएं लिखता है आदमी और चित्र बनाता है। किसी तरह अपने को भुलाता है। सुंदर भवन बनाता है, सुंदर चित्र लटकाता है, संगीत का निर्माण करता है, काव्य रचता है। ये सब उपाय हैं कि किसी तरह जगत के यथार्थ को, जो कि बहुत कड़वा है, थोड़ी मिठास दी जा सके। कम-से-कम मिठास की पर्त दी जा सके; जैसे जहरीली, कड़वी गोली के ऊपर हम शक्कर की पर्त चढ़ा देते हैं।

काव्य यही है, कला यही है कि इस जिन्दगी को किसी तरह रहने-योग्य बनाओ, किसी तरह कुछ पर्दे डाल कर इसकी कुरूपता को ढांक दो।

तो आदमी आंख खोलने से डरता है। गुरु के संग-साथ में यह साहस आ जाता है कि चलो एक बार हम भी तो आंख खोलकर देखेंगे। क्योंकि कोई आंख खोले हुए आदमी कह रहा है कि नहीं, सत्य कुरूप नहीं है; और तुमने जो जाना था वह सत्य था ही नहीं। सत्य परम सुंदर है। और सत्य कभी नहीं हारता। और तुमने जो सत्य हारते देखा था, वह सत्य नहीं था, वह भी एक तरह का झूठ ही था। निष्प्राण था, निर्जीव था, नपुंसक था। आओ मेरे पास। देखो सत्य को, जो सजीव है, जीवंत है।

और सद्गुरु के पास उठते-बैठते, उसकी तरंग को झेलते-झेलते, उसकी हवा को पीते-पीते, एक दिन यह हिम्मत आ जाती है कि मैं भी आंख खोल कर देखूं तो। एक बार तो देखूं, कौन जाने सद्गुरु जैसा कहता है वैसा ही हो! गुरु वही है जो तुम्हें आंख खोलने के लिए तैयार कर दे।

इसलिए तुम ठीक ही कहते हो रतन प्रकाश—

हम तो खुदा के कभी कायल ही न थे
तुमको देखा खुदा याद आया ।

जिसको देखकर खुदा याद आ जाये, वही गुरु है। जहां याद आ जाये, वही गुरु; जहां याद आ जाये, वही तीर्थ! जहां याद आ जाये, झुक जाना। इसकी फिकिर ही मत करना कि कौन था, जिसके पास याद आया—हिन्दू था कि मुसलमान था कि ईसाई था, आदमी था कि स्त्री था, कौन था? फिकिर ही मत करना। जिसको देखकर भी तुम्हें इस बात की थोड़ी-सी झनक मालूम पड़ने लगे कि जगत व्यर्थ नहीं है, सार्थक और यहां पदार्थ ही नहीं है, पदार्थ में छिपा परमात्मा भी है। और यहां ऊपर-ऊपर जो दिखाई पड़ रहा है, वही पूरा नहीं है, भीतर कुछ और भी है। परिधि पर जैसा है वैसा केन्द्र पर नहीं है।

सीखी यहीं मेरे दिले-काफिर ने बंदगी
रब्बे-करीम है तो तेरी रहगुजर में है

जहां प्रेम घटता है, वहीं परमात्मा का अनुभव शुरू हो जाता है। और इस जगत में शुद्धतम प्रेम का जो संबंध है वह गुरु और शिष्य का संबंध है।

सीखी यहीं मेरे दिले-काफिर ने बंदगी
रब्बे-करीम है तो तेरी रहगुजर में है

प्रेम के रास्ते पर परमात्मा मिलता है। जहां से प्रेम गुजरता है, उन्हीं रास्तों पर चलते-चलते एक दिन परमात्मा मिल जाता है। इस जगत में और बहुत तरह के प्रेम हैं, जो सभी टूट जायेंगे, सभी छूट जायेंगे; एक ऐसा भी प्रेम है, जो नहीं टूटता, नहीं छूटता। सौभाग्यशाली हैं वे, जिन्हें उस प्रेम की झलक मिल जाती है, क्योंकि फिर उसी झलक के सहारे को पकड़ कर परमात्मा तक पहुंचा जा सकता है।

सद्गुरु का अर्थ क्या होता है? इतना ही न, कि जहां बैठकर उस रोशनी की चर्चा हो! और चर्चा ही न हो, चर्चा करनेवाले के भीतर अनुभव का स्रोत हो। चर्चा शास्त्रीय न हो, अस्तित्वगत हो।

गुलों में रंग भरे बादे-नौबहार चले
चले भी आओ कि गुलशन का कारोबार चले
क़फ़स उदास है यारो सबा से कुछ तो कहो
कहीं तो बहरे-खुदा आज जिक्रे-यार चले

जहां उस प्यारे की याद की बात हो। हरि बोलौ हरि बोल!

क़फ़स उदास है यारो सब से कुछ तो कहो
कहीं तो बहरे-खुदा आज जिक्रे-यार चले

ईश्वर के लिए, कहीं तो उस प्यारे की उसकी चर्चा हो! जहां उसकी चर्चा हो

और ऐसी चर्चा, जो अनुभव से निःसृत होती हो। बात ही बात न हो, बात के पीछे अनुभव प्रमाण हो। जिन आंखों में तुम्हें अनुभव का प्रमाण दिखाई पड़ जाये, वहीं से पहली दफा खबर मिलेगी कि ईश्वर है। गुरु है तो ईश्वर है।

इसलिए यह कोई अकारण नहीं है कि इस देश में सद्गुरु को भगवान, परमात्मा, ईश्वर कह कर पुकारा... गुरुर्ब्रह्मा! अकारण नहीं है। दफा यहीं पहली परमात्मा की झलक मिली। उसी द्वार से पहली दफा आकाश खुला। उसी द्वार से विराट की प्रतीति हुई।

बड़ा है दर्द का रिश्ता, ये दिल ग़रीब सही
तुम्हारे नाम पे आयेंगे, गमगुसार चले
जो हम पे गुजरी सो गुजरी मगर शबे-हिज्रां
हमारे अश्क तेरी आक़बत संवार चले
हुजूरे-यार हुई दफ्तरे-जुनूं की तलब
गिरह में लेके गिरहबां का तार-तार चले
मुकाम 'फैज' कोई राह में जंचा ही नहीं
जो कूए-यार से निकले तो सूए-दार चले

इस जगत में बस दो ही अनुभव सार्थक हैं—एक तो सद्गुरु का अनुभव, क्योंकि वह परमात्मा का पहला अनुभव है; और फिर परमात्मा का अनुभव, क्योंकि वह सद्गुरु का अन्तिम अनुभव है।

गुलों में रंग भरे, बादे-नौ बहार चले
चले भी आओ कि गुलशन का कारोबार चले
क़फ़स उदास है यारो सबा से कुछ तो कहो
कहीं तो बहरे-खुदा, आज जिक्रे-यार चले

ऐसे तो परमात्मा सब तरफ मौजूद है। गुरु में ही मौजूद है, ऐसा नहीं; सब तरफ मौजूद है। लेकिन गुरु में होशपूर्वक मौजूद है और शेष सब तरफ प्रगाढ़ निद्रा में है। वृक्ष में भी है, लेकिन वहां सोया है। अभी वहां स्व-चैतन्य का जन्म नहीं हुआ है। पत्थर में भी है, लेकिन बड़े गहरे में, बहुत खोदोगे तो पाओगे। गुरु में बिना खोदे मिल सकता है। सच तो यह है, गुरु तुम में खोदना चाहता है। और कहीं तलाशना होगा, गुरु के पास गुरु तुम्हें तलाशता है। उसके हाथ तुम्हारे हृदय में गहरे उतरते हैं और टटोलते हैं। शेष सारे अस्तित्व में परमात्मा तुम्हें खोजना पड़ेगा, गुरु के पास परमात्मा तुम्हें खोजता है।

सब कत्ल होके तेरे मुकाबिल से आये हैं
हम लोग सुर्खरू हैं कि मंजिल से आये हैं

शम्मए-नजर, खयाल के अंजुम, जिगर के दाग
जितने चिराग हैं, तेरी महफिल से आये हैं
उठ कर तो आ गये हैं तेरी बज्म से मगर
कुछ दिल ही जानता है कि किस दिल से आये हैं

जहां-जहां रोशनी है... शम्मए-नजर ... कभी किसी आंख में शमा जलती है, कभी किसी आंख में एक लपट होती है। देखी न लपट––आंख की लपट ! शम्मए नजर––नजर की दीया! खयाल के अंजुम ! और कभी-कभी ध्यान में सितारे झलकते हैं। खयाल के अंजुम! जिगर के दाग। और कभी-कभी प्रेम में पड़े हुए हृदय के घाव, वे भी फूल की तरह चमकते हैं, वे भी दीये की तरह जलते हैं। उनमें भी बड़ा रंग और बड़ी रोशनी होती है।

शम्मए-नजर, खयाल के अंजुम, जिगर के दाग
जितने चिराग हैं, तेरी महफिल से आये हैं

और जहां-जहां चिराग है, वह सब उसी परमात्मा की रोशनी है। सद्गुरु में उसका चिराग प्रगाढ़ता से जलता है। जहां तुम्हें मिल जाये, फिर तुम फिक्र मत करना दुनिया की कि दुनिया क्या कहती है। जरूरी नहीं है कि जो तुम्हें दिखाई पड़े, वह औरों को भी दिखाई पड़े। देखने-देखने के ढंग हैं और देखने-देखने का समय है और देखने-देखने की परिपक्वता और प्रौढ़ता है। यहां हर आदमी अलग-अलग जगह खड़ा है। हर आदमी यहां एक ही कक्षा में नहीं है।

तुम एक छोटे बच्चे को लेकर बगीचे में आ गये। जो तुम्हें दिखाई पड़ेगा, वह बच्चे को नहीं दिखाई पड़ेगा। जो बच्चे को दिखाई पड़ेगा वह तुम्हें दिखाई नहीं पड़ेगा। दोनों बगीचे में खड़े हैं।

सद्गुरु जरूरी नहीं है कि सभी को दिखाई पड़े। देखने की पात्रता चाहिए। बुद्ध चले, कितने थोड़े-से लोगों को दिखाई पड़े ! और लोग ऐसे अभागे हैं कि फिर सदियों रोते हैं। फिर सदियों तक कहे चले जाते हैं : 'काश, हम बुद्ध के समय में होते ! और काश, उनके चरणों में बैठते !' और कुछ ऐसा नहीं है कि तुम नहीं थे, तुम भी थे। तुम सदा से हो यहां। बुद्ध तुम्हारे पास से गुजरे होंगे। तुम्हारे पास से काफिले गुजरते रहे हैं––तीर्थंकरों के, अवतारों के, बुद्धों के। शमाएं जलती रहीं, मशालें निकलती रहीं, मगर तुम्हारी प्रौढ़ता नहीं थी कि तुम रोशनी देख सको। जिन्होंने देखा, उन्हें तुमने पागल समझा। तुमने कहा : हमें तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता। और तुम्हारी भीड़ है। बहुमत तुम्हारा है। देखनेवाले इक्के-दुक्के हैं, पागल मालूम होने लगते हैं। तो जरूरी नहीं है कि सभी को दिखाई पड़े।

लेकिन तुम्हें जहां दिख आये, वहीं मिट जाना, वहीं गिर जाना, वहीं ढेर हो जाना, फिर वहीं आखिरी सांस ले लेना। मर जाना गुरु में और तुम नया जीवन पाकर उठोगे। और तुम ऐसा जीवन पाकर उठोगे जिसका फिर कोई अन्त नहीं है।

तीसरा प्रश्न ––

ऐसा लगता है कि कुछ अन्दर ही अन्दर खाये जा रहा है, जिसकी वजह से उदासी और निराशा महसूस होती है।

❋ वेदांत! शुभ हो रहा है। तुम्हारी पुरानी दुनिया बिखर रही है। तुम्हारा पुराना भवन गिर रहा है। वह ताश का भवन था। उसे बचाने में कुछ सार भी नहीं है। तुम्हारी नाव डूब रही है, वह कागज की नाव थी ! वह डूब ही जाये, जितनी जल्दी डूब जाये, उतना अच्छा! क्योंकि वह डूब जाये तो तुम नयी नाव खोजो। वह डूब जाये तो कम से कम तैरना सीखो। उसके भरोसे तुम समय गंवा रहे हो।

ठीक हो रहा है। शुभ हो रहा है।

दिया जले सारी रात
पहने सर पर ताज अगन का
भेदी मेरी दिल की जलन का
लाया है इस अंधियारे घर में अंसुवन की सौगात
दिया जले सारी रात
जल-थल जल-थल भींगी पलकें
पलक-पलक मेरे आसू छलकें
बरस रही दो नैनन से बिन बादल बरसात
दिया जले सारी रात
टूट गये क्यों प्यार पुराने
मैं जानूं या दीपक जाने
जलते-जलते जल जाये पर कहे न दिल की बात
दिया जले सारी रात
भूल गई मोहे सब रंगरलियां
बिखर गई आशा की कलियां
ऐसी चली विरह की आंधी डाल रहे न पात
दिया जले सारी रात

आंधी आयी है, सूखे पत्ते गिरेंगे। पकड़ो मत। आंधी आयी है, यह तुम्हारे ताश का भवन उड़ेगा। प्रतिरोध न करो। यह नाव कागज की डूब रही है, डूबने दो। तुम सौभाग्यशाली हो। यह उदासी, उदासी नहीं है। यह अंधेरा आनेवाली सुबह की खबर ला रहा है। सुबह होने के पहले रात बड़ी अंधेरी हो जाती है। और

ऐसे ही उत्सव के जन्म के पूर्व उदासी गहन हो जाती है।

लेकिन डर तो लगता है जब चित्त उदास होने लगता है और ऐसा लगता कि सब निराशा होती जा रही है, जीवन में कुछ सार नहीं मालूम होता। आदमी घबड़ाता है कि जीऊंगा कैसे अब? किस सहारे जीऊंगा? किस बहाने? लेकिन एक ऐसा भी जीवन है, जिसके लिए सहारे की कोई जरूरत नहीं और जिसके लिए बहाने की कोई जरूरत नहीं। सच तो यह है कि वह जीवन ही सच्चा जीवन है, जिसके लिए भविष्य की कोई आवश्यकता नहीं है और जिसके लिए सपनों का टेका नहीं लेना पड़ता। सपनों की बैसाखी जिस जीवन को जरूरत पड़ती है, वह जीवन झूठा है। उस जीवन को माया कहा है।

क्षण-क्षण बिना भविष्य के, बिना आकांक्षा के, बिना किसी दौड़ के, बिना किसी लक्ष्य के, जीने की एक कला है। वही कला मैं तुम्हें सिखा रहा हूं। इसके पहले कि तुम वर्तमान में जागो, तुम्हारा भविष्य बिखर जायेगा। उसी से तुम उदास हो रहे हो। मेरे पास उठते रहे, बैठते रहे, तो तुम्हारा अतीत व्यर्थ है, यह तुम्हें पता चलेगा। तुम्हारा अतीत मैं छीन लूंगा। और वही तुम्हारी सारी संपदा है। तुम्हारा ज्ञान, तुम्हारा पुण्य--सब तुम्हारे अतीत में हैं। और पहले अतीत हट गया, तो दूसरी चोट तुम्हारे भविष्य पर होगी, क्योंकि वहीं तुम्हारे सारे रस के स्रोत हैं। कल ऐसा होगा, कल के लिए जी रहे हो, आज की क्या फिक्र है!... कल ऐसा होगा!

और ऐसा ही नहीं है कि संसारी लोग कल में जी रहे हैं, तथाकथित धार्मिक लोग भी कल में जी रहे हैं--तुमसे भी ज्यादा! वे कहते हैं, मरने के बाद स्वर्ग होगा....वहां मोक्ष होगा। वहां फिर मिलेगा सुख, यहां सुख कहां रखा है?

मैं तुमसे कह रहा हूं: अगर अतीत और वर्तमान चले जायें, तो यहीं, इसी क्षण मोक्ष अवतरित हो जाता है। मोक्ष कोई भौगोलिक जगह नहीं है जहां तुम्हें जाना पड़े। मोक्ष जीवन को जीने का एक ढंग है, एक कला है। मोक्ष कोई स्थान नहीं है कि चले, बैठे रेलगाड़ी में। तुम्हारे तुम्हारे साधु-संन्यासी ऐसे ही सोचकर चल पड़े हैं, बैठ गये हैं रेल गाड़ियों में। रेलगाड़ियां चलती रहती हैं, कहीं पहुंचती नहीं। मोक्ष कोई स्थान नहीं है--स्थिति है। और स्थिति तो अभी पाई जा सकती है। उस स्थिति का एक ही लक्षण है।

महावीर ने कहा है: जिस क्षण भी चित्त कालातीत हो जाये, जिस क्षण भी चित्त से समय मिट जाये, उसी क्षण मोक्ष है। समय मिट जाये!... समय क्या है? अतीत और भविष्य समय है। वर्तमान समय का हिस्सा नहीं है। तुमने किताबों में पढ़ा हो, तो बदल लेना। तुमने किताबों में पढ़ा है कि समय के तीन हिस्से हैं--अतीत, वर्तमान, भविष्य। मैं तुमसे कह देना चाहता हूं: समय के दो ही हिस्से हैं--

अतीत और भविष्य। वर्तमान समय का हिस्सा नहीं है, वर्तमान शाश्वत का हिस्सा है। वर्तमान कालातीत है। वर्तमान काल का अंग नहीं है।

तो तुम उदास तो होओगे। मेरे पास जो भी आयेगा, उससे मैं बहुत कुछ छीनूंगा। हालांकि जो मैं छीन रहा हूं, वह वही है जो तुम्हारे पास है ही नहीं, सिर्फ तुम्हें भ्रांति है कि है।

ऐसा ही समझो, एक आदमी मानकर चलता है कि उसके पास हीरा है। उसकी अकड़ देखो! उसकी चाल देखो।

मैंने सुनी है एक कहानी। दो फकीर एक जंगल से गुजर रहे हैं--गुरु और शिष्य। गुरु बूढ़ा है, शिष्य जवान है। शिष्य थोड़ा परेशान है, क्योंकि गुरु कभी इस तरह से परेशान पहले दिखा नहीं, आज बहुत परेशान है। और गुरु बार-बार अपनी झोली में हाथ डालकर कुछ टटोलकर देख लेता है, बार-बार। और बड़ी तेजी से चल रहा है। इतनी तेजी से कभी चला भी नहीं। और बार-बार पूछता है अपने शिष्य से: रात होने के पहले हम गांव पहुंच जायेंगे कि न पहुंच पायेंगे? कहीं जंगल में रात न हो जाये!

शिष्य सोच रहा है कि हमें जंगल में रात हो कि गांव में रात हो, क्या फर्क पड़ता है! इसके पहले भी हम कई बार साथ चले और जंगलों में रातें काटी हैं, कभी गुरु को इतना भयभीत नहीं देखा। बात क्या है?

फिर वे एक कुएं पर रुके। गुरु ने झोला रखा कुएं के पाट पर और शिष्य को कहा, जरा झोले का ध्यान रखना। खुद पानी खींचने लगा। शिष्य को मौका मिला, उसने झोले में हाथ डालकर देखा। एक सोने की ईंट! सब राज साफ हो गया कि क्यों आज घबड़ाहट है, क्यों आज डर है, क्यों आज जल्दी नगर पहुंच जाने की आकांक्षा है, आज जंगल में सोने में इतनी बेचैनी क्या है? डाकू...कोई लूट ले! उस युवक ने सोने की ईंट निकालकर कुएं के पास फेंक दी और एक पत्थर का टुकड़ा उतने ही वजन का उठाकर झोले में रख लिया। गुरु ने हाथ-मुंह धोया, स्नान किया बीच-बीच में झोले को देखता रहा। शिष्य भी मन ही मन मुस्काता रहा कि देखते रहो झोले को। अब झोला ही है। फिर जल्दी से स्नान करके जल्दी से झोला कंधे पर लिया, टटोलकर, झोले के ऊपर से ही टटोलकर देखा, ईंट अपनी जगह है। प्रसन्नचित्त दोनों चल पड़े। बड़ी जल्दी चल रहा है, भागे जा रहे हैं! बूढ़ा है, हांफने लगा है। शिष्य कहता है: धीरे चलिए, इतनी जल्दी क्या है? नहीं भी पहुंचे शहर तो क्या?

अन्ततः गुरु ने कहा कि नहीं पहुंचे, तो मुश्किल हो जायेगी, खतरा है।

उस शिष्य ने कहा: आप बेफिक्र रहिए, खतरे को मैं पीछे ही फेंक आया हूं।

तब घबड़ाकर उस बूढ़े ने अपने झोले में हाथ डाला, देखा, वहां पत्थर है। लेकिन ये दो-तीन मील पत्थर भी सोना बना रहा। एकदम बैठ गया। पहले तो बड़ी उदासी घिर गई कि यह तूने क्या किया? सोने की ईंट फेंक दी! और फिर हंसी भी आयी, फिर खयाल भी आया कि पत्थर की ईंट झोले में थी, मेरी मान्यता थी कि सोने की है, तो मैं घबड़ाया रहा। सोने की ईंट भी झोले में पड़ी हो और मैं समझूं कि मिट्टी है तो घबड़ाहट कैसी? दोनों बातें हो सकती हैं।

तुम जब मेरे पास आते हो, तुम इसी खयाल में आते हो कि सोने की ईंट तुम्हारे झोले में है। किसी के झोले में सोने की ईंट नहीं है। होती तो तुम यहां आते नहीं। तुम खाली हो, मगर मान रखा है कि सोने की ईंट है। जब तुम मेरे पास आते हो, मैं तुम्हें रोशनी से दिखाता हूं कि तुम्हारे झोले में सोने की ईंट नहीं हूं, तो बड़ी उदासी होती है। क्योंकि इतने दिन की मानी हुई धारणा, जिसके सहारे जी रहे थे, जिससे जिंदगी में कुछ मजा था कि ऐसा कर लेंगे वैसा कर लेंगे, यह हो जायेंगे वह हो जायेंगे--सब गया, सब मिटी हो गया! सोने की ईंट ही पास नहीं है, अब क्या होगा? उदासी घेर लेती है।

कल तक तुम चल रहे थे कि आज तो व्यर्थ है सब, लेकिन कल सफलता मिलनेवाली है, भाग्य उदय होगा। मेरे पास तुम आते हो, मैं तुमसे भविष्य छीन लेता हूं। मैं कहता हूं, कल कोई भाग्योदय नहीं होता, क्योंकि कल कभी आता ही नहीं, न कभी आया है, न कभी आयेगा। कल का कोई अस्तित्व नहीं है, तुम भ्रांतियों में पड़े हो।

तुमसे मैं तुम्हारा अतीत छीनता हूं, तुम्हारी सोने की ईंटें मिट्टी की हो जाती हैं। तुमसे तुम्हारा भविष्य छीन लेता हूं, तुम्हारी महत्त्वाकांक्षाओंके भवन गिर जाते हैं। फिर उदासी पकड़ती है।

यह उदासी शुभ है। अगर तुम भाग ही न गये वेदान्त! तो इसी उदासी से उत्सव का जन्म होगा। अगर तुम रुके ही रहे हिम्मत से... और यही घड़ी है रुकने की। इन्हीं घड़ियों में आदमी भागते हैं, कि यह तो उलटा हो गया। हम पाने आये थे, यहां उलटा खोना हो गया। हम चले थे घर से सोचकर कि कुछ थोड़ा और आनंद जीवन में आयेगा, यहां आकर जो था वह भी खो गया।

पहले तो मुझे तुम्हारा छीन लेना पड़ेगा, क्योंकि वह झूठा है। और तभी तुम्हें मैं वह दे सकता हूं जो सच्चा है। और मजा ऐसा है, फिर तुम्हें दोहरा दूं-- मैं तुमसे वही छीन रहा हूं, जो तुम्हारे पास नहीं है और तुम्हें वही दूंगा, जो सदा से तुम्हारे पास है, लेकिन तुम्हें जिसकी याद नहीं। मगर उसकी याद आ सके जो तुम्हारे पास है, उसके लिए जरूरी है कि वह तुमसे छीन लिया जाये जो तुम्हारे पास

नहीं है।

तुम्हारे सपनों में, तुम्हारा सत्य खो गया है। तुम्हारे कचरे में, तुम्हारा हीरा खो गया है। आधा काम हो गया है, अब भाग मत जाना!

चौथा प्रश्न भी वैसा ही है। पूछा है धर्म भारती ने : संसार से रस तो कम हो रहा है और एक उदासी आ गयी है। जीवन में भी लगता है कि यह किनारा छूटता जा रहा है और उस किनारे की झलक भी नहीं मिली। और अकेलेपन से घबड़ाहट भी बहुत होती है और इस किनारे को पकड़ लेती हूं। प्रभु! मैं क्या करूं? कैसेचूं वहां तक पहूंचूं?

❋ पहली बात : जो किनारा छूट गया, उसे पकड़ने का कोई उपाय नहीं। फिर सोचो उस बूढ़े फकीर की बात। जब तक भ्रांति थी कि सोने की ईंट झोले में है, तब तक एक बात थी। अब जान लिया कि मिट्टी है, पत्थर पड़ा है झोले में। अब तुम सोचते हो कि दुबारा वही गरमी आ सकती है चाल में? अब यह फिर से उत्सुक होकर भाग सकता है शहर की तरफ? अब यह फिर उसी आतुरता से कह सकता है अपने शिष्य से कि शहर कब पहुंचेंगे, रात हुई जाती है, खतरा है? अब कोई उपाय नहीं।

यही हुआ भी था। फिर जिस वृक्ष के नीचे यह पता चला था कि सोने की ईंट नहीं है अब, उसी वृक्ष के नीचे सो गये थे, फिर एक कदम आगे नहीं बढ़े। अब जाने का सार क्या है? अब जंगल ही मंगल है। अब भय का कारण ही न रहा। अब खोने को ही कुछ न बचा। जो खोना था खो ही गया। अब कोई लूटेगा क्या?

धर्म भारती! जो किनारा छूट गया, उसे पकड़ने का अब कोई उपाय नहीं है। क्योंकि वह किनारा अब है ही नहीं। वह तुम्हारी मान्यता में था, था थोड़े ही! ऐसा तो नहीं था कि किनारा था और तुमने पकड़ा था और तुमने पकड़ा था. तुमने पकड़ा था यह सच है। लेकिन किनारा वहां था नहीं। तुमने माना था। मानकर पकड़ा था। पकड़ कर किनारे को बना लिया था, कल्पित कर लिया था, जीवन दे दिया था। अब छूट गया। अब दिखाई पड़ गया कि यहां कुछ सार नहीं है।

लौटने का तो कोई उपाय नहीं, पकड़ने का भी कोई उपाय नहीं। अब लाख आंख बन्द करो, तुम जानोगे ही कि अब बंद करने से कुछ सार नहीं। वह जिंदगी तो व्यर्थ हो गयी। वह जिंदगी तो राख हो गयी। राख थी, पहचान ली गयी।

> शौके मंजिल इस कदर था तेजगाम,
> जिंदगी गर्दे-सफर होकर रही

वह तो सब धूल-धवांस हो गयी। दौड़ते रहे जब तक दौड़ते रहे। महत्त्वाकांक्षा जब तक पकड़े थी, पकड़े रही। तब तक धूल खाते रहे, दौड़ते रहे, हांफते

रहे, परेशान होते रहे। अब यह नहीं हो सकेगा।

जनम-मरन का साथ था जिनका, उन्हें भी हम से बैर।
वापिस ले चल अब तो 'आली' हो गई जग की सैर।।

अब उस भ्रांति को फिर से प्राण देने की कोई औषधि नहीं है।

अगनी सी है रुएं-रुएं में नस-नस दुख से चूर।
'आली' हम पर जीवन का जो वार पड़ा भरपूर।।

अब लौट कर पीछे मत देखो। वहां पाया भी क्या था? वहां पकड़ने योग्य है भी क्या! सब क्षणभंगुर था!

वो आये भी तो बगूले की तरह आये गये।
चिराग बन के जले जिनके इन्तजार में हम।।

वहां मिला क्या, जिनकी प्रतीक्षा में इतने-इतने जले थे। चिराग बनके जले जिनके इन्तजार में हम! उनके आने पर हुआ क्या? जिन आकांक्षाओं को संजोया और जीवन जिनके लिए दांव पर लगाया, जब वे आकांक्षाएं पूरी हुईं, तो पूरा हुआ क्या?

वो आये भी तो बगूले की तरह आये गये।

इस जीवन में जो भी मिलता है, इस हाथ मिलता है उस हाथ छूट जाता है। यहां सब क्षणभंगुर है। मिलने की बस भ्रांति होती है। बहुत हो चुका यह जलना!

गम की चिता में राख हुए हैं जलकर सांझ सवेरे।
दिन जो ढला तो रात खड़ी थी अपने बाल बिखेरे।।

यही होता रहा है। दिन किसी तरह कट गया तो रात आ गयी। रात कट गयी तो दिन आ गया।

यूं ही सुबह-शाम होती है।
यूं ही उम्र तमाम होती है।।

पाया क्या है? वह किनारा तो गया। अब तुम पूछ रही हो कि दूसरा किनारा दिखाई नहीं पड़ता। दूसरा किनारा भी नहीं है। दूसरा किनारा तो सिर्फ बातचीत के लिए है, ताकि पहला किनारा छूट जाये। दूसरा किनारा तो पहले किनारे से मुक्त कराने का उपाय है। यह दूसरा किनारा भी पहले किनारे की ही आकांक्षा है अभी। पहले किनारे को ही तुमने दूसरे किनारे पर आरोपित कर लिया है। तुम कहते हो: संसार तो गया, अब स्वर्ग कहां है?

स्वर्ग क्या है? वे भी तुम्हारे संसार के दुखों में ही सोचे गये सपने थे। संसार में पाये थे बहुत दुख, इतने दुख कि झेलना असंभव था, सहना असंभव था। असहनीय थे, तो स्वर्ग की कल्पना की थी, कि थोड़े दिन की बात और है। बस दो-

चार दिन की बात और है। फिर आएगी मौत और विश्राम होगा—स्वर्ग में विश्राम। थोड़े दिन और सह लो, बस पहुंचे... अब पहुंचे... अब पहुंचे ही जाते हैं।

बुद्ध एक जंगल से गुजर रहे हैं। खेत में काम करते एक किसान से आनंद पूछता है कि गांव कितनी दूर है? वह कहता है: होगा कोई दो कोस। दो कोस चलते हैं, गांव का फिर भी कोई पता नहीं। एक लकड़हारे से पूछते हैं कि भाई, गांव कितनी दूर होगा? वह कहता है: होगा कोई दो कोस, बस अब पहुंचे। जरा आनंद हैरान होता है कि दो कोस तो हम चल भी चुके! लेकिन बुद्ध मुस्कराते हैं। दो कोस चलकर अभी भी... सांझ होने लगी, अब सूरज ढलने लगा और गांव का कोई पता नहीं है। दूर कहीं कोई चिराग भी जलता दिखाई नहीं देता। अंधेरा उतर रहा है। अब तो आनंद बड़ी बेचैनी से एक आदमी से पूछता है। अपने झोंपड़े के सामने, अपने खेत में एक आदमी बैठा है, उससे पूछता है: गांव कितनी दूर होगा? वह कहता है: होगा कोई दो कोस, बस अब पहुंचे, घबड़ाओ मत। अब आनंद के बर्दाश्त के बाहर हो गया। उसने कहा: हद हो गई! बहुत झूठ बोलनेवाले दुनिया में देखे, मगर तुम्हारा कोई मुकाबला नहीं है! दो कोस पहला आदमी बता रहा था, दो कोस चल लिए, दूसरे ने भी दो कोस, दो कोस वह भी चल लिए, तुम भी दो कोस कह रहे हो। यह यात्रा कभी पूरी होगी या नहीं होगी?

बुद्ध ने कहा: आनंद, नाराज न हो। मैं इनका राज समझता हूं, क्योंकि यही मैं भी कर रहा हूं। गांव है ही नहीं। ये तो केवल तुम्हें सहारा दे रहे हैं, ये भले लोग हैं। ये यह नहीं कहते कि पहुंच न पाओगे; कहते हैं, चले जाओ, चलते जाओ। तुम थककर गिर न जाओ, तुम उदास होकर रुक न जाओ, तुम हताश न हो जाओ। ये झूठ नहीं बोल रहे हैं। ये सिर्फ तुम्हारे उत्साह को कायम रखने के लिए कहते हैं कि यही कोई दो कोस...अभी पहुंचे। यही तो मेरी प्रक्रिया है, इसलिए मैं हंस रहा हूं कि इन किसानों को यह पता कैसे चला? यह तो बुद्धों की प्रक्रिया है। वे सदा कहते हैं: यह रहा दूसरा किनारा। तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता, मुझे दिखाई पड़ता है। चलो आओ, चले आओ। पहला किनारा छूट जाता है पहले। तब जब पहला किनारा छूटता है, स्वभावतः तुम और भी तेजी से पूछते हो: दूसरा कहां है? और बुद्ध-पुरुष कहे जाते हैं: यही कोई दो कोस, यही कोई दो कोस... । धीरे-धीरे, उस जगह ले आते हैं, जहां यह तुम्हें समझ में आ जाता है कि न पहला किनारा है न कोई दूसरा किनारा है। पहुंचने की बात ही व्यर्थ है।

जीवन अनंत यात्रा है। न यहां कोई गन्ता है, न गन्तव्य। जीवन एक अनंत यात्रा है। उस अनंत यात्रा का नाम ही जीवन है। पहुंचना कहां है? पहुंचकर फिर करोगे क्या?

थोड़ा सोच, धर्म भारती ! दूसरा किनारा आ जाये, फिर क्या करेगी? कितनी देर दूसरा किनारा मन को भायेगा ? शास्त्र कहते हैं, मोक्ष में जो लोग बैठे हैं, अनंत काल के लिए बैठ गये। अब जरा सोचो, बैठे हैं कोई मुनि महाराज मोक्ष में, अपनी सिद्ध-शिला पर। अनंत काल में! क्या करेंगे अब वहां ? कितनी देर तक बैठेंगे ? फिर दिल करने लगेगा कि चलो जरा संसार की सैर ही कर आयें, फिर यहीं बैठे-बैठे क्या करना है ? अनंत काल तक यह तो बड़ी सजा हो जायेगी।

अनंत यात्रा है जीवन। प्रतिपल नये का उद्भव होता है। प्रतिपल नया आकाश, नये द्वार खुलते हैं। पहुंचना नहीं है--यह जानना है कि यहां पहुंचने को कुछ भी नहीं है। और तब एक गहन मुक्ति होती है। पहुंचने की दौड़ हट जाती है, चिंता मिट जाती है, भार मिट जाता है।

तुम्हे मैं निर्भार करना चाहता हूं। अब यह दूसरे किनारे की बात तुम्हें और भार से भर देगी। पहला गया, दूसरा भी जाने दो। एक कांटे को हम दूसरे कांटे से निकाल लेते हैं, फिर हम दोनों कांटे फेंक देते हैं। पहले किनारे को हटाने के लिए दूसरा किनारा कल्पित किया। अब पहला गया, अब मैं तुमसे सच्ची बात कह दूं : दूसरा कोई किनारा नहीं है। धक्का लगेगा, क्योंकि यह तो बड़ा धोखा हो गया! पहला ही न छोड़ते हम, अगर पहले ही पता होता कि दूसरा नहीं है। इसलिए तो दूसरे की बात करनी पड़ती है।

जब दोनों किनारे छूट जाते हैं, तब जो शेष रह जाता है वही परमात्मा है। न कहीं पहुंचना, न कहीं जाना है, सब यहीं हैं, अभी है।

आस्मां पर बदलियों के काफिलों के साथ-साथ
पल में आगे पल में पीछे दाएं-बाएं दोनों हाथ
दिलरुबा तारों की बजती घंटियां!
डोलती पगडंडियों पर नर्म बातों का खिराम
नुक्रई आवाजें-पा गाहे झिझकता-सा सलाम
था तो अंदेशा नहीं लेकिन यहां
वह हवा के निस्बतन इक तुंद झोंके का नुजुल
सरसराहट, हल्का-हल्का शोर कुछ उड़ती-सी धूल
झनझना उट्ठी सुनहरी बालियां
लहलहाती आरजूओं का जहां गंदुम के खेत
वक्त के बाड़े में भेड़ें-बकरियां बच्चों समेत
जिनकी शादाबी जुनूं की दास्तां
और फिर शीशम के पेड़ों पर बड़े छोटे तयूर

अपने-अपने साज पर लहराकर नग्मों का सरूर
ढल रहे हैं रोशनी में बेगुमां !

यहीं इसी क्षण सब है। किस दूसरे किनारे की बात ? कैसे किनारे की बात? कहीं जाना नहीं है, यहीं होना है! समग्रता से यहीं होना है! परिपूर्णता से यहीं जागना है। प्रतिपल प्रार्थना है। प्रतिपल ध्यान है। और यह सामान्य जीवन सामान्य नहीं है; आंख से तुम्हारी धूल हट जाये, तो असामान्य है। संसार मोक्ष है, झेन फकीर कहते हैं--इसी अर्थ में कहते हैं।

पांचवां प्रश्न--

क्या आप मुझे पागल बनाकर ही छोड़ेंगे ?

✻ पागल से कम में काम चलता नहीं। जीवन के वास्तविक जगत में पागलों का ही प्रवेश है, दीवानों का ही प्रवेश है। बुद्धिमान वंचित रह जाते हैं वहां, क्योंकि वे चालबाज हैं, क्योंकि वे गणित बिठाते हैं, क्योंकि वे चतुर हैं, इसलिए वंचित रह जाते हैं। वहां चाहिए सब दांव पर लगा देनेवाले दीवाने। जो कहें--यह या वह, या तो मैं रहूं या तू। अब दो न रहेंगे, अब एक ही रहेगा। या तो तू मुझमें मिट जा या मैं तुझमें मिट जाऊं।

ऐसी हिम्मत समझदारों में नहीं होती। समझदारों में हिम्मत होती ही नहीं।

तुमने देखा कभी, जितना आदमी समझदार हो उतनी ही हिम्मत कम होती है। क्योंकि समझ कहती है : सोचकर चल, संभल कर चल एक-एक कदम, एक-एक रत्ती हिसाब रखकर चल। समझ इतना हिसाब लगाती है कि अवसर निकल जाता है, तब हिसाब लग पाता है। तब तक समय ही गया। हिसाब लगानेवाले हिसाब ही लगाते रहते हैं, पानेवाले पा लेते हैं।

पागल का मतलब क्या होता है ? पागल का मतलब होता है : अब हिसाब-किताब से न चलेंगे।

तुम पूछते हो: क्या आप मुझे पागल बनाकर ही छोड़ेंगे?

और किसी तरह मैं तुम्हारे काम भी नहीं आ सकता। मैं पागल हूं और जब तक तुम्हें पागल न बना दूं, तब तक दोस्ती बनी ही नहीं। मेरे जैसा ही तुम्हें बनाकर छोड़ूंगा। मेरे ही रंग में रंगकर छोड़ूंगा। कठिन है यह यात्रा, क्योंकि समझदारी छोड़नी बड़ी मुश्किल होती है। समझदारी के लाभ बिलकुल साफ हैं। पागलपन के खतरे साफ हैं। लेकिन जो खतरों में जीते हैं, वही जीते हैं। और जो खतरों से बचते हैं, वे जीते ही नहीं, सिर्फ मरते हैं। जो खतरों से बचना चाहते हैं उन्हें अपनी कब्र में समा जाना चाहिए, क्योंकि कब्र में कोई खतरा नहीं है।

एक सम्राट ने एक महल बनाया। खतरे से बचने के लिए उसने उसमें एक ही

द्वार रखा। द्वार पर पहरों पर पहरे लगा दिये। पड़ोस का सम्राट उसके महल को देखने आया। खतरे तो उसको भी थे। यह महल देखकर वह भी चकित हो गया। इतनी व्यवस्था की थीं कि कोई उपाय ही नहीं था कि शत्रु घुस जाये कहीं से। एक ही द्वार था पूरे महल में। खिड़कियां भी नहीं थीं। और उस द्वार पर भयंकर पहरा था, पहरेदारों पर पहरेदार थे। जब दूसरा सम्राट विदा होने लगा बाहर और महल का मालिक उसे विदा देने आया, तो उस दूसरे सम्राट ने कहा कि महल ऐसा मैं भी बनवाऊंगा। बड़ा सुरक्षित है। इससे ज्यादा सुरक्षित और कोई स्थान नहीं हो सकता।

एक बूढ़ा भिखारी रास्ते के किनारे बैठा था, खूब हंसने लगा। दोनों चौंके। उन दोनों ने उससे पूछा कि तू क्यों हंसता है बूढ़े? उसने कहा : मैं इसलिए हंसता हूं कि मैं इस मकान को बनते देखता रहा हूं। मैं यहीं बैठे-बैठे बूढ़ा हो गया हूं। यह मकान मेरे सामने ही बनता रहा है, बनता रहा है, बनता रहा है। मैं हमेशा सोचता रहा, इसमें सिर्फ एक कमी है।

महल के मालिक ने पूछा : कौन-सी कमी है? अब तक इतने लोग देखने आये, किसी ने कोई कमी नहीं बताई। तुझे कौन-सी कमी दिखाई पड़ती है? बोल! उसे ठीक कर देंगे।

उसने कहा कि कमी इतनी है कि आप इसके भीतर हो जाओ और यह जो एक दरवाजा है, इसको भी पत्थर से चुनवा दो। फिर कोई खतरा नहीं। यह एक दरवाजा खतरनाक है। इसी में से मौत भीतर आयेगी और तुम्हारे पहरेदार काम नहीं पड़ेंगे।

सुरक्षित स्थान तो कब्र है। इसलिए जो लोग सुरक्षा में जीना चाहते हैं, वे जीते ही नहीं। जी ही नहीं सकते। इतने डरे-डरे जीते हैं कि जिएं कैसे? कदम उठाने में घबड़ाते हैं। अटके ही रहते हैं। किसी तरह भयभीत, समय गुजार लेते हैं और मर जाते हैं। बहुत कम लोग यहां जीते हैं। जो जीते हैं उनमें एक तरह का पागलपन चाहिए।

जीने के लिए एक पागल अभीप्सा चाहिए, एक दीवानगी चाहिए। और जितनी दीवानगी से जियोगे उतने ही परमात्मा के निकट पहुंच पाओगे, क्योंकि परमात्मा जीवन की सघनता का नाम है।

होशियारी से मिला भी क्या? पागल होने में इतने डरते क्यों हो? होशियारी से कुछ मिला होता, तो भी ठीक था——तो डर भी ठीक था। होशियारी से मिला क्या? जन्मों-जन्मों तो होशियार रहे हो, सिर्फ गंवाया ही, पाया क्या? हां, जोड़ लिये होंगे ठीकरे, मगर ठीकरों का क्या है? कल तुम चले जाओगे, ठीकरे यहीं के यहीं पड़े रह जायेंगे।

रह-ए-खिज़ां में तलाशे-बहार करते रहे
शबे-सियह से तलबे-हुस्ने-यार करते रहे

पतझड़ में वसंत खोजते रहे हो अब तक तुम।

रह-ए-खिज़ां में तलाशे-बहार करते रहे
शबे-सियह से तलबे-हुस्ने-यार करते रहे

काली अंधेरी रात से प्यारे के सौंदर्य को मांगते रहे। यह तुमने किया है।

खयाले-यार कभी ज़िक्रे-यार करते रहे
इसी मताअ पे हम रोजगार करते रहे

बस बातचीत ही करते रहे।

खयाले-यार कभी जिक्रे-यार करते रहे

कभी उसका खयाल किया, कभी उसका जिक्र भी किया। मगर बस, बात का ही रोजगार रहा!

नहीं शिकायते-हिज्रां कि इस वसीले से
हम उनसे रिश्ता-ए-दिल उस्तवार करते रहे

अब शिकायत भी क्या करोगे! इतने से ही तुम चाहते थे कि ईश्वर मिल जाये? इतने से ही चाहते थे कि जीवन मिल जाये? तुमने दिया क्या था? तुमने दांव पर क्या लगाया था?

वो दिन कि कोई भी जब वजह-ए-इंतजार न थी
हम उनमें तेरा सिवा इंतजार करते रहे

कोई कारण नहीं है तुम्हारी जिंदगी में कि तुम्हें जिंदगी मिले और कोई कारण नहीं है तुम्हारी जिंदगी में कि परमात्मा तुम पर बरसे। बस तुम इंतजार करते रहो, करते रहो। तुम्हारा इंतजार काम नहीं आयेगा। प्रतीक्षा के पीछे पात्रता भी तो खड़ी करो! और पागल ही पात्र होते हैं।

हम अपने राज पे नाजां थे, शर्मसार न थे
हर एक से सुखने-राजदार करते रहे
उन्हीं के फैज से बाजारे-अक्ल रोशन है
जो गाह-गाह जुनूं अख्तियार करते रहे

जरा गौर से देखो, इस दुनिया में जो थोड़े-से दीये जलते हुए मालूम पड़ते हैं, इस बाजार में जो कहीं-कहीं मोक्ष की थोड़ी-सी झलक मालूम पड़ती है, वह किनकी वजह से है?

उन्हीं के फ़ज़ से बाजारे-अक्ल रोशन है!

उन्हीं की कृपा से। किनकी कृपा से?

जो गाह-गाह जुनूं अख्तियार करते रहे।

जो कभी-कभी पागल होने की क्षमता दिखाते रहे। जो गाह-गाह जुनूं अख्तियार करते रहे!

तुम्हें मैं पागल तो बनाना ही चाहता हूं, मगर वह पागलपन साधारण पागलपन नहीं है।

दुनिया में दो तरह के पागलपन हैं। एक पागलपन है--बुद्धि से नीचे गिर जाना; और एक पागलपन है--बुद्धि से ऊपर उठ जाना। दोनों बड़े भिन्न हैं और दोनों कभी-कभी समान मालूम पड़ते हैं। एक बात समान है दोनों में कि दोनों में बुद्धि विदा हो जाती है। मगर बड़ा भेद भी है दोनों में। एक में आदमी बुद्धि के नीचे गिर जाता है, वह भी पागल है; और एक में आदमी बुद्धि के ऊपर उठ जाता है, वह भी पागल है। पहले पागल पागलखानों में हैं, दूसरे पागल मोक्ष में विराजमान हो जाते हैं।

मैं तुम्हें दूसरे ढंग के पागल बनाना चाहता हूं। यह तो मस्तों की, पियक्कड़ों की बात है, होशियारों की नहीं है, हिसाबी-किताबियों की नहीं, बही-खाते रखनेवालों की नहीं। डरो मत, भय न खाओ। इस पागलपन को आह्लाद से उतरने दो, अहोभाव से अंगीकार करो। बुद्धि को हटा दो। इससे कुछ मिला नहीं। इससे कुछ मिलेगा भी नहीं। अब बुद्धि-शून्य होकर तलाश करो। विचार-मुक्त होकर तलाश करो।

चश्मे-मैगूं जरा इधर कर दे
दस्ते-कुद्रत को बेअसर कर दे

और तुम जरा बुद्धि को सरकाओ, तो तुम्हारी प्याली में उसकी सुराही से शराब उतरने लगे।

चश्मे-मैगूं जरा इधर कर दे!

जरा सुराही का रुख इधर हो।

दस्ते-कुद्रत को बेअसर कर दे
तेज है आज दर्दे-दिल साकी
तल्खी-ए-मय को तेजतर कर दे

जरा इस शराब को और सघन कर दे, जरा और गहन कर दे।

तल्खी-ए-मय को तेजतर कर दे
तेज है आज दर्दे-दिल साकी
चश्मे-मैगूं जरा इधर कर दे

जरा मेरी तरफ...! मगर तुम ये तभी कह पाओगे, जब तुमने अपना पात्र पागलपन का तैयार कर लिया हो। जब तुम पी कर डोलने को राजी हो, तो पर-

मात्मा तुम्हें पिलाये भी! अभी तुम इतने डरते हो डोलने से! इतने घबड़ाते हो कि कहीं पैर कहीं-के-कहीं न पड़ जायें! तुम्हारे भय के कारण ही परमात्मा की सुरा तुममें उतरने से अवरुद्ध रहती है।

जोशे-वहशत है तश्ना-काम अभी
चाक-दामन को ताजगर कर दे
मेरी किस्मत से खेलनेवाले
मुझको किस्मत से बेखबर कर दे
लुट रही है मेरी मताअ-ए-नियाज
काश! वो इस तरफ नजर कर दे

उसकी एक नजर काफी है, मगर नजर उठती पागलों की तरफ है, दीवानों की तरफ है। क्योंकि दीवाने ही इस योग्य होते हैं कि परमात्मा उनमें विराजे। उन दीवानों को हमने परमहंस कहा है। सूफी उन दीवानों को मस्त कहते हैं। नाम कुछ भी हो, मगर संन्यास उसी पागलपन की तलाश है। बुद्धि के ऊपर जाने के सब मार्ग परमात्मा में ले जानेवाले मार्ग हैं। फिर कैसे तुम बुद्धि के पार जाते हो, यह दूसरी बात है। ध्यान से जाओ तो भी बुद्धि छोड़ देनी पड़ती है। प्रेम से जाओ तो भी बुद्धि छोड़ देनी पड़ती है।

अभी तो हम जो बात कर रहे हैं, यह प्रेम की शाखा की बात है। सुंदरदास के वचन प्रेमी के वचन हैं। और प्रेमी तो...इस जगत के भी प्रेमी पागल होते हैं, उस जगत के प्रेमियों को तो महापागलपन चाहिए ही, चाहिए ही चाहिए! उससे कम में कुछ भी नहीं हो सकेगा।

आखिरी प्रश्न--

चूक-चूक मेरी, ठीक-ठीक तेरा।

❋ अमृत सिद्धार्थ! यह पहला कदम है। सुंदर। उठाया तो अच्छा! मगर ध्यान रखना, यह सिर्फ पहला कदम है। एक कदम और है, इसके आगे एक कदम और है। इतने पर रुक मत जाना। इससे तुम साधु हो जाओगे, सिद्ध न हो पाओगे।

साधु कहता है: चूक-चूक मेरी, ठीक-ठीक तेरा। यह उसकी प्रार्थना है। वह कहता है: सब गलती परमात्मा मेरी, सब पाप मेरा, सब भूल मेरी। और जो भी पुण्य है और जो भी ठीक है, वह सब तेरा। इस जगत में मुझसे तो बुरा ही बुरा हुआ; कभी अगर कुछ ठीक हो गया, तो वह तूने किया होगा। तेरे हाथ रहे होंगे। मुझसे तो बुरा ही हो सकता है; मैं बुरा हूं।

यह साधु की भाषा है कि बुरे को खोजने निकला, तो मुझसे बुरा कोई भी न मिला। और कुछ-कुछ अच्छी बातें भी हो गयीं जीवन में, कभी-कभी फूल भी

खिले, तो उन फूलों का गौरव मैं कैसे ले सकता हूं ? यह साधु की विनम्रता है कि वह कहता है नहीं, सब अच्छा तेरा, सब बुरा मेरा।

मगर ध्यान रखना : यह पहला कदम है, इस पर रुक मत जाना ! सिद्ध क्या कहता है ? सिद्ध कहता है : ठीक-ठीक तेरा, चूक-चूक भी तेरी। मैं बीच में आने वाला कौन ? क्योंकि सिद्ध का अर्थ होता है : निरहंकारी। साधु का अर्थ होता है: विनम्र। विनम्रता, निर-अहंकारिता नहीं है। विनम्रता एक बड़ा सूक्ष्म अहंकार है। साधु यह कह रहा है, बुरा-बुरा मेरा, लेकिन मैं अभी हूं। और देखो, मेरी विनम्रता देखो, जरा मेरा भाव देखो कि बुरा मैं अपने ऊपर ले रहा हूं और सब भला तुझे दे रहा हूं ! जरा खयाल किया मेरे दातापन का ! जरा मेरी उदाशयता देखी ? मेरी उदारता देखी ?

कहीं भीतर...यह धुन बनी रहेगी कि कांटे मेरे, फूल तेरे ! समझे कुछ ! साधु यह कह रहा है : समझे कुछ? सब छोड़ दिया तेरे चरणों में, ऐसा निर-अहंकार हो गया हूं ! ऐसी मेरी विनम्रता है ! तेरे पैर की धूल हूं ! मगर हूं ! वह जो होना है, वही बाधा है।

असाधु क्या कहता है ? असाधु कहता है : चूक-चूक तेरी, ठीक-ठीक मेरा। जब भी असाधु के जीवन में कुछ गलत हो जाता है, वह कहता है : हे प्रभु, यह क्या करवा दिया ? यह क्या भाग्य में लिख दिया ? यह क्या विधि का विधान ! और जब ठीक हो जाता है, तो वह अकड़कर चलता है। तब वह कहता है : देखो, मैंने क्या किया! ठीक का गौरव लेता है, गैर-ठीक का जिम्मा परमात्मा पर फेंक देता है। यह असाधु का लक्षण है।

साधु, असाधु से उलटा हो जाता है। वह शीर्षासन करके खड़ा हो जाता है। वह कहता है : चूक-चूक मेरी, ठीक-ठीक तेरा। यह पहला कदम है। सिद्धावस्था दोनों से पार है। सिद्धावस्था कहती है : सब तेरा, मैं हूं कहां ? मेरा होना ही नहीं है। मैं इतना भी दावा नहीं कर सकता कि चूक-चूक मेरी। तुम जरा समझना, वह कहता है : पुण्य भी तेरे, पाप भी तेरे। परम मुक्ति फलित होती है तब। तब निर्भार हो जाता है। फिर कोई भार ही न रहा। फिर तूने जो करवाया वह किया। अच्छा तो अच्छा और बुरा तो बुरा। तूने रावण बनाया तो रावण का अभिनय पूरा कर दिया और तूने राम बनाया, तो राम का अभिनय पूरा कर दिया। तेरी जैसी मर्जी थी, वही हुआ। हम अभिनेता थे। हम नाटक के मंच पर खेले। तूने जो हमें पार्ट दे दिया था उसी को हमने दोहरा दिया। इसमें हमारा कुछ भी नहीं है।

क्या तुम सोचते हो, नाटक के मंच पर जो रावण का पार्ट कर रहा है वह पापी है ? जो राम का पार्ट कर रहा है, वह पुण्यात्मा है ? लोग सोचने लगते हैं ऐसा।

तो जो राम का पार्ट करता है रामलीला में जब गांव शोभायात्रा निकलती है, लोग उसके चरण छूते, चरणों का पानी पीते हैं। राम ही हो गया वह ! रावण को लोग अच्छी नजर से नहीं देखते। मुझे पता है, मेरे गांव में जो आदमी रावण बनता था, लोग उसको समझते थे--बहुत भ्रष्ट आदमी है। अच्छा आदमी नहीं। नहीं तो रावण क्यों बनेगा? कुछ और नहीं सूझता ?

नाटक के मंच पर कौन राम, कौन रावण! सब खेल की बात है। जरा भी भेद नहीं है। दोनों उसकी मर्जी पूरी कर रहे हैं। यह सिद्ध की अवस्था है। यह दूसरा और अंतिम कदम है।

तो अमृत सिद्धार्थ ! बात तुमने प्यारी कही, लेकिन अभी और आगे जाना है। इतना भी मत बचाओ : चूक भी मत बचाओ। नहीं तो चूक के पीछे ही अहंकार बच जायेगा। सभी दे डालो। दे ही डालो पूरा-पूरा। अपने को ही चढ़ा दिया तो अब चूक भी क्या बचानी ! चूक भी करवायी होगी तो उसी ने करवायी होगी।

यह भक्तों की हिम्मत है ! ज्ञानी यह नहीं कर पाते। ज्ञानी साधु होने पर रुक जाते हैं, अटक जाते हैं। ज्ञानी कहता है कि ज्यादा से ज्यादा इतना ही कह सकता हूं--पुण्य उसका। पाप भी उसका, यह कहने की हिम्मत ज्ञानी की नहीं है। यह तो प्रेमी और पागल की हिम्मत है। वह कहता है : मैं हूं ही क्या ? तूने जो करवाया सो किया, न करवाता तो कैसे करता ? अगर तूने मुझ में वासना डाल दी तो वासना थी, अगर तूने क्रोध डाल दिया तो क्रोध था, तूने लोभ डाल दिया तो लोभ था। तूने जहां-जहां भटकाया नरकों में भी भटकाया तो भटका, लेकिन तेरे ही ऊपर जुम्मा है--सारा जुम्मा तो तेरे ऊपर है। मैं तेरे हाथ की कठपुतली हूं, धागे तेरे हाथ में हैं। तूने जैसे नाचाया नाचा। अब नहीं नचाता तो नहीं नाचता हूं। तूने संसार दिया तो संसार। तूने मोक्ष दिया तो मोक्ष।

भक्त की अपनी कोई आकांक्षा नहीं। भक्त अपने को बचाने की कोई जगह नहीं छोड़ता। भक्त पूरा-पूरा अपने को खोल देता है। इसी खुलने में मोक्ष है, मुक्ति है। इसी खुलने में परम स्वातंत्र्य है। एक कदम और उठाओ, अब चूक भी उसी को दे दो। पुण्य तो दिये, अच्छा किया। लेकिन पुण्य देना उतना कठिन नहीं है, पाप देना कठिन होता है। पुण्य देने में तो एक रस आता है कि देखो, कितनी सुंदर चीज दे रहे हैं! पाप देने में संकोच लगता है कि पाप, और परमात्मा को दूं! भय लगता है। क्या सोचेगा?

लेकिन निवेदन समग्र होना चाहिए, अधूरा नहीं। इसलिए मैं साधु-असाधु में बहुत फर्क नहीं करता। एक जैसे ही लोग हैं। एक-दूसरे से विपरीत चलते हैं मगर एक ही जैसे लोग हैं। उनकी जीवन-दृष्टि भिन्न नहीं है। सिद्ध की जीवन-दष्टि

बिलकुल और है। और सिद्ध से कम पर मैं तुम्हें नहीं चाहूंगा कि रुकना।

बढ़ो आगे, और हिम्मत करो। सब उसे दे दो।

जरा सोचो, एक क्षण के लिए सोचो। सब उसे दे दिया, फिर क्या दुख है? फिर क्या पीड़ा है? फिर क्या चिन्ता है? फिर यही क्षण परम महोत्सव नहीं हो जायेगा क्या? सब दे दिया, फिर क्या शेष है? फिर कैसी...पीड़ा की रेख भी नहीं रह सकती। तुम्हारा आकाश निर्मल हो जायेगा। उस निर्मलता में ही जाना है। वह निर्मलता ही आंख है।

आज इतना ही।

हरि बोलौ हरि बोल

सातवां प्रवचन : दिनांक ७ जून, १९७८; श्री रजनीश आश्रम, पूना

बांकि बुराई छाडि़ सब, गांठि हृदै की खोल ।
बेगि विलम्ब क्यों बनत है हरि बोलौ हरि बोल ।।

हिरदै भीतर पैंठि करि अन्तःकरण विरोल ।
को तेरौ तू कौन को हरि बोलौ हरि बोल ।।

तेरौ तेरे पास है अपनैं मांहि टटोल ।
राई घटै न तिल बढ़ैं हरि बोलो हरि बोल ।।

सुन्दरदास पुकारिकै कहत बजायें ढोल ।
चेति सकै तौ चेतिले हरि बोलौ हरि बोल ।।

पिय कै विरह वियोग भई हूं बावरी ।
शीतल मन्द सुगन्ध सुहात न बाव री ।।

अब मुहि दोष न कोइ परौंगी बावरी ।
परिहां सुन्दर चहुं दिश विरह सुघेरि बावरी ।।

पिय नैननि की बोर बैंन मुहि देहरी ।
फेरि न आए द्वार न मेरी देह री ।
विरह सु अन्दर पैठि जरावत देहरी ।
सुन्दर विरहिणी दुखित सीख दे देहरी ।।

दूभर रैनि बिहाय अकेली सेज री ।
जिनकै संगि न पीव बिरहनी से जरी ।
विरह सकल वाहि बिचारी सेजरी ।
सुन्दर दुख अपार न पाऊं से जरी ।।

नई दिल्ली से एक मित्र रतन प्रकाश ने लिखा है :

मेरे महबूब, मेरे दिलबर, मेरे रहबर!
आज के दिन भी तेरी महफिल सजी होगी
जोक दर जोक लोग आए होंगे
मुन्तजिर होंगे तुझे देखने तुझे सुनने को
आज के दिन तू फिर बन संवर के आया होगा
धीरे-धीरे हाथों को जोड़े हुए
अंधेरे बादलों से जैसे चांद निकलता हो
गुलफशानी भी हुई होगी अमृत-वर्षा भी
तूने हयातो कायनात के राज खोले होंगे
फिर इक कुफ्र की दीवार भी गिरी होगी
वो दीवार जिसने कर दी स्याह पिछली सदियां भी
तेरे तराजू ने झूठ और सच तौले होंगे
खुदाई के नाम पर जिन्होंने दुकानें सजा रक्खी हों
उनके ताबूत में कीलें गाड़ी होंगी
भटकी हुई रूहों को तसकीन मिली होगी
जन्मों के प्यासों को जाम पिलाए होंगे
झूम कर उठे होंगे रिंद तेरे मैखाने से
तूने क्या कहा होगा, आज क्या कहा होगा
यही दिल सोचता है, यही दिल पूछता है
मेरे महबूब अफसोस, मेरे दिलबर, मेरे रहबर,
मैं नहीं हूं आज वहां मैं नहीं हूं
मेरे महबूब, मेरे दिलबर, मेरे रहबर
यही दिल सोचता है, यही दिल पूछता है।

मैं एक ही बात कह रहा हूं। एक ही अंदाज है मेरा, एक ही बयां! एक ही तरफ इशारा है। रोज नई-नई बात नहीं कह रहा हूं। वही बात कह रहा हूं, फिर-फिर वही कह रहा हूं! एक ही बात दोहरा रहा हूं, लेकिन आदमी के कान बहरे हैं। आदमी चूक-चूक जाता है।

और ऐसा ही नहीं कि मैं एक बात दोहरा रहा हूं, एक ही बात सदा से दोहराई जा रही है। सारे बुद्धों ने एक ही बात कही है--हरि बोलौ हरि बोल! उस एक बात में सब समाया है: 'मैं का स्मरण छूटे औरप्रभु का स्मरण आए! मैं मिटूं और वह हो जाए! मैं हटूं, मैं न बचूं। मैं बांस की पोंगरी हो जाऊं, उसके गीत मुझसे बहें, मेरा अवरोध न हो। मैं बीच में पत्थर बनकर अटकूं न। उसकी मर्जी पूरी हो!' एक ही बात है।

शायद तुम्हें लगता हो कि रोज-रोज मैं नई बातें कहता हूं। नई बात कहने को नहीं है। सत्य एक है, झूठ अनेक हैं। अगर झूठ कहना हो तो रोज-रोज नए कहे जा सकते है। क्योंकि झूठ की ईजाद की जा सकती है। आदमी झूठ को बना सकता है। झूठ जितने चाहो उतने हो सकते हैं; जैसे बीमारियां जितनी चाहो उतनी हो सकती हैं; स्वास्थ्य एक है। स्वास्थ्य के नाम भी नहीं होते। तुम अगर कहो मैं स्वस्थ हूं, तो कोई यह भी नहीं पूछ सकता कि कौन-से प्रकार का स्वास्थ्य? तुम कहो बीमार हूं, तो संगत रूप से पूछा जा सकता है, कौन-सी बीमारी? क्षय रोग हुआ कि टी. बी. है, कि कुछ और? बीमारियों में बीमारियां हैं। बीमारियों की बड़ी पर्तें हैं। स्वास्थ्य तो एक है।

झूठ अनेक हैं, सत्य एक है। झूठ का मतलब--आदमी की ईजाद। सत्य का अर्थ है--जो है। जो है, उसी को रोज-रोज कह रहा हूं। उसी को बार-बार कह रहा हूं। शायद शब्द बदल जाते हों, शायद रंग बदल जाते हों, ढंग बदल जाते हों --मगर सार वही है, चोट वही है। तीर एक ही तरफ जा रहा है--एक ही इशारे की तरफ।

इसलिए रतन प्रकाश! दूर हो या पास, यहां बैठो या यहां न बैठो, कुछ भेद नहीं पड़ता। बस एक बात याद रहे--हरि बोलौ हरि बोल। फिर जहां हो तुम मेरे साथ हो। सच कहा जाए तो ऐसा कहना चाहिए: यह मेरी महफिल नहीं है, उसकी महफिल है। यहां मैं नहीं बोल रहा हूं, वही बोल रहा है। वही बोल रहा है, इसलिए बोलने में कुछ सार है। वही बोल रहा है, इसलिए सुनने में कुछ सार है। वही बोल रहा है, इसलिए इसे पी जाने में और इसके द्वारा रूपान्तरित होने की संभावना है।

'...आज के दिन भी तेरी महफिल सजी होगी।' यह उसी की महफिल है

और यह सदा सजी हुई है। यह सारा अस्तित्व उसकी महफिल है। और इस सारे अस्तित्व में एक ही स्वर उठ रहा है। मगर आदमी वज्र-बहरा है। और आदमी ऐसा अंधा है कि आंख के सामने खड़ा है कोई, और दिखाई नहीं पड़ता। कानों पर ढोल बजाये जा रहे हैं, और सुनाई नहीं पड़ता। जैसे आदमी ने चूकने का निर्णय ही ले रखा है; जैसे जिद्द ही बांध रखी है। शायद जिद्द के पीछे कारण भी है। कारण एक ही है कि अगर परमात्मा को देखो तो तुम मिटे। इसलिए तुम तभी तक बच सकते हो जब तक परमात्मा को न देखो। तुम दोनों साथ-साथ नहीं हो सकते। 'प्रेमगली अति सांकरी, तामें दो न समाय!' या तुम या हरि। इसलिए लोग हरि नहीं बोलते। बोलना मंहगा सौदा है।

हरि बोलौ हरि बोल... यह बोल जब तुम्हारे भीतर उठेगा, तुम न रह जाओगे। तभी उठ सकता है। तुम मिटो तो ही उठ सकता है। तुम्हारी राख पर ही यह फूल खिलेगा। और लोग मिटना नहीं चाहते। इसलिए लोग सुन भी लेते हैं और सुनते भी नहीं। सुन कर भी अनसुना रखते हैं। देख लेते हैं और देखते नहीं।

मगर याद रहे, आदमी जब तक परमात्मा से न भरे तब तक बांझ है--ऐसा जैसे वृक्ष हो और फूल न लगें, जैसे किसी स्त्री की कोख से बच्चा जन्म न ले; जैसे पृथ्वी में अंकुर न फूटे; जैसे सूरज हो और अंधेरा गिरे। जब तक आदमी के जीवन में हरि नहीं, तब तक हरियालापन नहीं, हरियाली नहीं। जब तक आदमी के जीवन में हरि नहीं तब तक कुछ भी नहीं। फिर लाख तुम ठीकरे इकट्ठे करो, पद और प्रतिष्ठा और प्रमाण-पत्र जुटाओ, सब कूड़ा-कर्कट है। तुम किसे धोखा दे रहे हो? सम्पदा तो एक है। उसके बिना आदमी बांझ रह जाता है, इसे याद रखना। उसके बिना आदमी ऐसा--जैसे चली हुई कारतूस, जिसमें कुछ भी नहीं। दिखती कारतूस जैसी ही है, मगर आत्मा नहीं है। परमात्मा के स्मरण से ही तुम आत्मवान होते हो।

मैं रोज-रोज यही कह रहा हूं कि बहुत दिन बांझ रह लिए, अब हरे हो जाओ। अब जन्माओ अपने भीतर प्रभु को। बहुत दिन खाली रह लिए, अब भरो। बहुत दिन यह दीया बुझा-बुझा रह लिया, अब जलो! यह विराट अवसर ऐसे ही न चूक जाए। यही रोज कह रहा हूं। इसलिए तुम चिन्ता मत करो कि--

> तूने क्या कहा होगा, आज क्या होगा?
> यही दिल सोचता है, यही दिल पूछता है।
> मेरे महबूब, मेरे दिलबर, मेरे रहबर! अफसोस
> मैं नहीं हूं आज वहां, मैं नहीं हूं।

क्या तुम सोचते हो जो यहां हैं, वे सुनेंगे? क्या तुम सोचते हो जब तुम यहां

थे तब तुमने सुना? अगर तुमने सुन लिया होता तो दिल्ली में भी होकर दूर नहीं हो सकते थे। अगर तुमने सुन लिया होता तो अफसोस की फिर बात ही न थी। फिर तुम कहीं भी होते, तुम इसी महफिल के हिस्से हो जाते। तुम इसी मधुशाला में बैठते। तुम यही रस पीते। क्योंकि यह रस कहीं बंधा नहीं है--किसी तीर्थ से, किसी मन्दिर से, किसी स्थल से, किसी व्यक्ति से, किसी शास्त्र से। इस रस के बादल तो सारे अस्तित्व को घेरे हुए हैं। जहां भी प्यास है, वहीं बरस जाते हैं। और जहां भी पात्रता है, वहीं यह शराब उतरती है और पात्र को भर देती है।

सुनो! देखो! आंख खोलो!

अक्सर ऐसा हो जाता है, यहां सुनते वक्त सुनते नहीं; फिर जब दूर चले जाते हो तब याद आती है। आदमी बहुत अजीब है। अतीत की याद करता है, भविष्य की याद करता है, वर्तमान को चूकता है। जो नहीं रहा, उसका विचार करता है। अब कुछ किया नहीं जा सकता। जो नहीं रहा, नहीं रहा। जो नहीं हुआ, नहीं हुआ। अब तुम्हारे विचार से कुछ भी न होगा। अब व्यर्थ स्मृति की धूल को मत संजोए फिरो। या आदमी भविष्य की सोचता है--ऐसा हो, वैसा हो।

जो अभी नहीं हुआ, नहीं हुआ और तुम्हारे सोचने से कभी कुछ न हुआ है, न होगा। जो होना है, वही होगा। उसका तुम्हारे सोचने से कुछ लेना-देना नहीं है।

तुम सोचो तो होगा, तुम न सोचो तो होगा। वह हो ही रहा है। तुम नहीं थे तो भी होता था। तुम नहीं रहोगे तो भी होता रहेगा। भविष्य तुम पर निर्भर नहीं है।

आदमी अतीत की सोचता है। आदमी भविष्य की सोचता है। बस एक चीज से आदमी चूकता चला जाता है--वर्तमान। और वर्तमान परमात्मा का द्वार है। वर्तमान ही है। न तो अतीत है, न भविष्य है। एक है कल्पना, एक है स्मृति। अस्तित्व तो वर्तमान का है।

इसलिए मत पूछो रतन प्रकाश, कि यहां क्या हो रहा है? जहां हो, वहीं जागो। और देखो वहां क्या हो रहा है। और तुम पाओगे कि सब जगह हरि ही व्याप्त है। उसी का अन्तर्नाद उठ रहा है। उसी के फूल खिल रहे हैं। उसी के झरने फूट रहे हैं। उसी की रोशनी बह रही है। धारे पर धारे, झरनों पर झरने, फव्वारे पर फव्वारे...सब तरफ वही है। तुम जहां हो, वहीं शांत हो जाओ, निर्विकार हो जाओ--और तुम महफिल में सम्मिलित हो गए! और तुम बैठ गए उसकी सभा में!

परमात्मा के बिना आदमी बांझ है। तुम कैसे बांझ न रह जाओ, यही एक बात तुमसे बार-बार कह रहा हूं।

कितने ही साल सितारों की तरह टूट गए
मेरी गोदी में कोई चांद जनम ले न सका
टकटकी बांध के अफ़लाक पे रोई बरसों
आज तक कोई भी वापिस मेरा गम ले न सका
वह जमीं जो कोई पौदा न उगल सकती हो
कायदा है कि उसे छोड़ दिया जाता है
घर में हर रोज यही जिक्र यही शोर सुना
शाख सूखे तो उसे तोड़ दिया जाता है
मुझे बांहों में उठा ले मुझे मायूस न कर
अपने हाथों की लकीरों में सजा ले मुझको
अपने एहसां के सिले में मेरा जोबन ले ले
कर दिया सबने मुकद्दर के हवाले मुझको
एक, दो, तीन--कहां तक कोई गिनता जाए
अनगिनत सांस महकते हैं मेरे सीने पर
मेरे लब पर कोई नग्मा कोई फर्याद नहीं
लोग अंगुश्त-बदन्दां हैं मेरे जीने पर
कितने हाथों ने टटोला है मेरी तन्हाई को
कोई जुगनू, कोई मोती, कोई तारा न मिला
कितने झूलों ने झुलाया है मेरे अरमानों को
दिल में सोई हुई ममता को सहारा न मिला
कल भी खामोश थी मैं, आज भी खामोश हूं मैं
मेरे माहौल में तूफान न आया कोई
कितने अरमान मिटे एक तमन्ना के लिए
घर लुटाने पे भी मेहमान न आया कोई
कितने ही साल सितारों की तरह टूट गए...

जैसे कोई स्त्री बांझ रह जाए, उसकी कोख न भरे, उसकी गोद में कोई चांद न उतरे--ऐसा ही जब तक हरि तुम्हारे गोद में न उतर आए, हरि का चांद तुम्हारे हृदय में न उतर आए, तब तक समझना अभी कुछ भी नहीं हुआ। अभी असली बात होने को है। तलाशना, खोजना! रुके मत रह जाना, बैठे मत रह जाना। जगाना अतृप्ति को, जगाना असंतोष को। जगाना उसकी तृषा को। जगाना एक भयंकर लपट कि उसे पाकर ही रहूंगा; कि उसे बिना पाए नहीं जाना है; कि सब दांव पर लगाऊंगा, कि मिटना पड़े तो मिटूंगा; कुछ भी बचाऊंगा नहीं। तब कोई

बोल सकता है--हरि बोलौ हरि बोल।

और हरि के बोलते ही तुम्हारे जीवन में हजार-हजार कमल खिलने शुरू हो जाते हैं। बस यही एक बात रोज-रोज कह रहा हूं। और मैं ही नहीं कह रहा हूं, वही एक बात रोज-रोज कही गई है--कृष्ण ने, बुद्ध ने, मुहम्मद ने, नानक ने, कबीर ने, दादू ने, सुन्दरदास ने। बस यही एक बात कही है। दूसरी बात कहने को नहीं है। इस एक बात को सुन लेने पर, सब सुन लिया गया। इस एक बात को समझ लेने पर, सब समझ लिया गया। और इस एक से चूके तो कितना ही तुम जानो, तुम्हारे जानने का दो कौड़ी मूल्य है। और तुमने कितना ही सुना हो, कितना ही पढ़ा हो, समझना कि अपने को धोखा देते रहे। हरि-दर्शन हो, हरि-मिलन हो, तो ही इस जीवन में शृंगार है, तो ही इस जीवन में उत्सव है।

सुनो यह सूत्र --सुन्दरदास पुकारि कैं कहत बजायें ढोल ! ढोल बजाकर कह रहे हैं। मगर आदमी कुछ ऐसा है, व्यर्थ की बातें आहिस्ता-आहिस्ता कहो तो भी सुन लेता है; सार्थक बातें जोर से कहो तो भी नहीं सुनता। सुनना नहीं चाहता। और जो तुम नहीं सुनना चाहते वह ढोल बजाकर भी कहा जाए तो सुना नहीं जाएगा।

जीसस ने अपने शिष्यों को कहा है--जाओ, चढ़ जाओ मकानों की मुंडेरों पर। बजाओ ढोल। चिल्ला-चिल्ला कर कहो कि मैं आ गया हूं। शायद हजार लोगों के कान में पड़े तो एकाध सुने।

बुद्ध चालीस वर्षों तक निरन्तर सुबह-सांझ समझाते रहे, समझाते रहे। कितने थोड़े-से लोग उनके कुएं से पानी पिये। जिन्होंने पिया, उनकी प्यास सदा के लिए मिट गई। मगर अनन्तों ने तो तय यही किया कि नहीं पियेंगे, प्यासे ही रहेंगे। आदमी के इस निर्णय के पीछे क्या है कारण? जरूर कोई बड़ा कारण है। आखिर इतनी क्या अड़चन है ईश्वर को स्मरण करने में? कीमत चुकाने की तैयारी नहीं है। और कीमत कुछ ऐसी नहीं कि दो फूल चढ़ा दिए, कि चार पैसे चढ़ा आए। तुम भी क्या कचरा परमात्मा को चढ़ाते हो जाकर! जब तक अपने को नहीं चढ़ाया तब तक कुछ नहीं चढ़ाया। और कुछ मत चढ़ाना। और सब चढ़ाना अपमान है परमात्मा का। चढ़ाना तो अपने को चढ़ाना। तुम भी क्या पागलपन की बात करते हो कि चार पैसे चढ़ा आए! और अक्सर तो वे चार पैसे खोटे होते हैं। और चार पैसे चढ़ाते हो तो न मालूम कितनी आकांक्षा में चढ़ाते हो कि और कितने मिल जाएंगे। मजबूरी में चढ़ाते हो।

एक छोटे बच्चे को उसकी मां ने दो चवन्नियां दीं और कहा : आज कृष्ण जन्माष्टमी है। एक तू रख लेना और एक जाकर कृष्ण के मन्दिर में चढ़ा आ।

बड़ा प्रसन्न था बच्चा। उन चमकती हुई चवन्नियों को उछालता हुआ मंदिर की तरफ जा रहा था। एक उसके हाथ से छूटी, गिरी सड़क पर, सरकी और नाली में चली गई। धक् से रह गया उसका दिल! लेकिन आदमी का बच्चा! उसने आकाश की तरफ देखकर कहा कि हे कृष्णदेव महाराज! आपकी चवन्नी तो चढ़ गई। अब आप तो सर्वव्यापी हो। अब मैं कहां खोजूंगा उस चवन्नी को? वह तुम्हारी रही।

जो व्यर्थ है, जो हमसे छूटा ही जा रहा है, जो हमारे किसी काम का ही नहीं है, उसे हम चढ़ा आते हैं। तुम क्या धोखा दे रहे हो? तुम्हारे सिक्के वहां नहीं चलते। तुम्हारे सिक्के यहां भला चलते हों। एक देश के सिक्के दूसरे देश में नहीं चलते, इस लोक के सिक्के उस लोक में कैसे चलेंगे? थोड़ा सोचो तो! मगर लोग बड़े होशियार हैं।

एक आदमी मरा। अपने तीन मित्रों को कह गया था कि 'मर जाऊं तो जिन्दगी-भर की याद में मेरी लाश पर कुछ भेंट चढ़ा देना। उनमें एक तो पारसी था--सीधा-सादा पारसी। उसने सौ रुपये का नोट चढ़ा दिया। दूसरा आदमी गुजराती था--होशियार! उसने देखा कि सौ रुपये का नोट चढ़ाया है, ये सौ रुपये व्यर्थ चले जाएंगे। उसने एक हजार का नोट चढ़ा दिया। सौ रुपए उठाकर रख लिए। हजार के नोट अब चलते नहीं। उसने कहा : भाई! नौ सौ मेरी तरफ से।

तीसरा मारवाड़ी था। उसने दोनों नोट उठा लिए और एक चैक लिख कर रख दिया। अब न मुर्दा चैक भुनाने आएगा, न कोई झंझट होगी।

आदमी परलोक को भी धोखा देने के सारे उपाय कर रहे हैं। परलोक से भी जब मारवाड़ी अपना संबंध जोड़ता है, तो अपने हिसाब से जोड़ता है। वहां भी अपनी चालबाजी लगा देता है। और यहां सभी तो मारवाड़ी हैं। मारवाड़ से थोड़े ही मारवाड़ का कुछ लेना-देना है। जहां चालाकी है, वहीं मारवाड़ी है। जहां बेईमानी है, वहीं मारवाड़ी है। जहां कृपणता है, वहीं मारवाड़ी है। यहां कौन है, जो मारवाड़ी नहीं है! और तुमने अपनी चालाकियां परमात्मा तक फैला दी हैं।

नहीं; कुछ और चढ़ाने से काम नहीं चलेगा। अपने को चढ़ाना होगा। उतनी हिम्मत कुछ मर्दों में होती है। वे ही मर्द पा पाते हैं।

धर्म भीरू का और कायर का रास्ता नहीं है-- साहसी का, दुस्साहसी का रास्ता है।

आज के वचन बड़े प्यारे हैं। एक-एक वचन ऐसा कि चुकाओ मूल्य, तो चुकाया न जा सके।

बांकि बुराई छाड़ि सब, गांठि हृदै की खोल।
बेगि विलम्ब क्यों बनत है, हरि बोलौ हरि बोल ।।

सुन्दरदास कहते हैं : ऐसे ही बहुत देर हो गई, अब और देर क्यों लगा रहा है? सुबह सांझ होने लगी। कहते हैं, सुबह का भूला सांझ आ जाए तो भूला नहीं कहलाता। लेकिन अब तो सांझ भी होने लगी और तू अब भी घर नहीं लौटा है ! सच तो यह है--कितनी सुबहें सांझें बन चुकीं, कितने जन्म मौत बने--और फिर भी तू उसी वर्तुल में घूमता रहा है, कोल्हू के बैल की भांति। कितना विलम्ब तो हो ही चुका है। अब और स्थगित मत करो। अब मत कहो कि कल ! अब तो आज ! अब तो अभी।

बेगि विलम्ब क्यों बनत है ! जरा देख, क्यों विलम्ब कर रहा है?

विलम्ब करने में हम बड़े कुशल हैं। हम कल पर टालने में बड़े होशियार हैं। और तुमने कभी देखा, हमारा गणित क्या है ? व्यर्थ तो हम अभी कर लेते हैं, सार्थक हम कल पर टाल देते हैं। अगर कोई तुम पर क्रोध करे तो तुम यह नहीं कहते कि कल जवाब दूंगा। जब कोई तुम पर क्रोध करता है तो तुम उसी क्षण क्रोधित हो उठते हो। तत्क्षण ! नगद होता है तुम्हारा क्रोध। तुम आग से भर जाते हो। तुम उसी क्षण कुछ करना चाहते हो। लेकिन अगर प्रेम उठे, तो तुम कहते हो कल। अगर दया उठे, तो तुम कहते हो कल। अगर दान का भाव उठे, तो तुम कहते हो कल। क्रोध उठे तो अभी, लोभ उठे तो अभी, हिंसा उठे तो अभी। करुणा उठे तो कल।

और ध्यान रखना, जो कल पर छोड़ा, वह सदा के लिए छोड़ा। असल में 'कल' हमारी एक तरकीब है छोड़ने की और साथ ही यह भी माने रखने की--छोड़ा थोड़े ही है, कल कर लेंगे। ऐसे मन को सांत्वना बनी रहती है। कल तो करना ही है। आज नहीं किया तो कोई छोड़ ही थोड़े दिया है, कल करेंगे। कल कभी आता नहीं। और रोज-रोज हम कल पर टाले चले जाते हैं। और जो व्यर्थ है, हम रोज किए चले जाते हैं। इस प्रक्रिया को बदलो। व्यर्थ को कहना कल। सार्थक को कहना आज। क्योंकि जो न करना हो उसे कल पर टाल दो। जो करना हो उसे आज कर लो।

गुरजिएफ का बाप मरता था। बूढ़ा था। उसने अपने बेटे को पास बुलाया। और कहा कि तुझे देने को मेरे पास कुछ और नहीं, सिर्फ एक छोटा-सा सूत्र है, जो मेरे बाप ने मुझे दिया था। उसने मेरी जिन्दगी बदल दी। मेरा बाप बे-पढ़ा-लिखा था, मैं भी बे-पढ़ा-लिखा हूं। हमारे पास बहुत नहीं है देने को। लेकिन यह सूत्र मेरी जिन्दगी में ऐसा था, जैसे सोना बरसा और जिसमें सुगंध रही हो। तू भी इसको याद रख ले।

गुरजिएफ छोटा ही था--नौ ही साल का था। बाप ने कहा कि शायद अभी

तू समझे भी नहीं, मगर याद रख ले। कभी जब बड़ा होगा तो काम आ जाएगा। भुना लेना बाद में। मगर याद रख ले अभी। छोटा-सा सूत्र था। गुरजिएफ बाद में कहता था कि उस छोटे-से सूत्र ने मेरा पूरा जीवन बदल दिया। सूत्र क्या था? यही था कि अगर कोई अपमान करे तो चौबीस घण्टे का समय मांग कर जवाब देना। कहना कि चौबीस घंटे का समय दे दो। सोचूंगा विचारूंगा, चौबीस घंटे के बाद आकर जवाब दे दूंगा। ऐसी जल्दी भी क्या है ? हो सकता है, चौबीस घंटे में दिखाई पड़ जाए कि जो उसने कहा, वह ठीक ही है। जैसे किसी ने तुम्हें चोर कह दिया बीच बजार में, सौ में निन्यानवे मौके तो यह हैं कि वह ठीक ही कह रहा है। इस जमीन पर ऐसा आदमी पाना मुश्किल है जो चोर न हो, किसी-न-किसी अर्थ में चोर न हो। चौबीस घंटे सोचोगे तो शायद लगेगा उसने ठीक ही तो कहा। अपमान कहां है? बुराई कहां है? जाऊं, धन्यवाद दे आऊं। या यह भी हो सकता है कि तुम उन लोगों में से होओ जो चोर नहीं हैं। तो तुम्हें हंसी आएगी चौबीस घंटे में कि क्या व्यर्थ बात कही। इसको कुछ भी पता नहीं। तुम हंसोगे। इसमें क्रोध का क्या कारण है? जो तुम पर लागू ही नहीं होता उस पर क्रोध क्या करना है? जैसे तुमसे कहा ही नहीं गया। इससे तुम्हारा कोई संबंध नहीं है।

ये दो ही संभावनाएं हैं। या तो सत्य दिखाई पड़ जाएगा--जो कहा गया है, उसका; या उसका असत्य दिखाई पड़ जाएगा। या तो कोई चीज सच होती है या झूठ होती है। अगर सच है तो जाकर धन्यवाद देना और अगर झूठ है तो जाकर कह आना कि भाई, इससे मैं मेल नहीं खाता। मेरा समझौता नहीं होता। इससे मैंने बहुत खोजा। यह बात मेरे भीतर जंचती नहीं। यह मुझ पर लागू नहीं होती। मगर झगड़ा कहां है?

और गुरजिएफ ने कहा कि इस सूत्र को मैं मान कर चला, मेरी जिन्दगी में किसी से झगड़ा नहीं हुआ। और चौबीस घंटे का जब मैंने किसी से समय मांगा तो वह भी बहुत चौंका। और जब चौबीस घंटे के बाद जाकर मैंने धन्यवाद दिया, तब तो उसकी आंख से आंसू गिरने लगे। या कभी चौबीस घंटे के बाद जाकर मैंने कहा कि क्षमा करना भाई, यह बात मुझपर लागू नहीं होती, मैंने बहुत सोचा; तुम्हारी बात पर जितना ध्यान दे सकता था, दिया। क्षमा करना, यह मुझ पर लागू नहीं होती। मैं क्या करूं?... तो भी वह आदमी चमत्कृत हुआ।

एक तो क्रोध के लिए कोई चौबीस घंटे का समय नहीं मांगता। बुराई के लिए कोई समय मांगता ही नहीं। बुराई तो हम तत्क्षण करते हैं, क्योंकि हम करना चाहते हैं। जो हम करना चाहते हैं, वह हम अभी करते हैं।

एक मनोवैज्ञनिक ने एक आदमी को सलाह दी...। क्योंकि वह आदमी कह

रहा था कि मेरे दफ्तर में कोई काम नहीं करता है । मैं बड़ी परेशानी में पड़ गया हूं । मैं थक गया हूं उनसे कह-कह कर ।

उस मनोवैज्ञानिक ने कहा कि तुम एक तख्ती टांग दो दफ्तर के हर कमरे में । हर टेबिल पर तख्ती लगा दो । उससे लोगों को बोध आएगा कि जो भी करना हो अभी कर लो । जो भी करना है, अभी करना है । इस तरह के वचन सारे दफ्तर में टांग दो । उसने टांग लिए । सुन्दर-सुन्दर वचन बनवाये और टांग दिए । जिनका सबका सार यही था कि टालो मत, स्थगित मत करो । जो करना है अभी करो । फाइल में रख कर इकट्ठा मत करते जाओ । आलस्य मत करो । कल का क्या पता! कल तो मौत है ।

कुछ दिनों बाद मनोवैज्ञानिक ने कहा कि क्या हालत है, कुछ परिवर्तन हुआ? वह आदमी बड़ा क्रोधित हो उठा, मनोवैज्ञानिक को मिला तो । उसने कहा, परिवर्तन? जिस दिन मैंने पहले दिन तख्ती टांगी, उसी दिन जो झंझटें हुईं उनका हिसाब लगाना मुश्किल है । कैशियर पूरी की पूरी तिजोरी लेकर भाग गया ।. . .काल करे सो आज कर, बहुरि करोगे कब! . . .मेरा सेक्रेटरी मेरी टाइपिस्ट को लेकर भाग गया । और मेरे दरबान ने मुझे घूंसा मारा । और जब मैंने उससे पूछा कि तू यह क्या कर रहा है, तो उसने कहा कि आपने ही तो तख्ती लगवा दी । यह मैं सदा से करना चाहता था । एक घूंसा! सम्हालता था अपने को । तो फिर जब आपने तख्ती ही लगा दी तो मैंने कहा जब अब मालिक ही कह रहे हैं कि कर ही ले जो करना है . . .।

अगर तुमसे कोई कहे, अभी कर लो, तो तुम जरा सोचना, तुम क्या करोगे? कौन-से विचार तुम्हारे मन में उठते हैं? तुम्हारे मन में भी यही सब विचार उठेंगे । बुरे को आदमी तत्क्षण कर लेना चाहता है, भले को टाल देता है; भले को करना ही नहीं चाहता ।

बेगि विलम्ब क्यों बनत है . . .। अब देर न करो । सुन्दरदास कहते हैं, अगर हरि को पुकारना है तो पुकार ही लो । अब यह मत कहो, कल पुकारेंगे ।

बांकि बुराई छाड़ि सब ।

जीवन की सबसे बड़ी बुराई क्या है? बांकापन । तिरछापन । चालबाजी । कम-से-कम परमात्मा और अपने बीच तो तिरछापन न आने दो । कम से कम उससे तो साफ-सुथरे रहो । कम-से-कम उसके सामने तो नग्न हो जाओ । उसके सामने तो निष्कपट हो जाओ । उसके सामने तो हृदय वैसा ही खोल दो, जैसे तुम हो । उससे तो मत छिपाओ । उससे तो दुराव मत करो ।

बांकि बुराई छांड़ि सब । और अगर तुम यह तिरछापन छोड़ दो तो बाकी

बुराइयां अपने-आप छूट जाती हैं । इसी एक बुराई के आधार पर सारी बुराइयां खड़ी हुई हैं । तुम सोच रहे हो अपनी होशियारी में कि अस्तित्व को भी धोखा दे लोगे । तुमने धोखे के कई आयोजन कर रखे हैं । असली पूजा से बचने के लिए तुमने नकली पूजा ईजाद कर रखी है । असली परमात्मा से बचने के लिए तुमने परमात्मा की मंदिर में मूर्तियां बना रखी हैं । असली सत्य से बचने के लिए तुम शास्त्रों में उलझ गए हो, शब्दों को पकड़ लिया है ।

तुम ये चालबाजियां किसके साथ कर रहे हो? सोचो जरा । ये धोखे तुम किसको दे रहे हो? क्योंकि अन्ततः सब दिये गए धोखे, उसी को दिये गए धोखे हैं, क्योंकि वही सबके भीतर मौजूद है । तुम जब भी किसी को धोखा देते हो, परमात्मा को ही धोखा देते हो । किसको धोखा दोगे? उसके अतिरिक्त कोई है नहीं । यह तिरछापन छोड़ो । यह होशियारी छोड़ो । यह होशियारी छोड़ो, सरल हो जाओ । सहज हो जाओ जैसे हो, वैसे ही । यह दोहरापन छोड़ो ।

आदमी भीतर कुछ है, बाहर कुछ है । और इन दोनों के बीच इतना फासला है कि कभी-कभी तुम्हें खुद भी धोखा हो जाता है, कि तुम हो कौन? तुम्हें अपना परिचय भी नहीं हो पा रहा है इसी धोखे के कारण । अगर तुम पूछो भी कि मैं कौन हूं, तो कोई उत्तर नहीं आता । क्योंकि तुमने 'मैं कौन हूं' के नाम पर इतने मुखौटे ओढ़ रखे हैं, कि आज कैसे पहचानोगे अचानक कि कौन-सा तुम्हारा असली चेहरा है?

झेन फकीर कहते हैं कि अगर आदमी अपना असली चेहरा पहचान ले, तो फिर कुछ और करने को नहीं बचता । असली चेहरा . . . जो जन्म के पहले तुम्हारा था, और मृत्यु के बाद फिर तुम्हारा होगा । उस असली चेहरे को पहचान लेने का मतलब यह होता है, बीच में जो नकली चेहरे हमने खड़े कर रखे हैं, वे हटा दिए, उनको सरका दिया ।

कितने नकली चेहरे तुमने अपने ऊपर लगा रखे हैं! तुमने कभी विचार किया है? एक दो नहीं, हजारों हैं । और दिन-भर तुम चेहरे बदलते हो । पत्नी के सामने एक चेहरा होता है, प्रेयसी के सामने दूसरा चेहरा होता है । मालिक के सामने एक चेहरा होता है, नौकर के सामने दूसरा चेहरा होता है ।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मर रही थी । आखिरी सांसें गिन रही थी । उसने आंखें खोलीं और कहा कि नसरुद्दीन, तुम मुझे प्रेम करते हो न?

इस दुनिया में इतना प्रेम कम है कि लोग यही पूछते जीते हैं और यही पूछते मरते हैं, कि तुम मुझे प्रेम करते हो न? कितना कम होगा प्रेम दुनिया में! हर स्त्री यही पूछ रही है हजार ढंगों से, कि तुम मुझे अब भी प्रेम करते हो न? और

हर पुरुष यही पूछा रहा है हजार ढंगों से, तुम मुझे अब भी प्रेम करती हो ? प्रेम की ऐसी प्यास ! और इतनी कमी क्यों है प्रेम की ? कोई करता ही नहीं।

नसरुद्दीन ने एक बड़ा सा आंसू टपका दिया आंख से। तैयार ही बैठा होगा। और कहा कि तेरे बिना मैं जी न सकूंगा। तू पूछती है प्रेम की बात ? तू मरी, तो मैं मरा।

फिर पत्नी बेहोश हो गई। डॉक्टर आया। डॉक्टर ने नसरुद्दीन की गीली आंख देखी, आंसू देखा, तो बहुत दुखी हो गया और कहा, कि मैं दुखी हूं कि असमय में तुम्हारी पत्नी को जाना पड़ रहा है। हम कुछ भी नहीं कर सकते। जो किया जा सकता था, किया जा चुका है। मैं तुम्हें यह कह देना चाहता हूं——यद्यपि मेरा हृदय टूटता है यह कहते हुए, तुम्हें देखकर——कि तुम्हारी पत्नी अब तीन-चार घंटे की मेहमान और है।

पता है, नसरुद्दीन ने क्या कहा ? कहा, डॉक्टर साहब, आप नाहक कष्ट में न हों। तीन-चार घंटे दुख और सह लूंगा। जिन्दगी-भर सहा है तो तीन-चार घंटे और सह लूंगा। आप नाहक दुखी न हों।

अभी मर रहा था पत्नी के लिए। अब पत्नी बेहोश है तो चेहरा बदल गया। अब प्रसन्न हो रहा है भीतर। अब भीतर एक स्वतंत्रता अनुभव कर रहा होगा कि चलो एक झंझट छूटी, एक जाल छूटा। चलो अब मुक्त हुआ। चलो अब दूसरी स्त्रियों का पीछा कर सकूंगा।

तुम जरा देखना अपने चेहरे। किस तरह तुम तिरछे हो गए हो ! कहते कुछ हो, सोचते कुछ हो, करते कुछ हो। तुम्हारा पक्का पता लगाना कठिन है, कि तुम कौन हो।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि इस सदी में जो सबसे बड़ी समस्या है मनुष्य के सामने, वह यही है। उसको उन्होंने खास नाम दिया है——आइडेन्टिटी क्राइसिस। आदमी को यह पता नहीं चल पाता कि मैं कौन हूं। यह आत्म-बोध का संकट कैसे पैदा हो गया है ? यह इसीलिए पैदा हो गया कि तुमने इतनी तस्वीरें अपनी बना रखी हैं, कि उन तस्वीरों में सब तुम्हीं उलझ गए हो। तुम्हारा वह चेहरा सच था जो तुमने मालिक के सामने दिखाया, या वह चेहरा सच था, जो तुमने अपने नौकर के सामने दिखाया ?

तुम देखते हो, लोग कितने जल्दी बदलते हैं ! तुम्हारा नौकर तुम्हारे पास आकर खड़ा होता है, तुम कैसे अकड़े होते हो ! जैसे सिकन्दर हो तुम ! उसको तो वैसे देखते हो जैसे वह कोई कीड़ा-मकोड़ा है। और तभी तुम्हारा मालिक आ गया और तुम एकदम बदल जाते हो, तरल हो जाते हो। तुम्हारी पूंछ एकदम हिलने

लगती है। तुम एकदम चाटुकारिता में पड़ जाते हो।

अगर ये बदलते चेहरे तुम्हें देखना हों तो दिल्ली जाना चाहिए। वहां तुम्हें चमत्कार दिखाई पड़ेंगे। जो सत्ता में आ जाता है, चाटुकार उसी की चाटुकारिता करने लगते हैं। यही कल दूसरों की खुशामद कर रहे थे। यही कल दूसरों को जिन्दाबाद कह रहे थे। अब ये उनको मुर्दाबाद कह रहे हैं। जिनको कल यह मुर्दाबाद कहते थे, अब उनको जिन्दाबाद कह रहे हैं। इनके चेहरे की तरलता देखो। उसी तन्मय-भाव से कह रहे हैं। इनकी पूंछ हिलानी है। जहां ताकत हो उसके सामने पूंछ हिलती है। इनकी कोई निष्ठा नहीं है। इनकी कोई आत्मा नहीं है। इनके पास कोई आत्मगौरव भी नहीं है। इनके पास थोड़ा-सा स्वाभिमान भी नहीं है। फिर हवा बदलेगी और फिर ये बदल जाएंगे। वही चमचे! सभी की चमचागिरी करते हुए तुम पाओगे।

जिन लोगों को तुम इंदिरा के पास इकट्ठे देखते थे, उन्हीं को तुम मोरारजी के पास इकट्ठे पाओगे। दिल्ली जाओ। चमत्कार देखने कभी-कभी दिल्ली जाना चाहिए। इनके कोई चेहरे नहीं हैं। अगर जिन्दगी के बाद में इनसे कोई पूछे कि तुम कौन हो, तो इनको पक्का याद ही नहीं आएगा कि मैं कौन हूं। क्योंकि इन्होंने इतने चेहरे बदले हैं, इतनी बार बदले हैं ! और तत्क्षण तैयार होते हैं ये बदलने को।

मगर तुम भी करते हो। छोटे-मोटे पैमाने पर तुम भी करते हो। दिल्ली में जो होता है, वह बड़े पैमाने पर होता है। दिल्ली में जो होता है, वह तुम्हारा ही बढ़ा हुआ रूप है। तुम छोटे पैमाने पर करते हो। तुम अपनी सीमा में जीते हो। मगर वही... कोई गुणात्मक भेद नहीं है। परिमाण का भेद होगा।

बांकि बुराई छाड़ि सब, गांठि हृदै की खोल।

सुन्दरदास कहते हैं: अगर तुम यह तिरछापन छोड़ दो, तो ही तुम्हारे हृदय की गांठ खुले। इसी तिरछेपन से तुम्हारे हृदय की गांठ बंधी है। तुम जैसे हो वैसे ही हो जाओ न! तुम जैसे हो वैसे ही होने की घोषणा कर दो। बुरे तो बुरे, अच्छे तो अच्छे। रत्ती-भर अन्यथा मत करो और तुम अचानक पाओगे, हृदय बालक जैसा सरल हो गया, निर्दोष हो गया, निर्मल हो गया। और उसी निर्मल हृदय में परमात्मा की अवतारणा होती है। ...हरि बोलौ हरि बोल। वही निर्मल हृदय परमात्मा को पुकार सकता है। अभी तो तुम पुकार भी नहीं सकते।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन जब खुद मरने को हुआ तो उसने हाथ जोड़े आकाश की तरफ और कहा : 'हे परमात्मा ! हे शैतान ! मुझे बचा।' पास खड़े मौलवी ने कहा : नसरुद्दीन! यह तू क्या कह रहा है? यह क्या कुफ्र बोल रहा है?

परमात्मा से लोग प्रार्थना करते हैं बचाने की, शैतान से नहीं। यह शतान का नाम क्यों बीच में ले रहा है?

उसने कहा : अब मरते वक्त मैं खतरा नहीं मोल लेना चाहता। पता नहीं किसके हाथ में पड़ूं। दोनों से प्रार्थना कर लेनी उचित है। और पता नहीं कौन असली मालिक है। फिर पीछे पता चले मरने के बाद, देर हो जाएगी।

यह जिन्दगी-भर की चालबाजी आखिरी क्षण तक भी आदमी छोड़ नहीं पाता। दोनों की ही प्रार्थना कर लेनी उचित है। परमात्मा का भी पैर दबा दो एक हाथ से, एक हाथ से शैतान का भी पैर दबा दो। पता नहीं कौन असली में मालिक है। पता नहीं किसके हाथ में पड़े। पता नहीं किसके साथ सामना करना पड़े बाद में। यह होशियार आदमी, राजनीतिज्ञ आदमी का लक्षण है। यह कुशल आदमी का लक्षण है। मगर ये कुशल आदमी ही हृदय को गंवा देते हैं।

जितने तुम चतुर होते जाते हो उतना हृदय तुम्हारा टूटता जाता है। सभी बच्चे निष्कपट हृदय लेकर पैदा होते हैं, और मरते-मरते तक सभी के हृदय इतने कपट से भर जाते हैं कि उसमें परमात्मा की जगह नहीं रह जाती।

यह कपट छोड़ो। एकरस हो जाओ। अगर उसे बुलाना है तो कम से-कम एक चेहरा थिर कर लो। जो तुम्हारा स्वाभाविक चेहरा है वही रह जाए।

बांकि बुराई छांड़ि सब, गांठ हृदै की खोल।
बेगि विलम्ब क्यों बनत है, हरि बोलौ हरि बोल ।।

और जितना यह हृदय का प्याला स्वच्छ होगा, साफ होगा, निष्कपट होगा, इरछा-तिरछा नहीं होगा, उतनी ही तुम्हारी पात्रता बढ़ जाती है।

जितनी दिल की गहराई हो
उतना गहरा है प्याला;
जितनी दिल की मादकता हो
उतनी मादक है हाला;
जितनी उर की भावुकता हो
उतना सुन्दर साकी है;
जितना हो जो रसिक उसे है
उतनी रसमय मधुशाला

सब तुम पर निर्भर है। और एक बार तुम्हारा प्याला परमात्मा के रस से भर जाए तो यह जगत दूसरा हो जाता है। यही जगत! सब ऐसा ही रहता है, फिर भी कुछ ऐसा नहीं रह जाता।

किसी ओर मैं देखूं, मुझको
दिखलाई देता साकी,
किसी ओर देखूं, दिखलाई
पड़ती मुझको मधुशाला।
हर सूरत साकी की सूरत
में परिवर्तित हो जाती है
आंखों के आगे हो कुछ भी
आंखों में है मधुशाला।

हृदय का पात्र स्वच्छ करो, सरल करो, एकरस करो।

हिरदै भीतर पैंठि करि अन्तःकरण विरोल।

और अगर कहीं भी कुछ खोज करना है तो वहीं करनी है--हृदय के भीतर बैठकर। वही गहरी बैठक मारनी है। यह बाहर आसन लगाने से कुछ भी न होगा। ये योगासन काम नहीं पड़ेंगे। आसन वहां लगाना है। वहां भीतर हृदय की तरलता में, सरलता में डुबकी मारनी है।

हिरदै भीतर पैंठि करि अन्तः करण विरोल।

मंथन वहां करना है। वहां छिपा है अमृत। मगर वहां तो तुम जाते ही नहीं, तुम तो बाहर-बाहर ही भागते रहते हो। तुम तो भीतर आते ही नहीं। तुमने तो एक बात समझ रखी है, शायद भीतर कुछ है ही नहीं, बाहर सब कुछ है।

बाहर कुछ भी नहीं है। धूल के अतिरिक्त और कभी किसी के हाथ कुछ भी नहीं लगा है। भीतर है मालिक! और भीतर है तुम्हारी मालकियत। भीतर है तुम्हारा साम्राज्य! और भीतर है तुम्हारा सम्राट! मगर भीतर जाने के लिए सीधा-सरल हृदय हो, तो ही भीतर जा सकोगे। अगर बहुत ज्यादा उलझा हुआ हृदय हुआ तो भटक जाओगे, पहुंच न सकोगे। पहेली मत बनाओ अपने हृदय को। वही तुमने कर लिया है। तुमने एक बेबूझ पहेली बना ली है।

हिरदै भीतर पैंठि करि अन्तःकरण विरोल।
को तेरौ तू कौन को, हरि बोलौ हरि बोल ।।

और वहां जाकर तुम्हें पता चलेगा, न तुम्हारा कोई है, न तुम किसी के हो। यहां दो हैं ही नहीं। कौन किसका हो सकता है? यहां बस परमात्मा ही है।

हर सूरत साकी की सूरत में
परिवर्तित हो जाती,
आंखों के आगे हो कुछ भी
आंखों में है मधुशाला

वस्ल का ख्वाब कुजा लज्जते-दीदार कुजा
है ग़नीमत तो तेरा दीदार भी हो जाए
ज़ब्त भी, सब्र भी, इम्कां में सब कुछ है मगर
पहले कमबख्त मेरा दिल तो मेरा दिल हो जाए
आह उस आशिके-नाशाद का जीना ऐ दोस्त
जिसको मरना भी तेरे इश्क में मुश्किल हो जाए

बस एक ही चीज होने की है, एक ही चीज करने की है——

ज़ब्त भी सब्र भी इम्कां में सब कुछ है मगर
पहले कमबख्त मेरा दिल तो मेरा दिल हो जाए

तुम्हारा दिल भी तुम्हारा नहीं, और सारी दुनिया को जीने चल पड़े हो! अपने मालिक नहीं हो और संसार में मालकियत करने के इरादे बांध रहे हो। यह मालकियत पहले भीतर तो हो जाए। और जो अपना मालिक हो गया उसे चिन्ता ही नहीं रह जाती है, दुनिया की मालकियत करने की। इस सूत्र को समझना।

मनस्विद कहते हैं कि जो व्यक्ति अपना मालिक नहीं है, वह दूसरों का मालिक बन कर, परिपूरक खोजता है। जो आदमी भीतर निर्धन है, वह बाहर धन इकट्ठा करता है। कुछ तो तृप्ति मिले! भीतर नहीं सही तो बाहर। जो आदमी भीतर हीनता की ग्रन्थि से पीड़ित है, इन्फीरियारिटी काम्प्लेक्स से पीड़ित है, वह आदमी पद की यात्रा पर निकलता है। वह राजनीति में उतरता है। वह पदों की सीढ़ियां चढ़ता है। वह बड़े सिंहासनों पर बैठना चाहता है। वह यह दिखाना चाहता है, कि चलो भीतर तो जो है ठीक है, कम से कम बाहर तो मैं दिखा दूं कि मैं कुछ हूं; भीतर तो ना-कुछ हूं।

जो आदमी भीतर के सत्य को अनुभव करने लगता है उसे पदों की चिन्ता नहीं रह जाती। वह राह पर भिखारी की तरह भी खड़ा हो, तुम उसमें सम्राट का प्रसाद पाओगे। वह निर्धन हो तो भी तुम देख पाओगे कि उसके भीतर कोई धन है, जो कोई नहीं छीन सकता। देह के भीतर भी तुम उसके भीतर चमकती हुई कोई रोशनी पाओगे——जो रोशनी इस जमीन की नहीं है; जो पार से आती है।

हिरदै भीतर पैठि करि, अन्तःकरण विरोल।
को तेरौ तू कौन है, हरि बोलौ हरि बोल।।

एक ही है तुम्हारा अगर कोई है, नाता एक ही बनाने जैसा है——वह हरि से है। और तुमने सब नाते बनाए और सब नातों में बहुत कष्ट पाया। अब नाता उससे बनाओ, उससे लग जाए लगन, सब लगन अपने-आप शेष फीकी पड़ जाती है।

तुझसे लाग लगी जब मन की
हुई वासना जग की बासी

फिर कुछ नहीं सुहाता।

तेरौ तेरे पास है, अपनैं मांहि टटोल।

कहां खोजते फिर रहे हो? किसके सामने भिक्षा पात्र फैलाए हुए हो? किससे मांगने निकले हो?

तेरौ तेरे पास है, आपने मांहि टटोल।

अगर खोजना हो तो भीतर खोज लो। परमात्मा ने तुम्हें सारी सम्पदा देकर भेजा है। रत्ती-भर कमी नहीं रखी है। तुम्हें परिपूर्ण बनाकर भेजा है। तुम्हें जैसा होना चाहिए वैसा बनाकर भेजा है। परमात्मा का कृत्य अपूर्ण हो भी कैसे सकता है? अगर उसके हाथ से ही तुम गढ़े गए हो तो तुम अधूरे हो कैसे सकते हो?

और बड़ा मजा है, धार्मिक आदमी कहे चले जाते हैं: परमात्मा ने संसार बनाया, आदमी बनाए, पशु-पक्षी बनाए...। फिर भी उन्हें यह समझ में नहीं आता, अगर उसके हाथ से यह सब बना है तो यह पूर्ण होना चाहिए। पूर्ण से पूर्ण ही निकल सकता है। मगर हम तो बड़े अपूर्ण मालूम होते हैं। शायद जहां उसने हीरे संभाल-कर रख दिए हमारे भीतर...! और हीरे तो संभाल कर रखने होते हैं न! तुम भी अपने हीरे मकान के बाहर कूड़े-कचरे के पास नहीं रख देते हो। घर के भीतर से भीतर, जो कमरा सबसे ज्यादा गहराई में होता है भीतर, सबसे ज्यादा सुरक्षित होता है, वहां गड्ढ़ा खोदते हो, गहरा गड्ढ़ा खोदते हो। जितना बहुमूल्य हीरा होता है उतना गहरा गड्ढ़ा खोदते हो, ताकि चुराया न जा सके, ताकि खो न जाए।

तुम्हारी परम सम्पदा तुम्हारे ही गहरे कुएं में रखी है। वहीं उतरो।

तेरौ तेरे पास है, अपने मांहि टटोल।
राई घटै न तिल बढ़ै, हरि बोलौ हरि बोल।।

यह एक सूत्र सारे शास्त्रों का सार है। न तो तुम्हारे भीतर की सम्पदा घटती है और न बढ़ती है। राई घटै न तिल बढ़ै! जसा है वैसा ही रहेगा। जैसा है वैसा ही सदा से है। तुम परिपूर्ण हो और परिपूर्ण रहोगे। इसमें कुछ जुड़ना नहीं है, घटना नहीं है।

लोग सोचते हैं: आध्यात्मिक विकास करना है। तुम पागल हो! आध्यात्मिक विकास होता ही नहीं। आध्यात्मिक अनुभव होते ही पता चलता है: विकास इत्यादि सब कल्पना का जाल है। राई घटै न तिल बढ़ै। विकास कहां? दस रुपए हैं तो बीस रुपए हो सकते हैं। दस लाख हैं तो बीस लाख हो सकते हैं। हजार आदमी तुम्हें सम्मान देते हैं, दो हजार दे सकते हैं। इसमें बढ़ती हो सकती है। मगर तुम्हारे भीतर परमात्मा जितना है उतना ही है। पूरा का पूरा है।

इसलिए उपनिषद कहते हैं: उस पूर्ण से पूर्ण को भी निकाल लो, तो भी पीछे

पूर्ण ही शेष रह जाता है। तुम ऐसा मत समझना कि टुकड़े-टुकड़े में मिला है। तो किसी को ज्यादा मिल गया होगा, किसी को कम मिल गया होगा। तुम्हें सभी को पूरा-पूरा मिला है।

इसे हम ऐसा समझें तो शायद समझ में आ जाए, बात तो जरा समझने के पार की है। पूरे चांद को देखना रात में, पूरा चांद निकला है, पूर्णिमा की रात। हजारों नदी हैं, हजारों नद हैं, हजारों सरोवर, हजारों सागर, छोटे पोखरे, तालाब, कुएं--सब में चांद का प्रतिबिंब बनेगा और सब में पूरा-पूरा बनेगा। वह जो नदी में झलक रहा है-- चांद, वह कुछ अधूरा नहीं है। और बड़े-से-बड़े सागर में जो झलकेगा वह भी कुछ बड़ा नहीं है। और रास्ते के किनारे वर्षा में भर गया गड्ढा पानी से, उसमें जो झलक रहा है चांद, वह कुछ छोटा नहीं, गड्ढे का चांद कुछ छोटा नहीं है। चांद तो एक है। सरोवर अनेक हैं--छोटे हैं, बड़े हैं; मगर जो झलक रहा है वह सब में बराबर झलक रहा है।

ऐसा ही परमात्मा सब में बराबर झलक रहा है। कृष्ण में और बुद्ध में और क्राइस्ट में और तुम में--सब में बराबर झलक रहा है। सुन्दर देह में, स्वस्थ देह में, रुग्ण देह में, गरीब में, अमीर में, बुद्धिमान में, बुद्धू में, सब में, बराबर झलक रहा है। उसका स्मरण पर्याप्त है। कोई आध्यात्मिक विकास नहीं होता है। अध्यात्म केवल स्मरण मात्र है--हरि बोलौ हरि बोल ! बस इतना स्मरण। एक स्मरण की जागृति ! भीतर एक होश, कि मैं कौन हूं--और तत्क्षण सारा साम्राज्य उपलब्ध हो जाता है ! जिसे तलाश-तलाश कर कभी नहीं पाया था, वह बिना तलाशे मिल जाता है।

तेरौ तेरे पास है, अपने मांहि टटोल।

और बाहर तुम कुछ पा लोगे, तो भी तुम्हारा नहीं है वह, इसलिए छीना जाएगा। और बाहर तुम जो पा लोगे, दूसरों से छीनकर ही पाओगे। तुमसे भी छीना जाएगा। और बाहर तुम जो पा लोगे, अगर किसी तरह जिन्दगी-भर संभाल भी लिया तो मौत में छिन जाएगा। जो बाहर से तुम्हारा है, वह कभी तुम्हारा हो नहीं पाता। पराया पराया ही रहता है।... तेरौ तेरे पास है ! लेकिन जो वस्तुतः तुम्हारा है वह तुम्हारे पास है। उसे चिता की लपटें भी जलाएंगी नहीं...अपने मांहि टटोल!

कभी मुझको साथ लेकर, कभी मेरे साथ चल के
वो बदल गए अचानक मेरी जिन्दगी बदल के
हुए जिस पे मेहरबां तुम कोई खुशनसीब होगा
मेरी हसरतें तो निकलीं मेरे आंसुओं में ढल के

तेरी जुल्फो-रुख के कुर्बां दिलेजार ढूंढ़ता है
वही चम्पई उजाले वही सुरमई धुंधलके
कोई फल बन गया है कोई चांद कोई तारा
जो चिराग बुझ गये हैं तेरी अंजुमन में जल के
मेरे दोस्तो! खुदारा मेरे साथ तुम भी ढूंढ़ो
वो यहीं कहीं छुपे हैं मेरे गम का रुख बदल के
तेरी बेझिझक हंसी से न किसी का दिल हो मैला
यह नगर है आईनों का यहां सांस ले संभल के
मेरे दोस्तों ! खुदारा मेरे साथ तुम भी ढूंढ़ो
वो यही कहीं छुपे हैं मेरे गम का रुख बदल के

दूर नहीं छिपा है परमात्मा--यहीं कहीं छिपा है--यहीं तुम्हारे भीतर छिपा है।

तेरौ तेरे पास है, अपने मांहि टटोल।
राई घटै न तिल बढ़ै, हरि बोलौ हरि बोल ।।
सुन्दरदास पुकारिकै कहत बजायें ढोल !
चेति सकै तो चेति ले हरि बोलौ हरि बोल।।

बस इतनी ही बात है, इतनी-सी बात है : 'चेति सक तौ चेति ले !' इससे ज्यादा नहीं। अध्यात्म कोई साधना नहीं है--चेतना है; अभ्यास नहीं है--स्मरण है। कहीं जाना नहीं है, कुछ होना नहीं है--सिर्फ नींद तोड़ देनी है; सिर्फ आंख खोल लेनी है। 'चेति सकै तौ चेति ले !'

सुन्दरदास क्यों कहते हैं। 'कहत बजाएं ढोल ?' क्योंकि आदमी चेतना नहीं चाहता। आदमी कहता है : थोड़ी देर और सो लेने दो। एक करवट और ले लूं। अभी तो बड़ी जल्दी है। जरा और सो लूं। थोड़ी देर और...।

मैं एक नगर में बोल रहा था। एक मित्र मेरे सामने ही बैठे सुन रहे थे। मैंने देखा उनकी आंखों से आंसू बह रहे हैं और फिर बीच में अचानक वे उठ गए। कोई और उठ गया होता तो मुझे ख्याल में भी न आता। उनकी आंख से बहती आंसुओं की धार और उनके हृदय की तरंग, और उनका भाव, उनके उठने से मेरे लिए महफिल उठ गई। जैसे उन्हीं के लिए बोल रहा था ! जैसे उन्हीं से बोल रहा था! बाकी तो बहरे थे। बाकी तो ठीक थे, सो थे। मगर उनसे मेरी तरंग जुड़ गई थी, उनसे मेरा भाव जुड़ गया था। मेरे साथ उनकी सांस धड़क रही थी। मेरे हृदय के साथ उनका हृदय धड़क रहा था। क्यों उठ गए ?

मैं आगे बोल नहीं सका। मैंने पूछा कि बात क्या हुई ? उनकी पत्नी भी बैठी

थी। उसने मुझे एक चिट लाकर दी, और कहा कि वे यह चिट लिख कर दे गए हैं। चिट में लिखा था : आपको सहना असंभव है। और अगर आपको और ज्यादा सुना तो मेरा सब अस्तव्यस्त हो जाएगा। इसलिए मैं जा रहा हूं। और ज्यादा नहीं सुनना चाहता। पत्नी है, बच्चे हैं, गृहस्थी कच्ची है। अगर और थोड़ा सुना तो मैं घर न लौट सकूंगा।

अगर आदमी चेतने के करीब भी आने लगे तो हजार भय खड़े हो जाते हैं।

मैंने उन्हें ऐसे छोड़ नहीं दिया, मैं उनके घर पहुंच गया।... कहत बजाएं ढोल! अब ढोल ही बजाना हो तो फिर ऐसे कोई भाग जाए तो उसको भाग थोड़े जाने देते हैं! मुझे घर देखकर वे तो एकदम चकित हो गए। उन्होंने कहा : आप... आप कैसे आए? मैंने कहा : बात आधी रह गई है। उसे पूरा करना होगा।

और मैंने कहा : घबड़ाओ मत, मैं तुम्हारी पत्नी से तुम्हें छुड़ाना नहीं चाहता। परमात्मा से जोड़ना जरूर चाहता हूं, पत्नी से नहीं छुड़ाना चाहता। और परमात्मा क्या इतना कमजोर है कि पत्नी बीच में आ जाए तो परमात्मा से संबंध टूट जाए? तो जिन्होंने यह परमात्मा गढ़ा है वे कमजोर रहे होंगे, उनका परमात्मा भी कमजोर है। मैं तुम्हारे बच्चों से भी तुम्हें तोड़ना नहीं चाहता; सिर्फ याद दिलाना चाहता हूं कि ये बच्चे तुम्हारे नहीं हैं, परमात्मा के हैं। सिर्फ इतनी याद दिलाना चाहता हूं कि यह पत्नी तुम्हारी सम्पदा नहीं है, इसमें परमात्मा विराजमान है, इसका सम्मान करो। इसको मेरा-तेरा मानकर मत चलो। सब उसका है।

तेरौ तेरे पास है, अपने मांहि टटोल।
को तेरौ तू कौन को, हरि बोलौ हरि बोल॥
राई घटै न तिल बढ़ै, कहत बजाएं ढोल।
चेति सकै तौ चेति ले, हरि बोलौ हरि बोल॥

न तो पत्नी को छोड़ना है, न बच्चों को छोड़ना है, छोड़ने का सवाल ही कहां है? छोड़ना तो तब हो सकता था जब अपना कुछ होता। अपना कुछ है ही नहीं तो छोड़ोगे कैसे?

इसलिए मैं तुमसे कहता हूं : जो सोचते हैं कि हमने त्याग किया, उन्होंने त्याग नहीं किया। वे कुछ समझे ही नहीं। उन्होंने तो त्याग में भी वही पुरानी धारणा कायम रखी कि अपना था।

एक मेरे परिचित हैं। जब भी मिलते थे, तब वे यही बात करते कि मैंने लाखों पर लात मार दी। मैंने उनसे पूछा कि भाई मेरे, लात मारी कब? उन्होंने कहा कि कोई तीस साल हो गए। तो मैंने कहा, लात लगी नहीं। तीस साल हो गए, अब लाखों की याद क्या कर रहे हो? अगर लात लग ही गई, तो अब याद क्या करते हो?

पहले सोचते थे मेरे पास लाखों हैं, अब सोचते हैं कि मैंने लाखों त्याग दिए! न तो तुम्हारे थे, तो त्यागोगे कैसे? यह तो बड़ा पागलपन हुआ।

यह तो ऐसा ही पागलपन हुआ कि मैंने उनसे कहा कि दो आदमी, दो अफीमची पिनक में आ गए थे, एक झाड़ के नीचे पड़े थे। एक ने आंख खोली और उसने कहा : मेरा दिल होता है कि सारी दुनिया खरीद लूं। दूसरे ने कहा : तेरा दिल होता रहे, मगर मैं बेचना ही नहीं चाहता।

दुनिया किसी की नहीं है। '...लाख तेरा दिल होता रहे, मगर हम बेचें तब न! हमारा बेचने का दिल ही नहीं है।'

कुछ हैं, जो कहते हैं हमारा; और कुछ कहते हैं, हमने त्यागा। भोगी तो भ्रान्ति में है ही, तुम्हारा त्यागी महाभ्रान्ति में है।

नहीं कुछ छोड़ना है। सिर्फ इतना ही जानना है कि हमारी पकड़ में ही कुछ नहीं है। छोड़ोगे कैसे? छोड़ने के पहले पकड़ में था, यह तो मान ही लेना होगा। यह तो अनिवार्य है कि मेरा था, तो छोड़ना हो सकता है। यहां कुछ मेरा नहीं है।

को तेरौ तू कौन को...! इसलिए मैं अपने संन्यासी को नहीं कहता कि पत्नी को छोड़कर भाग जाओ। तेरी है ही नहीं, भागोगे कहां? अगर भागे तो इसी भ्रांति में रहोगे कि मेरी थी। भागना कहां है? जागना है। चेति सके तो चेति ले! इतना देखना-भर है कि यहां कोई अपना नहीं है, कोई पराया नहीं। बस यह दृष्टि आ जाए तो तुम जहां हो वहीं सब घटित हो जाता है। और तुम जैसे हो वैसे ही सब मिल जाता है। राई घटै न तिल बढ़ै!

पिय के विरह वियोग भई हूं बावरी।

चेतना जगे तो विरह जगेगा, तो वियोग जगेगा। चेतना जगे तो यह याद आएगी कि जो अपना है उसे छोड़ बैठे हैं और जो अपना नहीं है, उसे अपना मान बैठे हैं। चेतना जगे तो इस बात की याद आएगी कि मेरा स्वरूप क्या, मेरा स्रोत क्या? मेरा मूल उद्गम क्या? क्योंकि जो मूल उद्गम है, वही अन्तिम लक्ष्य है। गंगा सागर में ही पैदा होती है और सागर में ही गिरती है। जो मूलस्रोत है, वही अन्तिम गन्तव्य भी है।

चेतोगे तो स्मरण आना शुरू होगा कि कैसे मेरा वियोग हो गया? मैं परमात्मा से कैसे दूर हट गया हूं? मैंने परमात्मा की तरफ पीठ कैसे कर ली? मैं विमुख कैसे हो गया हूं?

पिय के विरह वियोग भई हूं बावरी।

इस विरह का रंग ही संन्यास का रंग है। इस वियोग से जो भरा वही योग का अनुभव कर पाएगा। वियोग यानी कैसे टूट गए परमात्मा से। जिसने ठीक से

देख लिया कैसे टूट गए, वह जुड़ जाता है--देखने में ही जुड़ जाता है। कुछ करना नहीं पड़ता। जिस दिन तुम्हें समझ में आ गया कि मुझे सूरज क्यों दिखाई नहीं पड़ रहा है, क्योंकि मैं पीठ किए हूं, उसी क्षण तुम मुड़ गए। इतनी ही बात है। इतनी-सी बात है। और सूरज सदा तुम्हारी आंख के सामने है। तुम पीठ करो तो दिखाई नहीं पड़ता। या यह भी हो सकता है, कि तुम मुंह भी सूरज की तरफ करो और आंख बन्द रखो, तो भी दिखाई नहीं पड़ता। इतनी बात समझ में आ गई कि आंख खोल लूं तो सूरज सामने है।

परमात्मा सदा सामने है। बस तुम्हारी आंख बन्द है। विरह में रो-रो कर आंख खुल जाती है।

पिय के विरह वियोग भई हूं बावरी।

पागल हो गई हूं।

और तुमने देखा, जब भी संत उसके वियोग की बात करते हैं, तब तत्क्षण वे अपने को स्त्रैण रूप में अनुभव करने लगते हैं। क्योंकि विरह की गहराई स्त्री का मन ही जान सकता है। जब विरह की गहराई कोई जानता है तब तत्क्षण उसके भीतर पुरुष विलीन हो जाता है। उसके भीतर स्त्री ही आ जाती है। फिर एक ही पुरुष रह जाता है--वही परमात्मा!

पिय के विरह वियोग भई हूं बावरी।
मैं पागल हो गई!

कल तुमने पूछा था--किसी ने--कि क्या आप मुझे पागल ही करके छोड़ेंगे? उसका ही आयोजन चल रहा है। यहां जो भले-चंगे आते हैं, उन्हें पागल बनाया जाता है। वे पागल हो जाएं तो काम हो गया। उनमें विरह का पागलपन जग जाए। और पागलपन ही है। क्यों पागलपन है? क्योंकि धन खोजो, धन सबको दिखाई पड़ता है, इसलिए पागलपन नहीं है। और सब जानते हैं धन का मूल्य, इसलिए पागलपन नहीं है। सबकी भाषा में है, सबके अनुभव में है। इसलिए पागलपन नहीं है। परमात्मा को खोजो, लोग पूछते हैं: 'कैसे पागल हो गए? कहां है परमात्मा?' तुम दिखा भी न पाओगे। तुम किसी को समझा भी न पाओगे। लोग कहेंगे, किस भ्रान्ति में पड़ रहे हो? किस भ्रम में उलझ रहे हो? कहां है परमात्मा? दिखा तो दो पहले, फिर खोजना, फिर अपने जीवन को उस पर बलिदान करना। हो भी तो! हो तो हम भी कर दें बलिदान! लेकिन दिखाओ, दिखलाओ! ...पागल ही लगोगे।

और जहां सारे लोग धन खोज रहे हैं वहां तुम ध्यान खोजोगे, पागल ही लगोगे। जहां सारे लोग एक तरफ जा रहे हैं, वहां तुम दूसरी तरफ चलने लगे....

स्वभावतः भीड़ कहेगी: क्या हो गया है तुम्हें? तुम्हें बोध नहीं है? सारी दुनिया कहां जा रही है, तुम कहां जा रहे हो? तुम उलटे जा रहे हो।

मजा यह है कि यहां जो सीधा जाता है वह उलटा मालूम पड़ेगा, क्योंकि भीड़ उलटी जा रही है। यहां जो वस्तुतः स्वस्थ है वह पागल मालूम पड़ेगा क्योंकि यहां पागल स्वस्थ समझे जा रहे हैं। धन को इकट्ठा करनेवाला ठीक समझा जाता है। पद की यात्रा पर चलने वाला ठीक समझा जाता है। क्योंकि मां-बाप यही सिखाते, स्कूल यही सिखाते, कॉलेज, विश्व-विद्यालय यही सिखाते--महत्त्वाकांक्षा! सबसे प्रथम हो जाना है।

जीसस ने कहा है: ध्यान रखना जो प्रथम हैं, वे अन्तिम पड़ जाएंगे। और मैं तुमसे कहता हूं कि जो यहां अन्तिम होने की सामर्थ्य रखेंगे, वे मेरे प्रभु के राज्य में प्रथम होंगे। अब अन्तिम होने की सामर्थ्य तो पागलपन है।

लाओत्सु ने कहा है कि मैं जब किसी सभा में जाता हूं तो सबसे अन्त में बैठ जाता हूं, जहां से मुझे कोई उठा न सके। जो आगे बैठते हैं, उठाये जा सकते हैं। क्योंकि आगे बैठने के लिए प्रतिस्पर्धा होती है, संघर्ष होता है।

लाओत्सु कहता है: मैं वहां बैठता हूं जहां लोग जूते उतार देते हैं। वहां से मुझे कभी कोई नहीं हटाता, वहां मैं निश्चिन्त भाव से बैठता हूं। वहां कोई भय नहीं होता।

अन्तिम आदमी को क्या भय! अब अन्तिम से और क्या अन्तिम होगा? लेकिन जो अन्तिम होने चला है, वह पागल तो लगेगा। जहां सब प्रथम होने की दौड़ में हैं, जहां एक ही जहर ने सबको पकड़ा है कि कैसे प्रथम हो जाएं...?

मेक्सिको एक छोटा-सा गांव है--दूर पहाड़ों में बसा हुआ। छोटी आबादी है, सात सौ आदमी हैं। सब अंधे हैं। बड़ा विशिष्ट गांव है। सब बच्चे आंख वाले पैदा होते हैं, लेकिन तीन-चार महीने के भीतर अंधे हो जाते हैं। एक खास तरह की मधुमक्खी वहां पायी जाती है, जिसके काट लेने से आदमी अंधा हो जाता है। और मधुमक्खी बड़ी मात्रा में पायी जाती है। उससे बचने का भी कोई उपाय नहीं, क्योंकि बाकी भी सब अंधे हैं। आज से सौ साल पहले पहला आदमी आंखोंवाला उस कबीले में प्रवेश किया। एक वैज्ञानिक अध्ययन करने पहुंच गया। वह बड़ा हैरान हुआ। सात सौ लोगों की बस्ती, सब अंधे! वहां कभी आंख वाला सदियों से हुआ ही नहीं है। काम चलता है, घसिटता हुआ किसी तरह। थोड़ी-बहुत सब्जी भी उगा लेते हैं, थोड़ी-बहुत खेती भी कर लेते हैं। बड़ा मुश्किल मामला है। किसी तरह जुटा लेते हैं, एक जून पेट भर लेते हैं। वह आदमी, वह वैज्ञानिक उस कबीले की एक लड़की के प्रेम में पड़ गया। वह अध्ययन करने गया था। अध्ययन कर रहा था। वह उसके

प्रेम में पड़ गया। लेकिन गांव वालों ने कहा : एक शर्त है, विवाह हम करवा देंगे, लेकिन आंखें फोड़नी होंगी। क्योंकि यह हम मान ही नहीं सकते कि आंख वाला आदमी स्वस्थ है। सात सौ जहां अंधे हों और सदा से जहां अंधे ही आदमी रहे हों, वहां आंख वाले को अस्वस्थ तो मानेंगे ही! कुछ गड़बड़ है।

तुम्हीं सोचो, अगर अचानक एक आदमी पैदा हो जाए जिसकी तीन आंखें हों तो बस तुम ले जाओगे अस्पताल, डॉक्टर से कहोगे कि इसका आपरेशन करो। अगर बुद्धिमान हुए तो आपरेशन करवाने में लगोगे। अगर बुद्धू हुए तो पूजा करने लगोगे कि शायद शंकर जी का अवतार हुआ है या क्या मामला है! मगर स्वीकार कोई भी नहीं करेगा कि यह सामान्य है। कुछ विकृति है। कुछ गड़बड़ है।

उस कबीले के लोगों ने कहा कि हम राजी हैं, विवाह तुम्हारा कर देंगे, मगर आंखें गंवानी पड़ेंगी। वह वैज्ञानिक वहां से भाग खड़ा हुआ। भागना ही पड़ा। उसने कहा : यह तो खतरनाक मामला है। आंखें अपनी गंवाना पड़े और इन पागलों को कौन समझाये कि अंधा होना कोई स्वास्थ्य की बात नहीं है। मगर जहां भीड़ अंधों की हो, वहां कठिनाई हो जाती है।

जिब्रान की बड़ी प्रसिद्ध कहानी है। एक गांव में एक चुड़ैल आई और उसने एक मंत्र फूंका और एक कुएं में कुछ चीज फेंक दी और कहा कि जो भी इसका पानी पियेगा पागल हो जाएगा। उस गांव में दो ही कुएं थे—एक गांव का कुआं, एक राजा का कुआं। गांव के कुएं का सबको पानी पीना ही पड़ा, और कुआं ही न था। वे सब सांझ होते-होते पागल हो गए। सिर्फ राजा, उसका वजीर, उसकी रानी, ये तीन बच गए। वे बड़े प्रसन्न थे, भगवान को धन्यवाद दे रहे थे कि हम सौभाग्यशाली हैं कि हमारे कुएं में कुछ खतरा नहीं हुआ, लेकिन शाम को उन्हें पता चला कि गलती में हैं वे। जब सारा गांव पागल हो गया तो गांव में एक अफवाह जोर से उड़ी कि राजा का दिमाग खराब हो गया। स्वाभाविक। गांव-भर के लोग इकट्ठे होने लगे महल के पास, कि राजा का दिमाग खराब हो गया। और उसमें कुछ राजनेता भी होंगे, वे चिल्लाने लगे कि राजा को बदलेंगे, क्योंकि पागल राजा हम बरदाश्त नहीं कर सकते। राजा के सिपाही भी पागल हो गए थे। राजा के पहरेदार भी पागल हो गए थे। वे भी भीड़ में सम्मिलित थे। अब बड़ी मुश्किल थी। राजा उन्हीं के बल पर तो राजा था। जब पागलों की भीड़ सब तरफ इकट्ठी हो गई—और राजा जानता है कि ये पागल हैं, मगर अब क्या उपाय है? —उसने अपने बूढ़े वजीर से कहा कंपते हुए कि अब मैं क्या करूं? हमें पक्का पता है कि हम ठीक हैं, ये गलत हैं; मगर यह भीड़ है। सारा गांव पागल हो गया है। मेरे लिए कोई उपाय है?

वजीर ने कहा : आप एक काम करो, मैं इनको उलझा कर रखता हूं थोड़ी देर, आप भागो, उस कुएं का पानी पीकर आ जाओ। अब और कोई उपाय नहीं।

राजा भागा, उस कुएं का पानी पीकर जब आया तो नग-धड़ंग नाचता हुआ चला आ रहा था। उस गांव में बहुत जलसा मनाया गया उस रात, कि अपने राजा का दिमाग ठीक हो गया है। अपना प्यारा राजा! इसका दिमाग बिल्कुल ठीक हो गया! नंगे राजा को लेकर वे खूब उछले-कूदे, खूब जिन्दाबाद किया।

भीड़ जो करती है वह ठीक मालूम होता है। भीड़ से जो अन्यथा करोगे, भीड़ पागल समझेगी। इसलिए जिसको धर्म के रास्ते पर जाना हो वह इतनी तैयारी रखे कि लोग पागल कहें तो चुपचाप सुन लेना, समझ लेना। इसमें झगड़े की बात भी नहीं है। ठीक ही कहते हैं लोग। उनकी तरफ से ठीक ही कहते हैं।

पिय के विरह वियोग भई हूं बावरी।

और जैसे-जैसे विरह बढ़ता है, वैसे-वैसे बेचैनी बढ़ती है, आंसू बढ़ते हैं, दुख और पीड़ा बढ़ती है, लपटें बढ़ती हैं।

बारहा देखी हैं उनकी रंजिशें
पर कुछ अब के सरगरानी और है

कठिनाइयां बढ़ती हुई मालूम पड़ती हैं। एकदम से हल नहीं हो जाता। पुराने समाधान खो जाते हैं। नई समस्याएं खड़ी हो जाती हैं। समाधि सस्ती थोड़े ही मिलती हैं। पहले पुराने सब समाधान खो जाते हैं और सब समस्याएं ही समस्याए हो जाती हैं। व्यक्ति एकदम अंधकार में घिर जाता है, तब रोशनी मिलती है।

बारहा देखी हैं उनकी रंजिशें
पर कुछ अब के सरगरानी और है

जब प्रभु की याद आनी शुरू होती है तो हृदय में एकदम घाव लगते हैं, कटार चुभ जाती है।

मैं तुझको भूल चुका लेकिन इक उम्र के बाद
तेरा ख्याल किया था चोट उभर आई ॥

जन्मों-जन्मों के बाद भी चोट उभर आती है। हृदय दुखने लगता है। हृदय एक घाव हो जाता है। रिसने लगता है दर्द! अब बिना मिले एक क्षण काटना मुश्किल हो जाता है। इसलिए भक्त पागल मालूम होता है, रोता है, गिरता है। पड़ता है। उसकी आंख के आंसू, उसकी आहें, किसी की समझ में नहीं आतीं। लेकिन जब पहुंच जाता है भक्त तब वह जानता है कि वे दिन भी अनिवार्य थे। वह धन्यवाद करता है। क्योंकि वे दिन न आते, वे दुख के दिन न आते, तो ये सुख के दिन भी न आते।

हर हकीकत मजाज़ हो जाए
काफिरों की नमाज़ हो जाए
मिन्नते चारासाज कौन करे
दर्द जब जां-नवाज हो जाए
इश्क दिल में रहे तो रुसवा हो
लब पे आए तो राज़ हो जाए
लुत्फ का इन्तजार करता हूं
जोर ता-हद्दे-नाज़ हो जाए

जब भक्त पहुंच जाता है तब उसे अनुभव होना शुरू होता है कि अरे! वह विरह की रात्रि न होती तो यह मिलन का सूर्योदय भी नहीं हो सकता था...। तो सद्गुरु अपने शिष्यों को समझाते हैं कि जब दर्द उठे तो उसका इलाज मत कर लेना। जब दर्द उठे तो प्रार्थना करना कि बेहद हो जाए, दर्द बढ़ता चला जाए।

हर हकीकत मजाज़ हो जाए
काफिरों की नमाज़ हो जाए
मिन्नते-चारासाज कौन करे--

तब जाकर वैद्यों की, चिकित्सकों की, खुशामदें मत करने लगना । नानक को ऐसा ही विरह सताया...ऐसा ही विरह! एक रात पपीहा बोले गया--पी कहां? पी कहां? और नानक भी रोए गए--पी कहां? पी कहां? उनकी मां आई।.... युवा थे अभी....। उसने कहा : अब सो भी जाओ! यह क्या लगा रखा है--पी कहां? पी कहां? नानक ने कहा : अभी पपीहा भी नहीं थका, मैं कैसे थक जाऊं? अभी पपीहा भी नहीं चुप, मैं कैसे चुप हो जाऊं? पपीहे से होड़ बंधी है । अगर पपीहा पुकारता है तो मैं भी पुकारे जाऊंगा । जब तक पपीहा नहीं रुकता मैं नहीं रुकने वाला हूं। पपीहे से थोड़े ही हार जाऊंगा? मैं भी अपने पी को पुकार रहा हूं।

रात-भर पुकारते रहे। पपीहा भी पागल रहा होगा! आजकल ऐसे पपीहे भी नहीं मिलते। एकाध दो दफे पुकारा, चुप हो जाते हैं। कलियुगी पपीहे! पपीहा भी पुकारता रहा। शायद जिद्द बांध ली होगी नानक से भी कि तूने भी क्या समझा है? सुबह तो मुश्किल हो गई। घर के लोगों ने समझा कि पागल हो गए हैं। वैद्य को बुलाया गया। वैद्य नब्ज पकड़े हैं और नानक उसको हंसकर कहते हैं कि यह बीमारी ऐसी नहीं, जिसका तुम इलाज कर सको। यह तुम्हारी चिकित्सा-शास्त्र के बाहर की बीमारी है।

मिन्नते-चारासाज कौन करे
दर्द जब जां-नवाज हो जाए

दर्द ही तो जीवनदायी है। प्रभु के रास्ते पर पाया गया दर्द नहीं है, सुख की सघनता है। सुख इतना घना है, इसलिए पीड़ा मालूम होती है।

शीतल मंद सुगंध सुहात न बावरी।

अब कुछ सुहाता नहीं। ठंडी हवा, मलयानिल से आती हवा...शीतल मंद सुगंध सुहात न बावरी. . .जिसे परमात्मा की याद आने लगी, फिर कुछ नहीं सुहाता। अब तो वही सुहाता है, उसी की याद सुहाती है--हरि बोलौ हरि बोल!

मुद्दत हुई है जख्म दिल पे खाते खाते
ऐ काश! वो पूछ लेते आते जाते
जब गम का पहाड़ टूट पड़ता है 'असर'
आता है करार दिल को आते-आते

समय लगता। रोना चलता। अनुभव होते-होते आता है।:

शीतल मंद सुगंध सुहात न नावरी।

न पूछ जब से तेरा इन्तिजार कितना है
कि जिन दिनों से मुझे तेरा इंतिजार नहीं
तेरा ही अक्स है उन अजनबी बहारों में
जो तेरे लब तेरे गेसू तेरा किनार नहीं।

कई दफे भक्त तय कर लेता है कि छोड़ो, कहां की झंझट में पड़ गया! किस उपद्रव को मोल ले लिया! इस पीड़ा का कोई अन्त नहीं है। रोता है और रात का अंधेरा बढ़ता है। सुबह की कोई किरण दिखाई नहीं पड़ती। कई बार सोच लेता है: हरि भूलो! छोड़ो! मगर अब भूलना संभव नहीं। भुलाओ तो और याद आता है। हरि बोलौ हरि बोल। विस्मरण करो तो और स्मरण सघन होता है। बचना चाहो तो और सब तरफ से घेरता है।

अब मुहि दोष न कोइ परौंगी बावरी।

सुन्दरदास कहते हैं कि हालत मेरी ऐसी है कि अगर मैं जाकर बावड़ी में गिर पड़ूं तो मुझे दोष मत देना, उसी को दोष देना!

इन वचनों में उन्होंने यमक अलंकार का प्रयोग किया है--एक ही शब्द के बहुत अर्थ।

पी के विरह वियोग भई हूं बावरी।
बावरी का वहां अर्थ है : पागल!
शीतल मंद सुगंध सुहात ना बावरी।
वहां 'बावरी' का अर्थ होता है: वायु!
अब मुहि दोष न कोई परौंगी बावरी।

मुझे दोष मत देना. . .यहां 'बावरी' का अर्थ होता है : बावड़ी! कुआं!

परिहां सुन्दर चहुं दिश विरह सु घेरि बावरी!

यहां बावरी का अर्थ होता है : भौंरी। भंवरा।

कहते हैं जाकर गिर पड़ूं कुएं में, ऐसी हालत है। मगर मुझे पता है कि वह मुझे कुएं में भी छोड़ेगा नहीं। वह मुझे घेरे ही रहेगा। मैं उससे इस तरह घिर गई हूं, जैसे कि कोई भंवरा कमल से घिर जाता है। बैठ जाता है कमल में और चारों तरफ से कमल की पंखुड़ियां बंद हो जाती हैं।

परिहां सुन्दर चहुं दिस विरह सु घेरि बावरी।

उसने मुझे इस तरह घेरा है, इतनी सुघड़ता से घेरा है, इतनी कुशलता से घेरा है, कि अब जाने का कहीं कोई उपाय नहीं है। जहां जाऊं वही है। जिसे देखूं वही है।

ताजा है अभी याद में ऐ साकी-ए-गुलफ़ाम
वो अक्से-रुखे-यार से लहके हुए अय्याम
वो फूल-सी खिलती हुई दीदार की साअ़त
वो दिल-सा धड़कता हुआ उमीद का हंगाम
उमीद कि लो जागा ग़मे-दिल का नसीबा
लो शौक की तरसी हुई शब हो गई आखिर
लो डूब गए दर्द के बेख्वाब सितारे
अब चमकेगा बेसब्र निगाहों का मुक़द्दर
इस बाम से निकलेगा तेरा हुस्न का खुरशीद
उस कुंज से फूटेगी किरण रंगे-हिना की
इस दर से बहेगा तेरी रफ्तार का सीमाब
इस राह पर फूटेगी शफ़क़ तेरी क़बा की
फिर देखे हैं वो हिज्र के तपते हुए दिन भी
जब फिक्रे-दिलो-जां में फ़ुगां भूल गई है
हर शब वो स्याह बोझ कि दिल बैठ गया है
हर सुबह की लौ तीर-सी सीने में लगी है
तनहाई में क्या क्या न तुझे याद किया है
क्या क्या न दिले जार ने ढूंढी हैं पनाहें
आंखों लगाया है, कभी दस्ते-सबा को
जली हैं कभी गर्दने-मेहताब में बांहें।

भक्त की भाव-भंगिमाएं. . .एक क्षण लगता है कि डूब ही मरूं, जाऊं। अब जीने में कुछ सार नहीं। मिलन होगा नहीं। संसार तो गया ही गया, और परमात्मा का कुछ पता नहीं चलता है। डूब ही जाऊं, मिट ही जाऊं। अब जीना दूभर है। मगर यह भी समझ में आता है : 'परि हां सुन्दर चहुं दिश विरह सु घेरि बावरी।' लेकिन उसने भी खूब घेरा है, मर कर भी छूटने का उपाय नहीं है! वह मृत्यु में भी घेरे रहेगा।

भक्त मरेगा भी तो भगवान में मरेगा। भक्त जलेगा भी तो भगवान में जलेगा। अग्नि भी उसकी, चिता भी उसकी, सब उसका। अब भगवान से जाने का कोई उपाय नहीं है। और फिर आशा की हजार-हजार किरणें भी फूटती हैं, उम्मीदें भी बनती हैं।

उमीद कि लो जागा ग़मे-दिल का नसीबा

लगता है कि यह हुई सुबह, ये बोले पक्षी, यह किरण फूटी। उमीद कि लो जागा गमे-दिल का नसीबा। . . .कि जागे मेरे भाग्य! बस अब हो गई रात समाप्त और सुबह होने के करीब है। आ गई सुबह।

लो शौक की तरसी हुई शब हो गई आखिर
लो डूब गए दर्द के बेख्वाब सितारे
अब चमकेगा बेसब्र निगाहों का मुक़द्दर

अब मेरे भाग्य का क्षण आ रहा है, अब मेरे भाग्योदय का क्षण आ रहा है। अब सौभाग्य मुझ पर बरसेगा। बस अब हुआ, अब हुआ....।

इस बात से निकलेगा तेरा हुस्न का खुरशीद

तेरे सौन्दर्य का सूरज निकलने के ही करीब है।

उस कुंज से फूटेगी किरण रंगे-हिना की

और हिना से रंगे हुए तेरे हाथ इस कुंज से बाहर आने के ही करीब हैं. . .

इस दर से बहेगा तेरी रफ्तार का सीमाब
इस राह पर फूटेगी शफ़क़ तेरी कबा की

बस अब तू आता ही है, अब तू आता ही है।. . .

फिर देखे हैं वो हिज्र के तपते हुए दिन भी
जब फिक्रे दिलो-जां-में फुगां भूल गई है
हर शब वो सियाह बोझ कि दिल बैठ गया है
हर सुबह की लौ तीर-सी सीने में लगी है

और जब यह उम्मीद बंधती है तो सब भूल जाते हैं वे दिन, जो दुख के थे; पीड़ा के थे। पीड़ा और उम्मीद, निराशा और आशा के बीच झूले लेता है भक्त।

पिय नैननि की बोर सैन मुहि दे हरी।

क्या देखा तुमने, किस ढंग से देखा, किस अन्दाज से, किस अदा से!

पिय नैंननि की बोर सैंन मुहि दे हरी।

...कि मुझे हर लिया, कि मेरे हृदय को चुरा लिया। यह 'हरि' शब्द बड़ा प्यारा है। इसका मतलब होता है, जो चुरा ले, जो तुम्हारे दिल को चुरा ले। इस दुनिया में बहुत चुराने वाले मिलते हैं, मगर कोई चुरा नहीं पाता। लगता ही है बस! असली चोर तो तभी मिलता है जब हरि से मिलन होता है।

पिय नैंननि की ब्रोर सैंन मुहि दे हरी।

जरा-सी आंख का इशारा किया और मेरे हृदय को चुराकर ले गए।

फेरि न आए द्वार न मेरी देहरी।

और अब कितनी देर हो गई, फिर दुबारा तुम्हारे दर्शन न हुए! कभी-कभी भक्त को झलकें आती हैं। पीड़ा के बीच भी प्रसाद बरस जाता है कभी-कभी। विरह के बीच भी एक क्षण को किरण फूटती है और नाच छा जाता है, और मस्ती आ जाती है। फिर दिन बीत जाते हैं, कोई पता नहीं चलता। फिर अपने पर ही भरोसा खोने लगता है। फिर अंदेशा होने लगता है कि जो हुआ था, वह हुआ भी था? कोई सपना तो नहीं देखा था? कोई कल्पना तो नहीं कर ली थी? कोई मन का ही जाल तो नहीं था? किसी सम्मोहन में तो नहीं पड़ गया था?

पिय नैंननि की बोर सैंन मुहि दे हरी।
फेरि न आए द्वार न मेरी देहरी॥
विरह सु अन्दर पैठि जरावत देह री।
परि हां सुन्दर विरहिन दुखित सीख का देह री॥

वही यमक अलंकार का उपयोग जारी रखा है। पिय नैंननि की बोर सैंन मुहि दे हरी। दे हरी! आंखों ने हरि की इस तरह का सैंन, इस तरह का इशारा किया कि मेरे हृदय को चुरा ले गए।

फेरि न आए द्वार न मेरी देह री।

'देहरी' यानी देहली! फिर द्वार पर नहीं आए। देहरी पर नहीं आए। फिर झांका नहीं। तड़फा गये, जला गए, फिर पता नहीं है। उकसा गए आग, भड़का गए। फिर पता नहीं है।

विरह सु अन्दर पैठि जरावत देह री।

और इस तरह जला गए हैं अग्नि को कि अब सारी देह जल रही है। देह री!

परिहां सुन्दर विरहित दुखित सीख का देहरी।

और हालत ऐसी हो गई कि अब कोई कितनी ही सिखावन दे, कितनी ही सीख दे, शास्त्र समझाये, ज्ञान की बातें करे, कुछ काम नहीं पड़ता। अब कोई सीख काम नहीं पड़ेगी। अब उसकी आंख से आंख मिल गई है। अब तो वही मिले। उससे कम में कोई चीज काम नहीं पड़ सकती। उससे कम में अब हृदय भर नहीं सकता।

है लबरेज आहों से ठंडी हवायें
उदासी में डूबी हुई हैं घटायें
मोहब्बत की दुनिया पे शाम आ चुकी है
सियाह-पोश हैं जिन्दगी की फजायें
मचलती हैं सीने में लाख आरजूएं
तड़फती हैं आंखों में लाख इल्तजाएं
तगाफुल के आगोश में सो रहे हैं
तुम्हारे सितम और मेरी वफाएं
मगर फिर भी ऐ मेरे मासूम कातिल
तुम्हें प्यार करती हैं मेरी दुआएं।

फिर भक्त कहता है कि तुमने मुझे मार डाला। मगर फिर भी ऐ मेरे मासूम कातिल! तुम्हें प्यार करती हैं मेरी दुआएं। और मिला क्या है?

तगाफुल के आगोश में सो रहे हैं
तुम्हारे सितम और मेरी वफायें।

तुम सताये जाते हो और मेरी श्रद्धा! और तुम तड़फाये जाते हो।

यह परीक्षा भी है भक्त की। इस परीक्षा से जो गुजर जाता है, वही परमात्मा को पाने का हकदार भी है। मुफ्त नहीं मिलता, कीमत चुकानी पड़ती है। बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है।

अंजामे सफर देख के रो देता हूं
टूटे हुए पर देख के रो देता हूं
रोता हूं कि आहों में असर हो लेकिन
आहों का असर देख के रो देता हूं

रोता ही रहता है भक्त। रोना ही उसकी प्रार्थना बन जाता है। रोता है, पुकारता है। फिर रोने की व्यर्थता देखकर रोता है, कि कुछ भी तो न हुआ! आंसू आए और गए। और आंखों में उसकी झलक नहीं आ रही।

दूभर रैनि बिहाय अकेली सेज री।

रात बितानी कठिन हो जाती है। सेज पर जैसे अकेले...

दूभर रैनि बिहाय अकेली सेज री।
जिनके संगि न पीव बिरहिनी सेज री॥

विरह सकल वाहि विचारी से जरी।
हरि हां सुन्दर दुख अपार न पावौं सेजरी ।।

दूभर रैनि बिहाय अकेली सेज री। ... सेजरी यानी शैय्या। शैय्या पर अकेली पड़ी हूं, रात कटती नहीं।

जिनके संगि न पीव विरहिनी सेजरी।

और जिनके पिया साथ न हों, और जिन्हें पिया की याद आ गई हो, और जिन्हें पिया की झलक मिल गई हो...से जरी...वह तो जल ही रही है। चिता में जल रही है। सेज कहां है? चिता है। अग्नि की लपटें हैं।

विरह सकल वाहि विचारी से जरी।

और उसे तो जकड़ दिया तुमने विरह की सांकलों में।

हरि हां सुन्दर दुख अपार न पाऊं जरी।

मगर फिर भी भक्त कहता है: यह दुख बड़ा सुन्दर है, बड़ा प्यारा है! यह तुम्हारा दिया हुआ है, इसलिए प्यारा है। तुम दुख दो, तो भी प्यारा है। संसार सुख दे तो भी प्यारा नहीं है। संसार में सफलता मिले तो भी व्यर्थ है। और परमात्मा को पुकारने में असफलता मिले तो भी सफलता है। व्यर्थ को पाने में जीत भी हार है। सार्थक को खोजने जो चला है, वहां हर हार जीत की तरफ एक उपाय है। हर हार जीत की एक सीढ़ी है।

हरि हां सुन्दर दुख अपार न पाऊं से जरी।

जड़ी-बूटी की जरूरत भी नहीं है। दुख अपार है, लेकिन किसी चिकित्सा की मुझे आकांक्षा नहीं। तुम ही आओ। तुम ही मेरी चिकित्सा हो, तुम ही मेरी औषधि हो।

कली कली ने भी देखा न आंख भर के मुझे।
गुजर गई जरसे-गुल उदास करके मुझे ।।
मैं सो रहा था किसी याद शबिस्तां में
जगा के छोड़ गए काफ़िले सहर के मुझे
तेरे फ़िराक़ की रातें कभी न भूलेंगी
मजे मिले इन्हीं रातों में उम्र भर के मुझे
ज़रा-सी देर ठहर ऐ ग़मे-दुनिया
बुला रहा है कोई बाम से उतर के मुझे
फिर आज आई थी एक मौजे-हवाए-तरब
सुना गई है फसाने इधर-उधर के मुझे

पीड़ा चलती रहती है और लपटें उठती रहती हैं, मगर बीच-बीच में अमृत

की बूंदें भी झलकती रहती हैं। हवा के झोंके आते रहते हैं। परमात्मा जलाता है कि निखार सके। जैसे अग्नि में सोने को फेंकते हैं। मिट्टी को तो कोई अग्नि में फेंकता नहीं। धन्यभागी हैं वे, जो विरह की अग्नि में फेंके जाते हैं। वे चुने गए। वे सौभाग्यशाली हैं। और जब बाद में उपलब्धि होती है, तब तुम धन्यवाद दोगे।

तेरे फ़िराक की रातें कभी न भूलेंगी

वे तेरे विरह की रातें...

तेरे फिराक की रातें कभी न भूलेंगी
मजे मिले इन्हीं रातों में उम्र भर के मुझे

पीछे से लौट कर जब तुम देखोगे तो पाओगे इन्तजार की घड़ियां भी बड़ी प्यारी थीं। वह पीड़ा थी सौभाग्य की। वह अभिशाप नहीं था, वरदान था। क्योंकि उसी की प्रक्रिया से गुजर कर परमात्मा तक पहुंचना होता है।

मनुष्य में बहुत कूड़ा-कर्कट इकट्ठा हो गया है, उसका जलना जरूरी है। बहुत गन्दगी इकट्ठी हो गई है, उसका काटा जाना जरूरी है। और हम उसी गन्दगी को अपनी आत्मा समझे हैं। इसलिए जब काटी जाती है, तो हमें पीड़ा होती है। लगता है हमारे अंग भंग किए जा रहे हैं।

तुम जैसे हो, गलत हो। तुम्हें तो तोड़ा ही जाएगा। तुम्हें तो काटा ही जाएगा। तुम पर तो बहुत चोटें की जाएंगी। छैनी और हथौड़ा लेकर परमात्मा तुम्हारे अंग भंग करेगा। तभी तुम्हारी वास्तविक प्रतिमा प्रगट होगी। इस पीड़ा में बहुत बार भक्त सोच लेता है—लौट चलो। पुराने दिन ही अच्छे थे। सब ठीक-ठाक था। किस झंझट में पड़ा! किस पागलपन में पड़ा! मगर लौटने का कोई उपाय नहीं है। परमात्मा की तरफ जो चला है, उसे लौटने का कोई उपाय नहीं है।

होती है तेरे नाम से वहशत कभी-कभी।
बरहम हुई है यूं भी तबियत कभी-कभी ।।
ऐ दिल किसे नसीब ए तौफीके-इज्तिराब।
मिलती है जिन्दगी में यह राहत कभी-कभी ।।
जोशे-जुनूं में दर्द की तुग्यानियों के साथ।
अश्कों में ढल गई तेरी सूरत कभी-कभी ।।
तेरे करीब रह के भी दिल मुतमइन न था।
गुजरी है मुझ पे यह कयामत कभी-कभी ।।
कुछ अपना होश था न तुम्हारा ख्याल था।
यूं भी गुजर गई शबे-फुर्कत कभी-कभी ।।

ऐ दोस्त हमने तर्के-मोहब्बत के बावजूद।
महसूस की है तेरी जरूरत कभी-कभी ।।

कभी कभी कसम खा लेता है भक्त कि बस, हो गया बहुत। चला वापिस। अब दुबारा नही पुकारूंगा। अब दुबारा नाम नहीं लाऊंगा।

ऐ दोस्त हमने तर्के-मोहब्बत के बावजूद

कभी-कभी त्याग ही कर देता है प्रेम का और प्रार्थना का।

तर्के-मोहब्बत...
ऐ दोस्त हमने तर्के-मोहब्बत के बावजूद।
महसूस की है तेरी जरूरत कभी-कभी ।।

लेकिन फिर...फिर याद आ जाती है, फिर सघन होकर आ जाती है। फिर चल पड़ता है।

बहुत पड़ाव आते हैं, जहां से लौट जाने का मन होगा। सावधान रहना। पीड़ा जितनी बढ़े, स्मरण रखना प्रभात उतना ही करीब है। रात जितनी अंधेरी हो, समझना कि सुबह उतनी ही करीब है। और जो पहुंच गए हैं सुबह पर, वे कहते हैं कि सौभाग्यशालियों को ही ऐसी पीड़ा मिलती है। धन्यभागियों को ही!

सुन्दरदास के ये सूत्र तुम्हारे हृदय में थोड़ी सी भी चिन्गारी पैदा कर दें, जरा-सी आग झलक उठे, तो ही तुम इनका अर्थ समझ पाओगे। मेरे समझाने से नहीं होगा। इनका अर्थ तुम्हारे अनुभव से प्रगट होगा। ये सैद्धान्तिक शब्द नहीं हैं, अनुभव-सिक्त हैं। अनुभव से ही समझे-बूझे जा सकते हैं।

बांकि बुराई छांड़ि सब, गांठि हृदै की खोल।
बेगि विलम्ब क्यों बनत है, हरि बोलौ हरि बोल ।।
हिरदै भीतर पैठि अन्तःकरण विरोल।
को तेरौ तू कौन को, हरि बोलौ हरि बोल ।।
तेरौ तेरे पास है अपनै मांहि टटोल।
राई घटै न तिल बढ़ै, हरि बोलौ हरि बोल ।।
सुन्दरदास पुकारि के कहत बजायें ढोल।
चेति सकै तौ चेति ले हरि बोलौ हरि बोल ।।

आज इतना ही।

पुकारो--और द्वार खुल जाएंगे

आठवां प्रवचन: दिनांक ८ जून, १९७८; श्री रजनीश आश्रम, पूना.

भगवान ! गत एक महीने से कुछ विचित्र घट रहा है, ध्यान-मन्दिर में आपके चित्र के नीचे आपको नमन व स्मरण करके ध्यान प्रारंभ करता हूं तो कुछ क्षणों में ही त्वचा शून्य हो जाती है, रक्त-संचालन बन्द हो जाता है, श्वास रुक-सी जाती है, घन्टे-डेढ़-घन्टे पश्चात पूर्व-स्थिति आने में आधा घन्टा लग जाता है। परन्तु पूरे समय अद्वितीय आनन्द और स्फूर्ति अनुभव होती है। कृपा करके मार्गदर्शन करें।

मेरे ख्वाबों के झरोखों को फूलों से सजानेवाले
तेरे ख्वाबों मेरा कहीं गुजारा है कि नहीं
पूछकर अपनी निगाहों से तू बता दे मुझको
मेरी रातों के मुकद्दर में कहीं सुबह है कि नहीं ?

कब तक प्रतीक्षा ? प्रभु ! कब तक प्रतीक्षा ?

मैं अंध-श्रद्धालु नहीं हूं। पिछले पांच वर्षों से प्रवचन एवं साहित्य के माध्यम से आपके सान्निध्य में हूं, परन्तु अभी कुछ घटित नहीं हुआ है। संन्यास लेने की इच्छा से यहां आया हूं। क्या ऐसी दशा में संन्यास लेना आत्मवंचना नहीं होगी ? कृपया योग्य मार्गदर्शन करें।

आंखिन में तिमिर अमावस की रैन जिमि।
जम्बुनद-बूंद जमुना जल तरंग में ।।
यों ही मेरो मन मेरो काम को न रह्यो माई।
रजनीश रंग है करि समानो रजनीश रंग में ।।
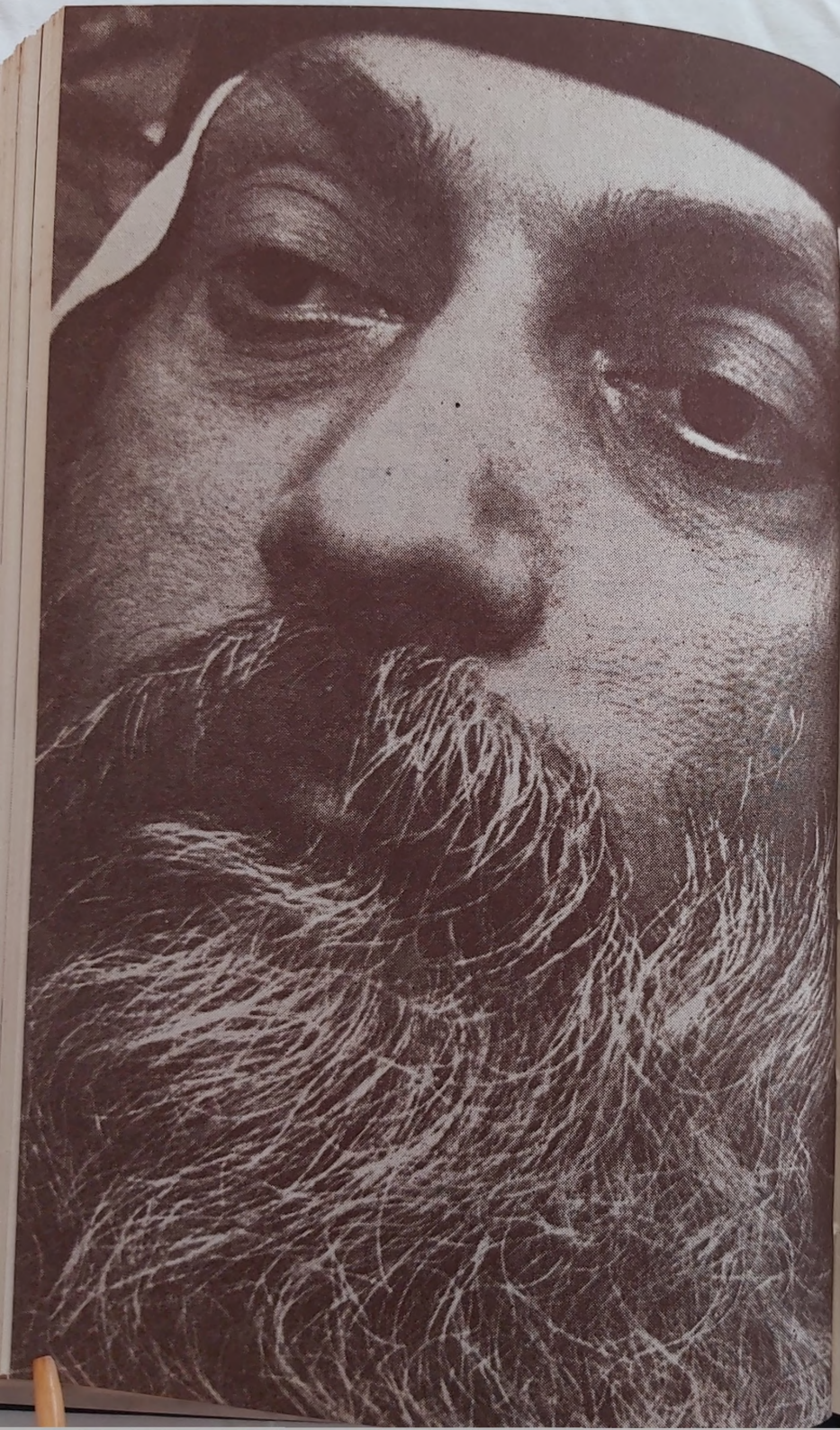
पहला प्रश्न——

भगवान ! गत एक महीने से कुछ विचित्र घट रहा है, ध्यान मन्दिर में आपके चित्र के नीचे आपको नमन व स्मरण कर के ध्यान प्रारम्भ करता हूं तो कुछ क्षणों में ही त्वचा शून्य हो जाती है, रक्त-संचालन बन्द हो जाता है, श्वास रुक-सी जाती है, घन्टे-डेढ़-घन्टे पश्चात पूर्व-स्थिति आने में आधा घन्टा लग जाता है। परन्तु पूरे समय में अद्वितीय आनन्द और स्फूर्ति अनुभव होती है। कृपा करके मार्गदर्शन करें।

⁂ आनन्द गौतम ! सौभाग्य की घड़ी करीब है। सुबह कभी भी हो सकती है। वसन्त के पहले लक्षण हैं। पहले फूल आने शुरू हो गये हैं। आनंदित होओ, अनुगृहीत होओ। समाधि के पहले कदम। भय भी लगेगा, क्योंकि त्वचा शून्य हो जाये, श्वास अवरुद्ध होने लगे, शरीर जड़वत मालूम पड़े, रक्त का प्रवाह रुकने लगे—भय लगेगा। क्योंकि यही तो मौत के भी लक्षण हैं।

मृत्यु और समाधि बड़ी समान हैं; भिन्न भी बहुत। ऊपर-ऊपर से बिलकुल समान हैं। जैसे आदमी मरता है, वैसी ही घटना ऊपर से देखने में समाधि में भी घटती है। क्योंकि भीतर चेतना सरकती जाती, सरकती जाती; शरीर से सम्बन्ध शिथिल हो जाते हैं। सेतु टूट जाता है। ये हमारे शरीर से सम्बन्ध हैं। खून की गति, श्वास का चलना, रक्त का प्रवाह है——ये हमारे शरीर से सम्बन्ध हैं। अब चेतना केन्द्र की तरफ प्रवाहित होती है तो शरीर की तरफ प्रवाहित होना बन्द हो जाता है। शरीर से सम्बन्ध छूटने लगते हैं। बस, नाममात्र के संबंध रह जाते हैं; उतने ही जितने जीवन के लिए जरूरी हैं——न्यूनतम। बस तुम शरीर से अटके रह जाते हो, जुड़े नहीं।

तो भय लग सकता है। लगेगा, यह क्या हो रहा है ? मैं मर तो नहीं रहा हूं ?

घबड़ाना मत ! दूसरी बात पर ध्यान दो——वह जो अद्वितीय आनन्द घट रहा है, वह मृत्यु में नहीं घटता। और अद्वितीय आनन्द सिर्फ रक्त के प्रवाह रुकने से नहीं

घटता, न श्वास के अवरुद्ध होने से घटता है। अद्वितीय आनंद आत्मा का स्वयं से जोड़ होता है, तब घटता है। व्यक्ति जब घर लौटता है, तब घटता है। जब परमात्मा की पहली किरण फूटने लगती है तब घटता है।

तो दो बातें हैं--शरीर से सम्बन्ध टूट रहा है, आत्मा से सम्बन्ध जुड़ रहा है। इसलिए ये दोनों लक्षण एक साथ हो रहे हैं। मृत्यु में केवल शरीर से सम्बंध छूटता है, आत्मा से सम्बंध नहीं जुड़ता। समाधि में शरीर से संबंध टूटता है, मृत्यु जैसा ही; पर एक नयी और घटना घटती है, आत्मा से सम्बंध जुड़ता है। मृत्यु केवल नकारात्मक है। समाधि नकारात्मक भी और विधायक भी। नकारात्मक--शरीर की दृष्टि से; विधायक--आत्मा की दृष्टि से।

शुभ घड़ी आई! तुम्हारी चेतना का आकाश सुबह की लालिमा से भरने लगा। नाचो! प्रफुल्लित होओ! क्योंकि जितने स्वागत से तुम स्वीकार करोगे इसका, उतनी ही तीव्रता से गति होगी। सुबह उतनी ही जल्दी आ जायेगी। सूरज उतने जल्दी ही निकल आयेगा। अभी पहली-पहली कलियां चटकी हैं। अगर तुम भयभीत हो गये, तो ये कलियां भी तिरोहित हो जायेंगी। आता-आता वसन्त रुक जायेगा। सब तुम पर निर्भर है। अगर तुम अह्लादित हुए, बाहें फैलाकर आलिंगन के लिए स्वागत की तैयारी की, तो वसंत टूट पड़ेगा। हजारों कमल के फूल खिल जायेंगे।

और भय मत लेना, जरा भी भय मत लेना। भय का कोई कारण नहीं, क्योंकि जो मरता है वह तुम नहीं हो। तुम अमृत हो। उसी अमृत की पहचान होती है, तब आनंद का जन्म होता है। मर्त्य से जुड़े-जुड़े तो दुख के अतिरिक्त तो कुछ मिलता नहीं। शरीर से जुड़े-जुड़े दुख के अतिरिक्त और क्या पाया है? आश्वासन मिले होंगे सुख के, सुख मिला कब? आत्मा से जुड़ कर ही सुख की पहली भनक पड़ती है। मगर कठनाइयों से गुजरना पड़ता है। परीक्षाओं से गुजरना पड़ता है।

दाम हर मौज में है हल्का-ए-सदकामे-नहंग
देखें क्या गुजरे है कतरे पे गुहर होने तक?

हर लहर एक जाल है, और जाल के फंदे बहुत से मगरों की तरह मुंह बाये खड़े हैं, देखें मोती बनने तक बूंद पर क्या-क्या विपत्तियां टूटती हैं! देखें क्या गुजरे है कतरे पे गुहर होने तक।

बूंद मोती बने, इसके पहले बहुत-सी परीक्षाओं से गुजरना जरूरी है। और यह कठिन परीक्षा है जिससे तुम गुजरोगे। चिकित्सकों से पूछने मत जाना, अन्यथा वे समझेंगे, शरीर रुग्ण है। औषधि की तुम्हें जरूरत नहीं है। औषधि तो तुम्हारे आनंद से ही पैदा हो जायेगी। औषधि का निर्माण तुम्हारे भीतर होगा। उस अमृत

की छाया में ही औषधि निर्मित हो जाती है।

तुम संजीवनी के स्रोत के करीब आ रहे हो। औरों से मत पूछना। जिनको समाधि का कोई अनुभव है, उनसे पूछ लेना। लेकिन जिन्हें समाधि का कोई अनुभव नहीं, उनसे मत पूछना। और यहां गैर-अनुभवियों को भी सलाह देने में बड़ा रस होता है। जिन्होंने समाधि जैसी कोई चीज न जानी, न सुनी, वे भी तुम्हें सलाह देने लगेंगे, कि यह तो पागलपन है, यह तो विक्षिप्तता है, यह तो मूर्च्छा है, यह तो कोमा है। यह तुम क्या कर रहे हो? बन्द करो यह ध्यान! यह तुम खतरे में उतर रहे हो! कहीं अपने को गंवा मत बैठना!

इन तथाकथित बुद्धिमानों से सावधान रहना। और ऐसा नहीं कि तुम उन्हें खोजने जाओ तब वे तुम्हें मिलेंगे--वे ही तुम्हें खोजते आने लगेंगे। सलाह देने का मजा ऐसा है। यहां बुद्धिमान आदमी सलाह तब देता है जब तुम मांगो। यहां बुद्धू बिना मांगे सलाह देते हैं। जरा उनकी आंखों में देख लेना। उनसे पूछ लेना कि समाधि का कोई अनुभव है? परमात्मा की कोई झलक मिली है? जीवन के स्रोत से एकाध घूंट पिया है अमृत का? जरा गौर से उनको देख लेना, अन्यथा ये सलाहकार न मालूम कितने लोगों की समाधियों को पैदा होने से अवरुद्ध कर देते हैं।

कठिनाइयां तो हैं रास्ते पर। और यह बड़ी से बड़ी कठिनाई है: जब शरीर से सम्बन्ध छूटता है और आत्मा से सम्बंध जुड़ता है। एक रूपान्तरण होता है। एक यात्रा का मोड़ आ जाता है। कल तक बाहर भागे जाते थे, तो शरीर से सम्बंध जुड़ा था, ऊर्जा बाहर भाग रही थी, शरीर के द्वारा भाग रही थी, तो शरीर से जुड़ी थी। अब ऊर्जा अन्तर्यात्रा पर निकली है, अब शरीर से जाने की कोई जरूरत नहीं है। इसलिए शरीर से सम्बन्ध शिथिल हो जायेंगे।

रामकृष्ण को कभी-कभी ऐसा होता था कि छह-छह दिन ऐसी ही बेहोशी में पड़े रहते। उनके शिष्य उन्हें सम्हालते। सेवा करते रहते। चौबीस घन्टे बैठकर होशपूर्वक उनके शरीर की रक्षा करते रहते, क्योंकि वे तो बेहोश पड़े थे। बाहर से बेहोशी थी, और भीतर पाया होश दीया जला था। बाहर से तो लोग सोचते, बेचारा! किस मुसीबत में पड़ा है! जब उनकी आंख खुलती, वे तत्क्षण रोने लगते, कहने लगते-- फिर, फिर लौटा दिया बाहर? मुझे भीतर ले चलो। मुझे वहीं ले चलो जहां मैं था। मेरी अन्तर्यात्रा खण्डित न करो। हे प्रभु, मुझे वहीं ले चलो! मुझे उसी दशा में ले चलो!

लोगों की कुछ समझ में भी न आता, क्योंकि लोग तो देखते--पड़े हैं बेहोश। कुछ डॉक्टरों ने यह घोषणा भी कर दी थी कि यह एक तरह की मिर्गी है--रामकृष्ण के सम्बन्ध में--हिस्टीरिकल है। मिर्गी और इसके लक्षण बाहर से एक से

लगते भी हैं। डॉक्टरों को कसूर भी क्या दो। मुंह से फसूकर गिरने लगता था रामकृष्ण के, जैसे मिर्गी किसी को आ जाती है, उनको गिरता है। आंखें चढ़ जातीं। हाथ-पैर बिलकुल जड़ हो जाते, पत्थर जैसे हो जाते। मोड़ो तो न मुड़ें, अकड़ जाते। स्वभावतः, चिकित्सा-शास्त्र कहेगा, यह मिर्गी है। लेकिन चिकित्सा-शास्त्र को देह के अतिरिक्त और किसी चीज का कोई पता नहीं है। अभी चिकित्सा-शास्त्र बिमारियों से उलझ रहा है। अभी स्वास्थ्य की दिशा में उसके कदम नहीं पड़े। अभी चिकित्सा-शास्त्र इसी चेष्टा में लगा है कि आदमी बीमारी से कैसे छूटे? स्वास्थ्य के आनन्द और अनुभव में कैसे उतरे, अभी इस तरफ कदम नहीं पड़े हैं।

धर्म आगे की चिकित्सा है। बुद्ध ने अपने को वैद्य कहा है इन्हीं अर्थों में। नानक ने भी अपने को वैद्य कहा है--इन्हीं अर्थों में। एक आगे की चिकित्सा। मगर उस चिकित्सा के सूत्र बिलकुल भिन्न हैं। इसलिए भूल कर भी किसी से सलाह मत ले लेना। और किसी की सलाह मान कर रुक मत जाना। ऐसी घड़ी मुश्किल से आती है। गंवाना बहुत आसान है, खोजना बहुत मुश्किल है। यह द्वार कभी-कभी करीब आता है, जिससे निकल सकते थे। चूक गया, फिर न मालूम कब आये! कोई भी उसकी घोषणा नहीं कर सकता, कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती।

इतना ख्याल रखना कि थोड़ी तकलीफ तो होगी, क्योंकि रक्तचाप गिरेगा, सांस बंद होगी, तो थोड़ी पीड़ा तो होगी। यह कीमत हमें चुकानी पड़ती है। यह चुकाने योग्य है।

किसे खबर कि हर-इक फूल के तबस्सुम में
झलक रहे हैं सितम खुर्द शबनमों के मजार

जब एक फूल हंसता है तो ख्याल रखना, न मालूम कितने ओस के बूंद, उसकी हंसी में मजार बन गये हैं। उसकी हंसी के पीछे न मालूम कितनी ओस की बूंदों की मृत्यु छिपी है। जब कोई समाधि के आनंद को उपलब्ध होता है, तो उसके पीछे बहुत-सी पीड़ाएं छिपी हैं। उन पीड़ाओं को अनुग्रह के भाव से झेल लेने का नाम तपश्चर्या है।

तपश्चर्या का अर्थ नहीं होता अपने को दुख दो, देने की जरूरत ही नहीं है। जब तुम अन्तर्यात्रा पर जाओगे तो अपने-आप बहुत-से दुख होंगे। उन दुखों को धन्यभाग मान कर, ईश्वर की कृपा मान कर, अनुग्रह मान कर, जो झेल लेता है, वही तपस्वी है।

तो आनंद गौतम! शुभ घड़ी आई, इस घड़ी को गंवा मत देना। जो कर रहे हो, वैसे ही करते चले जाओ। जिस दिशा में यात्रा शुरू हुई हो, उस में बढ़ते चले जाओ। और-और घटेगा। और-और देर तक घटेगा। घन्टों भी अगर तुम खो जाओ, तो अपने मित्रों को, अपने प्रियजनों को, सबको खबर कर देना--भयभीत न

हों। लौट आओगे। और ज्यादा होकर लौटोगे सदा। लौट-लौट आओगे। और हर बार बड़ी सम्पदा लेकर आओगे। क्योंकि खजाना भीतर है। उस भीतर के मालिक से जरा-सी आंख भी मिल जाये, तो जिंदगी रोशन हो जाती है।

ये चांदनी, ये हवाएं, ये शाखे-गुल की लचक
ए दौरे-बादा, ये साजे खामोश फ़ितरत के
सुनाई देने लगी, जगमगाते सीनों में,
दिलों के नाजुक-ओ-शफ्फाक आबगीनों में
तेरे खयाल की पड़ती हुई किरण की खनक,
तेरे ख्याल की पड़ती हुई किरण की खनक!

पहली बार तुम्हारे भीतर उसकी किरण की खनक उतर रही है। नई है, अपरिचित है, अनजानी है, बेपहचानी है। और अनजान से, अपरिचित से हम सिकुड़ भी जाते हैं। नये से भय लगता है--पता नहीं कहां ले जाए, किस जगह पहुंचाए! परिचित को हम पकड़ने की चेष्टा करते हैं। परिचित को पकड़ने से बचना है।

संन्यास का अर्थ है: अब परिचित और अपरिचित जब भी खड़े होंगे सामने तो अपरिचित को चुनेंगे, परिचित को नहीं चुनेंगे। परिचित को तो जान लिया, बूझ लिया, देख लिया, जी लिया। परिचित को तो हम निचोड़ चुके, अब अपरिचित में जायेंगे। जाने हुए में अब क्या अटकना है? अब अनजाने में जायेंगे। ज्ञात में अब क्या उलझना है, अज्ञात का निमन्त्रण मिल रहा है।

ख्याल रखना: तेरे ख्याल की पड़ती हुई किरण की खनक!

और ऐसा ध्यान में ही नहीं होगा, धीरे-धीरे तुम पाओगे तुम्हारे चौबीस घंटों में भी। शरीर से सम्बन्ध वैसा नहीं रहा जैसे पहला था। तुम्हारी चर्या बदलेगी--बदलनी ही चाहिये। इसी को मैं चर्या का सम्यक् बहलाव कहता हूं। एक तो जबरदस्ती आचरण को थोप लेना। उसका कोई मूल्य नहीं है। दो कौड़ी का मूल्य है। धोखा है। प्रवंचना है। पाखण्ड है। अब तुम्हारी जिंदगी में असली आचरण की संभावना खुल रही है। जब भीतर यह आनंद झलकने लगेगा तो तुम्हारे बाहर के सारे व्यवहार बदलेंगे। बदलना ही पड़ेगा। तुम्हारी शैली बदलेगी। कल तक जो चीज सार्थक मालूम होती थी, आज व्यर्थ मालूम होने लगेगी। और कल एक जो चीज कभी तुमने सोची भी नहीं थी कि सार्थक हो सकती है, वह सार्थक हो जायेगी। सारे मापदण्ड बदल जायेंगे। सब उलटा-सीधा हो जायेगा। बड़ी अराजकता फैल जायेगी। कल जिस काम में बड़ा रस आता था, शायद अब रस न आये। आज कुछ नई चीजों में रस पैदा होने लगेगा। घबड़ाना मत!

जितना सन्नाटा हुआ गहरा खिजां की शाम का
आश्ना राजे-चमन से हर कली होती गई ।
कर दिया एहसान दिल को दिल गमो-आलाम ने,
जिन्दगी नाकाम होकर काम की हो गई ।

लोग कहेंगे : निकम्मे हो गये । लोग कहेंगे, नाकाम हो गये । लोग कहेंगे । अब तुम ठीक से काम नहीं कर रहे हो । तुम ऐसा करते थे, तुम वैसा करते थे : धन कितना कमाते थे, क्या हुआ तुम्हें ?

तुम्हारी प्रतिस्पर्धा, प्रतियोगिता क्षीण हो जायेगी । तुम्हारी महत्त्वाकांक्षा क्षीण हो जायेगी। तुम्हारी दौड़ कम हो जायेगी । यह जो रक्त की दौड़ कम हुई है, यह केवल शुरुआत है । अब तुम्हारी दौड़ कम हो जायेगी । यह जो श्वास अवरुद्ध होने लगी है, रुकने लगी है, यह तुम्हारे पैरों की गति को भी बदल देगी । कल तक जैसे अकड़कर चले थे, अब न चल सकोगे । और कल तक जिन लक्ष्यों में बड़ा मोह था, बड़ा लगाव था, बड़ी आसक्ति थी, जिनके लिए जी दे देते, जान दे देते, वे अब दो कौड़ी के मालूम होने लगेंगे । यही संन्यास है——वास्तविक संन्यास ।

तुम्हारे भीतर चैतन्य की बदलाहट तुम्हारे बाहर आचरण की बदलाहट हो जाती है । ऐसा नहीं है कि तुम भाग ही जाओगे सब छोड़कर । रहोगे यहीं, लेकिन रहने की शली बदल जायेगी । दुकान पर भी बैठोगे, काम भी करोगे, नौकरी पर भी जाओगे, पत्नी भी होगी, बच्चे भी होंगे, घर भी होगा, सब कुछ करोगे, लेकिन कर्ता मर जायेगा । कर्ता परमात्मा हो जायेगा । तुम केवल उसकी आज्ञा पालन करनेवाले सेवक ।

तेरे आने की महफ़िल में जो कुछ आहट-सी पाई है,
हर-इक ने साफ देखा शमअ की लौ लड़खड़ाई है ।
तपाक और मुस्कुराहट में भी आंसू थरथराते हैं,
निशाते-दीद भी चमका हुआ दर्दे-जुदाई है ।
बहुत चंचल है अरबाबे-हवस की उंगलियां लेकिन,
उरूसे जिन्दगी की भी नकाबे-रुख उठाई है ।
इन मौजों के थपेड़े, ये उभरना बहरे हस्ती में,
हुबाबे जिन्दगी ये क्या हवा सर में समाई है ।
सुकूते-बहरो-बर की खल्वतों में खो गया हूं जब,
उन्हीं मौंको पे कानों में तेरी आवाज आई है ।

जब तुम बिलकुल खो जाओगे, जब तुम्हें पता ही नहीं चलेगा कि मैं हूं, जब सब तरफ सन्नाटा हो जायेगा बाहर-भीतर, जब तुम खोजोगे और अपने को न पाओगे

कि मैं कहां गया ——तभी

सुकूते-बहरो-बर की खल्वतों में खो गया हूं जब
उन्हीं मौकों पे कानों में तेरी आवाज आई है ।
तेरे आने की महफिल ने जो कुछ आहट-सी पाई है
हरेक ने साफ देखा शमअ की लौ लड़खड़ाई है

गौतम! तुम्हारी शमा की लौ लड़खड़ाने लगी । उसके आने की आवाज आने लगी । तुम्हारे भीतर सन्नाटा घना हो रहा है । आनंद की किरणें फूटने लगीं । तुम धन्यभागी हो! अहोभाग्य मानकर चुपचाप इस अनजान, अपरिचित, अज्ञात में उतरो। साहस की ज़रूरत होगी । मैं तुम्हारे साथ हूं ।

दूसरा प्रश्न——

मेरे ख्वाबों के झरोखों को फूलों से सजानेवाले
तेरे ख्वाबों में मेरा कहीं गुजारा है कि नहीं ?
पूछकर अपनी निगाहों से तू बता दे मुझको
मेरी रातों के मुकद्दर में कहीं सुबह है कि नहीं ?

❋ रात है, तो सुबह सुनिश्चित है । रात में सुबह छिपी है । रात सुबह ही का आवरण है । रात सुबह की शत्रु नहीं है । रात सुबह की मां है । रात सुबह के विपरीत नहीं है । रात सुबह का मार्ग है । रात के गर्भ में सुबह है ।

इसलिए यह तो कभी सोचना ही मत कि मेरी रातों के मुकद्दर में कहीं सुबह है कि नहीं ? रात है तो सुबह निश्चित है । रात में ही निश्चय हो गया ।

दुख है, आनंद निश्चित है ।

मृत्यु है, अमृत निश्चित है ।

पदार्थ है, परमात्मा निश्चित है । एक नहीं हो सकता । दोनों परिपूरक छोर हैं ।

क्या तुम सोच सकते हो ऐसी एक दुनिया, जहां अंधेरा हो, उजाला न हो ? और अंधेरा हो, उजाला न हो, तो उसे अंधेरा भी कैसे कहोगे ? या उजाला हो और अंधेरा न हो । नहीं; यह संभव नहीं है । यह जोड़ा तोड़ा नहीं जा सकता । अंधेरा उजाले के ही कम होने का नाम है, और क्या ? उजाला अन्धेरे के ही कम होने का नाम है, और क्या ?

ऐसा ही समझो जैसे सर्दी-गर्मी, दो चीजें थोड़े ही हैं । एक ही चीज के दो नाम हैं । तुम पर निर्भर होता है कि तुम सर्दी समझोगे कि गर्मी ।

कभी एक छोटा-सा प्रयोग करो । एक हाथ को सिगड़ी पर सेंक लो । और दूसरे हाथ को बर्फ की सिल पर रख कर ठण्डा कर लो । फिर दोनों हाथों को, एक बालटी में भरे पानी में डाल दो । अब तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे । एक हाथ

कहेगा पानी ठण्डा है, दूसरा हाथ कहेगा पानी गरम है। पानी क्या है अब—ठण्डा या गरम ? जो हाथ गरम है वह कहेगा ठण्डा है, क्योंकि उसकी तुलना में कम गरम है। जो हाथ ठण्डा हो गया है, वह कहेगा गरम है, क्योंकि उसकी तुलना में गरम मालूम होगा। सापेक्ष है।

रात में सुबह छिपी है, जरा तलाश करो !

और ध्यान रखना, मुकद्दर जैसी कोई चीज नहीं। मुकद्दर मनुष्य के आलस्य का बहाना है।

तुम पूछते हो : मेरी रातों के मुकद्दर में कहीं सुबह है कि नहीं ? मुकद्दर है ही नहीं। मुकद्दर आलसियों की तरकीब है। मुकद्दर अकर्मण्यों की योजना है, उनका फलसफा है, उनका दर्शनशास्त्र। वे कहते हैं : क्या करें, जो भाग्य में होगा होगा।

ख्याल रखना, भाग्य को तुम चुनते हो, तो भाग्य बलशाली हो जाता है। लेकिन तुम्हारे चुनाव के कारण भाग्य में कोई बल नहीं है। तुम जो चुन लेते हो वही बलशाली हो जाता है। तुम परम स्वतंत्र हो। लेकिन यह बात इतनी बड़ी है कि छोटी-सी बुद्धि इसे पकड़ नहीं पाती। छोटी-सी बुद्धि को छोटी-छोटी बातें रुचती हैं। छोटी बुद्धि कहती है कि यह तो हो ही नहीं सकता कि दुख और मैंने चुना है। यह मेरे मुकद्दर में लिखा है। मैं क्यों दुख चुनूंगा ? अगर मेरे हाथ में चुनाव होता तो सारी दुनिया का आनंद चुन लेता।

और मैं तुमसे कहता हूं तुम्हारे हाथ में चुनाव है। और तुम चाहो तो सारी दुनिया का आनन्द तुम्हारे आंगन में बरसे। मेरे आंगन में बरसा है, इसलिए कहता हूं। तुम्हारे आंगन में भी बरस सकता है, लेकिन तुमने चुना ही नहीं। तुम दुख चुनते चले गये। और जब तुमने दुख चुना और दुख आया तो तुम छाती पीटते हो। तुम सोचते हो, दुख मेरे मुकद्दर में है, यह मेरे भाग्य में है, यह मेरी किस्मत में है।

तुम्हारी किस्मत में कुछ भी नहीं है। परमात्मा किसी की खोपड़ी में कुछ लिखकर भेजता नहीं। कोरा कागज तुम्हें दे देता है। कोरा चैक तुम्हारे हाथ में दे देता है। फिर लिख लेना जो तुम्हें लिखना है। कोई गरीबी लिख लेता है। कोई अमीरी लिख लेता है। कोई अज्ञान लिख लेता है, कोई ज्ञान लिख लेता है। कोई संसार लिख लेता है, कोई निर्वाण लिख लेता है। परमात्मा कोरा चैक देता है।

परमात्मा तुम्हें स्वतंत्र बनाता है। तुम्हें चुनाव की क्षमता देता है। तुम चुन लो। लेकिन स्वभावतः यह सवाल उठता है, आदमी दुख क्यों चुने फिर ? क्यों चुनता है आदमी दुख, क्योंकि अनन्त लोग दुखी हैं। सुखी तो कभी कोई एकाध होता है, कोई बुद्ध... । इतने लोग दुखी हैं, इतने लोगों ने दुख चुना है, यह बात जंचती नहीं। दुख लोग चुनेंगे क्यों? क्योंकि हर आदमी दुख के खिलाफ मालूम होता है। हर

आदमी दुख का रोना रोता है। और हर आदमी कहता है, मैं बहुत दुखी हूं, इससे कैसे छुटकारा हो ? इसलिए यह बात समझ में भी आती है कि आदमी दुख चुनेगा क्यों, अगर उसके हाथ में होता है ? फिर भी मैं तुमसे कहता हूं, आदमी ने दुख चुना है।

जब कोई आदमी अपने दुख की कथा कहता है तब जरा तुम गौर से सुनना और जरा गौर से देखना। वह अपने दुख की कथा कहने में बड़ा मजा ले रहा है, रस ले रहा है। वह दुखों को बढ़ा-चढ़ा कर भी कह रहा है, अतिशयोक्ति भी कर रहा है। जितने दुख नहीं हैं, वे भी उसमें जोड़े जा रहा है। जब बोलने ही बैठ गया है तो फिर दुखों को खींचे जा रहा है, बड़ा किये जा रहा है। तुम जरा गौर से सुनना। बोलने के पास-पास तुम्हें अनुभव में आयेगा, हर शब्द के पीछे एक रस छिपा है। क्या रस होगा? जीवन की बड़ी समस्याओं में एक समस्या यह है।

दुख के माध्यम से अहंकार निर्मित होता है। सुख में अहंकार तिरोहित हो जाता है। आनंद में अहंकार पाया ही नहीं जाता; दुख में ही पाया जाता है। और चूंकि तुमने यह चुन लिया है कि मैं हूं, इसलिए तुम्हें दुख चुनना पड़ा है। दुख की ईंट से ही मैं का मकान बनता है। इसलिए तुम अपने दुख को बढ़ा-चढ़ा कर बताते हो, कि सारी दुनिया का दुख तुम्हीं को मिल रहा है, ऐसा दुख किसी का भी नहीं है। क्योंकि जितनी बड़ी ईंटें होंगी दुख की, उतना ही बड़ा भवन अहंकार का बन सकेगा।

ख्याल करो, अगर कोई जादू की छड़ी घुमाये, और तुम्हारे सब दुख छीन ले, तुम क्या बचोगे? दुखों के सिवाय तुम्हारे पास और क्या है ? एकदम खाली हो जाओगे, एकदम घबड़ा जाओगे। एकदम बेचैन हो जाओगे। अपने दुख वापिस मांगोगे।

सोचो जरा, तुम अपने दुख देने को राजी होओगे ? जब दुख छीने जायेंगे तब तुम्हें लगेगा कि सूने होने से, खाली होने से तो दुख से ही भरा होना बेहतर है। कुछ तो है—मुट्ठी बांधने को कुछ तो है। पकड़ने को कुछ तो है। लोग अपने दुखों को बसाये हुए हैं। लोग जानते हैं। तुम जानते हो क्रोध दुख लाता है, मगर क्रोध को तुम पकड़े हो। तुम जानते हो, ईर्ष्या दुख लाती है, मगर ईर्ष्या को तुम पकड़े हो। तुम जानते हो कहां-कहां से दुख आता है, लेकिन उन्हीं दरवाजों पर दस्तक देते हो। और ऐसा भी नहीं है कि तुम्हें कहा नहीं है लोगों ने कि सुख किन दरवाजों से मिलता है। आखिर बुद्ध-पुरुष करते क्या रहे? आखिर सुन्दरदास यह ढोल क्यों बजा रहे हैं? क्या है कहने का? छोटी-सी बात कह रहे हैं कि एक दरवाजा है—हरि का दरवाजा—हरि बोलौ हरि बोल! वहां से सुख की गंगा बहती है। तुम सुन लेते हो,

तुम कहते हो : ठीक है, होगा। जब आयेगा समय तब देखेंगे। जब मुकद्दर में होगा तब देखेंगे। अभी तो जिन्दगी जीनी है। अभी तो दुख भोगने हैं।

जिंदगी जीने का मतलब--अभी दुख भोगने हैं। अभी सब तरफ से दुख का इन्तजाम करना है। हालांकि तुम ऐसा कहते नहीं कि अभी दुख भोगने हैं। तुम कहते हो, अभी सुख भोगने हैं। कहते हो सुख भोगने हैं, भोगते दुख हो। तुम्हारा कहना कोई सुन ले तो बड़ी भ्रान्ति हो जाती है, तुम्हें देखे तभी सचाई का पता चलता है। तुम सुख के नाम से जो खोजते हो, वह दुख है। तुमने नाम अच्छे रख लिए हैं। तुम नाम रखने में बड़े कुशल हो। और अच्छे नाम रख कर तुम धोखे भी खा जाते हो। सुन्दर-सुन्दर नाम रखते हो। और सुन्दर-सुन्दर नामों की छाया में छलावा हो जाता है।

किसको तुम सुख कहते हो? ज्यादा धन होगा तो सुख होगा? तो फिर जिनके पास ज्यादा धन है जरा उनकी जिंदगी तो गौर से देख लो, इसके पहले कि दौड़ पर निकलो। उनके पास सुख है? वह तुम नहीं देखते। तुम कहते हो, बड़ा पद होगा, तो सुख होगा। लेकिन जिनके पास बड़ा पद है, जरा उनकी जिंदगी में झांक तो लो। वह तुम नहीं करते। क्योंकि तुम डरे हो कि अगर उनकी जिंदगी में झांका और दुख दिखाई पड़ गया तो फिर मैं क्या करूंगा। तुम देखना ही नहीं चाहते, तुम जीवन के तथ्य झुठलाना चाहते हो। तुम कहते हो, होगा उनकी जिंदगी में दुख, मगर जब मैं पद पर होऊंगा तो सुख को भोगूंगा; होगा उनकी जिंदगी में दुख, जब मेरे पास धन होगा तो मैं सुख को भोगूंगा।

हर व्यक्ति इसी भ्रांति में जीता है। धन भी आ जाता है, पद भी आ जाता है प्रतिष्ठा भी आ जाती है, साथ में महानर्क भी आ जाता है। तब तक बहुत देर हो गई होती है। फिर लौटना भी मुश्किल हो जाता है। लौटना फिर चूक कर चाटने जैसा चलता है। फिर अहंकार को और पीड़ा होती है कि अब क्या लौटना, दुनिया क्या कहेगी? अब चले ही जाओ, अब थोड़े दिन और हैं, इसी तरह बिता दो, गुजार दो।

अहंकार ने तुम्हें सुख दिया है कभी? लेकिन फिर अहंकार को तुम निर्मित क्यों करते चले जाते हो? अहंकार सिर्फ कांटे की तरह चुभता है, शूल की तरह चुभता है। तुम्हें और चीजें पीड़ा देती हैं, वह अहंकार के कारण ही पीड़ा देती हैं। किसी ने अपमान कर दिया, तुम परेशान हो गये। उसके अपमान के कारण परेशान हुए, तो तुम गलत विश्लेषण कर रहे हो। अगर अहंकार न होता तो तुम परेशान न होते। बुद्ध को अनेक लोगों ने गालियां दीं। बुद्धों को लोग सदा से गालियां देते रहे। लेकिन बुद्ध परेशान नहीं हुए। बुद्ध ने इतना ही कहा लोगों से : अगर तुम्हारी

बात पूरी हो गई हो तो मैं जाऊं, क्योंकि मुझे दूसरे गांव पहुंचना है, वहां लोग प्रतीक्षा करते होंगे। और अगर अधूरी रह गई हो तो चिन्ता न करो, लौटते समय फिर रुक जाऊंगा, फिर तुम्हारी बात सुन लूंगा।

वे लोग तो गालियां दे रहे थे। उनको तो भरोसा ही न आया कि गालियों का कहीं कोई ऐसा उत्तर होता है। उनमें से किसी एक ने कहा, आप ये क्या कह रहे हैं? हम गालियां दे रहे हैं, बातें नहीं हैं ये, जहर-बुझे तीर हैं।

बुद्ध ने कहा, तुम अगर जल की तरफ अंगारा फेंको तो जब तक जल को न, छुए, अंगारा रहेगा; और जैसे ही जल को छुएगा, बुझ जायेगा, राख हो जायेगा। मुझे भीतर ऐसा आनन्द मिल रहा है, ऐसी शीतलता मिल रही है कि अब मैं तुम्हारी गालियों के लिए उसको खो नहीं सकता। तुम्हारा अंगारा आता है, तुम्हारी तरफ से अंगारा होता होगा, मेरी तरफ आते ही फूल हो जाता है। मैं तुम्हारी तकलीफ समझ रहा हूं कि तुम बड़ी पीड़ा में हो, इसलिए गालियां निकल रही हैं। मगर मैं बड़े आनंद में हूं, मैं क्या करूं? तुम्हें अगर गालियों का उत्तर चाहिये था, दस साल पहले आना था। तुम जरा देर से आये। दस साल पहले आते, तुम्हारी गर्दन उतरवा देता। मगर देर हो गई तुम्हें आने में। अब तुम मुझे खिन्न न कर पाओगे; क्योंकि अब मैं प्रसन्न होने का मार्ग जान लिया हूं। अब तुम मुझे खिन्न न कर पाओगे, क्योंकि अब मैं खिन्न नहीं होना चाहता हूं।

इन शब्दों पर विचार करना : अब तुम मुझे दुखी न कर पाओगे, क्योंकि मैंने दुख छोड़ दिया है। अब मैं दुख लेता ही नहीं। तुम गाली देते हो, सच; मगर मैं गाली लूं, तभी तो मुझे मिलेगी न? तुम्हारे देने-भर से क्या होता है? पिछले गांव में लोग फूल लाये थे और मिष्ठान लाये थे वे और मुझे भेंट करना चाहते थे। मैंने कहा, मेरा पेट भरा है। वे वापिस ले गये। जब मैं न लूंगा तो मिठाइयां भी क्या करोगे? वापिस ही ले जाओगे। मैं तुमसे पूछता हूं, उन्होंने मिठाइयों का क्या किया होगा?

एक आदमी ने भीड़ में कहा, क्या किया होगा, जाकर बांट ली होंगी। तो बुद्ध ने कहा, अब तुम क्या करोगे? तुम गालियां लेकर आये हो, मैं तो लेता नहीं, मैंने तो खरीद बंद ही कर दी। अब मेरी दुख में कोई आकांक्षा ही नहीं रही। दुख और चाहिये नहीं, बहुत ले लिये, जन्म-जन्म ले लिये! अब तुम क्या करोगे? अच्छे थे वे लोग, मिठाइयां लाये थे, बांट तो लेंगे। अब तुम इन गालियों को वापिस ले जाकर क्या करोगे? ये तुम्हीं पर पड़ गईं, क्योंकि मैंने इन्हें लिया नहीं।

जरा सोचते हो, गाली न ली जाये, तो कोई तुम्हें कैसे दे सकता है? मगर तुम लेने को ऐसे आतुर हो कि कभी-कभी कोई दूसरा देता भी नहीं है और तुम ले लेते

हो। तुम्हारी आतुरता ऐसी है कि रास्ते पर दो आदमी खड़े होकर खुस-फुस बात करते होते हैं, तुम चिन्तित हो जाते हो--मेरे ही सम्बंध में करते होंगे। कोई आदमी किनारे पर खड़े होकर, रास्ते पर हंस देता है, तुम समझते हो--मेरे लिए, मुझे देख कर हंस रहा है, इसको मजा चखा कर रहूंगा। अब हो सकता है किसी और कारण से हंस रहा हो। दुनिया में तुम्हीं तो नहीं हो, और भी बहुत लोग हैं। वे जो दो आदमी चुप चुप बात कर रहे थे, गुप-चुप बात कर रहे थे, और तुम्हें देख कर चुप हो गये, ज़रूरी नहीं है कि तुम्हारे संबंध में बातें कर रहे हों। दुनिया बड़ी है, मगर तुमने ले लिया।

गाली नहीं दी जाती--और तुम ले लेते हो। अपमान नहीं किया जाता--और तुम ले लेते हो। तुम जैसे तत्पर ही हो। तुम जैसे निकले हो घोषणा करके, आ बैल मुझे मार। जिस दिन तुम्हें दुख नहीं मिलता उस दिन तुम्हें लगता है, कुछ खाली-खाली गया दिन, कुछ रिक्त-रिक्त। न कोई झगड़ा, न कोई झांसा।

मनौवैज्ञानिक कहते हैं: अच्छे आदमी को जिन्दगी में कोई कहानी नहीं होती। हो भी कैसे सकती है? अच्छे आदमी की जिन्दगी इतनी कोरी होती है कि उसमें कहानी क्या होगी? साहित्यकार कहते हैं, अच्छे आदमी की जिन्दगी पर उपन्यास नहीं लिखा जा सकता। क्या खाक लिखोगे? इतना ही लिख दो कि अच्छे आदमी, बस खतम। बुरे आदमी की जिन्दगी में कहानी होती है। खूब भराव होता है! हत्या की, चोरी की, बेईमानी की, सब तरह के उपद्रव किये तो कहानी में भराव होता है। तुम खाली होना चाहोगे जिस दिन, उसी दिन सुखी हो जाओगे। लेकिन तुम कोई कहानी चाहते हो, तुम अपना अफसाना चाहते हो। तुम चाहते हो, मेरी भी कोई आत्मकथा हो। आत्मकथा यानी अहंकार की कथा।

पूछा है तुमने: मेरी रातों के मुकद्दर में कहीं सुबह है कि नहीं? सुबह तो हर आदमी का जन्म-सिद्ध अधिकार है। हां, तुम जितनी देर चाहो, रोक सकते हो। न आने देना हो, तो सुबह कभी न आयेगी। ऐसा भी हो सकता है। सुबह आ जाये, तुम आंखें बन्द कर लो। तो तुम तो अंधेरे में ही रहे आओगे। सुबह आ जाये, तुम कान बंद कर लो; पक्षी गीत गायें, लेकिन तुम्हें कुछ सुनाई न पड़े। सूरज उग आये, तुम पीठ करके खड़े हो जाओ। वर्षा हो और तुम अपने घड़े को उलटा कर लो। ये सब संभावनायें हैं। अगर तुमने तय ही कर लिया है, दुख में ही जीना है, रात ही में जीना है, तो तुम रात में ही जियोगे। तुम्हारे निर्णय पर सब कुछ है। इस बात को जितनी गहराई तक तुम अपने भीतर उतर जाने दो उतना शुभ है। क्योंकि इस निर्णय से ही क्रान्ति घटित होगी।

शामे गम कुछ उस निगाहे नाज की बातें करो।

बेखुदी बढ़ती चली है, राज की बातें करो॥
नकहते जुल्फे-परेशां दास्ताने-शामे-गम।
सुबह होने तक इसी अंदाज की बातें करो॥

सुबह तो होगी ही। हरि बोलौ हरि बोल! तब तक सुबह के रस की, सुबह की रोशनी की, सुबह के आकाश की, उड़ते पक्षियों की, खिलते फूलों की--इनकी कुछ बात करो। ये बातें तुम्हारे मन में गहरी बैठ जायें, तो जब सुबह आयेगी, तुम पहचान लोगे, और आंखें बंद नहीं रखोगे, और कान बंद नहीं रखोगे। क्योंकि जिसे पता है कि सुबह जब होती है तो पक्षी गीत गाते हैं, उसके कान आतुरता से सुबह की प्रतीक्षा करेंगे, उसके कान सजग रहेंगे। और जिसे पता है कि सुबह होती है तो सूरज निकलता है--हज़ार-हज़ार रंगों के फूल खिलते हैं, दुनिया एकदम रंगों का उत्सव हो जाती है--वह आंखें बंद नहीं रख सकेगा। वह आंखें खुली रखेगा। सुबह की जरा-सी भनक पड़ जायेगी कि उठ कर खड़ा हो जायेगा।

नकहते-जुल्फे-परेशां, दास्ताने-शामे-गम।
सुबह होने तक इसी अंदाज की बातें करो॥

सत्संग का यही नाम है। सत्संग का यही अर्थ है।

ये सुकूते-यास ये दिल की रगों का टूटना।
खामशी में कुछ शिकस्ते-साज की बातें करो॥
हर रगे-दिलवज्द में आती रहे, दुखती रहे।
यूं ही उसके जा-ओ बेजा नाज की बात करो॥
कुछ क़फ़स की तीलियों से छन रहा है नूर-सा।
कुछ फ़ज़ा कुछ हसरते परवाज की बातें करो।
जिस की फुरकत ने पलट दी इश्क की काया फिराक।
आज उसी ईसा-नफस-दमसाज की बातें करो॥

प्रभु की अनुकम्पा की बात करो। प्रभु के अपार अनुग्रह की बात करो।

जिसकी फुरकत ने बदल दी इश्क की काया फिराक
आज उसी ईसा-नफस-दमसाज़ की बातें करो। उस पवित्र हृदय मित्र की बातें हों। उस प्यारे का स्मरण हो।

कुछ क़फ़स की तीलियों से छन रहा है नूर-सा।
कुछ फ़ज़ा, कुछ आकाश की। कुछ हसरते-परवाज़ की बातें करो। कुछ उड़ने की अभीप्सा की बातें करो। यह उतरी रोशनी, ये किरणें जगीं, यह सुबह हुई।... कहीं ऐसा न हो कि सुबह तो आने के करीब है, इसके पहले तुम पर फड़फड़ाओ; कहीं ऐसा न हो कि सुबह का सुबह आ जाये और तुम्हें पर फड़फड़ाना न आये!

आकाश जग उठे, पुकार देने लगे, और तुम अपनी पुरानी आदतों में जकड़े पड़े रहो, उड़ने की आकांक्षा ही पैदा न हो! तो आकाश क्या करेगा?

आकाश पक्षियों को जबरदस्ती उड़ा नहीं सकता। आकाश तो केवल अवकाश देता है कि जिसको उड़ना है उड़ ले। उड़ना तो तुम्हें ही पड़ेगा। अगर तुम अपने पंखों को सिकोड़े पड़े रहे या तुम भूल ही गये हो कि तुम्हारे पास पंख हैं... क्योंकि तुम जन्मों-जन्मों से उड़े नहीं, तुम्हें उड़ने का ख्याल ही भूल गया है... तो आकाश रहेगा मौजूद, मगर तुम चूक जाओगे।

कुछ क़फ़स की तीलियों से छन रहा है नूर-सा।
कुछ फ़ज़ा, कुछ हसरते-परवाज की बातें करो॥

सुबह तो करीब है। सुबह तो हमेशा करीब है। तुम्हारी अभीप्सा की प्रगाढ़ता के ऊपर निर्भर करता है—कितनी करीब, कितनी दूर। मांगो और मिलेगी। पुकारो—और द्वार खुल जायेंगे।

मुकद्दर की तो बात ही मत बीच में लाना। मुकद्दर की बात तो वे लाते हैं जो सुबह से बचना चाहते हैं। भाग्य पर छोड़ दिया सब, फिर निश्चिन्त हो गये, अब करना क्या है? फिर करवट ले ली, ओढ़ कर चादर सो गये।... चेत सके तो चेति ले।

तीसरा प्रश्न—

कब तक प्रतीक्षा? प्रभु! कब तक प्रतीक्षा?

❋ 'कब तक' पूछा कि खबर दे दी कि तुम्हें प्रतीक्षा का शास्त्र नहीं आता। कब तक में तो अधैर्य है, प्रतीक्षा कहां? कब तक में तो जल्दबाजी है, प्रतीक्षा कहां? प्रतीक्षा हो तो अनन्त ही होती है। अनन्त से कम प्रतीक्षा प्रतीक्षा नहीं होती; प्रतीक्षा का धोखा होती है। और जिसकी अनन्त प्रतीक्षा है, उसे इसी क्षण मिलना हो जायेगा। और जिसने अधैर्य किया, जितना अधैर्य किया, उतनी ही देर लग जायेगी। इस गणित को ठीक बैठ जाने दो अपने भीतर। जितनी जल्दबाजी की, उतनी देर लग जायेगी। जितना अधैर्य किया उतनी देर लग जायेगी। क्योंकि अधैर्य से भरा हुआ चित्त उद्विग्न होता है, कंपता होता है, शान्त नहीं हो सकता। अधैर्य से भरा चित्त भविष्य में झांकता होता है, वर्तमान में नहीं होता। अधैर्य से भरा चित्त—अब हुआ, तब हुआ, अब होना चाहिये, अब तक नहीं हुआ—हज़ार शिकायतें आ जाती हैं, हज़ार सन्देह आ जाते हैं, हज़ार शंकायें मन को घेर लेती हैं—होगा कि नहीं होगा, है भी या नहीं है, मैं व्यर्थ ही तो समय नहीं गंवा रहा हूं, मैं नाहक बैठा यह क्या कर रहा हूं? इतनी देर में तो कुछ कमा ही लेता। परमात्मा का तो कुछ पता नहीं चलता है। संसार भी हाथ से जा रहा है।....जिसके भीतर अधैर्य है उसे

ये सारे ऊहापोह घेर लेते हैं।

प्रतीक्षा का अर्थ होता है: जब मेरी योग्यता होगी तब होगा। मैं शान्त होकर राह देखूं। मैं और-और शान्त होकर राह देखूं। अगर नहीं हुआ है तो इसका इतना ही अर्थ है कि मेरे भीतर अभी भी थोड़ा अधैर्य होगा। मैं और धैर्य को सम्हालूं। मैं और मौन हो जाऊं। मैं बिलकुल चुप हो जाऊं। मैं अपनी आकांक्षा अस्तित्व पर न रोपूं।

प्रतीक्षा का अर्थ होता है: अस्तित्व की मर्जी पूरी हो। अगर तुम मस्त हो तो कहो: भगवान की मर्जी पूरी हो। उसकी मर्जी पूरी हो! जब वह चाहे तब होगा। मैं राह देखूं। इसका अर्थ अकर्मण्यता नहीं है। इसका अर्थ प्रतीक्षा है। प्रतीक्षा कोई अकर्मण्यता की दशा नहीं है। प्रतीक्षा बड़ी जीवन्त दशा है—ज्वलन्त दशा है। जाग्रत दशा है। लेकिन धैर्य, गहन धैर्य से भरी हुई।

उमीदे-मर्ग कब तक, जिन्दगी का दर्दे-सर कब तक?
ये माना सब्र करते हैं मोहब्बत में, मगर कब तक?
दियारे-दोस्त हद होती है यूं भी दिल बहलने की?
न याद आयें गरीबों को तेरे दीवारों-दर कब तक?
ये तदबीरें भी तक़दीरे-मोहब्बत बन नहीं सकतीं।
किसी को हिज्र में भूले रहेंगे हम मगर कब तक?
इनायत की, कर्म की, लुत्फ़ की आखिर कोई हद है!
कोई करता रहेगा चारा-ए-जख्मे-जिगर कब तक?
किसी का हुस्न रुसवा हो गया पर्दे ही पर्दे में।
न लाये रंग आखिरकार तासीरे नजर कब तक?

'कब तक की बात ही मत कहो। जब तुम पूछते हो...

उमीदे-मर्ग कब तक, जिन्दगी का दर्दे-सर कब तक?
ये माना सब्र करते हैं मोहब्बत में, मगर कब तक?

...तो तुमने सब्र जाना नहीं।

सूफियों ने परमात्मा को निन्यानबे नाम दिये, उनमें एक नाम है: सबूर, सब्र। अनन्त प्रतीक्षा, अनन्त धैर्य! प्यारा नाम है! बहुत नाम परमात्मा को दिये हैं लोगों ने अलग-अलग, मगर सूफियों ने सबको मात कर दिया। उस नाम में सूचना दी है तुम्हें कि जब तुम भी सब्र हो जाओगे तभी उसे पा सकोगे! उसे पाना है तो कुछ उस जैसे होना पड़ेगा। हम वही पा सकते हैं जिस जैसे हम हो जायें। हम अपने से बिलकुल भिन्न को नहीं पा सकेंगे। कुछ तारतम्य होना चाहिये—हम में और उसमें। उसका सब्र देखते हो! उसका सबूर देखते हो! रवीन्द्रनाथ की एक कविता

है, जिसमें रवीन्द्रनाथ ने कहा है कि हे परमात्मा! जब मैं सोचता हूं तेरे सब्र की बात तो मेरा सिर घूम जाता है! और तेरा कितना धैर्य है, तू आदमी को बनाये चला जाता है! और आदमी तेरे साथ दुर्व्यवहार किये चला जाता है। और तू है कि आदमी को बनाये चला जाता है। तू आशा छोड़ता ही नहीं। तू सोचता है, अबकी बार ठीक हो जायेगा, अबकी बार ठीक हो जायेगा। तू पापी को भी प्राण दिये जाता है, पापी में भी श्वास लिए जाता है। तेरा धैर्य नहीं चुकता! हत्यारे से हत्यारा भी तेरी आंखों में जीने की योग्यता नहीं खोता, तू उसे भी जीवन दिये जाता है! तुझे आशा है, आज तक तो ठीक नहीं हुआ, कल तक हो जायेगा, परसों हो जायेगा। कब तक भटकेगा! आज घर नहीं आया, कल आयेगा, कल नहीं तो परसों आयेगा। आयेगा ही। जन्मों-जन्मों तक लोग भटकते रहते हैं, मगर तेरी अनुकम्पा जरा भी कठोर नहीं होती। तेरी अनुकम्पा वैसी ही सदा से है, वैसी ही उदार, वैसी ही बरसती रहती है। तू इसकी फिक्र ही नहीं करता कि कौन पापी है, कौन पुण्यात्मा है! तेरे बादल आते हैं, और दोनों पर बरसते हैं। यह दूसरी बात है, पुण्यात्मा पी लेता है तेरे बादल से और पापी नहीं पीता। यह उनका निर्णय है। मगर तेरी तरफ से कोई भेद नहीं होता। तेरी तरफ से अभेद है। तेरा सूरज निकला है और सब पर रोशनी बरसाता है। यह दूसरी बात है कि कोई आंख बंद रखे। यह उसकी मर्जी। मगर तेरी तरफ से भेंट में कभी फर्क नहीं पड़ती। तेरा कितना धीरज है! तू आदमी से थका नहीं। तू आदमी की हत्याएं, पाखण्ड, उपद्रव देखकर ऊब नहीं गया? कभी तेरे मन में यह ख्याल नहीं आता कि बस समाप्त करो? तेरा आदमी पर अब भी भरोसा है?

रवीन्द्रनाथ ने कहा है कि जब भी कोई छोटा नया बच्चा पैदा होता है, तब फिर मुझे धन्यवाद देने की आकांक्षा होती है कि फिर उसने एक आशा की किरण, भेजी। हर नया बच्चा इस बात की खबर है कि परमात्मा अभी आदमी से चुका नहीं, अभी आदमी पर भरोसा है। अभी भी आदमी से आशा है।

सूफी ठीक ही कहते हैं कि वह सब्र है, सबूर है। धीरज है। धैर्य है। तुम भी कुछ उस जैसे बनो। 'कब तक' मत पूछो।

मैं जानता हूं, हम थक जाते हैं, हम जल्दी थक जाते हैं। थोड़े-बहुत दिन ध्यान किया, मन में होता है: अब कब तक करते रहें? थोड़े-बहुत दिन प्रार्थना की और मन होने लगता है कि यह क्या जिन्दगी भर करते रहेंगे? अभी तक कुछ नहीं हुआ, आगे भी क्या होगा? हमारा मन बड़ा शंकाशील है। उसकी शंकाओं के कारण कभी-कभी हम ठीक दरवाजे पर पहुंचे हुए वापिस लौट जाते हैं। कभी-कभी बस एक हाथ और गड्ढा खोदना था कि कुएं का जल मिल जाता। मगर मन कहता

है: बस बहुत हो गई खुदाई। अभी तक जल नहीं मिला, अब क्या मिलेगा!

मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि पृथ्वी में सब जगह जल है—कहीं थोड़ी गहराई पर, कहीं थोड़ी कम गहराई पर। खोदे जाओ, खोदे जाओ, अगर तुम खोदते ही चले जाओ तो ऐसी कोई जगह नहीं है जहां जल नहीं मिले। देर-अबेर हो सकती है, क्योंकि हर आदमी ने अलग-अलग तरह की मिट्टी अपने आसपास इकट्ठी कर ली है। किसी ने चट्टानें इकट्ठी कर ली हैं, तो खोदने में जरा देर लगेगी। किसी ने बहुत कर्मों का जाल फैला लिया है तो खोदने में जरा देर लगेगी। किसी ने बहुत विचारों का पोषण कर लिया है, तो खोदने में जरा देर लगेगी। मगर एक बात तय है, कहीं से भी खोदो, अगर खोदते जाओ तो जल-स्रोत निश्चित ही मिल जायेंगे। रेगिस्तान से रेगिस्तान में भी खोदते ही चले जाने पर जलस्रोत मिल ही जानेवाले हैं। ऐसा जो व्यक्ति बिलकुल रेगिस्तान जैसा है, वह निराश न हो।

फिर ध्यान और प्रार्थना, भक्ति और पूजा, आरती और अर्चना, इन्हें किसी लक्ष्य से नहीं करना चाहिए। स्वान्तः सुखाय! भजन अपने में ही मस्ती है, और क्या चाहिए? तुम कैसे हो गये हो! तुम कहते हो भजन किया, अब भगवान मिलना चाहिये। जैसे तुमने भजन करके कोई बहुत बड़ा काम कर दिया! जरा घन्टी बजा दी मन्दिर की, बस करने लगे प्रतीक्षा, कि कब तक? हे प्रभु, कब तक?

उमीदे-मर्ग कब तक, जिन्दगी का दर्दे-सर कब तक?
ये माना सब्र करते हैं मुहब्बत में, मगर कब तक?

जरा मंदिर की घन्टी बजा दी और पूछने लगे—मगर कब तक?... कि जरा दो फूल चढ़ा दिये और पूछने लगे—अब और कितनी देर है? तुम जरा सोचो भी तुम क्या मांग रहे हो? अगर अनन्त काल की यात्रा के बाद भी वह मिले तो मुफ्त में मिला, याद रखना। हमारे किये का मूल्य क्या हो सकता है? हमारे कृत्य का अर्थ क्या है? हमारे कृत्य से उसके मिलन का कोई कार्य-कारण सम्बंध थोड़े ही है, कि तुम पूछो, कब तक; कि मैंने इतना किया—इतने उपवास, इतने प्राणायाम, इतने ध्यान, इतनी प्रार्थनाएं—अब कब तक? तुम क्या सोचते हो, तुम्हारे कृत्य से परमात्मा मिलता है? कृत्य का परिणाम है परमात्मा?

नहीं; अगर तुम कृत्य में आनंदित हो, तो मिलता है। कृत्य का परिणाम नहीं है—कृत्य की आन्तरिकता है, कृत्य की हार्दिकता है। इस भेद को समझ लेना। कृत्य का परिणाम नहीं है—कृत्य की हार्दिकता। कितनी हार्दिकता से प्रार्थना की थी, इससे मिलता है। कितनी बार की, इससे नहीं। प्रार्थना में कितने झुक गये थे, इससे मिलता है। कितनी बार झुके, इससे नहीं। परमात्मा और तुम्हारे बीच कृत्य के परिमाण और मात्रा का भेद नहीं है—कृत्य की गहराई का, त्वरा की, तीव्रता

का। इसलिए कहता हूं स्वान्तः सुखाय! प्रार्थना करना——प्रार्थना के आनंद के लिए। परमात्मा की बात ही मत उठाओ। मस्त हो जाओ प्रार्थना में। प्रार्थना अपने में ही इतनी अद्भुत है कि क्या फिकर परमात्मा की!

मेरे पास नास्तिक आ जाते हैं। वे कहते हैं : क्या हम भी ध्यान कर सकते हैं। मैं उनसे कहता हूं : तुम ही कर सकते हो। क्योंकि आस्तिक आता है तो वह जल्दी-जल्दी पूछने लगता है——

उमीदे-मर्ग कब तक, ज़िंदगी का दर्द-सर कब तक?
ये माना सब्र करते हैं मुहब्बत में, मगर कब तक?

तुम्हें तो कोई झंझट ही नहीं, कोई परमात्मा तो है ही नहीं, जो मिलना है, तुम ध्यान मजे से करो। तुम्हारा ध्यान जल्दी परिणाम लायेगा। क्योंकि तुम्हारे सामने कोई लक्ष्य है ही नहीं। तुम तो ध्यान के लिए ध्यान कर रहे हो। ज़रूर करो!

गीत का अपना आनंद है। गाने का अपना आनंद है। गुनगुनाने का अपना आनंद है। तुम इसको भी मोल-तोल करने लगते हो? भाव बिठाने लगते हो कि देखो एक गाना गाया, अब मिलो!...कि देखो कितना सिर हिलाया, अब मिलो!... कि मैं नाच्यो बहुत गोपाल, अब मिलो!.... कि देखो तो पसीना बहा जा रहा है, आखिर कब तक पसीना बहाऊं? हे प्रभु, प्रतीक्षा कब तक?

नहीं; ऐसे मिलन नहीं होगा। मिलन जरूर होता है, मगर उसका द्वार तुम चूके जा रहे हो। प्रार्थना की मस्ती, प्रार्थना की रसमयता, प्रार्थना का उन्माद, काफी पुरस्कार है। और क्या मांगते हो? पुण्य अपना पुरस्कार स्वयं है। जो स्वर्ग मांगता है पुण्य के द्वारा, वह आदमी सांसारिक है। पुण्य अपना पुरस्कार स्वयं है। कोई नदी में डूबता था, तुम दौड़े और उसे बचा लिया। अब क्या तुम परमात्मा से कहोगे——लिख लो खाते-बही में, कि मैंने एक आदमी को नदी में डूबता था बचाया? अगर तुमने ऐसा कहा, तुम अधार्मिक हो। ऐसा कहकर तुमने परमात्मा से सम्बंध तोड़ दिया। जुड़ते-जुड़ते टूट गया। लेकिन किसी को नदी में डूबने से बचा लिया, इसका अपना ही आनंद है, पुरस्कार मिल गया!

मेरी विचार-सरणी में पाप का फल पाप में ही मिल जाता है? पुण्य का फल भी पुण्य में मिल जाता है। फल प्रतीक्षा नहीं करते। आज आग में हाथ डालोगे, आज जल जाता है। कोई ऐसा थोड़े है कि अगले जन्म में जलेगा। अभी जल जाता है। और अभी किसी को प्रेम से देखो, अभी किसी गिरते को सम्हाल लो, अभी किसी प्यासे को पानी पिला दो, अभी किसी का हाथ आनंद-भाव से अपने हाथ में ले लो——पुरस्कार अभी मिल गया। तुम इसी क्षण स्वर्ग का एक कण पा

गये। ऐसा थोड़े ही है कि यह तुम करते रहोगे, करते रहोगे, फिर बाद में तुम्हें स्वर्ग मिलेगा।

परमात्मा उधार नहीं है। परमात्मा नकद है। परमात्मा अभी दे देता है। मगर तुम्हारी नजर अगर आगे पर अटकी है तो तुम चूक जाते हो। वह देता है, लेकिन तुम देख नहीं पाते, क्योंकि तुम्हारी नजर आगे अटकी है——कब मिलेगा परिणाम——कब तक?

भूलो परमात्मा को, भूलो स्वर्गों को, भूलो मोक्ष की भाषा! जियो क्षण को, उसी क्षण में, चाहे पूजा करो, चाहे प्रार्थना, चाहे ध्यान, चाहे सेवा——मगर उसी क्षण में इतने डूब जाओ कि उस क्षण के पार और कुछ बचे ही न। ऐसा भी अगर हो जाये कि परमात्मा आकर द्वार पर खड़ा हो तो तुम्हें अपनी प्रार्थना में इतने मस्त होना चाहिये कि परमात्मा दिखाई भी न पड़े।

तुम्हें पता है न पंढरपुर में जो मूर्ति है विठोबा की, उसके पीछे ऐसी ही कथा है कि एक भक्त अपनी मां के पैर दाब रहा है। मां बूढ़ी है, थकी-मांदी है। मृत्यु उसकी करीब है। कृष्ण का भक्त है। और कृष्ण उसकी भक्ति से बड़े प्रसन्न हैं। और वे आकर दर्शन देने को तत्पर खड़े हो गये। लेकिन उस भक्त ने पीछे लौटकर भी नहीं देखा। उसने कहा : आना थोड़ी देर से, अभी मैं मां के पैर दाब रहा हूं। अब ऐसा कोई भक्त हो तो उसको कृष्ण छोड़ कर जा भी कैसे सकते हैं! तो वे वहीं खड़े रहे। देखा कि वे वहीं खड़े हैं सज्जन, जाते ही नहीं, तो भक्त के पास एक ईंट पड़ी थी, उसने ईंट सरका दी और कहा, इस पर बैठ जाओ या इस पर खड़े रहो। मगर अभी बीच में बाधा मत देना। अभी मैं मां की सेवा कर रहा हूं।

कृष्ण उस ईंट पर खड़े रहे। विठोबा की जो मूर्ति है पंढरपुर में, उसके पीछे ऐसी प्यारी कथा है। कथा हुई या नहीं यह बात महत्त्वपूर्ण नहीं है, लेकिन मैं जानता हूं भक्त की यही दशा होती है। वह भक्ति में ऐसा लीन होता है, सेवा में ऐसा तल्लीन होता है, अपने कृत्य में ऐसा डूबा होता है, कि परमात्मा आकर भी खड़ा हो जाये तो वह कहे खड़े रहो, अभी जरा बाहर बैठो बैठकखाने में! अभी मैं प्रार्थना में तल्लीन हूं। अभी बाधा न दो। अभी अड़चन न डालो।

एक यह दशा और एक यह दशा कि तुम प्रार्थना करते हो और बीच-बीच में लौटकर देख लेते हो कि विठोबा अभी तक आये कि नहीं आये। प्रार्थना खण्डित हो गई। प्रार्थना तुमने भ्रष्ट कर दी। ऐसा हो सके तो तुम अभी पा लो। कल की भी कोई जरूरत नहीं।

मैं जानता हूं, आदमी का मन आखिर आदमी का मन है। और शिकायत की हमारी पुरानी आदत है। जन्म-जन्म का अभ्यास, प्रार्थना में भी बीच-बीच में शिका-

यत आ जाती है। कभी-कभी मन नाराज भी हो जाता है। मैं समझता हूं मनुष्य की कमजोरी। मगर इन सारी कमजोरियों को धीरे-धीरे छोड़ देना है, तो ही तुम पात्र बनोगे।

इक बार ही जीने की सजा क्यों नहीं देते।
गर हर्फे-गलत हूं तो मिटा क्यों नहीं देते।।
इस दर्दे-शबे-हिज्र की लज्जत है पुरानी।
देना है तो फिर दर्द नया क्यों नहीं देते।।
साया हूं तो फिर साथ न रखने का सबब क्या।
पत्थर हूं तो रस्ते से हटा क्यों नहीं देते।।

कभी-कभी भक्त नाराज भी हो जाता है कि अब बहुत हो गया। शास्त्र तो यही कहते हैं कि तुम्हारा साया हूं, तुम्हारी माया हूं, साया हूं तो फिर साथ न रखने का सबब क्या? तो फिर भक्त पूछने लगता है कि फिर मामला क्या है? अगर मैं तुम्हारी छाया हूं तो फिर मुझे अपने साथ रखो। और अगर साया नहीं हूं, पत्थर हूं, तो रस्ते से हटा क्यों नहीं देते? तो एकबारगी खतम करो। फिर मुझे मिटा ही डालो। फिर मुझे बचाने की क्या जरूरत? फिर मुझे जीवन क्यों दिये जाते हो? इक बार ही जीने की सजा क्यों नही देते? अगर गलत हूं तो एक बार निपटारा कर दो। गर हर्फे-गलत हूं तो मिटा क्यों नहीं देते? अगर गलत अक्षर लिख गया है तुमसे, तो मिटा दो, पोंछ डालो। मगर यह रोज-रोज की झंझट क्या? यह रोज-रोज का कष्ट, यह रोज-रोज की प्रतीक्षा क्या? माना कि भक्त को कभी शिकायत आ जाती है, मगर जब तक शिकायत आती है तब तक भगवान नहीं आता। प्रार्थना जब शिकायत-शून्य हो जाती है तब प्रार्थना पूर्ण होती है। जब तुम कहते हो कि जैसा है, सुन्दर है। तुम्हारा न होना भी सुन्दर है। तुम्हारा इन्तजार भी सुन्दर है। तुम्हारा न मिलना भी सुन्दर है। होगा ही सुन्दर। जरूरत होगी इसकी। आवश्यकता होगी मेरी। यूं ही तुम मुझे निखारोगे। यही तुम्हारा उपाय है मुझे गढ़ने का। यूं ही तुम मुझे जलाओगे। यूं ही तड़फाओगे। ऐसे ही जला-जला कर, तड़फा-तड़फा कर, तुम मुझे कुन्दन बनाओगे। मैं जानता हूं, इसलिए सब स्वीकार है। सब अंगीकार है। आज मिलो तो ठीक, कल मिलो तो ठीक, अनन्त जन्मों में मिलो तो ठीक। जब भी मिलोगे तभी जल्दी मिले।

ऐसी प्रतीक्षा की भावदशा चाहिये।

चौथा प्रश्न—

मैं अंध-श्रद्धालु नहीं हूं। पिछले पांच वर्षों से प्रवचन एवं साहित्य के माध्यम से आपके सान्निध्य में हूं, परन्तु अभी कुछ घटित नहीं हुआ है। संन्यास लेने की इच्छा

से यहां आया हूं। क्या ऐसी दशा में संन्यास लेना आत्मवंचना नहीं होगी? कृपया योग्य मार्गदर्शन करें।

✻ चंद्रशेखर, श्रद्धा और अंधी! तो फिर तुम्हें पता ही नहीं कि श्रद्धा क्या है। श्रद्धा अंधी होती ही नहीं। और जो श्रद्धा अंधी होती है वह श्रद्धा नहीं। हालांकि यह सच है कि तर्क से भरी बुद्धि को श्रद्धा हमेशा अंधी दिखाई पड़ती है क्योंकि श्रद्धा की आंखें और हैं, तर्क की आंखें और हैं। तर्क है मस्तिष्क से देखने का ढंग और श्रद्धा है हृदय से देखने का ढंग। श्रद्धा के पास अपनी आंख है, मगर वह आंख तर्क की आंख नहीं है।

तो तर्क सोचता है कि श्रद्धा अंधी है। क्योंकि उसके जैसी आंख श्रद्धा के पास नहीं है। और तर्क की आंख कोई बड़ी आंख नहीं। तर्क की आंख से जो दिखाई पड़ता है वह विराट है। तर्क तो ऐसे ही है जैसे टटोलना, अंधेरे में टटोलना। श्रद्धा ऐसे है जैसे सूरज निकल आया, सब तरफ रोशनी हो गई, सब दिखाई पड़ने लगा।

स्वभावतः जो आदमी सदा टटोलता रहा है, अगर वह किसी आदमी को बिना टटोले चलते देखे, तो वह कहेगा : 'पागल हो गये हो? टकराओगे! भटक जाओगे! टटोलो, बिना टटोले कहीं रास्ता मिला है? जैसे अंधा आदमी अपनी लकड़ी लेकर चलता है, लकड़ी से टटोल-टटोलकर चलता है; जब उसकी आंख ठीक हो जायेगी तो क्या तुम सोचते हो, अब भी लकड़ी से टटोल-टटोलकर चलेगा? लकड़ी को उसी वक्त फेंक देगा।

ऐसी कहानी है कि जीसस के पास एक अंधा आदमी आया, उन्होंने उसकी आंखें छुईं, उसकी आंखें ठीक हो गईं। वह आदमी अपनी लकड़ी टेकता-टेकता आया था। लकड़ी टेकता-टेकता वापिस जाने लगा। जीसस ने चिल्लाकर कहा : 'मेरे भाई, लकड़ी तो छोड़ जा। अब लकड़ी किसलिए?' तब उस अंधे को याद आया कि हां, यह पुरानी आदत। वह जिन्दगी-भर टटोल-टटोलकर चला, लकड़ी ही उसकी आंख थी।

तर्क की आंख बस ऐसी है जैसे अंधे के हाथ में लकड़ी। इसलिए तर्क से देह तो दिख जाती है, आत्मा नहीं दिखती। तर्क से पदार्थ तो दिख जाता है, परमात्मा नहीं दिखता। तर्क से बाहर-बाहर से तो दिखाई पड़ जाता है; भीतर क्या है, इससे सम्बन्ध नहीं जुड़ पाता। यह भी कोई आंख है?

अगर 'अंधा' शब्द का प्रयोग ही करना हो, तो कहना चाहिये, तर्क अंधा है। संदेह अंधा है। श्रद्धा तो कभी अंधी नहीं होती। श्रद्धा तो प्रेम की आंख है। मगर प्रेम के देखने के ढंग जरूर अलग हैं—बिलकुल अलग हैं। बड़े भिन्न हैं।

ऐसे ही समझो कि गुलाब का फूल खिला। अब अगर तुम तर्क की आंख से

देखो, तो सौंदर्य नहीं मिलेगा। कहां है सौंदर्य? अगर तर्कनिष्ठ व्यक्ति हो, तो तुम सिद्ध न कर पाओगे कि सौंदर्य का कोई अस्तित्व है। 'प्रमाण कहां है? दिखाओ, छू कर देखना चाहता हूं सौंदर्य को, मेरे हाथ पर रखो। तराजू पर तोलकर देखूंगा सौंदर्य को। कितना वजन है?' तब तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। तुम कहोगे : भाई, सौंदर्य कोई तौले जानेवाली चीज नहीं और न ही छुए जानेवाली चीज है। और न ही मैं तुम्हें दिखा सकता हूं। अगर तुम्हें दिखाई पड़ता हो तो ठीक, न दिखाई पड़ता हो तो तुम्हें दिखा भी नहीं सकता, फिर भी सौंदर्य है।

लेकिन, अगर व्यक्ति जरूर तर्क में डूबा हो--पूरा डूबा हो--तो तुम्हें हरा कर रहेगा। वह कहेगा : ले चलें इस फूल को हम वैज्ञानिक के पास, इसका विश्लेषण करवायें। देखें क्या-क्या इसके भीतर है। सब मिल जायेगा--मिट्टी मिलेगी, पानी मिलेगा, जल मिलेगा, सूरज की रोशनी मिल जायेगी, और द्रव्य और सब चीजें मिल जायेंगी--सौंदर्य भर नहीं मिलेगा। क्या तुम सोचते हो, सौंदर्य नहीं था?

नहीं; सौंदर्य को देखने की और ही आंख है। उसके लिए काव्य से भरा हुआ हृदय चाहिये। उसके लिए सौंदर्य-संवेदनशीलता चाहिये। अंधा नहीं है कवि। वैज्ञानिक को लग सकता है कवि अंधा है या पागल है। दोनों के ढंग इतने भिन्न हैं।

तर्क सोचता है, श्रद्धा देखती है। तर्क सोचता है, क्योंकि देख नहीं सकता। श्रद्धा को सोचने की जरूरत नहीं पड़ती, क्योंकि देख सकती है। समझना इस बात को। यहां कोई अंधा आदमी बैठा हो, उसको जाना हो बाहर तो वह पूछेगा : भाई, दरवाजा कहां है? पूछने के पहले सोचेगा--किससे पूछूं? उत्तर जाऊं, दक्षिण जाऊं, पूरब जाऊं, पश्चिम जाऊं--दरवाजा कहां है? लेकिन जिस आदमी के पास आंख है, वह बिना पूछे उठेगा और दरवाजे से निकल जायेगा। वह पूछेगा भी नहीं, सोचेगा भी नहीं कि दरवाजा कहां है। उसे दरवाजा दिख रहा है, सोचने की कोई जरूरत नहीं। हम सोचते उन्हीं चीजों के सम्बंध में हैं जो हमें दिखाई नहीं पड़तीं। अंधा सोचता है, आंखवाला गुजर जाता है। तर्कनिष्ठ व्यक्ति सोचता है, सोचता है, सोचता है--सोच-सोच कर निष्कर्ष निकालता है। उसके निष्कर्ष सोच-विचार के निष्कर्ष हैं। उनमें जीवन्त अनुभव नहीं है।

तो चन्द्रशेखर! तुम पूछते हो : मैं अंध श्रद्धालु नहीं हूं।

तो तुम निश्चित अंधे हो। इससे ज़ाहिर है कि तुम तर्क के अंधेपन में पड़े हो। और फिर तुम कहते हो कि 'पिछले पांच वर्षों से प्रवचन एवं साहित्य के माध्यम से आपके सान्निध्य में हूं।' वह भी कोई सान्निध्य में होने का ढंग है? हां, तार्किक व्यक्ति का वह ढंग होगा। वह सुनेगा, जो मैंने कहा; मगर चूक जायेगा उससे, जो अनकहा था। और अनकहा ही सत्य है। कहना तो सिर्फ बहाना है। उसके आसपास

अनकहे को लपेट कर भेजते हैं। कहे के सहारे अनकहे को हृदय में उतारते हैं। तुम कहे को पकड़ लोगे तो ऐसा ही समझो कि दवा तो बोतल में भर कर दी थी, दवा तो फेंक दी, बोतल सम्हाल कर रख ली।

शब्द तो केवल बोतलें हैं। शराब उनके भीतर है। शराब निःशब्द की है।

तो तुम मुझे तर्क से सुन सकते हो, सत्संग नहीं होगा, सान्निध्य नहीं होगा। हां, तुम्हें मेरी बातें ठीक भी लग सकती हैं। और तुम मेरी बातों से प्रभावित भी हो सकते हो। लेकिन वह ठीक लगना, वह प्रभावित होना, बस बुद्धि तक रहेगा। तुम ज्ञानी हो जाओगे। तुम पण्डित हो जाओगे; मगर प्रेमी न हो पाओगे। और प्रेमी के ही पास प्रज्ञा होती है। पण्डित के पास क्या है? कूड़ा-करकट है। वह व्यर्थ को इकट्ठा कर लेता है। साध्य से चूक जाता है, साधन को पकड़ लेता है।

ऐसा ही समझो कि मैंने अंगुली उठाई चांद की तरफ और तुमने मेरी अंगुली पकड़ ली और कहा, यही है चांद। फिर यह अंगुली चाहे कितनी ही प्यारी हो, तुम चूक गये। अंगुली चांद नहीं है। कितनी ही प्यारी अंगुली हो, कि कृष्ण की हो, कि महावीर की हो, कि मुहम्मद की हो, चांद की तरफ इशारा था। चांद को देखना हो तो अंगुली को छोड़ना पड़ता है।

तुम कहते हो : 'आपके साहित्य और प्रवचन से आपके सान्निध्य में हूं।' अंगुली पकड़े बैठो हो, चंद्रशेखर। चांद की तरफ आंख कब उठाओगे? और परिणाम भी साफ है। तुम कहते हो : 'परंतु अभी कुछ घटित नहीं हुआ।' घटित कैसे होगा? घटित होने ही नहीं दे रहे। शब्दों से कहीं कुछ घटित हुआ है? शब्दों की तो कितनी सम्पदा हमारे पास है! उपनिषद् हैं, और वेद हैं, और गीता है, और कुरान है, और बाइबिल है, और धम्मपद है--शब्दों के तो कितने अद्भुत भवन हमारे पास हैं। मगर उनसे क्या मिलता है?

कुरान कण्ठस्थ करने से तुम मुहम्मद नहीं हो जाते। हां, मुहम्मद हो जाओ तो तुम जो बोलेगे वह कुरान जरूर होगा। धम्मपद के विश्लेषण से तुम बुद्ध नहीं हो जाओगे। हां, बुद्ध हो जाओ तो तुम जो बोलोगे वह सभी धम्मपद है। शास्त्र से कोई अनुभूति को उपलब्ध नहीं होता, लेकिन अनुभूति को उपलब्ध हो जाए तो अनुभूति के हिमालय से शास्त्र की गंगाएं बहती हैं--जरूर बहती हैं।

तुमने मेरे शब्द पकड़े। शब्द तुम्हें प्यारे लगे हैं, इसलिए यहां भी आ गये। जिस दिन मैं तुम्हें प्यारा लगूंगा, वह बात और है। वह बात बिलकुल ही और है। उसका मेरे शब्दों से कुछ लेना-देना नहीं। तब सान्निध्य हुआ। फिर कुछ घटेगा, उसके पहले घट नहीं सकता। तब तुम मुझसे जुड़े।

संन्यास और क्या है?--मुझसे जुड़ना, मेरे शब्दों के बावजूद। मैं अगर कल

नहीं बोलूं, कल यहां चुप बैठूं तो चन्द्रशेखर को यहां बैठने का कोई कारण नहीं रह जायेगा। समझना कल अगर मैं चुप बैठूं यहां, बोलूं नहीं, फिर परसों भी चुप बैठूं, चन्द्रशेखर जल्दी ही विदा हो जायेंगे। क्योंकि अब क्या सार है? लेकिन फिर भी कुछ लोग यहां बैठे रहेंगे। जो यहां फिर भी बैठे रहेंगे, वे मुझसे जुड़े हैं, शब्दों से क्या लेना-देना? मैं बोलता था। मैं बोलता था, इसलिए बोलने को भी सुन लेते थे; अब मैं नहीं बोलता हूं तो नहीं बोलने को सुनेंगे। सम्बंध मुझसे था। लेकिन जो शब्दों को सुनने आया है, जिस दिन बोलना बंद कर दूंगा, उस दिन विदा हो जायेगा। उसको फिर कोई प्रयोजन नहीं रहा।

संन्यास का अर्थ होता है: मैं जो कह रहा हूं उससे ज्यादा हूं। जो मैं कह रहा हूं, उसका जोड़ ही मैं नहीं हूं। जो मैं कह रहा हूं वह तो कुछ भी नहीं है। जो मैं कहना चाहता हूं, कहा ही नहीं जा सकता। जो मैं कहना चाहता हूं, उसे कह नहीं पा रहा हूं, उसे कोई कभी नहीं कह पाया। उसे जानने के लिए तो तुम्हें मेरे प्रेम में पड़ना पड़े, तुम्हें दीवाना होना पड़े।

और उसी को तुम अंधश्रद्धा कह रहे हो। अंधश्रद्धा का उपयोग करके तुमने वह दरवाजा बंद कर दिया—प्रेम का दरवाजा। उसको तुम अंधश्रद्धा कह दिये। अभी तुम्हें श्रद्धा का पता ही नहीं है। और श्रद्धा की आंख का भी पता नहीं है। लेकिन तुम्हारे तर्क ने एक निर्णय ले लिया, कि मैं अंधश्रद्धालु नहीं हूं।

भले आदमी! पहले थोड़ा अनुभव तो करो! थोड़े स्वाद तो लो! श्रद्धा को थोड़ा चखो तो! चखने के पहले निर्णय तो न करो।

और मैं तुमसे कहता हूं: श्रद्धा अगर अंधी ही हो, तो भी तर्क की आंख से ज्यादा दूर तक देखती है, ज्यादा गहरा देखती है। अगर तर्क की आंख और श्रद्धा के अंधेपन में चुनना हो, तो मैं तुमसे कहता हूं: श्रद्धा का अंधापन चुन लेना। अगर गणित की आंख और प्रेम के अंधेपन में चुनना हो तो मैं तुमसे कहूंगा: प्रेम का अंधापन चुन लेना, क्योंकि गणित से क्या मिलेगा? कूड़ा-करकट इकट्ठा कर लोगे, ठीकरे इकट्ठे कर लोगे। चालबाज हो जाओगे, चालाक हो जाओगे, कुशल हो जाओगे। मगर जीवन की परम सम्पदा से चूक जाओगे। उस सम्पदा को तो प्रेमी ही जानते हैं, प्रेमी ही पाते हैं।

तो मेरा निवेदन है: श्रद्धा के अनुभव के पहले उस पर नाम मत लगाओ, लेबल मत लगाओ। क्योंकि जिस पर हम गलत लेबल लगा देते हैं, उस तरफ हम जाना बन्द कर देते हैं।

तुमने ख्याल किया कि अगर मंदिर के दरवाजे पर लेबल लगा हो 'संडास,' फिर तुम नहीं जाओगे, फिर जरूरत क्या रही? बात खतम हो गई। और संडास

पर लगा हो 'हनुमान जी का मंदिर' चले, जाना चाहिये!

लेबल से आदमी बड़ा प्रभावित हो जाता है। इसलिए लेबल बहुत सोच-समझकर लगाना। लेबलों से आदमी चलते हैं, आंदोलित हो जाते हैं। शब्द तुम्हारे जीवन के सूत्रधार बन गये हैं।

कुछ कहो मत, लेबल मत लगाओ। यह मन्दिर तुमने अभी जाना नहीं। यह श्रद्धा के मन्दिर में थोड़े कदम रखो। न जंचे तो लौट जाना। मगर एक बार स्वाद तो लो। और मैं तुमसे कहता हूं: जिसने भी स्वाद लिया वह कभी लौटा नहीं। फिर तुम उसे लाख तर्क के भुलावे दो, वह कहता है रखो अपने खिलौने अपने पास। उसके पास कुछ बहुमूल्य चीज हाथ में आ गई है। वह खिलौनों से नहीं उलझता।

तर्क तो ऐसे ही है जैसे कोई आदमी रंगीन कंकड़-पत्थर बीन रहा हो। और श्रद्धा ऐसे है जैसे हीरों की खदान हाथ लग जाये। जिसको हीरों की खदान हाथ लग गई, वह रंगीन कंकड़-पत्थरों में नहीं उलझता; वह कहता है: तुम्हीं खेलो भाई। तुम्हीं तय करो कि ईश्वर है या नहीं? तुम्हीं प्रमाण जुटाओ। तुम्हीं विवाद करो। तुम्हीं पक्षपात में पड़ो। हम तो डूब गये। हम तो डूब कर उबर गये। हालांकि जो किनारे पर खड़ा है वह कहता है कि यह क्या मामला है, तुम डूब रहे मझधार में। लेकिन उसको पता नहीं, एक मजा है डूबने का। डूब कर उबरने का एक रास्ता है। तर्क से बंधे हुए आदमी को श्रद्धालु आदमी ऐसे लगता है—गया बेचारा काम से, डूबा!

> दर्दे मुहब्बत के मारों के सारे सहारे टूट गये।
> कल डूबी थी अपनी कश्ती आज किनारे डूब गये॥
> तुम तूफानों से घबराये तुमने साहिल थाम लिया।
> हम तूफानों से टकराये, हम बेचारे डूब गये॥
> दिल वालों की हिम्मत देखो दिल वालों की किस्मत देखो।
> दिल के सहारे चल निकले थे, दिल के सहारे डूब गये॥
> जिससे सुबह जाग उठती थी, वही सवेरा शाम बना।
> जिनसे रात चमक उठती थी, वही सितारे डूब गये॥
> कश्ती के कुछ काम न आयी, रास हवा की चारागरी।
> जो आये थे पार लगाने, साथ हमारे डूब गये॥
> दिल वालों की हिम्मत देखो, दिल वालों की किस्मत देखो।
> दिल के सहारे चल निकले थे, दिल के सहारे डूब गये॥

प्रेम डुबा देता है। प्रेम मिटा देता है। तर्क बचाता है। लेकिन तर्क बचाता

है, इसीलिए तो तुम अहंकार से घिरे रह जाते हो। प्रेम डुबा देता है। अहंकार चला जाता है। प्रेम आत्मघात है। लेकिन उसी आत्मघात में परमात्मा का फूल खिलता है। बाहर-बाहर से देखोगे तो मुश्किल में पड़ जाओगे, कुछ का कुछ निर्णय ले लोगे। मझधार में कोई डूबता होगा, तो तुम कहोगे कि पहले ही कहा था कि मत जाओ, ऐसे मत उतरो अंधे की तरह, डूब जाओगे! हम भले, किनारे पर तो हैं, बचे तो हैं!

मगर तुम्हें पता ही नहीं, कि तुम बचने के कारण ही मिट रहे हो और वह आदमी मिटने के कारण पहुंच रहा है।

जीसस का वचन याद करो। जीसस ने कहा है: जो अपने को बचायेंगे वे अपने को खो देंगे। और जो अपने को खोने की हिम्मत करेंगे, वे बचा लिये गये।

आओ श्रद्धा के मंदिर में! थोड़े खोपड़ी से नीचे उतरो, चन्द्रशेखर! थोड़े हृदय में जाओ! विचार से उतरो थोड़ा भाव में—भाव के कुएं में डुबकी मारो! संन्यास का और कोई अर्थ नहीं होता।

अब तुम पूछते हो: 'अभी कुछ घटित नहीं हुआ है। संन्यास लेने की इच्छा से यहां आया हूं।' वह इच्छा भी तर्क के ही कारण होगी। मैं तुम्हें संन्यास दूंगा भी नहीं, अगर तुम तर्क के कारण लेना चाहो। क्योंकि मेरा कोई भरोसा है, आज मैंने एक बात कही तुम्हें जंच गई और तुमने संन्यास ले लिया; कल मैं उलटी बात कह दूंगा, तुम्हें नहीं जंचेगी, फिर तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। और मैं तो रोज बातें बदलता रहता हूं। जिनका प्रेम का नाता है वे ही टिक पाते हैं मेरे पास। नहीं तो जो बात के कारण रुका है, एक दिन रुक जाता है, दूसरे दिन पाता है: यह तो मामला गड़बड़ हुआ, यह तो बात दूसरी कह दी अब, यह तो जचती नहीं। एक बात जंच गई थी, रुक गया था; एक बात नहीं जंचती, अब क्या करे? लेकिन जिसको बात का सवाल ही नहीं है, जिसे मैं जंच गया, वह फिर रुका है। फिर मैं कहूं ईश्वर है तो रुका है और किसी दिन कह दूं कोई ईश्वर नहीं, तो भी वह फिकर नहीं करता, तो भी रुका है। वही संन्यासी है। फिर वह कहता है कि तुम कुछ भी करो, तुम कुछ भी कहो, हम तो रुक गये। अब हमारा यहां से जाने का सवाल ही नहीं उठता। अब तुम्हारे कहने में हम न उलझेंगे। अब तो कहने के पीछे जो छिपा है, उसकी हमें झलक मिलने लगी है। अब तो उससे हमारा संबंध हो गया है।

तुम्हारे मन में इच्छा उठी होगी। सोचा होगा: 'किताबें पढ़ने में इतना आनंद आ रहा है, विचार समझने में इतना सुख मिल रहा है, क्यों न संन्यास लें! शायद और ज्यादा आनंद मिले!' तुम झंझट में पड़ जाओगे। और लोगों को झंझट में डालना मेरा धंधा है।

ऐसा बहुत बार हो जाता है, एक आदमी एक बात मेरी सुन लेता है, उसे बिलकुल जंच जाती है, फिर दूसरे दिन मैं ज्यादा देर उस बात को टिकने नहीं देता। मैं विरोधाभासी हूं। मैं खुद ही उसका खण्डन कर देता हूं। क्योंकि मुझे तुम्हें किसी बात में नहीं उलझाना है, इसलिए खण्डन कर देता हूं। मैं तुम्हें वहां ले चलना चाहता हूं जहां सब बातें समाप्त हो जाती हैं। इसलिए कहता हूं और मिटाता चलता हूं। एक हाथ से बनाता हूं, एक हाथ से मिटाता हूं। क्योंकि तुम्हें ले चलना है उस जगह, जहां सब विचार शून्य हो जाते हैं, जहां सब तर्क विलीन हो जाते हैं, जहां चित्त में कोई तरंग नहीं होती, जहां सब निस्तरंग हो जाता है। तुम्हें एक तरंग पसंद है, तुम मेरे पास आ गये। कल मैं उस तरंग को मिटाऊंगा, फिर तुम्हारे प्राणों पर बड़ी बुरी बीतेगी।

ऐसा इन बीस वर्षों में अनेक बार हुआ है। अनेक तरह के लोग मेरे पास आये और गये। यह मेरी लोगों को छांटने की प्रक्रिया है। मगर कुछ लोग बैठे हैं सो बैठे हैं। देखा, तरु कैसे पांव पसार कर बैठी है! कुछ लोग बैठे हैं सो बैठे हैं। उन्होंने बैठक मार ली है। वे कहते हैं: तुम कितना ही धक्का दो, तुम यह कहो, वह कहो, हम सुनते नहीं। हमें शब्दों से ज्यादा कुछ अनुभव में आना शुरू हुआ है। वे ही संन्यासी हैं—जो ऐसे बैठ गये।

तो चन्द्रशेखर! तैयारी हो संन्यास की तो तर्क से मत लेना। प्रेम से लेना। तब कुछ होगा। तर्क से लो, झंझट आयेगी। पहले तो तर्क से लिया तो असली संन्यास तो घटित ही नहीं होगा। और जब असली संन्यास घटित नहीं होगा, तुम दो-चार दिन बाद सोचोगे: संन्यास भी ले लिया, अभी भी कुछ नहीं हो रहा है। अभी भी कुछ घटित नहीं हुआ है! यह तो क्या हुई बात? गैरिक रंग में रंगे गये, पागल बने। अब माला पहन जहां जाते हैं, लोग हंसते हैं। और कुछ घटित भी नहीं हुआ है—न परमात्मा मिला है, न मोक्ष, न ध्यान—कुछ भी नहीं हुआ।

संन्यास ही नहीं हुआ, इसलिए कुछ और तो होगा ही नहीं। संन्यास ही तर्क से लिया था, हिसाब से लिया था, गणित से लिया था, समझदारी से लिया था। नासमझी से छलांग लगाओ। पागलपन से छलांग लगाओ। तर्क इत्यादि हटा कर रख दो। मुझे देखो! मैं क्या कह रहा हूं, इसकी फिकर मत करो। मेरे शब्दों के बीच-बीच में जो खाली जगह है, उनको सुनो। दो पंक्तियों के बीच में जो रिक्त स्थान है, उसमें डुबकी मारो, तो तुम मुझे समझोगे। तो इशारा पहचान लिया जायेगा। तब एक संन्यास घटित होगा, जिसमें तुम रोज-रोज मेरे करीब आते चले जाओगे। और उसी करीब आने में कलियां खिलेंगी, फूल उभरेंगे, तारे निकलेंगे। वह सब अपने-आप हो जाता है।

मगर पहले बात पहली घटनी चाहिये। पहली ही न घट पाये तो मुश्किल हो जाती है। पहली घट गयी तो बाकी सब तो घटती हैं। बीज बो दिया तो फिर थोड़ी देर-अबेर वर्षा भी आयेगी, अंकुर भी फूटेंगे। लेकिन बीज ही न बोया हो तो वर्षा भी आ जाये, अंकुर कहां से फूटेंगे?

और ख्याल रखना, बीज श्रद्धा का होता है, तर्क का कोई बीज नहीं होता। तर्क तो कंकर है--बांझ! उसमें से पैदा न कभी हुआ है, न कभी कुछ हो सकता है। बुद्धि तो बांझ है। जो कुछ भी पैदा होता है, हृदय से पैदा होता है। हृदय से संन्यास लो, तो बहुत कुछ घटेगा। रोज-रोज घटता जायेगा। तुम भरोसा ही न कर सकोगे कि कैसे घट रहा है, किस शून्य से घटता जा रहा है। पहली बात घट गई तो शेष सब अपने-आप घट जाता है।

आखिरी प्रश्न--

आंखिन में तिमिर अमावस की रैन जिमि।
जम्बुनद-बूंद जमुना जल तरंग में।।
यों ही मेरो मन मेरो काम को न रह्यो माई।
रजनीश रंग है करि समानो रजनीश रंग में।।

❋ शिवानंद, धन्यभागी हो तुम! यह रंग मेरा नहीं, परमात्मा का रंग है। तुम्हें तो मैं दिखाई पड़ रहा हूं, मुझे परमात्मा दिखाई पड़ रहा है। तुम मेरे रंग में डूब रहे हो; मेरा कोई रंग नहीं है, यह रंग परमात्मा का ही है। जल्दी ही तुम पाओगे, डूब-डूब कर पाओगे कि मैं तो बीच से हट गया, परमात्मा प्रगट हो गया है। गुरु का इतना ही अर्थ है।

गुरु का एक हाथ परमात्मा के हाथ में है और एक हाथ शिष्य के हाथ में। ऐसे गुरु सेतु बन जाता है। गुरु पर रुकना नहीं है। गुरु से पार हो जाना है। गुरु का सहारा लेकर उस जगह पहुंच जाना है जहां सहारे की कोई जरूरत न रह जाये।

तो मैं तुम्हें अपने रंग में भी रंगता हूं, और फिर जल्दी ही तुम्हें यह याद भी दिलाता हूं कि यह मेरा रंग नहीं है। मेरा रंग क्या होगा? मैं ही नहीं हूं, मेरा रंग क्या होगा? रंग तो उसका ही है। मैं तो सिर्फ उपकरण हूं।

ऐसा समझो कि मैं पिचकारी हूं, रंग उसका है। पिचकारी का कोई रंग होता है? बांसुरी हूं। स्वर उसका है। बांसुरी का कोई स्वर होता है? तुम्हें बांसुरी दिखाई पड़ रही है, क्योंकि उसके अदृश्य ओंठ अभी तुम्हारी देखने की क्षमता नहीं। लेकिन बांसुरी भी दिखाई पड़ गई है, तो ज्यादा देर न लगेगी, उसके अदृश्य ओंठ भी जल्दी ही दृश्य हो जायेंगे।

जिसको गुरु दिखाई पड़ गया, उसे परमात्मा दिखाई पड़ना बहुत दूर नहीं है। आधी यात्रा पूरी हो गई।

तुम धन्यभागी हो! डूबो इस रंग में! डूबते चले जाओ। जल्दी ही तुम पाओगे कि चले तो तुम मुझमें डूबने थे, डूब गये परमात्मा में। मैं तुम्हारे लिए द्वार हो जाऊं, इतना ही इस संन्यास का प्रयोजन है।

आंखिन में तिमिर अमावस की रैन जिमि
जम्बूनद-बूंद जमुना जल तरंग में।

ऐसे ही डूब जाओ!

यूं ही मेरो मन मेरो काम को रह्यो न माई।

ठीक कह रहे हो। नाकाम हुए तो काम के हुए। अब तुम्हारा मन तुम्हारा न रह जायेगा। तुम हटोगे, मैं तुम्हारी जगह विराजमान हो जाऊंगा। और फिर दूसरे कदम में, आधी यात्रा में, मैं भी विलीन हो जाऊंगा और परमात्मा ही शेष रह जायेगा।

ऐसी इस अद्भुत यात्रा पर तुम निकल पड़े, और यह अद्भुत यात्रा भी तुमने आधी पूरी कर ली, इसके लिए तुम्हारा धन्यवाद करता हूं। साधु! साधु!

आज इतना ही।

सद्गुरु की महिमा

नौवां प्रवचन : दिनांक ९ जून, १९७८; श्री रजनीश आश्रम, पूना

धीरजवंत अडिग्ग जितेन्द्रिय निर्मल ज्ञान गह्यौ दृढ़ आदू।
शील संतोष क्षमा जिनके घट लगि रह्यौ सु अनाहद नादू।।
मेष न पक्ष निरंतर लक्ष जु और नहीं कछु वाद-विवादू।
ये सब लक्षन हैं जिन मांहि सु सुंदर कै उर है गुरु दादू।।

कोउक गौरव कौं गुरु थापत, कोउक दत्त दिगंबर आदू।
कोउक कंथर कोउ भरथ्थर कोऊ कबीर कोऊ राखत नादू।
कोई कहे हरिदास हमारे जु यों करि ठानत वाद-विवादू।
और तौ संत सबै सिरि ऊपर, सुंदर कै उर है गुरु दादू।।

गोविंद के किये जीव जात है रसातल कौं
गुरु उपदेशे सु तो छुटें जमफंद तें।
गोविंद के किये जीव बस परे कर्मनि कै
गुरु के निवाजे सो फिरत हैं स्वच्छंद तै।।

गोविंद के किये जीव बूड़त भौसागर में,
सुन्दर कहत गुरु काढें दुखद्वंद तै।
औरऊ कंहांलौं कछु मुख तै कहै बताइ,
गुरु की तो महिमा अधिक है गोविंद तै।
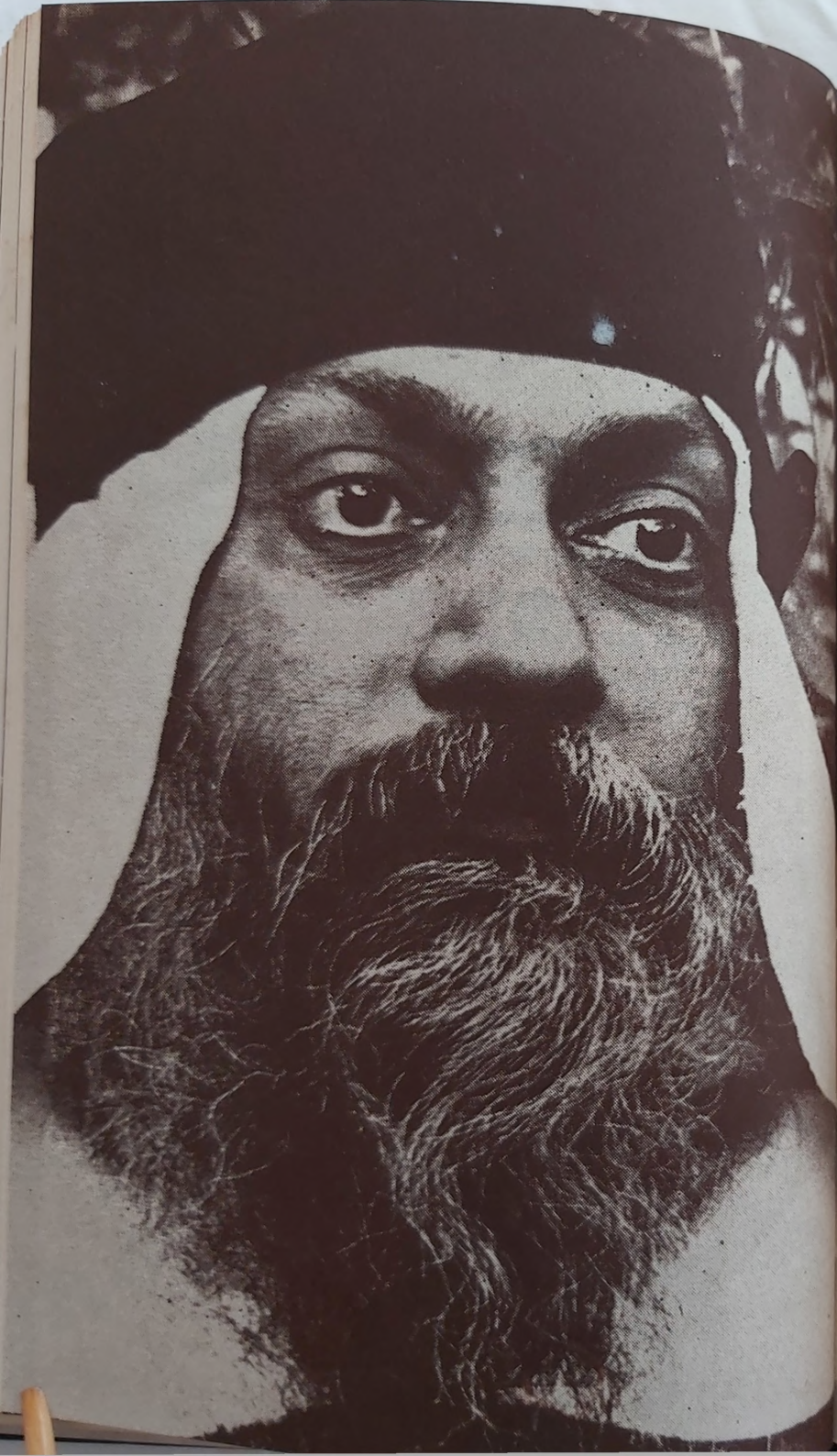
ज्ञान की धरती
लगन की
साधना के नीर सींची
भावना की खाद डाली
ऋतु समय से
प्रेम के कुछ
बीज बोए——
कल
उगेंगे अरुण अंकुर
कसमसाकर
तोड़ मिट्टी की
तरुण सोंधी परत को
धूप नूतन रूप देगी
मेघ वर्षा में
सघन घिर कर
बरस कर
तर करेंगे मूल तक को
गंध फूटेगी गमक कर
गांव वन उपवन——
हंसेंगे——
घर नये उजड़े बसेंगे
प्राण प्राणों से जुड़ेंगे
मुक्ति कण-कण को छुएगी
शरद की गीली हवाओं

के परस से
नये पत्ते, नये कल्ले
नयी कलियां, खिल उठेंगी
रंग फूटेंगे धरा पर
इन्द्रधनुषी——
सुरभि से उद्यान महकेगा अनवरत——
कर्म-श्रम निष्फल कभी होता नहीं है——
है अटल विश्वास सुख के
शांति के आनंद के फल-फूल
निश्चित ही मिलेंगे ।

जीवन जितना तुमने मान रखा है, उतना नहीं है । जीवन बहुत बड़ा है। तुमने तो जीवन के प्रथम चरण को ही मंजिल मान लिया है । इससे ही दुखी हो। जैसे कोई बीज को ही फूल मान ले। इससे परेशान हो । क्षुद्र को विराट मान लिया है। असार को सार मान लिया है । रात को ही दिन मानकर बैठ गये हो। फिर टकराते हो अंधेरे में। फिर भरमाते हो अपने को।

और सुबह हो सकती है। और सुबह की संभावना लेकर तुम पैदा हुए हो । आत्मा का और क्या अर्थ है ?——सुबह की संभावना ।

आत्मा का और क्या अर्थ है ?——कि देह पर हम समाप्त नहीं हैं।

आत्मा का और क्या अर्थ है ?——क्षुद्र के पीछे विराट छिपा है; कि रूप के पीछे अरूप छिपा है; कि गुण की तो तरंगें हैं, सागर निर्गुण का है । लेकिन जो मिला है, बीज की तरह मिला है । और यह शुभ है कि बीज की तरह मिला है । क्योंकि जब फूल, तुम स्वयं श्रम करोगे और खिलेगा, तो आनंद की वर्षा होगी। अगर फूल तुम्हें ऐसे ही मिल जाये, मुफ्त मिल जाये, तो तुम्हारे जीवन में कोई आनंद की संभावना न रह जायेगी। परमात्मा ने सिर्फ अवसर दिया है ।

एक सम्राट अपने तीन बेटों में सम्पत्ति बांटना चाहता था । किसको राज्य दे, किसको कितनी सम्पत्ति दे, कैसे बांटे——बड़ी उलझन में था। एक फकीर से पूछा। उस बुजुर्ग ने कहा : यह छोटा-सा उपाय करो । तीनों बेटों को कुछ रुपये दे दो। तीनों के अलग-अलग महल हैं और उन तीनों को कह दो कि इस पूर्णिमा की रात्रि, मैं आकर तुम्हारे महलों का निरीक्षण करूंगा । इन थोड़े-से रुपयों में अपनी बुद्धिमानी दिखलाओ । महल को भर दो किसी चीज से ।

रुपये थोड़े थे, महल बड़े थे । पहले ने सोचा कि महल को इतने-से रुपयों में कैसे भरा जा सकता है? सस्ती से सस्ती चीज क्या होगी? उसे कुछ न सूझा।

उसे एक ही बात सूझी कि गांव-भर का जो कचरा गांव के बाहर फेंका जाता है, वही ढोया जा सकता है महल तक उतने रुपयों में । सिर्फ ढोआई लगेगी । उसने सारा गांव का कचरा आठ-दस दिन तक रोज ढोया, सारे महल को भर दिया । . . .भर दिया जरूर । भयंकर बदबू और दुर्गंध उठने लगी । पास-पड़ोस के लोग तक परेशान हो गये। राहगीर नाक बंद करके चलने लगे रास्तों से ।

दूसरे ने सोचा, कचरे से घर भरना तो ठीक नहीं। बाप क्या कहेगा? लेकिन इतने थोड़े-से रुपये में घर को भरा कैसे जाये ? वह सोच-विचार में ही पड़ा रहा, सोच-विचार में ही पड़ा रहा । दिन आये, और बीते, उसकी चिन्ता बढ़ती चली गयी। पूर्णिमा आयी तब तक वह विक्षुब्ध हो चुका था। इतना सोचा, इतना सोचा सोया नहीं, खाया नहीं, पिया नहीं। पिये कैसे? खाये कैसे? परीक्षा का दिन करीब आ रहा है और इतने से रुपये में महल भरा नहीं जा सकता ।

तीसरे बेटे ने सिर्फ घी के दीए जलाए । रोशनी से सारा घर भर गया। घी की सुगंध से सारा घर भर गया। थोड़े-से फूल लाया, द्वार पर लटकाये । बेला की महक सारे महल में भर गयी। एक वीणा-वादक को बुला लाया । उससे वीणा बजवायी, संगीत का सागर लहराने लगा ।

बाप उस बूढ़े फकीर को लेकर चला । पहले बेटे के घर में तो प्रवेश करना ही मुश्किल था। बाप ने कहा : इसने भर तो दिया, मगर कचरे से। गणित तो पूरा कर दिया, लेकिन बुद्धिमत्ता का कोई प्रमाण नहीं दिया। दूसरे के घर पहुंचा तो घर अंधेरा पड़ा था, खाली था, बेटा तो पागल हो गया था । वह तो पागलों की तरह चिल्ला रहा था, सिर पीट रहा था। उसने अपने पागलपन से ही महल को भर दिया था। तीसरे बेटे के द्वार पर पहुंचा, बाप की कुछ समझ में न आया। संगीत की लहरें उठ रही थीं, घी के दीये जले थे, फूलों की महक थी । लेकिन बाप ने कहा : महल भरा नहीं है, महल खाली है। उस बुजुर्ग संत ने कहा : जिस ढंग से इसने भरा है, उसे देखने के लिए भी आंखें चाहिए। तुम भी अंधे मालूम होते हो। रोशनी से भरा है । अब रोशनी पर मुट्ठी नहीं बांधी जा सकती, न रोशनी को छुआ जा सकता है । लेकिन भरा तो है । संगीत से भरा है। और तुमने तो एक चीज से भरने को कहा था, इसने तीन चीजों से भर दिया है——रोशनी से, संगीत से, सुगंध से। उतने ही रुपयों में।

ऐसे ही जीवन मिलता है। तुम किससे भरोगे अपने को? अधिक लोग कूड़ा-कचरे से भर लिये हैं। धन है, सम्पति है, पद है, प्रतिष्ठा है——कूड़ा-कचरा है। यहीं का यहीं पड़ा रह जायेगा। तुमसे पहले किसी और का था, तुम्हारे बाद किसी और का होगा । बड़ा जूठा है । आदमी दूसरों के कपड़े नहीं पहनना चाहता, लेकिन

जिन कुर्सियों पर न मालूम कितने लोग बैठ चुके, उन कुर्सियों पर बैठने में आतुर होता है। कितने सम्राट हो चुके, कितने राष्ट्रपति, कितने प्रधानमंत्री दुनिया में, मगर लोग पागल हैं। दूसरे का उतारा हुआ कपड़ा न पहनोगे, दूसरे की उतारी हुई जूती न पहनोगे, लेकिन जिन कुर्सियों पर कितने ही लोग घसटे और गुजरे और समाप्त हुए, जिन कुर्सियों पर सिवाय जूठन के कुछ भी नहीं बचा है, उनके लिए दीवाने हो, उनके लिए पागल हो। धन के जिन ठीकरों को तुम इकट्ठे कर रहे हो वे कल किसी और के थे। वे किसी के सगे नहीं हैं।

धन तो वेश्या जैसा है। आज इसका कल उसका। धन का भरोसा क्या है! अभी है, अभी नहीं हो जायेगा। तुम्हारे पास भी कैसे आया है, जरा गौर से तो देखो। किसी के पास से आया है। धन से ज्यादा गंदी चीज पृथ्वी पर दूसरी नहीं है, क्योंकि कितने हाथों में चलती है। इसलिए तो अंग्रेजी में उसको 'करेन्सी' कहते है। करेन्सी का मतलब, जो चलती ही रहती है। एक हाथ में घिसी, दूसरे हाथ में गयी। दूसरे हाथ में घिसी, तीसरे हाथ में गयी। देखते हो, नोट की कैसी गति हो जाती है! चिथड़ जाता, गंदा हो जाता, दुर्गंध देने लगता है। न मालूम कितने खीसों में, न मालूम कितनी तिजोड़ियों में, न मालूम कितने लोगों के पसीने की बदबू, न मालूम कितने हाथों का मैल उस पर लगता है। इस कूड़ा-करकट को हम इकट्ठा कर लेते हैं, और सोचते हैं जीवन भर लिया।

तुम्हारी जिंदगी से उठती दुर्गंध देखो। तुमने पहले राजकुमार की बात कर ली है। तुम्हारी जिंदगी से उठती हुई उदासी देखो। तुम्हारी जिंदगी से उठता हुआ बिषाद देखो। तुम्हीं नहीं दुर्गंध से भर गये हो, तुम्हारे पास-पड़ोस के लोग भी तुम्हारी दुर्गंध से पीड़ित हैं। यह भी हो सकता है कि तुम्हें दुर्गंध का पता ही न चलता हो अब। क्योंकि व्यक्ति अगर दुर्गंध में ही रहे, तो नासापुट फिर दुर्गंध का अनुभव नहीं करते, जड़ हो जाते हैं, मृत हो जाते हैं। उनकी संवेदनशीलता खो जाती है।

या कुछ लोग हैं, जो इसी ऊहापोह में पागल हो रहे हैं कि क्या करें, क्या न करें; यह करें, वह करें। सांसारिक लोग हैं पहले राजकुमार की भांति। उन्होंने जीवन को कचरे से भर लिया है। जीवन के महल को कचरे से भर लिया है। महल कचरों से भरने के लिए नहीं होता। जीवन के मंदिर को कचरे से भर लिया है। जहां परमात्मा विराजमान हो सकता था, वहां क्षुद्र चीजों को बिठा लिया है। कुछ थोड़े-से लोग दूसरे राजकुमार की भांति हैं, जो ठिठके खड़े हैं, किंकर्तव्यविमूढ़; जिनके जीवन में कोई दिशा नहीं है। जो पैर ही नहीं उठा सकते; जिनके पैरों को पक्षाघात हो गया है, क्योंकि वे तय ही नहीं कर पाते--क्या करें, क्या न करें? इतने घबड़ाये

हैं, इतने परेशान हैं। इधर पैर बढ़ाते हैं, तो लगता है कहीं भूल न हो जाये। उधर पैर बढ़ाते हैं तो लगता है कहीं भूल न हो जाये। और यहां इतने मत हैं, इतने मतान्तर हैं, इतने शास्त्र हैं, इतने उपदेष्टा हैं--किसकी मानें, किसकी न मानें?

> उड़ा-उड़ा-सा रंग है
> वो आ रही है जिस तरह कटी हुई पतंग है
> निढाल अंग-अंग है
> अजीब रंग-ढंग है
> अयाग है, न बाग है, रबाब है, न चंग है
> नदामतों में जंग है
> बुझी-बुझी उमंग है
> ये रास्ता तबील है, वो रहगुजर तंग है
> वह रह-गुजर तंग है
> इन उलझनों पे दंग है
> किधर मुड़े...?
> कहां चले....?

कुछ लोग ऐसे ही खड़े हैं। चौराहों पर अटक गये हैं।... किधर मुड़ें? कहां चलें? क्या करें? कुछ सूझता नहीं। ये दूसरे राजकुमार की तरह हैं। इनमें से ही दार्शनिक पैदा होते हैं, विचारक पैदा होते हैं, चिन्तक पैदा होते हैं। पहली दुनिया से, पहले राजकुमार से राजनीतिज्ञ पदा होते हैं, राजनेता पैदा होते हैं, धन-लोलुप पदा होते हैं। और तुम भलीभांति जानते हो।

मैंने सुना है, एक स्त्री अपने घर के भीतर काम कर रही थी। उसकी लड़की बाहर, जवान लड़की, किसी से बात कर रही है। गयी तो थी गाय की सेवा करने किसी से बात कर रही है। मां भीतर से चिल्लाई कि भागो, वहां क्या कर रही? किस लफंगे से बातें कर रही है? भीतर आ।

उस लड़की ने कहा कि कोई लफंगा नहीं है मां, ये तो अपने समाजवाद जी हैं। अपने नेता जी!

मां ने कहा: अगर लफंगा हो तो ठीक, नेताजी हों तो गाय को भी भीतर ले आ।

लफंगों का फिर भी भरोसा किया जा सकता है, लेकिन नेता जी का कोई भरोसा नहीं। अगर समाजवाद जी हैं, तो गाय को भी भीतर ले आ और घास भी बाहर मत छोड़ आना।

पद की दौड़, धन की दौड़, प्रतिष्ठा की दौड़--सब कूड़ा-करकट है। दूसरे

से पैदा होते हैं--विचारक, दार्शनिक । वे सोचते ही रहते हैं । पहले खूब कर्म करते हैं। और कर्म का परिणाम होता है--कचरा इकट्ठा कर लेते हैं। दूसरे कुछ करते ही नहीं, अकर्मण्य हो जाते हैं। करें कैसे, जब तक तय न हो जाये ?

मगर तीसरे लोग भी हैं। वे ही इस पृथ्वी के नमक हैं। उनके कारण ही इस जिन्दगी में थोड़ी सुगंध है, थोड़ा संगीत है, थोड़ा प्रकाश है। यही जिंदगी उनके पास है। सबके बराबर-बराबर रुपये हैं। सबके पास बराबर बड़े महल हैं।

जरा गौर से देखना, तुमने अपनी जिंदगी को रोशनी से भरा है? नहीं भरा, तो वैसे ही बहुत देर हो गयी, अब जागो । तुमने अपनी जिंदगी को संगीत से भरा है? अगर नहीं भरा, तो अभी भी जाग जाओ । सुबह का भूला सांझ भी घर आ जाये, तो भूला नहीं कहाता । और तुमने अपनी जिंदगी में घी के दीए जलाए? नहीं जलाये, तो क्या कर रहे हो ? हरि बोलौ हरि बोल ।... तो घी के दीए जलेंगे।

ये सूत्र आज के, सुंदरदास के अंतिम सूत्र हैं। खूब गहराई से समझने की कोशिश करना। और जब मैं कहता हूं गहराई से समझने की कोशिश करना, तो मेरा अर्थ होता है--हृदय से समझने की कोशिश करना। ये प्रेम की बातें हैं। तर्क और बुद्धि से इनका बहुत सम्बन्ध नहीं है । जो वहां अटका, वह चूक जायेगा। ये एक प्रेमी के उद्गार हैं। और जब प्रेम से उद्गार उठते हैं, बड़े जीवन्त होते हैं, ज्वलंत होते हैं, आग्नेय होते हैं। अगर उनकी जरा-सी चिन्गारी भी तुम्हारे हृदय में उतर जाये, तुम भी जल उठोगे, भभक उठोगे । तुम्हारे भीतर भी अंधेरा टूटने लगेगा। सुबह का जन्म होने लगेगा। रात कटने लगेगी । प्राची की दिशा गैरिक हो उठेगी। लालिमा फैल जायेगी।

लेकिन हृदय से समझना। बुद्धि तो केवल सोचती है, समझती नहीं। हृदय सोचता है, समझता नहीं। बुद्धि विचार करने में बड़ी कुशल है। और विचार का एक सूत्र है, आधारभूत संदेह । बिना संदेह के विचार नहीं चलता । बिना संदेह के विचार लंगड़ा है । संदेह विचार की बैसाखी है। उसी के सहारे चलता है, इसलिए जो जितना विचार करता है, उतना संदिग्ध होता चला जाता है। संदेह पर संदेह खड़े होने लगते हैं। धीरे-धीरे संदेहों से घिर जाता है। फिर संदेहों में ही जीता है। और अभागा है वह मनुष्य जो संदेहों में जीता है । क्योंकि संदेह में जीना, नर्क में जीना है। फिर संदेह तुम्हारे साथी हैं, वे ही तुम्हारे संगी हैं । और संदेह से किसको कब शान्ति मिली! संदेह से कैसे मिल सकती है ! संदेह तो डगमगाता है, इसलिए अकंप कैसे होओगे? और जो अकंप होता है उसी को आनंद मिलता है।

विचार का सूत्र है संदेह। समझ का सूत्र है श्रद्धा। प्रेम श्रद्धा का रूप है। प्रेम श्रद्धा की पहली किरण है। ये सूत्र प्रेम से समझना, गुनगुनाना। इन्हें भीतर

चुपचाप चले जाने देना। इनके साथ जद्दोजहद मत करना। इनको उतर जाने देना हृदय में। और ये रंग लायेंगे, ये जरूर रंग लाएंगे।

ज्ञान की धरती,
लगन की
साधना के नीर सींची
भावना की खाद डाली
ऋतु-समय से
प्रेम के कुछ
बीज बोए--
कल
उगेंगे अरुण-अंकुर
कसमसाकर
तोड़ मिट्टी की
तरुण-सोंधी परत को
धूप नूतन रूप देगी
मेघ वर्षा में
सघन घिर कर
बरसकर
तर करेंगे मूल तक को
गंध फूटेगी गमक कर

ये प्रेम के बीज हैं। ये सूत्र प्रेम के बीज हैं। तुम हृदय खोलो, जैसे पृथ्वी अपने को खोलती है, और बीज को अंगीकार कर लेती है--ऐसे तुम इन्हें अपने भीतर पड़ जाने दो। जल्दी ही तुम पाओगे कल्ले फूटे। जल्दी ही तुम पाओगे तुम्हारे भीतर कुछ नये का आविर्भाव हो रहा है, जसा तुमने कभी नहीं जाना था। उस नये के आविर्भाव के साथ तुम भी नये हो चले, पुनरुज्जीवन हुआ, नव जागरण हुआ। उस नवजागरण का नाम ही धर्म है।

धर्म शास्त्रों में नहीं है--उस हृदय में है, जो प्रेम के बीज बोने की क्षमता रखता है, साहस रखता है। धर्म आंतरिक अनुभव है। और जब तुम्हारे भीतर प्रेम का फूल खिलता है तब तुम्हें भरोसा आ जाता है-- जगत परमात्मा से भरा है। जब तक तुम्हारे भीतर प्रेम का फूल नहीं खिलता तब तक जगत परमात्मा से भरा नहीं है। तब तुम लाख कहो कि परमात्मा है, तुम कह ही रहे हो; यह तुमने

जाना नहीं है । यह ऐसा ही है जैसे तुमने आग के सम्बंध में सुना हो कि जलाती है और तुम दोहराओ कि आग जलती है । मगर तुम जले नहीं आग से । आग को जानने का एक ही उपाय है--जलना ।

'आग' के व्यवहार को
समझे न थे पढ़कर किताबें,
आग छू बैठे
तो समझे--'आग से जलते भी हैं!'

परमात्मा जलायेगा और नया बनायेगा।

धीरजवंत अडिग्ग जितेन्द्रिय निर्मल ज्ञान गहयौ दृढ़ आदू ।
शील संतोष क्षमा जिनके घट लागि रहयौ सु अनाहद नादू ।

आज अंतिम सूत्रों में सुंदरदास अपने गुरु के गीत गा रहे हैं । कितने ही गीत गाओ, छोटे पड़ जाते हैं । क्योंकि जो गुरु से मिला है, उसका कोई मूल्य आंका नहीं जा सकता । शिष्य सदियों से गुरु के गीत गाते रहे हैं । ये गीत प्रशस्तियां नहीं हैं । प्रशस्तियां तो झूठी होती हैं । प्रशस्तियों के पीछे तो हेतू होता है, मॉटिवेशन होता है।

सुना है मैंने, अकबर के दरबार का एक कवि, बैठा कुछ लिख रहा था। अकबर पास से गुजरा, तो उसने यूं ही मजाक में पूछा कि आज कौन-सी झूठ गढ़ रहे हो? कवि तो झूठ ही गढ़ते हैं । ऐसे ही मजाक में पूछ लिया था कि आज कौन-सी झूठ गढ़ रहे हो ? उस कवि ने जो कहा, वह अकबर को बहुत चौंका गया। उसने अपनी आत्मकथा में इस बात का स्मरण किया है । उस कवि ने कहा : अब आपने पूछ ही लिया, तो कहना ही पड़ेगा । आपकी प्रशस्ति लिख रहा हूं ।

कौन-सा झूठ गढ़ रहे हो? अकबर ने पूछा था।

'आपकी प्रशस्ति लिख रहा हूं ।'

शिष्य गुरु की प्रशस्ति नहीं लिखता है । शिष्य ने गुरु के साथ कुछ जागा, कुछ देखा, कुछ पाया । शिष्य गुरु के साथ रूपांतरित हुआ । एक रासायनिक क्रांति हो गयी । कुछ का कुछ हो गया । आया था दो कौड़ी का, बहुमूल्य हो गया । उसके परस से--मिट्टी थी, सोना हो गया । प्रशस्ति नहीं है यह । शिष्य आनंद-विभोर हो, सदा से, सदियों से, गुरु के गीत गाया है। और फिर भी शिष्य को लगता रहा है कि जो कहना था कहा नहीं जा सका ।

सुंदरदास कहते हैं : धीरजवंत... । ऐसे धैर्य से भरे हुए व्यक्ति को पहले कभी देखा नहीं था । सद्गुरु का अर्थ ही होता है कि जिसका धैर्य अनंत हो । नहीं तो सद्गुरु नहीं हो सकता । शिष्यों को गढ़ना अपूर्व धैर्य का काम है। चित्र बनाना आसान है। पिकासो बनना कितना ही कठिन हो, लेकिन फिर भी कठिन नहीं है । तुम सीख ले सकते हो। और कम-से-कम एक बात तो पक्की है कि जब तुम चित्र बनाते हो

कैनवस पर, तो कैनवस कुछ गड़बड़ नहीं करता । भागता नहीं, दौड़ता नहीं, उलटा-सीधा नहीं करता, तुम लाल रंग लगाओ, वह काला नहीं कर देता । कैनवस निष्क्रिय भाव से खड़ा रहता है । तुम्हें जो करना हो करो । मूर्तिकार जब मूर्ति गढ़ता है, तो पत्थर झंझटें नहीं डालता। लेकिन जब गुरु शिष्य को गढ़ता है तो शिष्य की तरफ से हजार झंझटें आती हैं। गुरु कुछ कहता है, शिष्य कुछ समझता है । उनकी भाषा के लोक अलग हैं । वे दो अलग आयाम में जी रहे हैं। गुरु किसी पर्वत-शिखर पर खड़ा है और शिष्य किसी अंधेरी गुहा में, खाई में, खड्ड में—जहां कभी रोशनी पहुंची नहीं है, जहां चांद-तारों की कोई खबर नहीं पहुंची । गुरु ने सहस्र-दल कमल को खिलते देखा है । शिष्य को उस कमल की कोई खबर भी नहीं है। उस कमल को समझने की भी कोई समझ नहीं है। कोई उपाय भी नहीं है।

गुरु बोलता है किसी दूर आकाश से—और शिष्य पृथ्वी पर गड़ा है। जैसे आकाश पृथ्वी से बोले! बड़ी भाषा का भेद हो जायेगा । फिर जब गुरु बोलता है और शिष्य समझता है तो निश्चित ही कुछ का कुछ समझता है । इसलिए तो दुनिया में इतना विवाद, इतना उपद्रव । यह शिष्यों के कारण है, यह गुरुओं के कारण नहीं है। महावीर वही कहे हैं जो बुद्ध कहे हैं। वही कृष्ण कहे हैं, वही क्राइस्ट, वही नानक, वही दादू । कुछ भेद नहीं । भेद हो नहीं सकता। लेकिन सुननेवाले अलग-अलग थे, इसलिए भेद हो गया है। और ऐसा ही नहीं है कि महावीर और बुद्ध में उन्होंने भेद कर लिया; बुद्ध को ही जिन्होंने सुना था उन्होंने भी बड़ा भेद कर लिया है। बुद्ध के मरने के बाद छत्तीस सम्प्रदाय खड़े हो गये । क्या थे ये संप्रदाय? प्रत्येक यह कह रहा था कि जैसा मैं कह रहा हूं, ऐसा बुद्ध ने कहा है। ऐसा उनका अर्थ है । अर्थ तो तुम अपने लगाओगे । अर्थ तुम अपने जोड़ लोगे ।

फिर तुम गुरु के हर काम में बाधा भी डालोगे, क्योंकि गुरु तुम्हें तोड़ेगा । टूटना कौन चाहता है! तुम गुरु के पास आये थे, टूटने नहीं, मिटने नहीं—कुछ बनने आये थे । लेकिन तुम्हें बनने की प्रक्रिया का कोई पता नहीं है । बनने की प्रक्रिया में तोड़ना अनिवार्य है, प्राथमिक भूमिका है । अब कोई पत्थर मूर्ति बनना चाहे, तो छेनी उठाकर तोड़ना ही पड़ेगा । और पत्थर को पीड़ा भी होगी, यह भी सच है । इसलिए कमजोर तो भाग जाते हैं । वे कहते हैं, हम इसलिए नहीं आये थे । हम आये थे कि थोड़ा साज-शृंगार होगा। हम आये थे कि थोड़े गहने हमें और मिल जायेंगे, हम और सज जायेंगे। हम यहां छेनी का घाव सहने नहीं आये थे । हम यहां गर्दन कटाने नहीं आये थे। हम तो कुछ ज्ञान अर्जित करने आये थे। हम तो कुछ और, जैसे हैं इससे अच्छे कैसे हो जायें, इसके लिए आये थे । और यहां मृत्यु खड़ी है।

गुरु मृत्यु है, ऐसा पुराने शास्त्र कहते हैं। गुरु के पास शिष्य जब आता है,

तो वह मृत्यु के पास ही आ रहा है । तुम यह मत सोचना कि कठोपनिषद में जैसे नचिकेता मृत्यु के पास गया, अकेला नचिकेता ही गया था । हर शिष्य मृत्यु के पास ही जाता है । हर गुरु मृत्यु है । तुम जैसे हो, ऐसा तो तुम्हें मिटा ही देना होगा--बिलकुल मिटा देना होगा, समग्ररूपेण मिटा देना होगा ।

जैसे कोई नया बगीचा लगाये तो घास-पात उखाड़नी ही पड़ेगी, कंकड़-पत्थर निकालने पड़ेंगे, जमीन खोदनी पड़ेगी, भूमि को रूपान्तरित करना होगा । फिर ही गुलाब के पौधे बोए जा सकते हैं । शिष्य जब आता है, तो उसे इस बात का कुछ पता नहीं होता कि इतनी तोड़-फोड़ होगी, कि मेरे सिद्धांत तोड़े जायेंगे, कि मेरे शास्त्र छीने जायेंगे, कि मेरा आचरण व्यर्थ, कि मेरा जीवन व्यर्थ, कि मेरे पास कुछ भी ठीक नहीं है ।

कल ही किसी ने पूछा है कि आप कहते हैं कि मनुष्य के पास कुछ भी ठीक नहीं । कुछ तो ठीक होगा ? वह मनुष्य के सम्बन्ध में उसको परेशानी नहीं है, मनुष्य से उसको क्या लेना-देना! बह मूलतः अपने सम्बन्ध में पूछ रहा है कि यह मानने को मन नहीं होता कि मैं बिलकुल गलत हूं । कुछ तो. . .थोड़ा ही सही । लेकिन तुम मेरी अड़चन भी समझो । या तो कोई पूरा ठीक होता है या पूरा गलत होता है । बीच में कुछ होता ही नहीं । बीच में कभी कोई नहीं हुआ । ऐसा थोड़े ही है कि सत्य की भी कोई डिग्री होती है--कि किसी के पास पचास प्रतिशत, किसी के पास साठ प्रतिशत, किसी के पास दस, किसी के पास पांच । सत्य अखण्ड है ।

सुना नहीं तुमने, सारे शास्त्र चिल्लाते रहे सदियों से कि सत्य अखण्ड है । उसके टुकड़े नहीं हो सकते । या तो सत्य होता है तुम्हारे पास, या नहीं होता । दो में से एक ही है । तुम यह नहीं कह सकते कि मेरे पास थोड़ा-सा सत्य है । हालांकि तुम्हारा अहंकार यही मानना चाहता है कि मेरे पास पूरा सत्य न होगा, लेकिन थोड़ा सत्य है । इसका मतलब हुआ कि सत्य की मात्राएं होती हैं ! . . .'थोड़ा-सा मेरे पास है ।' थोड़ा-सा होता ही नहीं । सत्य को बांटा नहीं जा सकता, काटा नहीं जा सकता । या तो तुम जिंदा हो या तुम मुर्दा हो । कुछ-कुछ जिंदा, कुछ-कुछ मुर्दा, ऐसी कोई बात होती ही नहीं । मगर हमारी भाषा ऐसी है, हमारे बोलचाल ऐसे हैं । हम तो लोगों से कहते भी हैं एक-दूसरे से, कि मुझे तुमसे बहुत प्रेम हो गया । जैसे प्रेम की भी मात्राएं होती हैं ! --बहुत, थोड़ा । या तो प्रेम होता है या प्रेम नहीं होता है । बहुत, थोड़ा! ...क्या बकवास लगा रखी है ? कहीं प्रेम की कोई मात्रा हो सकती है? कोई तराजू है, जिस पर तौल लोगे कि कितना है, किलो कि आधा किलो?

परमात्मा ऐसा थोड़े ही है कि थोड़ा-बहुत तुम्हारे पास है, कि ले भागे एक लंगोटी परमात्मा की । कुछ उसकी भी सोचो ।...कि एक हाथ तुम्हारे पास है,

उसके तो हजार हाथ हैं, एक तुमने तोड़ लिया । . . .कि उसके तो चार सिर हैं, एक तुमने तोड़ लिया ।

परमात्मा जब जीवन में उतरता है तो पूरा-पूरा उतरता है । इसका मतलब यह हुआ कि जब तक परमात्मा नहीं उतरा है तब तक तुम पूरे-पूरे अंधेरे में हो और पूरे-पूरे गलत हो ।

ऐसा ही समझो, पानी को हम गरम करते हैं, सौ डिग्री पर पानी भाप बनता है । क्या तुम सोचते हो कि नब्बे डिग्री पर थोड़ा-थोड़ा भाप बनता है, अस्सी डिग्री पर थोड़ा कम, पन्चानवे पर और थोड़ा ज्यादा, निन्यानबे पर और थोड़ा ज्यादा ? नहीं, सौ डिग्री पर ही भाप बनता है । जरा-सी भी कमी होती है सौ डिग्री से, तो भाप नहीं बनता । गरम पानी भी भाप नहीं बनता । गरम पानी भला हो, मगर भाप नहीं होता । भाप तो सौ डिग्री पर ही होता है । ठीक ऐसे ही ।

लेकिन शिष्य जब आता है तो वह इसी खयाल से आता है । मेरे पास लोग आ जाते हैं । वे कहते हैं कि 'ऐसे तो हमने सब साधा है--योग भी साधा, ध्यान भी साधा । अब कुछ कमी रह गयी हो, तो आप पूरी कर दें ।'. . . . कमी रह गयी हो! वे यह मानकर ही आये हैं कि सब तो कर ही चुके हैं; थोड़ा-बहुत कुछ कमी यहां वहां है, वह ठीक हो जायेगी । और जब मैं तोड़ना शुरू करता हूं तो स्वभावतः उन्हें पीड़ा होती है । फिर जिसके पास जितना अहंकार है, उतनी ही ज्यादा पीड़ा होती है ।

तुमने उस संगीतज्ञ की बात सुनी है?... एक बड़ा संगीतज्ञ हुआ । जब उसके पास कोई शिष्य समझने आते थे संगीत, संगीत अध्ययन करने आते थे, तो उसने एक बड़ा अजीब नियम बना रखा था । अगर कोई बिलकुल सिक्खड़ आता, जो संगीत जानता ही नहीं है, अ ब स से शुरू करना है, उससे वह आधी फीस लेता था । और जिसने कुछ वर्षों से संगीत का अभ्यास किया है, कुछ संगीत के सम्बन्ध में जानता है, उससे दुगनी फीस लेता था । एक आदमी बीस साल की संगीत-साधना के बाद इस गुरू के पास आया । और उसने कहा : यह नियम बड़ा अजीब-सा है । यह बिलकुल तर्क के विपरीत नियम है । जो सीख कर आया है, उससे कम फीस लो । बीस साल मैंने गंवाए हैं । जो कुछ भी सीख कर नहीं आया, उससे आधी और जो सीख कर आया है, उससे दुगनी, यह क्या पागलपन है? यह कौन-सा गणित है?

उस संगीतज्ञ ने कहा : मेहनत तुम्हारे साथ मुझे ज्यादा करनी पड़ेगी, क्योंकि बीस साल तुमने जो सीखा है उसे पहले पोंछना पड़ेगा । दुगनी फीस इसीलिए लेता हूं । जो नया-नया आया है, उसकी किताब कोरी है । उस पर लिखावट सीधी आ जायेगी । तुम बहुत कुछ गूदकर आ गये हो । इसकी सफाई कौन करेगा?

अक्सर यह अनुभव में आता है कि तथाकथित अनुभवी जब आते हैं गुरु के

पास, तो ज्यादा देर नहीं टिक पाते। क्योंकि उनके अनुभव को खतरा होने लगता है। उन्होंने साधना की है, प्रार्थना की है, पूजा की है, आराधना की है। वर्षों तक मंदिर में घंटी बजाते रहे हैं, कि हनुमान-चालीसा पढ़ते रहे हैं। आज वे उस सब को छोड़ने को राजी नहीं होते। उन्हें बड़ी अड़चन हो जाती है। मगर जब तक गुरु तुम्हें पूरा न तोड़ डाले, तुम्हें खण्ड-खण्ड न कर दे, तब तक तुम्हारा पुनर्निर्माण नहीं हो सकता। इसलिए बहुत बार भूल तुमसे हो जाती है। अगर तुम हिन्दू हो, अगर तुम मुसलमान हो, तो तुम अपनी-अपनी पकड़ पर जोर से बैठे हुए हो। गुरु तुम से तुम्हारा हिन्दू धर्म भी छीन लेगा और मुसलमान धर्म भी छीन लेगा। शायद तुम सोचो कि गुरु मुसलमान धर्म के विपरीत है या हिन्दू धर्म के विपरीत है, तो तुमने गलत निर्णय लिया। गुरु किसी के विपरीत नहीं है——सिर्फ शिष्य को मिटाने में लगा है। तो तुम्हारा जो भी पक्ष है उसी को तोड़ेगा।

एक सुबह एक आदमी ने बुद्ध से पूछा : ईश्वर है? बुद्ध ने उस आदमी की तरफ देखा और कहा : नहीं, बिलकुल नहीं! दोपहर एक दूसरे आदमी ने उसी दिन पूछा : ईश्वर है? बुद्ध ने कहा : हां है, निश्चित है! और सांझ एक तीसरे आदमी ने उसी दिन पूछा कि ईश्वर है? और बुद्ध आंख बंद कर लिये और चुप रह गये। कुछ भी न बोले। उनका शिष्य, आनंद, साथ था। उसने तीनों घटनाएं देखीं। वह तो बड़ी मुश्किल में पड़ गया, बिबूचन में पड़ गया। वे तीनों तो ठीक, उनकी वे जाने, क्योंकि उन्होंने तो एक-एक उत्तर सुना था। शायद कभी आपस में उनका मिलना भी न होगा। लेकिन इस आनंद की क्या गति हुई, जो दिन-भर सुनता रहा? सुबह सुना 'नहीं', फिर सुना 'हां', फिर चुप भी देखा बुद्ध को। रात जब बुद्ध सोने लगे उसने कहा : मैं सो न सकूंगा जब तक मेरा मन साफ न हो जाये। मुझे बड़ी दुविधा में डाल दिया। कुछ मेरे पर भी तो खयाल करो! एक आदमी से कहा—ईश्वर नहीं है, बिलकुल नहीं है! एक से कहा——हां है, निश्चित है, और तीसरे के साथ बिलकुल चुप रह गये!

बुद्ध ने कहा : जिस आदमी से मैंने कहा 'ईश्वर नहीं है' वह आस्तिक था। और उसकी आस्तिकता तोड़नी थी। और जिससे मैंने कहा 'ईश्वर है', वह नास्तिक था और उसकी नास्तिकता तोड़नी थी। और जो आदमी, तीसरा आदमी, जिसके सम्बन्ध में मैं चुप रह गया, वह न नास्तिक था न आस्तिक था। उसको मौन का पाठ देना था कि पूछ ही मत, चुप हो जा। जैसे मैं चुप हूं ऐसे चुप हो जा। चुप्पी में जान लेगा। वे तीनों अलग-अलग तरह के लोग थे। और अलग-अलग तरह के लोगों के लिए मुझे अलग-अलग उत्तर देने पड़े।

अब तुम बड़ी मुश्किल में पड़ोगे। अब कैसे निर्णय करोगे कि बुद्ध ईश्वर को

मानते हैं या नहीं? बुद्ध क्या मानते हैं, यह बुद्ध हुए बिना जानने का कोई उपाय नहीं। बुद्ध क्या मानते हैं, यह बुद्ध हुए बिना कभी जाना ही नहीं जा सकता। हां, शिष्यों से क्या कहते हैं, वह तुम्हारे पास है। मगर वे तो हजार बातें हैं। हर शिष्य के अनुकूल कही गयी हैं।

कोई पत्थर उत्तर से तोड़ना पड़ता है, कोई पत्थर पूरब से तोड़ना पड़ता है। कोई पत्थर नीचे से तोड़ना पड़ता है, कोई पत्थर ऊपर से तोड़ना पड़ता है। कोई पत्थर बीच में अनगढ़ है, कोई पत्थर नीचे अनगढ़ है। पत्थर-पत्थर अलग हैं। लेकिन तोड़ना सभी को पड़ता है।

बड़ा धैर्य चाहिए गुरु में। क्योंकि शिष्य भागेंगे, बचेंगे, उपाय खोजेंगे, तरकीबें निकालेंगे। अपने को बचाने के लिए नयी-नयी ढालें बनायेंगे। गुरु वार करेगा, और वे ढालों पर सह जायेंगे।

दुनिया में सबसे कठिन काम सृजन का गुरु का है, क्योंकि जिस माध्यम पर वह काम करता है, वह जीवंत मनुष्य है।

धीरजवंत, अडिग्ग. . .और गुरु अकम्प है। अकम्प है, इसीलिए गुरु है। यही उसकी गुरुता है। उसके भीतर चेतना की लौ थिर हो गयी है। कृष्ण ने जिसको 'स्थितिप्रज्ञ' कहा है, 'स्थिरधीः' कहा है। उसकी चेतना की लौ अडिग हो गयी है। अब तूफान भी आये, तो भी उसकी चेतना की लौ कंपती नहीं, अकंप है। हम कंप रहे हैं, इसलिए सत्य को नहीं देख पा रहे हैं।

तुम ऐसा ही समझो कि एक कैमरा तुम्हारे हाथ में हो और तुम्हारे दोनों हाथ कंप रहे हों, और तुम तस्वीर निकालो। तो तस्वीर में क्या सत्य आयेगा? कुछ का कुछ हो जायेगा। एक दिन कोशिश करना, भागते हुए कैमरा हाथ में लेकर तस्वीर उतार लेना। तस्वीर उतारने के लिए कैमरे को थिर करना पड़ता है। जब कैमरा जितना ज्यादा थिर होता है, उतनी ही स्पष्ट तस्वीर होती है।

जब झील शांत होती है तो चांद का प्रतिबिंब पूरा-पूरा बनता है। जब झील में तरंग होती है, चांद का प्रतिबिंब खण्ड-खण्ड हो जाता है, पूरी झील पर फैल जाता है। पता लगाना मुश्किल हो जाता है कि चांद कैसा है। हमारा चित्त दर्पण है। यह सारा सत्य मौजूद है चारों तरफ, मगर हमारा चित्त कंप रहा है। ऐसा कम्पित है, थरथर-थरथर हो रहा है। लहरें ही लहरें हैं। जागते-सोते लहरों ही लहरों से भरी हुई झील है। इसमें कैसे तुम परमात्मा जानोगे?

लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं : 'परमात्मा कहां है? हमें दिखा दें।' मैं उनसे कहता हूं : तुम्हें दिखा तो दें, परमात्मा को दिखाने में कोई अड़चन ही नहीं है, क्योंकि परमात्मा ही परमात्मा है। यह जगत उसी से भरा हुआ है। उसकी

राशि लगी हुई है। लेकिन तुम अकम्प हो जाओ तो...।

लोग बिना ध्यान के परमात्मा देखना चाहते हैं। लोग तो उलटी बात कहते हैं। वे कहते हैं, हम ध्यान तो तभी करेंगे, जब हमें परमात्मा दिखाई पड़ जाये। यह तो उन्होंने ऐसी शर्त लगा दी, जो पूरी नहीं हो सकती। क्योंकि परमात्मा ध्यान करने से दिखाई पड़ता है। वे कहते हैं: हम ध्यान तभी करेंगे, जब हमें पक्का प्रमाण मिल जाये कि परमात्मा है; जब आंख कह दे कि परमात्मा है। आंख जरूर कहेगी कि परमात्मा है लेकिन आंख के पीछे थिर तो हो जाने दो चेतना को।

जिसकी चेतना थिर हो गई है, वही सद्‌गुरु है, जितेन्द्रिय है। जिसने अपने को अपने शरीर से अन्य जान लिया है, जिसने अपने को अपनी इन्द्रियों से भिन्न जान लिया है, उसी भिन्नता में जीत है। अब समझ लेना, जितेन्द्रिय बनने की कोशिश मत करना। जितेन्द्रिय बनने की कोशिश नहीं की जाती। जो करता है, वह सिर्फ दमित हो जाता है। उसका जीवन केवल रोग से भर जाता है। किसी इन्द्रिय को दबाने की कोई जरूरत नहीं है। दबाने से कोई मुक्ति भी नहीं है। जिसे दबाओगे, वह उभर-उभर कर उठेगी। तुम जिसे दबाओगे, वह लौट-लौट कर आयेगी। यह कोई जीतने का उपाय नहीं है। यह विक्षिप्त होने की प्रक्रिया है, विमुक्त होने की नहीं। दमन से बचना।

जितेन्द्रिय का यही अर्थ लोगों ने ले लिया है, कि इन्द्रियों को जीतो, कि जीभ में स्वाद न रह जाये। और कैसे-कैसे उपाय करते हैं लोग कि जीभ में स्वाद न रह जाये! जीभ को मार डालने के उपाय करते हैं।

महात्मा गांधी अपने भोजन के साथ-साथ नीम की चटनी खाते थे। अब नीम की चटनी, वह जीभ को मारने का उपाय है। क्योंकि 'अस्वाद' उनके आश्रम के नियमों में बड़ा प्रमुख नियम था। अस्वाद! 'अस्वाद' साधने का यह कोई ढंग है? तो जाकर जीभ पर, चिकित्सकों से कहकर जरा-सा ऑपरेशन करा लो, प्लास्टिक सर्जरी क्योंकि जीभ में थोड़ी-सी ही क्षमता है स्वाद की। वह खंडित की जा सकती है। जीभ की ऊपर की पर्त निकाली जा सकती है। बजाय नीम की चटनी खाने के, जीभ की एक छोटी-सी तह ऊपर की जाकर चिकित्सक से कहो कि छील दे। फिर तुम्हें कोई स्वाद पता नहीं चलेगा--न मीठा, न कड़वा। और अगर कड़वे की ही बहुत आकांक्षा हो, तो सिर्फ जीभ के पीछे के हिस्से को बचा लेना और बाकी हिस्से को साफ करवा देना। क्योंकि जीभ के अलग-अलग हिस्से अलग-अलग स्वाद का अनुभव करते हैं। कड़वा अनुभव जीभ के आखिरी हिस्से पर होता है। बस थोड़े-से ही बिंदु हैं वहां, जो कड़वे का अनुभव करते हैं। उनको छोड़ रखना, फिर नीम की चटनी बनानी नहीं। कोई भी चटनी खाओ, नीम की ही चटनी मालूम पड़ेगी।

मगर इस तरह जीभ को मारने से, कोई अस्वाद होगा? यह अस्वाद का धोखा है। फिर अस्वाद क्या है? असली अस्वाद क्या है? असली अस्वाद है यह जानना कि मैं जीभ नहीं हूं। असली अस्वाद है यह जानना कि जीभ में जो स्वाद फलित हो रहा है, वह मैं नहीं हूं, मैं जागरूक, उसका साक्षी हूं। मैं देख रहा हूं कि जीभ में कड़वे का स्वाद हो रहा है। मैं देख रहा हूं कि जीभ में मिठास का स्वाद हो रहा है, कि जीभ में नमक का स्वाद आ रहा है। कड़वा हो कि मिठा हो कि तिक्त हो, मैं साक्षी हूं। मीठे के स्वाद के खिलाफ कड़वे के स्वाद का अभ्यास थोड़े ही करना है। सब स्वादों के ऊपर अतिक्रमण करना है। साक्षी का भाव लाना है। अब तुम्हें संगीत से मुक्त होना हो, कान पर विजय पानी हो, तो क्या जाकर बाजार में बैठकर शोर-गुल सुनोगे? उससे तुम्हारे कान पर विजय हो जायेगी। उससे विजय नहीं होगी। लोग यही सोचते हैं, उससे विजय हो जायेगी। क्या खुरदरे कपड़े पहन लोगे, तो स्पर्श की इन्द्रिय पर विजय हो जायेगी? खुरदरे कपड़ों से नहीं हो जायेगी।

एक ही विजय है इन्द्रियों पर--वह साक्षी का बोध है, कि मैं मात्र द्रष्टा हूं; और सब मेरे आसपास घट रहा है, वह मुझे नहीं घट रहा है। मैं दूर खड़ा देख रहा हूं।

तुम आज जब भोजन करो, थोड़ा-सा प्रयोग करना। क्योंकि ये बातें प्रयोग से ही समझ में आ सकती हैं। स्वाद आ रहा हो, तब जरा भीतर देखना कि स्वाद मुझसे अलग है या मैं स्वाद के साथ एक हूं? और तुम पाओगे कि तुम अलग हो, क्योंकि तुम अलग हो! चमत्कार तो यही है कि कैसे तुमने अपने को एक मान लिया है। तुम बड़े जादूगर हो। तुमने अपने को धोखा ऐसा दिया है! मगर धोखा धोखा है। जिस दिन जागोगे, जादू टूट जायेगा। यह जादू तोड़ा जा सकता है। इन्द्रियों से लड़ने की कोई जरूरत नहीं। इन्द्रियों को दुख देने की कोई जरूरत नहीं। शरीर को सताने की कोई जरूरत नहीं है। जो आदमी शरीर को सता रहा है, यह मनोवैज्ञानिक रूप से रुग्ण है। यह स्वस्थ नहीं है।

स्वस्थ आदमी तो इतना ही जानता है--मैं देह नहीं हूं। मैं इन्द्रियां नहीं हूं। मेरे स्वाद मैं नहीं हूं। मैं पार हूं। मैं भिन्न हूं। मैं अलग हूं। मैं दूर खड़ा देख रहा हूं। निर्मल दर्पण हूं मैं!

धीरजवंत, अडिग्ग, जितेन्द्रिय, निर्मल-ज्ञान गह्यो दृढ़ आदू।

और जो ऐसा हो जाये, उसे निर्मल-ज्ञान पैदा होता है। निर्मल-ज्ञान साक्षी-भाव का नाम है। ज्ञान में 'निर्मल' क्यों जोड़ा? तुम जो भी जानते हो वह निर्मल ज्ञान नहीं है। तुम्हारा जानना, जानने का सिर्फ धोखा है। तुम्हारा सब जानना उधार है, बासा है, दूसरों से है। निर्मल ज्ञान का अर्थ होता है--जो भीतर जन्मे;

जो भीतर की निर्मलता से आये, भीतर की निर्दोषता से आये। तुम्हारा ज्ञान तो ऐसे है जैसे दर्पण पर धूल जमी हो। निर्मल ज्ञान ऐसे है, धूल हट जाये और दर्पण की ताजगी प्रगट हो।

साक्षी से निर्मल ज्ञान निर्मित होता है। और तब उसे जान लिया जाता है, जो सदा से सच है—'निर्मल-ज्ञान गहयो दृढ़ आदू'। जो—आदि से ही सच है।

यह सूत्र महत्त्वपूर्ण है। सत्य को बनाना नहीं है। सत्य तो मौजूद है। सिर्फ पहचान करनी है। सत्य तो है ही। सिर्फ अपने भीतर झलकने देना है। आदि से ही सच है।... आदि सचु, जुगदि सच...। पहले से सच है और अन्त तक सच है। सच तो सिर्फ सच है। सिर्फ तुम सच नहीं हो, तुम झूठ हो। इसलिए तुम्हारा संबंध नहीं हो पा रहा है।

और तुम्हारे झूठ का सबसे बड़ा कारण तुम्हारा ज्ञान है यह बात तुम्हें उलटी लगेगी ज्ञान में सबसे बड़ी बाधा तुम्हारा ज्ञान है—तुम्हारे शास्त्र, तुम्हारे शब्द। तुमने खूब कचरा इकट्ठा कर लिया है।

मैंने सुना है, जोसुआ लीबमॅन, एक यहूदी मनीषी, उसने अपने संस्मरणों में लिखा है: यौवन के उल्लास में एक बार मैंने जीवन की तमाम स्पृहणीय वस्तुओं की एक सूची बना डाली—स्वास्थ्य, प्रेम, रूप, प्रतिभा, ऐश्वर्य, यश, और भी अनेक चीजें, जो जीवन को परिपूर्णता देती हैं। सूची बनाकर बड़े अभिमान के साथ मैंने उसे एक बुजुर्ग मित्र को दिखाया—जिन्हें मैं अपना आदर्श मानता था और आत्मिक मामलों में पथ-प्रदर्शक भी। शायद मैं उन्हें प्रभावित करना चाहता था कि मैं अपनी उम्र के लिहाज से कितना अधिक प्रौढ़ हूं और मेरी रुचियां कितनी व्यापक हैं। बुजुर्ग मित्र की आंखों की कोरों में मुझे हंसी की झलक नजर आयी। वे बोले: 'बड़ी उत्तम सूची है—बहुत सुविचारित और सुलिखित। परन्तु तुमने एक चीज तो छोड़ ही दी, जिसके बिना ये सब चीजें असहनीय बोझ बन जाती हैं।'

'वह छूट गयी चीज क्या है?' लीबमॅन ने पूछा। तिरछी लकीर खींचकर सारी सूची रद्द करते हुए उन बुजुर्ग ने लिखा—'मन की शांति।'

ज्ञान जो बाहर से आता है, तुम्हारे मन की अशांति को बढ़ायेगा, घटायेगा नहीं। पंडित और अशांत हो जाता है। उसके मन में और न मालूम कितने विचार घूमने लगते हैं! न मालूम कितनी भीड़ इकट्ठी हो जाती है! न मालूम कितने तर्क-जाल उसे घेर लेते हैं! शास्त्र उसके भीतर बड़ा शोरगुल मचाने लगते हैं।

असली चीज ज्ञान नहीं, असली चीज मन की शांति है। ऐसा शांत मन, जिसमें कोई तरंग न हो, जिसमें कोई विचार ही न हो—निर्विचार मन। फिर उसी निर्विचार मन में ज्ञान का जन्म होता है। तब तुम्हें कृष्ण की गीता में खोजने नहीं

जाना पड़ता। तब तुम्हारे भीतर ही कृष्ण की गीता जन्मने लगती है। और फिर अगर तुम कृष्ण की गीता पढ़ोगे, तो समझोगे भी। उसके पहले नहीं। उसके पहले तो तुम वही समझोगे जो तुम समझ सकते हो। उसके पहले कृष्ण क्या कह रहे हैं, यह तुम नहीं समझोगे।

हर आदमी की अपनी-अपनी भाषा है।

मैंने सुना है, एक नौकर अपने मालिक को उठा रहा है। सुबह हो गई है। मालिक अभी भी घुर्राटे भर रहा है। नौकर उसे उठा रहा है:

उठो, मेरे मालिक,
सुबह हो गयी!
बुरे मुहूर्त में गिरते
बाजार-भाव की तरह,
चांद नीचे उतर आया है।
कंकड़—जो तुमने मिलवाये थे
चावल की बोरियों में—
ढेर सारे—तारे
एक-एक कर डूबने लगे हैं।
सरसों के तेल की खुशबूवाले
भटकटैया के तेल-सा
हलका, ललछहूं रंग
पूर्व आकाश में फैलने लगा है।
अपनी आढ़त में
महंगे दामों बिकनेवाली
नकली अगरबत्तियों की स्थायी खुशबू लिये
पुरवैया डोल रही है।
इस बार सड़े गेहूं का आटा,
हमारी दुकान से ले जानेवालों ने
जैसा मचाया था शोर-शराबा,
रात का मौन कुछ वैसी ही खलबली,
हल्ले-हंगामे में डूब गया है।
जैसे रिक्से पर शहर की परिक्रमा कर
हमारा प्रचारक हमारे मालों की
उत्तमता की गारन्टी देता है

वैसे ही पंक्षी चहक रहे हैं
और सबके ऊपर--
मंदी के बाद फिर भाव ऊंचे चढ़े हैं
वैसे ही ऊपर उठने लगा है गोल सूरज।
प्रकृति में सर्वत्र एक ताजगी है,
नयी-नयी !
उठो, मेरे सेठ, सुबह हो गयी !

भाषाएं हैं लोगों की। तुम गीता पढ़ोगे, तुम ही पढ़ोगे न ! तुम अपना अर्थ ही निकालोगे न ! तुम कुरान पढ़ोगे, कौन पढ़ेगा कुरान ? वे अर्थ मोहम्मद की चेतना से उतरे थे। तुम्हारे पास वैसी चेतना होगी, तभी तुम उन अर्थों को जान पाओगे।

मैं भी कहता हूं शास्त्र पढ़ना, लेकिन मैं कहता हूं--जब मन निर्मल हो जाये। तब तुम अद्भुत अनुभव करोगे। हर शास्त्र तुम्हें अपने अनुभव की गवाही देगा, तुम्हारा साक्षी हो जायेगा। तुम्हारे सत्य की प्रामाणिकता बनेगा। हर शास्त्र ! और तब यह भेद नहीं खड़ा होगा। गीता भी तुम्हारी गवाही होगी और कुरान भी और बाइबिल भी। जिस दिन तुम्हारे पास सत्य होगा, समस्त जगत के शास्त्र तुम्हारे गवाही होंगे। और जब तक तुम्हारे पास सत्य नहीं है, तब तक तुम्हें उन सब शास्त्रों में विरोध दिखाई पड़ेगा, विवाद दिखाई पड़ेगा, क्योंकि उनको जोड़नेवाली मूल-वस्तु ही तुम्हारे पास नहीं है। उनको एक करनेवाला मूल-सेतु ही तुम्हारे पास नहीं है। तुम्हारे पास माला के मनके तो हैं, लेकिन माला का धागा नहीं है जो उनको एक सेतु में बांध दे, एक माला बना दे, अनस्यूत कर दे।

धीरजवंत, अडिग्ग, जितेन्द्रिय, निर्मल-ज्ञान गह्यौ दृढ़ आदू।
शील, संतोष, क्षमा जिनके घट लागि रह्यौ सु अनाहद नादू।।

और जिनके भीतर ज्ञान की जागृति होती है उनके भीतर अनाहत नाद बजता है। उनके भीतर ओंकार जन्मता है। उन्हें मंत्र रटने नहीं पड़ते, उनके भीतर मंत्रोच्चार होता है। वे तो उसके भी साक्षी होते हैं। उनके भीतर यह जगत अपूर्व भंगिमाओं में प्रगट होने लगता है--अपूर्व सौंदर्य और संगीत और प्रकाश! वे उसके भी साक्षी होते हैं। वे उससे भी भ्रांत नहीं होते। वे उसके साथ भी अपना तादात्म्य नहीं कर लेते। शील, संतोष, क्षमा उनके भीतर अपने-आप पैदा हो जाते हैं, इनको साधना नहीं पड़ता।

शील, संतोष, क्षमा जिनके घट लागि... उनके घट से, उनके अंतर से प्रगट होने लगती है।

... लागि रह्यौ सु अनाहद नादू। उनके भीतर सदा, चौबीस घंटे, उठते-बैठते,

जागते, खाते-पीते, चलते, उठते, बोलते, सुनते--हर घड़ी, अहर्निश एक नाद बजता रहता है। उनकी वीणा पर परमात्मा की अंगुलियां पड़ गयीं।

मगर वीणा को इस योग्य तो बनाओ कि परमात्मा बजाने योग्य समझे उसे। कसो वीणा को! वाद्य को तैयार करो!

भेष न पक्ष निरंतर लक्ष जु और नहीं कछु वाद-विवादू।

वहां न कोई वाद है, न कोई विवाद है। वहां सन्नाटा है। उसी सन्नाटे में अनाहत नाद है। भेष न पक्ष... और वहां कोई सम्प्रदाय भी नहीं है--कि मैं इस सम्प्रदाय का कि मैं उस सम्प्रदाय का। न वहां कोई पक्ष है--कि मैं इस पक्ष का कि मैं उस पक्ष का। वहां तो निरंतर एक ही लक्ष्य में है--वही एक परमात्मा।

ये सब लक्षन हैं जिन मांहि सु सुंदर कै उर है गुरु दादू।

और ये लक्षण हैं, खयाल रखना। यह साधना नहीं करनी है तुम्हें इन चीजों की। जब तुम्हारे भीतर परमात्मा अवतरित होता है तो ये लक्षण प्रगट होते हैं, जब वसंत आता है तो वृक्षों पर फूल लग जाते हैं। ये लक्षण हैं। सुबह होती है, पक्षी गीत गाने लगते हैं। ये लक्षण हैं। इससे उलटा मत कर लेना। ये मत सोचना कि पक्षियों को अगर हम गीत गाना सीखा दें, और आधी रात में पक्षी गीत गा दें, तो सुबह हो जायेगी। नहीं। पक्षियों को तुम सिखा सकते हो गीत गाना, आधी रात में गायेंगे। और तुम बाजार-से फूल खरीदकर वृक्षों पर लटका भी सकते हो। मगर किसको धोखा होगा इससे? वसंत नहीं आ जायेगा।

वसंत आता है तो फूल खिलते हैं।

सुबह होती है, तो पक्षी गीत गाते हैं। ये लक्षण हैं। लक्षण से तुम मूल को पैदा नहीं कर सकते; मूल से लक्षण अपने-आप पैदा होता है। यह बहुत कीमती बात है खयाल में रखने की।

महावीर को हमने देखा, उनके जीवन में परम अहिंसा है। यह लक्षण है सिर्फ --समाधि का फल है। और उनके पीछे चलनेवाले मुनियों की जमात है, वे समझते हैं कि यह समाधि का कारण है। वे सोचते हैं अहिंसा सधेगी, तो समाधि आ जायेगी।

भ्रांति में हो तुम। अहिंसा साध सकते हो। अहिंसा साधना बहुत कठिन नहीं है। पानी छानकर पी लोगे, रात भोजन न करोगे, चलते-फिरते जरा खयाल रखो कि कोई चीटि इत्यादि न दब जाये, किसी की हत्या न करोगे। अहिंसा साध सकते हो। मांसाहार न करोगे। यह सब किया जा सकता है।

कितने लोग इस तरह की अहिंसा साधे हुए हैं, लेकिन समाधि कहां! पक्षियों को गाना सिखा दिया। आधी रात में आज्ञा दे दी, आधी रात में गाने लगे। मगर

सुबह नहीं उगती, सुबह नहीं होती। प्लास्टिक के फूल खरीद लाये, वृक्षों को फूलों से लाद दिया—वसंत नहीं आता। वसंत आये तो फूल लगते हैं। सुबह हो तो पक्षी गीत गाते हैं।

महावीर की भीतर समाधि फली है, अनाहत का नाद हुआ। उस नाद के कारण अहिंसा आयी। अहिंसा लक्षण है। कारण नहीं, परिणाम है। और जिन्होंने बाहर से देखा...समाधि तो दिखती नहीं। समाधि तो अंतर-अनुभव है। उसको तो कोई उपाय नहीं बाहर से देखने का। उन्होंने तो बाहर से लक्षण देखे। उन्होंने देखा कि ठीक, महावीर बहुत संभल-संभल कर चलते हैं, रात भोजन नहीं करते, पानी छानकर पीते हैं, चींटी मारते नहीं। उन्होंने सोचा, हम भी ऐसा ही करें, तो हमें भी महावीर जैसा अनुभव हो जायेगा। वे सदियों से कर रहे हैं, उन्हें कोई अनुभव नहीं हुआ। वे सदियों तक करते रहें, उन्हें अनुभव नहीं होगा। क्योंकि उन्होंने उलटी बात पकड़ ली है। लक्षण दिखाई पड़ते हैं, मूल दिखाई नहीं पड़ता। और मूल ही असली बात है।

ये सब लक्षन हैं जिन मांहि सु सुंदर कै उर हैं गुरु दादू॥

ऐसे लक्षण वाले दादू, सुंदरदास के हृदय में समा गये हैं। वे सुंदरदास के गुरु हैं।

शिष्य होने का अर्थ होता है किसी के सामने आनंद-विभोर होकर अपनी हार स्वीकार कर लेना। तुमने यह राज देखा या नहीं? एक जीत है जो जीत से होती है, एक जीत है जो हार से होती है। और जो जीत हार से होती है उसके मुकाबले, पहली जीत की कोई कीमत नहीं। एक जीत है जो जीत से होती है, मगर वह पूरी कभी नहीं होती। क्योंकि जिसको तुमने जीत लिया है, वह हमेशा तैयारी करता है कि कब बदला ले लें, कब तुम्हें हरा दे। प्रतिशोध की आग जलती रहती है। एक और जीत है जो प्रेम की जीत है, तुम हार जाते हो। तुम किसी के सामने झुक जाते हो और उसे जीत लेते हो।

प्यार की हार से डरना कैसा प्यार की हार भी जीत है प्यारे
टूटे दिल की टीसों में भी एक सुहाना गीत है प्यारे
प्यार के टुकड़े कदम-कदम पर एक अछूती राह समझाएं
वरना इस अंधियारे जग में कौन किसी का मीत है प्यारे
उजली सेज पै सोनेवाले प्यार की सुंदरता क्या जाने
प्रेमी की पलकों पर मोती सांसों में संगीत है प्यारे
अपनी आशाओं की कलियां इस दुनिया से ओझल कर लो
फूल पर धूल उड़ाकर हंसना इस दुनिया की रीत है प्यारे

रात के गहरे सन्नाटे में शबनम बनकर रोनेवाली
या चंदा की ढलती छाया या पंछी की प्रीत है प्यारे
प्यार की हार से डरना कैसा प्यार की हार भी जीत है प्यारे
टूटे दिल की टीसों में भी एक सुहाना गीत है प्यारे।

दादू को दिल में बसाया, उसका अर्थ समझे? उसका अर्थ हुआ—दादू के चरणों में सिर रखा और हार गये। जो शिष्य गुरु से हार जाये, वह जीत के रास्ते पर चल पड़ा। शिष्य का अर्थ ही है कि सौभाग्यशाली हूं कि कोई मिला, जिसके सामने हारने की मेरी तैयारी है। कोई मिला, जिसके साथ हारने में मजा है।

कोउक गोरख कौं गुरु थापत, कोउक दत्त दिगंबर आदू।
कोउक कंथर, कोउ भरथ्थर, कोऊ कबीर, कोऊ राखत नादू।
कोइ कहे हरिदास हमारे जु यौं करि ठानत वाद-विवादू।
और तौ संत सबै सिरि ऊपर, सुंदर कै उर है गुरु दादू॥

प्यारा वचन है! कहते हैं, किसी ने गोरख को गुरु माना, किसी ने दत्तात्रेय को गरु माना, किसी ने दिगम्बर आदिनाथ को गुरु माना, किसी ने कंथर को, किसी ने भर्तृहरि को, किसी ने कबीर को, अलग-अलग लोगों ने अलग-अलग गुरु माने।

कोई कहै हरिदास हमारे जु....कोई हरिदास को मानता है। लेकिन मजा यह है कि ये सब वाद-विवाद ठानते हैं। बस वहीं चूक हो रही है।

गुरु मिला, फिर क्या वाद-विवाद! फिर किसे फुरसत वाद-विवाद की! अगर गुरु को पाकर भी वाद-विवाद चल रहा है, अगर गुरु को पाकर भी आदमी वाद-विवाद में उलझा है, तो उसका केवल इतना ही अर्थ हुआ कि तुमने गुरु के बहाने वाद-विवाद के लिए एक नया निमित्त खोज लिया, और कुछ भी नहीं। तुम वही पुराने के पुराने हो। वही खोपड़ी, वही खोपड़ी में विचारों का जाल, वही उपद्रव। अब तुमने उपद्रव के लिए एक और नयी तरकीब खोज ली। लड़ते तुम अब भी हो। पहले किसी और कारण से लड़ते थे। हो सकता है राजनीतिक दलबाजी हो, उसमें लड़ते थे। अब राजनीतिक दलबाजी नहीं रही, अब धार्मिक दलबाजी है। मगर फर्क जरा भी नहीं पड़ा, अब भी लड़ते हो। पहले भी झंडे उठाये थे.... झंडा ऊंचा रहे हमारा! वे झंडे राजनीति के रहे होंगे। अब भी झंडा उठाये हो। वे झंडे धर्म के हो गये। मगर तुम्हारे हाथ में वही का वही डंडा है। झंडे भले बदल गये हों, तुम नहीं बदले।

इसको खयाल रखना, आदमी बड़ी मुश्किल से बदलता है। सब बदल लेता है और वही का वही रहता है। यह आदमी की ऐसी कुशल तरकीब है, धन छोड़ देता है, मगर धन के कारण जो अहंकार था वही अहंकार त्याग के भीतर खड़ा हो

जाता है। वह कहने लगता है--'मैंने इतना त्याग किया। मेरे बराबर त्यागी कौन है?' पहले कहता था--मेरे बराबर धनी कौन है? फिर कहता है--मेरे बराबर त्यागी कौन है? ऊपर से दिखता है, बड़ा फर्क पड़ गया है इस आदमी में। बेचारा, देखो तो, कैसा सब छोड़कर चला गया! मगर जरा भीतर झांको, कोई भी फर्क नहीं पड़ा।

अहंकार बड़ा सूक्ष्म है और बड़े बारीक उसके रास्ते हैं। एक दरवाजे से निकालो, दूसरे से भीतर आ जाता है। जरा संभलकर चलना, नहीं तो तुम सारे उपद्रव धर्म की दुनिया में लेकर पहुंच जाते हो। वही लड़ाई-झगड़े जो बाजार में थे, वही मंदिर-मस्जिद में हो गये। फिर हुआ क्या?

कोउ कहे हरिदास हमारे जु यौं करि ठानत वाद-विवादू।

सुंदरदास कह रहे हैं: कबीर मिल गये, फिर क्या वाद-विवाद? फिर पियो, फिर नाचो, फिर उत्सव मनाओ! भर्तृहरि मिल गये, कि आदिनाथ, अब कहां उपद्रव में पड़े हो? मंदिर अपनी ताकत लगा रहा है मस्जिद से लड़ने में। मस्जिद ताकत लगा रही है मंदिर से लड़ने में। नाचोगे कब? प्रार्थना कब होगी? गाली-गलौज जारी है। मंदिरवाले मस्जिद को गाली दे रहे हैं, मस्जिदवाले मंदिर को गाली दे रहे हैं। प्रार्थना कब करोगे? और ये गालियां जिन ओंठों से निकल रही हैं, इन पर प्रार्थना आयेगी कैसे? ये ओंठ प्रार्थना के पात्र ही नहीं रह गये।

सुंदरदास कहते हैं: और तौ संत सबै सिरि ऊपर। सुंदरदास कहते हैं कि मेरे सब संतों को नमस्कार! मेरे सिर ऊपर! और तौ संत सबै सिरि ऊपर। मेरे प्रणाम उनको। मेरे प्रणम्य हैं, मेरे वन्दनीय हैं, लेकिन द्वार तो मुझे दादू से खुला है। सुंदर के उर है गुरु दादू।...इसलिए इतना कहूंगा।

विवाद नहीं है। फर्क समझना इस बात को। यह फर्क महत्त्वपूर्ण है। वे ये नहीं कह रहे हैं--कबीर गलत हैं। वे कहते हैं--मेरे प्रणम्य हैं, मेरे प्रणाम उनको। मगर रही जहां तक मेरी बात, मेरे दादू ने ही मुझे परमात्मा से मिलाया। यह मेरा दरवाजा है। जिनके लिए कबीर दरवाजे हैं, वे धन्यभागी हैं, वे उस द्वार से प्रवेश करें। मुझे मंदिर में मिला, मुझे मस्जिद में मिला कि गुरुद्वारे में। जिन्हें और कहीं मिल गया, मिला बस, यही बात सच है। यही बात काम की है। विवाद कुछ भी नहीं है।

साधु-चित्त का लक्षण है: विवाद का अभाव।

और तो संत सबै सिरि ऊपर, सुंदर कै उर है गुरु दादू।।

लेकिन इतना निवेदन कर देते हैं कि सबके लिए मेरा सिर झुका है, लेकिन जहां तक मेरे हृदय की बात है, वहां दादू विराजमान हैं। मगर दादू विराजमान हो

गये, कि दादू में सब विराजमान हो गये--नानक, कबीर, कृष्ण, क्राइस्ट--सब विराजमान हो गये। क्योंकि गुरुओं के रंग-ढंग कितने ही अलग हों, उनकी गुरुता एक है, उनके भीतर की महिमा एक है। जिसने एक को जाना, उसने सबको जान लिया।

तुम एक सद्गुरु से संबंध जोड़ लो, तुम्हारे सब सद्गुरुओं से संबंध जुड़ गये। फिर विवाद संभव नहीं है। विवाद की फुर्सत किसे है! ऊर्जा जब नाचने को हो गई, समय जब वसंत का आ गया, फिर कौन विवाद करता है!

गुरु का प्रयोजन क्या है? क्यों व्यक्ति गुरु को तलाशे? क्यों किसी को उर में बसाये? और क्यों किन्हीं चरणों में सिर झुकाये?

पहाड़ों से ऊंचे सिर
मदानों से चौड़ी छातियां
आसमान से बुलंद जातियां
पैदा होते हैं होती हैं,
होते रहेंगे होती रहेंगी
पहाड़ इसीलिए तने हैं
मैदान इसीलिए बने हैं
टंकता रहता है आसमान
हर रात इसीलिए
नीले सितारों से
कि ऊंचे और चौड़े
और बुलंद इन सहारों से
नपते रहें हमारे इरादे
और बने रहें फिर भी
हम स्वाभाविक
और सीधे-सादे
रखकर अपने को विराट के
फलक पर
और बिराट होता रहे चकित
बड़े होकर भी
साधारण बने रहने की
हमारी ललक पर

गुरु से सम्बन्ध जोड़ने का अर्थ क्या है? ताकि थोड़ी हमारी आंखें आकाश

की तरफ उठें, विराट की तरफ उठें। जिसके आंगन में विराट उतरा हो उससे थोड़ा हमारा सम्बन्ध हो जाये, तो हम भी उसके साथ-साथ थोड़े पंख फड़फड़ायें, थोड़ा उड़ें, थोड़े हम भी ऊंचाइयां छुएं।

कि ऊंचे और चौड़े
और बुलंद इन सहारों से
नपते रहें हमारे इरादे

. . .कि हम गुरु को देखकर नापते रहें अपने इरादों को--अभी हम कितनी दूर? अभी कितना फासला?

कि ऊंचे और चौड़े
और बुलंद इन सहारों से
नपते रहें हमारे इरादे
और बने रहें फिर भी
हम स्वाभाविक
और सीधे-सादे

वह दूसरी बात भी बड़ी जरूरी है। सद्‌गुरु से सम्बन्ध इसलिए आवश्यक है कि हम असाधारण हो जायें, तो भी हमारी साधारणता न खो जाये। हम शिखर छ लें जीवन का, लेकिन कहीं अहंकार अकड़कर विराजमान न हो जाये सिंहासन पर।

सद्‌गुरु के साथ पहले तो हमारी आंखें आकाश की तरफ उठती हैं और दूसरी बात--सद्‌गुरु के साथ हमारे पैर जमीन में गड़े रहते हैं। सद्‌गुरु हमें जड़ें भी देता है और पंख भी। जड़ें कि हम जमीन को कभी छोड़ न दें, कि हम अपने को विशिष्ट न मानने लगें, कि अहंकार किसी तरह से आ न जाये--और आकाश में उड़ने की क्षमता भी। ये दो कारण हैं सद्‌गुरु से जुड़ने के।

गोविंद के किये जीव जात है रसातल कौं

बहुत अद्‌भुत वचन है! सुंदरदास कहते हैं--

गोविंद के किये जीव जात हैं रसातल कौं

गोविंद ने बनाया लोगों को और लोग नरक जा रहे हैं।

गुरु उपदेशे सु तो छूटैं जम फंद तें।

गुरु का उपदेश सुन लें तो मृत्यु का फांस से छूट जायें, फांसी कटे।

गोविंद के किये जीव बस परे कर्मनि के।

गोविंद के बनाये हुए जीव--और कर्म के चक्करों में पड़ गये हैं, वासनाओं में उलझ गये हैं, इन्द्रियों में उलझ गये हैं, हजार तरह के कारागृहों में पड़ गये हैं!

गुरु के निवाजे सो फिरत हैं स्वच्छंद तें।

लेकिन जिसको गुरु ने उबारा, वह मुक्त होकर, वह मुक्ति होकर, स्वतंत्रता बनकर, स्वच्छंदता बनकर विचरता है। वे ये कह रहे हैं कि जरा देखो तो, गोविंद के बनाये हुए जीव की ऐसी गति हो रही है! जिस पर गोविंद के हाथ की छाप है, वह भटक रहा है! लेकिन जिसके ऊपर गुरु का हाथ पड़ा, वह संभल गया है।

ऐसा मत सोचना कि सुंदरदास कुछ गोविंद की निंदा कर रहे हैं। वे बड़ी मधुर बात कह रहे हैं। उस मधुर बात की गहराई में उतरना जरूरी है।

परमात्मा स्वतंत्रता देता है। यह उसकी भेंट है। स्वतंत्रता में बुरे होने की स्वतंत्रता भी सम्मिलित है। क्योंकि वह स्वतंत्रता तो क्या स्वतंत्रता होगी, जिसमें अच्छे ही होने की स्वतंत्रता हो? वह तो स्वतंत्रता न होगी। वह तो परतंत्रता ही होगी। और परतंत्रता कैसे अच्छी हो सकती है? तो गुरु कुछ और देता है, परमात्मा कुछ और। परमात्मा स्वतंत्रता देता है कि तुम्हें जो होना हो, हो जाओ। तुम्हारी किताब को कोरी छोड़ देता है, तुम्हें जो लिखना हो लिख लो। तुम्हें पाप करना हो पाप करो, पुण्य करना हो पुण्य। तुम पूरे स्वतंत्र हो।

और स्वभावतः नीचे उतरना आसान है, ऊपर चढ़ना कठिन है। लोग नीचे उतरते हैं। लोग पाप में उतरते हैं। पाप में प्रबल आकर्षण मालूम होता है, क्योंकि सरल मालूम होता है। परमात्मा ने स्वतंत्रता दी है और परिणाम यह है कि लोग गुलाम हो गये हैं--वासनाओं के, संसार के।

गुरु का काम ठीक उलटा है। गुरु अनुशासन देता है। गुरु तुम्हारे जीवन को जीने का ढंग, शैली देता है। गुरु शास्ता है, शासन देता है। तुम्हारे जीवन को एक रंग-रूप देता है। तुम्हारे अनगढ़ पत्थर को ढालता है। इसलिए ऊपर से तो ऐसा लगता है कि जो लोग गुरु के पास गये वे गुलाम हो गये। ऊपर से यह बात ठीक भी मालूम पड़ती है, क्योंकि अब गुरु जो कहेगा वैसा वे जियेंगे। गुरु का इशारा अब उनका जीवन होगा। गुरु के सहारे चलेंगे। गुरु की नाव में यात्रा होगी। गुरु की शर्तें स्वीकार करनी होंगी। गुरु के प्रति समर्पण करना होगा।

तो बड़ा विरोधाभास है। परमात्मा स्वतंत्रता देता है और परिणाम है कि सभी लोग परतंत्र हो गये हैं। और गुरु अनुशासन देता है और परिणाम में स्वतंत्रता उपलब्ध होती है। क्योंकि जैसे-जैसे व्यक्ति अनुशासित होता है, जैसे-जैसे व्यक्ति के जीवन में एक व्यवस्था, एक तंत्र पैदा होता है; जैसे-जैसे व्यक्ति के जीवन में होश संभलता है; जैसे-जैसे व्यक्ति का जीवन जागरूक जीवन होने लगता है--वैसे-वैसे स्वतंत्रता का नया आयाम खुलता है, स्वच्छंदता पैदा होती है।

'स्वच्छन्दता' शब्द का अर्थ उच्छृंखलता मत कर लेना। स्वच्छन्दता का ठीक वही अर्थ होता है, जो स्वतंत्रता का। स्वतंत्रता से भी बहुमूल्य शब्द है स्वच्छन्दता।

'स्वच्छन्द' का अर्थ होता है, जिसके भीतर का छन्द जग गया, जिसके भीतर का गीत जग गया। जो अपना गीत गाने के योग्य हो गया। जो गीत गाने के लिए परमात्मा ने तुम्हें भेजा था, और तुम भटक गये थे। जो बनने तुम्हें परमात्मा ने भेजा था, लेकिन तुम विपरीत चले गये थे, क्योंकि और हजार आकर्षण थे। और तुम्हें कुछ होश न था।

ऐसा ही समझो कि छोटे बच्चे को तुमने बड़ी से बड़ी बहुमूल्य किताब लाकर दे दी और उसने उसको गूद डाला। अभी उसे लिखना आता ही नहीं। कुछ अर्थ-पूर्ण बात तो तभी लिख सकेगा जब लिखना आये। लेकिन लिखने के पहले गुरु की प्रक्रिया से गुजरना होगा। किसी पाठशाला से गुजरना होगा। फिर यही गूदना, लिखना बन जाता है। है तो वह भी गूदना, मगर उसमें अर्थ आ जाता है, उसमें भाव आ जाते हैं। यही गूदना धीरे-धीरे सम्यक् रूप ले लेता है, आकार ले लेता है। और इसी गूदने में से महाकाव्य पैदा हो सकता है।

हम गीत लेकर आये हैं अपने प्राणों में, जो गाना है; जिसको बिना गाये तृप्ति नहीं मिलेगी; जिसे गाओ, तो ही तृप्ति है; जिसे जिस दिन गा लोगे...जैसे यह कोयल सुनते हो, कुहू-कुहू कहे जा रही है। यह उसके प्राणों का गीत है। वृक्षों में फूल खिले हैं, ये उनके प्राणों का गीत हैं। मनुष्य के भीतर भी कोई गीत छिपा है। उस गीत का नाम ही निर्वाण है, मोक्ष है। जब तुम अपना गीत गा लोगे, उसी गीत के गाने में ही तुम पाओगे--परितृप्ति बरस गई, परितोष छा गया। आनंद ही आनंद है फिर।

वसंत में फूलों से भरे वृक्ष को देखा है? वही सिद्ध की दशा है। उसके फूल तुम्हें दिखाई नहीं पड़ते, क्योंकि उसके फूल देखने के लिए भीतर की आंखें चाहिए। वसंत में नाचते हुए, दुल्हन की तरह सजे हुए वृक्ष के पास से गुजरे हो? उसकी सुवास अनुभव की है? लेकिन वह सुवास तुम्हें अनुभव हो जाती है, क्योंकि तुम्हारे नासापुट काम कर रहे हैं। अगर तुम्हें सर्दी-जुखाम हो, तो तुम्हें पता नहीं चलेगा उस सुगंध का। फूल-भरा हो वृक्ष, लेकिन तुम अंधे होओ, तो शायद तुम्हें पता नहीं चलेगा।

ऐसे ही भीतर हम अंधे हैं और बहरे हैं और भीतर हमारे हृदय में अभी अनुभव करने की क्षमता नहीं है। इसलिए गुरु के पास एकदम से पता नहीं चलता कि क्या हुआ है। लेकिन यही हुआ है--वसंत आ गया है। फूल खिल गये हैं। सुवास उड़ रही है। जो थोड़े-से करीब आने लगेंगे, जो पास सरकने लगेंगे गुरु के, जो गुरु के हाथ में हाथ अपना देने लगेंगे, धीरे-धीरे ये तरंगें उन पर छा जायेंगी, यह मस्ती उनकी भी आंखों में भर जायेगी। यह संक्रामक है मस्ती। वे भी बेहोश

होने लगेंगे। वे भी मदहोश होने लगेंगे।

गुरु से सम्बन्ध तुम्हें अनुशासन देगा, एक जीवन की शैली देगा। ध्यान देगा, प्रेम देगा, अन्तर्यात्रा के उपाय देगा।

परमात्मा ने स्वतंत्रता दी; परिणाम है कि तुम गुलाम हो गये हो। गुरु तुम्हें एक तरह की गुलामी देता मालूम पड़ता है और परिणाम में स्वतंत्रता हाथ आती है। ऐसा विरोधाभास है।

गोविंद के किये जीव जात हैं रसातल कौं,
गुरु उपदेश सु तो छुटें जमफंद तें।
गोविंद के किये जीव बस परे कर्मनि के,
गुरु के निवाजे सो फिरत हैं स्वच्छंद तें।
गोविंद के किये जीव बूड़त भौसागर में

उसके बनाये हुए, परमात्मा के बनाये हुए लोग, और भव-सागर में डूब रहे हैं!

गोविंद के किये जीव बूड़त भौसागर में,
सुन्दर कहत गुरु काढ़े दुखद्वंद तें।

लेकिन जिसने गुरु का साथ पकड़ा वह दुख से और द्वंद के बाहर हो गया। वह दो के बाहर हो गया, दुई के बाहर हो गया, द्वंद के बाहर हो गया, इसलिए दुख के बाहर हो गया। दुख और द्वंद पर्यायवाची हैं। तुम दुख में हो क्योंकि तुम दो हो। जब तक तुम दो हो तब तक तुम दुख में रहोगे। दो में खेंचातानी चलती रहेगी--बाहर कि भीतर, यह कि वह पृथ्वी, कि आकाश। चुनाव ही चुनाव और चुनाव में खेंचातानी है। और चुनाव में तनाव है। एक ही बचे, मैं न रहूं, तू ही रहे। या मैं ही रह जाऊं, तू न रहे। एक ही बचे। फिर सारा द्वंद गया, फिर सारा दुख गया। फिर विराम है, फ़िर विश्राम है।

गोविंद के किये जीव बूड़त भौसागर में
सुन्दर कहत गुरु काढ़े दुखद्वंद तें।
औरऊ कहां लौं कछू मुख तैं कहै बताइ

सुन्दरदास कहते हैं: बड़ी मुश्किल है, जो कहना चाहता हूं, कह नहीं पा रहा हूं। जो कहा, वह पर्याप्त नहीं है। गुरु की प्रशंसा कैसे करूं? किस मुंह से करूं? मेरी वाणी समर्थ नहीं है।

औरऊ कहां लौं कछु मुख तें कहै बताइ
गुरु की तो महिमा अधिक है गोविंद तें।

गरु की महिमा गोविंद से ज्यादा है। इसलिए जिन्होंने महावीर में गुरु को

देखा, महावीर को भगवान कहा। जिन्होंने बुद्ध में गुरु को देखा, बुद्ध को भगवान कहा। और तुम जानते हो, बुद्ध भगवान में मानते नहीं। और महावीर ने कहा है : कोई भगवान नहीं। लेकिन फिर भी शिष्य नहीं रुक सका भगवान कहने से। शिष्य क्या करे? उसकी कठिनाई समझो। उसकी मजबूरी, उसकी असहाय अवस्था! उसको एक बात समझ में आ गयी है कि परमात्मा का बनाया हुआ तो मैं भटक रहा था, डूबता जाता था--और अंधेरों में, और विषाद में, और तमस में। गुरु ने हाथ बढ़ाया, उबारा। ये हाथ...भगवान के होने का पहला सबूत मिला।

कबीर का वचन है न--

गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूं पांय। बड़ी मुश्किल खड़ी हो गयी है, कबीर कहते हैं। गुरु भी सामने, गोविंद भी सामने, परमात्मा भी आ गया सामने, गुरु भी खड़े हैं--अब मैं किसके पैर लगूं पहले? भूल न हो जाये। अगर गुरु के पैर लगूं पहले, तो कहीं ऐसा न हो कि परमात्मा का मुझसे अपमान हुआ। और परमात्मा के पैर तो कैसे लगूं पहले, क्योंकि बिना गुरु के परमात्मा था ही कहां।

गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूं पांय
बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो बताय।

लेकिन वे कहते हैं कि गुरु की बलिहारी है कि उसने जल्दी से इशारा कर दिया गोविंद की तरफ। गुरु का सारा इशारा गोविंद की तरफ है, इसलिए गुरु गोविंद से भी बड़ा है। क्योंकि उसके सारे इशारे गोविंद की तरफ हैं। गुरु का उठना, बैठना, बोलना, न बोलना, तुम्हारे प्रति कठोर होना, करुणावान होना, सबके पीछे एक ही विराट आयोजन है कि तुम जाग जाओ, गोविंद तुम्हें दिखाई पड़ जाये।

इसलिए कहते हैं सुन्दरदास :
गुरु की तो महिमा अधिक है गोविंद तें।

इस जगत में गुरु को जिसने पा लिया, उसने गोविंद को पा लिया। गुरु को पा लिया, तो गोविंद अब ज्यादा दूर नहीं है। पहुंच ही गये। मंदिर के द्वार पर पहुंच गये, तो मंदिर अब कितनी दूर है! जिसने गुरु को पा लिया, जिसने गुरु को पहचान लिया, उसने यह बात पहचान ली कि यह जगत पदार्थ पर समाप्त नहीं होता। यहां और भी महिमाएं हैं, और भी रहस्य हैं। यहां बड़े छुपे हुए राज़ हैं। यहां मिट्टी ही मिट्टी नहीं है। यहां मृण्मय में चिन्मय भी छिपा है। यहां मर्त्य में अमृत का वास है। जिसने गुरु को पहचान लिया, उसने नाव छोड़ दी परमात्मा की तरफ। वह चल पड़ा। उसका तीर निकल गया धनुष से। लक्ष्य-वेध हो ही जायेगा। असली सवाल धनुष से तीर का निकल जाना है।

गुरु के चरणों में जो झुका, वह झुक ही गया परमात्मा के चरणों में--परोक्ष रूप से। गुरु तो बहाना है, गुरु तो निमित्त है।

जीवन में तुम्हें जहां भी किसी जीवंत व्यक्ति के पास शांति मिले, सुगंध मिले, प्रेम मिले, तुम्हें रूपांतरित करने की कीमिया मिले, फिर संकोच मत करना। फिर रुकना मत। फिर किन्हीं भयों के कारण ठहर मत जाना। फिर साहस रखना। झुक जाना। दांव पर सब लगा देना।

और ध्यान रहे, कोई और कसौटी नहीं है गुरु को जानने की। तुम्हारा हृदय ही कहेगा। हृदय हमेशा कह देता है, मगर तुम सुनते नहीं हो हृदय की। तुम कहते हो, कैसे गुरु को पहचानें? क्या कसौटी है? बुद्धि कसौटी मांगती है, हृदय तत्क्षण कह देता है। हृदय की सुनो, बुद्धि को एक तरफ रख दो। हृदय से कभी भूल नहीं हुई है।

हृदय ऐसे ही है, जैसे तुमने दिशासूचक-यंत्र देखा है?--जो सदा ही बताता रहता है पूरब की ओर, सूरज के उगने की ओर। हृदय सदा ही परमात्मा की तरफ इशारा करता है, मगर तुम हृदय की सुनते नहीं हो, तुम बुद्धि की सुनते हो। और बुद्धि कि सुनने के कारण अक्सर तुम भ्रांति में पड़ते हो।

सच तो यह है बुद्धि की सुनते रहोगे, तब तक गुरु तुम्हें मिलेगा ही नहीं। और जो मिलेंगे वे गुरु के धोखे होंगे। गुरु के धोखे तुम्हारी बुद्धि को राजी कर लेंगे, क्योंकि गुरु के धोखे का मतलब होता है--जो तुम्हें राजी ही करने को बैठा है। तुम जैसा चाहते हो वैसा बनकर बैठा है।

ध्यान रखना, सद्गुरु कभी भी तुम्हारी अभिलाषाओं, आकांक्षाओं, अपेक्षाओं के अनुकूल नहीं होता, हो ही नहीं सकता। नहीं तो जीसस को लोग सूली चढ़ाते? बुद्ध को लोग पत्थर मारते? महावीर को गांव से खदेड़ कर निकालते? सुकरात को जहर पिलाते? और तुम यह मत सोचना कि वे सब लोग पागल थे और तुम ही पहली दफे बुद्धिमान हो। तुम्हारे ही जैसे लोग थे, तुम ही थे--जिन्होंने जीसस को सूली दी, सुकरात को जहर पिलाया, बुद्ध को पत्थर मारे, महावीर के कानों में सींखचे ठोक दिये। तुम्हीं हो वे। वे तुम से भिन्न लोग न थे, तुम से जरा भी भिन्न न थे। क्या मामला था?

और ऐसा नहीं है कि गुरुओं की पूजा उस दिन नहीं हो रही थी। जब बुद्ध को लोग पत्थर मार रहे थे, तब भी पंडित, पुजारी, पोंगापंथी, पूजे जा रहे थे। जब जीसस को लोग सूली चढ़ा रहे थे, तब भी धर्मगुरु का सम्मान किया जा रहा था।

बड़े मजे की बात है कि तुम्हारी बुद्धि जिससे राजी हो जाती है, वह अक्सर

धोखा होता है । उसके पीछे कारण हैं, क्योंकि वह धोखे की पूरी तैयारी करता है । तुम अगर मानते हो कि सद्गुरु नग्न होना चाहिए तो वह नग्न खड़ा होता है । तुम अगर मानते हो सद्गुरु आंख बंद किये होना चाहिए, तो वह आंख बंद करके खड़ा होता है । तुम अगर मानते हो कि सद्गुरु ऐसा होना चाहिए, वैसा होना चाहिए, तो वैसा ही हो जाता है । उपवास कहो, तो उपवास करता है । कांटों पर लेटो, तो कांटों पर लेट जाता है । उसने तय कर रखा है कि तुम्हारा गुरु बनना है । वह गुरु नहीं है । वह एक गहरे अर्थ में सिर्फ राजनेता है ।

राजनेता की कला का सार यही है कि वह देखता रहता है लोग कहां जाना चाहते हैं । लोग जहां जाना चाहते हैं, वह जल्दी से उचक कर उनके आगे हो जाता है । बस उसी को कुशल राजनेता कहते हैं जो हवा के बदलने के पहले समझ ले, रुख देख ले हवा का । लोग पूरब जा रहे हैं तो वह कहता है पूरब जाना है । लोग पश्चिम जाने लगें तो वह कहता है : मैं तो सदा ही कह रहा था कि पश्चिम जाना है । और लोगों को यह समझ में ही नहीं आ पाता कि वह हमारी नजरें परख रहा है, हमारे भाव परख रहा है, हवा के ढंग परख रहा है । और सदा चिल्लाकर कहने लगता है वही बात जो तुम्हें चाहिए । और तुम्हें लगता है कि ठीक है, यही आदमी हमारी मनोकांक्षाएं पूरी करेगा । किसी ने कभी किसी की मनोकांक्षाएं पूरी नहीं कीं ।

सद्गुरु तुम्हारी मनोकांक्षाएं पूरी नहीं करता, तुम्हारे मन को मिटाता है । मनोकांक्षाएं कैसे पूरी करेगा ? सद्गुरु तुम्हारे हिसाब से नहीं चल सकता—परमात्मा के हिसाब से चलता है—अपने हिसाब से चलता है । उसके साथ तो जिसे राजी होना हो, उसे ही राजी होना पड़ता है । वह तुम से राजी नहीं होता । समझ लेना, जो तुमसे राजी है, वह तुम्हें बदल नहीं पायेगा । उस डॉक्टर के पास तुम चिकित्सा कराने जाओगे, जो तुमसे राजी है ? तुम कहो कि मुझे टी. बी. है तो वह कहता है : हां टी. बी. है । तुम कहो कि मुझे यह दवा चाहिए क्योंकि यह दवा मीठी है; वह कहता है यही दवा तो मैं लिख ही रहा था । ऐसा डॉक्टर तुम्हें स्वास्थ्य दे सकेगा ? तुम बीमार हो और तुम्हारा डॉक्टर पाखंडी है । तुम लाख कहो कि मुझे यह दवा चाहिए, चिकित्सक अगर चिकित्सक है तो वह कहेगा—यह दवा नहीं है तुम्हारे काम की, दवा तो जो मैं देता हूं वह है तुम्हारे काम की । और मीठी दवाए देने का सवाल नहीं है । कितनी ही कड़वी हो, दवा काम की है तो पीनी पड़ेगी । चिकित्सक तुम्हारी बात मानकर नहीं चल सकता, तो ही तुम्हारी सहायता कर सकता है ।

सद्गुरु के सम्बन्ध में एक बात खयाल रखना : बुद्धि के पास कोई उपाय नहीं है सद्गुरु को जांचने का । बुद्धि जब भी जांचती है, गलत पकड़ लेती है ।

बुद्धि गलत को पकड़ने की प्रक्रिया है । बुद्धि अज्ञान है । बुद्धि को हटाओ, हृदय को बोलने दो । उठने दो हृदय की वाणी को । एक तरफ बुद्धि को सरकाकर रख दो और तुम चकित हो जाओगे : जो व्यक्ति तुम्हारा सद्गुरु होने को है, उससे तुम्हारे हृदय के तार एकदम झनझना उठेंगे । तुम अचानक पाओगे, कुछ हो गया, कुछ बात जुड़ गई, कुछ तालमेल बैठ गया । सरगम बजने लगी । पैरों में नृत्य का का भाव आने लगा । एक कम्पन प्रविष्ट हो गया ।

सद्गुरु के पास होना ऊर्जा का एक संबंध है, शक्ति का एक संबंध है । जो भी बुद्धि को एक तरफ सरकाकर रख देता है उसे जरा भी अड़चन नहीं आती सद्गुरु को खोजने में ।

और यह भी खयाल रखना, जो तुम्हारे लिए सद्गुरु है जरूरी नहीं है कि सभी के लिए सद्गुरु हो । जो किसी और के लिए सद्गुरु है, जरूरी नहीं है कि तुम्हारे लिए सद्गुरु हो । लोग भिन्न हैं, लोगों की जरूरतें भिन्न हैं । लोगों को अलग-अलग संगीत रुचिकर लगते हैं । परमात्मा बहुत रूपों में प्रगट होता है ।

इसलिए सुन्दरदास कहते हैं : और तो संत सबै सिर ऊपर ! इससे यह मत सोच लेना कि तुमने एक सद्गुरु चुन लिया, तो सारे सद्गुरु गलत होने चाहिए । इतना ही कहना : और तो संत सबै सिर ऊपर, सुंदर कै उर है गुरु दादू ।

बस इतना ही कहना कि मेरा हृदय यहां रंग गया, बाकी सब संतों को मेरे नमस्कार हैं । जिनका हृदय वहां रंग गया, वह भी सौभाग्य की बात है । हृदय रंगना चाहिए । परमात्मा का रंग सब पर बरसे और सब रंग जायें । कहां रंगते हैं, किस रंगरेज के पास रंगते हैं, इससे क्या फर्क पड़ता है ? रंग उसका है । इसलिए यह भी मत सोचना भूलकर कि मेरा सद्गुरु सबका सद्गुरु होना चाहिए । इससे विवाद पैदा होता है, सम्प्रदाय पैदा होते हैं, हिंसा पैदा होती है, वैमनस्य पैदा होता है और धर्म से पैदा प्रेम होना चाहिए । और कुछ भी धर्म से पैदा हो, तो धर्म धर्म नहीं रहा, राजनीति हो गई ।

हटाओ बुद्धि को, हृदय को बोलने दो । हृदय सदा ही सच बोलता है । हृदय की सुनकर चलो । तुम्हारे जीवन में भी ऐसा सूर्योदय हो ।

ज्ञान की धरती,
लगन के
साधना की नीर सींची
भावना की खाद डाली
ऋतु समय से
प्रेम के कुछ

बीज बोए--
कल--
उगेंगे अरुण अंकुर
कसमसाकर
तोड़ मिट्टी की
तरुण सोंधी परत को
धूप नूतन रूप देगी
मेघ वर्षा में
सघन घिरकर
बरसकर
तर करेंगे मूल तक को
गंध फूटेगी गमक कर
गांव वन उपवन--
हंसेंगे
घर नये उजड़े बसेंगे
प्राण प्राणों से जुड़ेंगे
मुक्ति कण-कण को छुएगी
शरद की गीली हवाओं
के परस से
नये पत्ते, नये कल्ले
नयी कलियां, खिल उठेंगी
रंग फूटेंगे धरा पर
इन्द्रधनुषी--
सुरभि से उद्यान महकेगा अनवरत--
कर्म-श्रम निष्फल कभी होता नहीं है--
है अटल विश्वास सुख के
शांति के आनंद के फल-फूल
निश्चय ही मिलेंगे।

आज इतना ही।

जागो--नाचते हुए

दसवां प्रवचन : दिनांक १० जून, १९७८; श्री रजनीश आश्रम, पूना.

जब से तुझे पाया, तेरी महफिल में दौड़ा आया।
तू ही जाने तू क्या पिलाता, हम तो जानें
तेरी महफिल में सबको मधु पिलाता,
जहां पक्षी भी गीत गाएं और पौधे भी लहराएं।
हम न जानें प्रभु-प्रार्थना, नहीं समझें स्वर्ग-नर्क की भाषा
अब हमें न कहीं जाना, न कुछ पाना;
हमें तो लगे यही संसार प्यारा!...

प्यार पर तो बस नहीं है मेरा, लेकिन फिर भी तू बता दे कि तुझे प्यार करूं या न करूं?

आप प्रेम करने को कहते हैं। प्रेम मैंने भी किया था। हार खायी और घाव अभी भी भरे नहीं हैं। समाज को वह प्रेम भाया नहीं। और मेरी प्रेयसी कमजोर थी; वह समाज के सामने झुक गयी। मैं उसे क्षमा नहीं कर पाता हूं।... और फिर भी आप प्रेम करने को कहते हैं?

सैद्धान्तिक रूप से सब कुछ समझ आते हुए भी चीजें व्यवहार में क्यों नहीं आ पातीं? कृपया समझाएं।
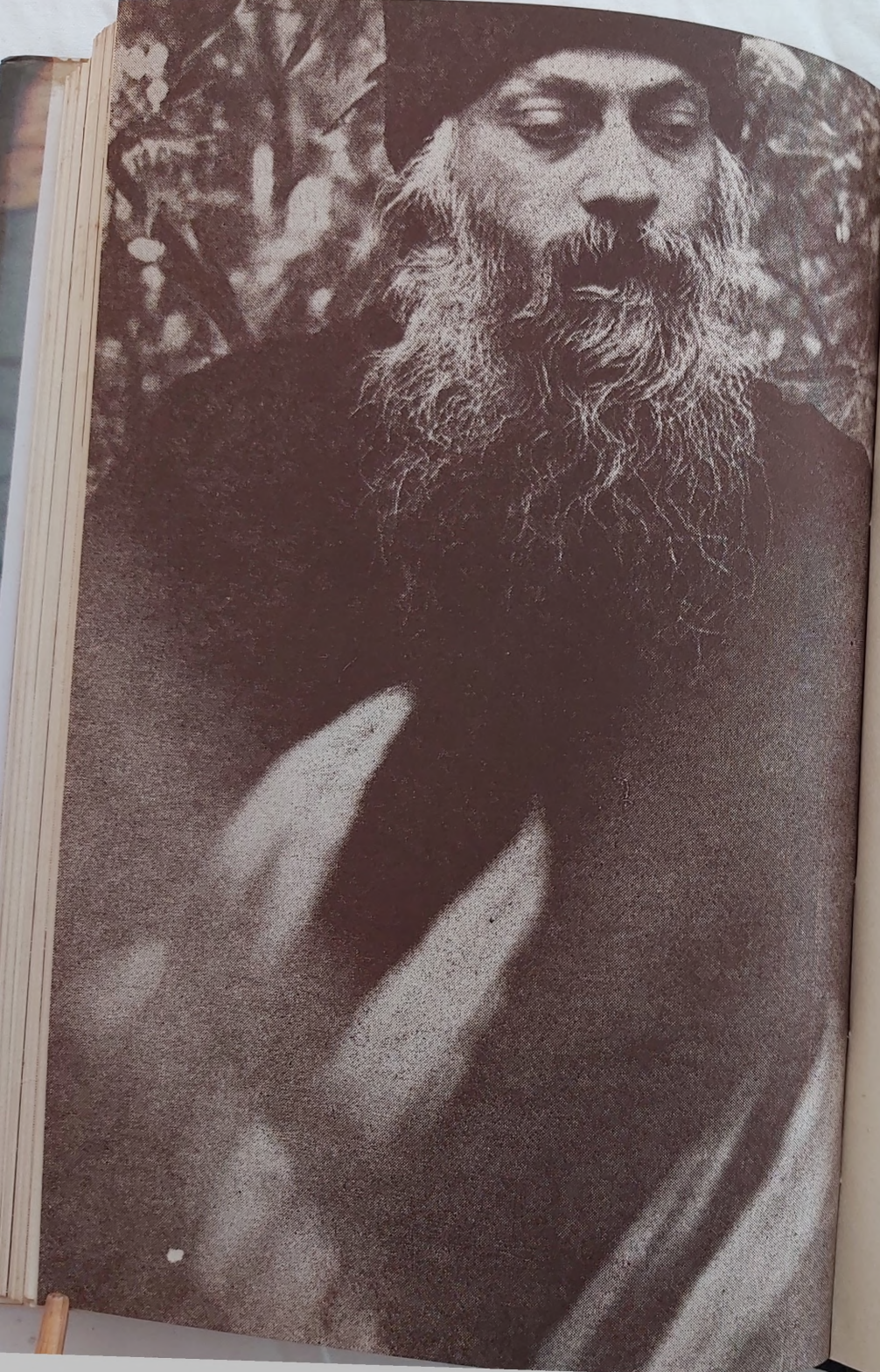
पहला प्रश्न ––

जब से तुझे पाया, तेरी महफिल में दौड़ा आया
तू ही जाने तू क्या पिलाता, हम तो जानें
तेरी महफिल में सब को मधु पिलाता, जहां
पक्षी भी गीत गायें और पौधे भी लहरायें
हम न जानें प्रभु-प्रार्थना, नहीं समझें स्वर्ग-नर्क की भाषा
अब हमें न कहीं जाना, न कुछ पाना,
हमें तो लगे यही संसार प्यारा।
अब न जाने का गम है, न मौत का डर है
हम इन्सान बनें या हैवान, यही हम जो भी हैं क्या कम हैं।
हम चले तेरे साथ जहां चाहे ले चल।...

❋ सत्संग ! मैं जानता हूं तुम्हारे हृदय में क्या घट रहा है। एक क्रांति ! और यह क्रांति आज अचानक नहीं घट रही है––धीरे-धीरे घटती जा रही है। यह आग धीरे-धीरे सुलगती रही है। तुम्हें इसका पता भी नहीं चला। जब क्रान्ति एकदम से घटती है तो पता चलता है और जब धीरे-धीरे घटती है, आहिस्ता-आहिस्ता जैसे उम्र बढ़ती है या रोज रात का चांद बढ़ता है, ऐसे जब घटती है तो पता भी नहीं चलता। ऐसी ही तुम्हारे जीवन में क्रांति घट रही है––शनैः-शनैः, एक-एक कदम, इंच-इंच। मैंने तुम्हें अंधेरे से धीरे-धीरे रोशनी की तरफ बढ़ते देखा है, विक्षिप्तता से से धीरे-धीरे विमुक्तता की तरफ कदम रखते देखा है।

और सत्संग ने पहली दफा प्रश्न पूछा है, सम्बंध उनका मुझसे पुराना है। इस जन्म में भी काफी वर्षों से मेरा सम्बंध है। और सम्बंध इसी जन्म पर समाप्त नहीं हो जाता––जनम जनम की प्रीति पुरानी ! पहले ही क्षण से जब वे मुझे इस जन्म में मिले, तो मेरे और उनके तार जुड़ गये। उन्हें शायद अब धीरे-धीरे खबर होगी, लेकिन मेरी अंगुलियां उनकी वीणा पर बहुत देर हुई तब से पड़ गई हैं। शायद वे

सोये ही रहे और कब उनकी वीणा से संगीत उठने लगा, उन्हें स्मरण भी न हो; लेकिन अब संगीत जोर से उठ रहा है। नींद टूटने लगी है।

यह प्रश्न शुभ है। ठीक तुमने समझा है। यहां मैं कोई शास्त्र समझाने को नहीं बैठा हूं, न सिद्धान्तों की कोई चिंता है। तुम्हें किसी मत में रूपान्तरित नहीं करना है। मतों से तो तुम वैसे ही पीड़ित हो। तुम्हें उनसे मुक्त करना है। यह कोई मंदिर नहीं बन रहा है। यह कोई नई मस्जिद नहीं खड़ी हो रही है। मंदिर-मस्जिद ने तो तुम्हें खूब सताया है। यहां तो मंदिर और मस्जिद गिराने का काम चल रहा है।

तुम ठीक ही कहते हो। यहां तो हम एक मधुशाला बना रहे हैं। वही बुद्ध ने किया था, वही महावीर ने, वही कृष्ण ने, वही क्राइस्ट ने। जब भी कोई व्यक्ति जला है, जागा है, उसके भीतर रोशनी प्रगट हुई है, जब भी किसी व्यक्ति के भीतर का संगीत मुखर हुआ है——तो मधुशाला बनी है। मधुशालायें जब मर जाती हैं तो मंदिर बनते हैं। मंदिर मधुशालाओं की लाशें हैं। जब बुद्ध चलते हैं, जीते हैं, उनके साथ जो संबंध जोड़ लेता, वह तो मतवाला ही हो जाता है, वह तो दीवाना ही हो जाता है।

बुद्ध से संबंध जोड़ना इस जगत में जो गहरी से गहरी शराब है, उसको पी लेना है। फिर सब शराबें पानी की तरह फीकी हो जाती हैं। उस जगत की जो शराब पी ले, इस जगत की कोई शराब किसी काम की नहीं रह जाती।

और मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि इस जगत की शराबों में इतना रस है, क्योंकि तुम्हें उस जगत की शराब का कोई पता नहीं। और यह रस कायम रहेगा। यह रस मिटनेवाला नहीं है। सदियों से है। नीतिज्ञ और राजनीतिज्ञ और महात्मा और साधु समझाते रहे हैं——शराब मत पियो, कौन सुनता है! नियम बनते हैं और तोड़े जाते हैं। नियम बनाने के लिये ही साधु-संत चेष्टा करते रहते हैं। नियम बनाने का मतलब ही यह होता है, कानून बनाने का मतलब ही यह होता है कि लोगों के भीतर बेहोश होने की प्रबल कामना है। जितने मजबूत कानून बनाये जाते हैं वे इसी की खबर देते हैं, कि उतनी ही प्रबल कामना है। तभी कानून बनाया जाता है। लेकिन कामना इतनी प्रबल कि कानूनों को तोड़ देती है, मिटा देती है। सब कानून तोड़े जाने के लिये ही बनते हैं।

सदियां बीत गई हैं, आदमी नई-नई शराबें खोजता है। इसे जरा हम खोजें——क्यों? कहीं भीतर मनुष्य के कोई गहरा भाव है जिसकी तलाश है, कोई गहरी प्यास है। मनुष्य मस्त होना चाहता है। बिना मस्त हुए भी जीवन कोई जीवन है? और चूंकि परमात्मा की शराब नहीं मिलती तो फिर परिपूरक शराबें खोज लेता है।

फिर कुछ भी बना लेता है। असली सिक्के न मिलें तो आदमी करे क्या? नकली सिक्के इकट्ठे कर लेता है। नकली से ही मन को समझाता है, सांत्वना करता है।

इसलिए मेरी दृष्टि और है। मेरी दृष्टि यह है कि तुम अगर परमात्मा को पीकर मस्त हो जाओ, तुम्हारी जिंदगी से इस जगत की शराबें अपने-आप चली जायेंगी। किसी कानून को बनाने से कुछ होनेवाला भी नहीं है। और एक तरह की शराब बंद कर दोगे तो दूसरी तरह की शराब पियोगे। पद की भी शराब होती है——भयंकर शराब होती है! धन की भी शराब होती है——गहरी शराब होती है! वह जो दुकानों पर बिकती है शराब, वह तो कुछ भी नहीं है। वह तो रात पी, सुबह उतर जाती है। पद की शराब चढ़ती है तो चढ़ी रहती है, उतरती ही नहीं। तुम चाहे पद से उतर जाओ, मगर शराब नहीं उतरती। फिर पद पर चढ़ाने की कोशिश में लगी रहती है।

मैं तुम्हें शराब पिला रहा हूं, ताकि शराबें छूट जायें। यह मधुशाला ही है। यहां हम उस रस को तलाश कर रहे हैं, जिसकी बूंद भी गिर जाये तो सब सागर छोटे पड़ जाते हैं। फिर वह रस कैसे मिले... किसी को ध्यान से मिलता है, किसी को प्रेम से मिलता है। किसी को सत्संग से मिलता है, किसी को गुरु के साथ बैठ कर ही मिल जाता है, किसी को गुरु की वाणी सुन-सुन कर मिलता है। किसी को सिर्फ गुरु के प्रेम से मिल जाता है। कैसे मिले, यह बात और है। उस परमात्मा के द्वार अनेक हैं। मगर मिलना चाहिए। नहीं तो जीवन व्यर्थ गया। नहीं तो जीवन में कोई अर्थ न था। नहीं तो यूं ही जीये——हवा के थपेड़े खाते रहे; यहां से वहां भटकते रहे; ठोकरें खाते रहे। जन्म और मृत्यु के बीच फिर ठोकरों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

तो तुम ठीक ही कहते हो, कि यहां मधु ही पिलाया जा रहा है। यहां सिद्धांत, शास्त्र, शब्द, इनका कोई मूल्य नहीं है। इनका भी उपयोग किया जा रहा है सीढ़ियों की तरह। मगर ले चलना है इनके पार——एक ऐसी मस्त दशा में, जहां तुम्हारे भीतर से ही तुम्हारा रस बहने लगे। रस लिये हो तुम। स्रोत तुम्हारे भीतर है। चोट पड़ने की जरूरत है। यह मेरा तीर तुम्हें छेद दे, तो तुम्हारे भीतर झरना फूट उठे। फिर तुम कहीं भी न खोजोगे। तुम कहीं बाहर न जाओगे। फिर तुम आंख बंद करोगे और भीतर डुबकी लगाओगे। उस डुबकी का नाम ही संन्यास है।

'सत्संग' बहुत दिन तक संग तो करते रहे, लेकिन संन्यास टालते रहे, बचते रहे। मैंने कभी उन्हें कहा भी नहीं, क्योंकि मैं जानता था आज नहीं कल यह घटना घटने ही वाली है, कहने की कोई जरूरत नहीं। मैं पिलाये गया। मुझे पिलाने पर भरोसा है, समझाने पर नहीं। फिर एक दिन आ गये। आंखों में शराब का नशा।

और एक दिन संन्यास में डुबकी मार ली। वर्षों तक बचे। किनारे पर खड़े देखते रहे। मगर कब तक किनारे पर रुकोगे! मंझधार का आमंत्रण मिलना शुरू हो जाए तो कितनी देर! थोड़ी देर कर सकता है कोई, लेकिन ज्यादा देर नहीं कर सकता। जब उस पार का निमंत्रण आ जाता है तो जाना ही होगा।

यहां जो व्यक्ति आते हैं, उनमें देर नहीं लगती मुझे छांट लेने में कि कौन उस पार जाने की तैयारी रखेगा। फिर उस पर मैं अपना प्रेम बरसाए जाता हूं और प्रतीक्षा करता हूं--कब...कब वह साहस जुटा पाएगा।

सत्संग ने कहा : जब से तुझे पाया तेरी महफिल में दौड़ा आया।

यह सच है। वर्षों पहले पूना में जब मैं पहली बार आया था तब से ही वे दौड़े आते रहे हैं। कभी उन्होंने कोई सैद्धांतिक सवाल मुझसे पूछा नहीं। बस मेरे पास होने का रस लेते रहे हैं। बहुत मुश्किल होता है--मेरे पास होना और सवाल न पूछना। मेरे पास घंटों बैठे हैं। सुबह से लेकर सांझ तक मेरे साथ रहे हैं। लेकिन कभी कोई सैद्धान्तिक सवाल नहीं पूछा। यह बात मुझे प्रीतिकर लगी है। बहुत कम लोग हैं जो सैद्धान्तिक सवाल पूछने की उत्तेजना से बच पायें। इस बात का मेरे मन में समादर रहा है। और इसलिए जब उन्होंने संन्यास लिया तो मैंने उन्हें 'सत्संग' नाम दिया। 'सत्संग' का अर्थ यह होता है : बिना पूछे साथ होना। चुपचाप साथ होना। रस पीना, जैसे भंवरा रस पीता है।

'तू ही जाने तू क्या पिलाता।'

अब तो तुम भी जानते हो। अब तो जो भी पी रहे हैं वे सभी जानते हैं कि यहां शराब-बंदी का नियम तोड़ा जा रहा है। 'जहां पक्षी भी गीत गायें और पौधे भी लहराएं।' अब तुम्हारे भी लहराने और गीत गाने का क्षण करीब आ गया सत्संग! अब पक्षियों को मात देनी है। अब पौधों को हराना है। और तभी आदमी अपने पूरे रूप में प्रगट होता है, अपनी पूरी महिमा में--जब पक्षी ईर्ष्या करने लगें, जब पौधे जलन से भर जायें।

मीरा जब नाची होगी तो तुम सोचते हो, पौधे और पक्षी ईर्ष्या से न भर गये होंगे? और जब कृष्ण ने बांसुरी बजाई होगी, तो तुम सोचते हो या नहीं, सारी प्रकृति क्षण-भर को स्तब्ध नहीं हो गई होगी? मनुष्य जैसी बांसुरी बजा सकता है, न कोई पक्षी बजा सकता है, न कोई हवा की लहर पौधों से गुजरते हुए वैसा स्वर-नाद पैदा कर सकती है। वह उनकी सामर्थ्य नहीं है। वह मनुष्य की ही सामर्थ्य है। जैसा नाच मनुष्य में पैदा हो सकता है वैसा किसी में पैदा नहीं हो सकता।

पुराने शास्त्र कहते हैं कि देवता भी मनुष्य होने को तड़फते हैं। जब बुद्ध को ज्ञान हुआ तो कहानियां कहती हैं कि सबसे पहले जो लोग उनके चरणों में आकर

झुके, वे स्वर्ग के देवता थे। क्यों एक आदमी के चरणों में झुके होंगे? इस देश ने जितना सम्मान मनुष्य को दिया है उतना किसी देश ने नहीं दिया। देवताओं को मनुष्य के चरणों में झुकाया है। क्यों? देवता सुख में होंगे भला, बड़ी मौज में रह रहे होंगे, बड़ी सुविधा में, संपन्नता में, ऐश्वर्य में, वहां कोई कष्ट न होगा, गरीबी न होगी, बीमारी न होगी, दुख-दुर्बलता न होगी--मगर यह नृत्य उनमें पैदा नहीं हो सकता, जो बुद्ध में पैदा होता है, जो कृष्ण में पैदा होता है।

मनुष्य चौराहा है। इसके पीछे पशुओं का जगत है; वह एक राह है। इसके आगे देवताओं का जगत है; वह एक राह है। और मनुष्य के भीतर एक तीसरी राह है--नर्क और स्वर्ग दोनों के ऊपर उठ जाने की। उस स्थिति को हम मोक्ष कहते हैं। उसको ही मैं शराब कह रहा हूं। नर्क में पड़े होने का मतलब है--दुख में पड़े। स्वर्ग में पड़े होने का मतलब है--सुख में पड़े। लेकिन सुख चुक जाता है। और सुख भी ज्यादा दिन भोगने पर दुख जैसा हो जाता है। सुख भी बासा हो जाता है। तुम सोचो, आज भी वही सुख, कल भी वही सुख, परसों भी वही सुख --कितने दिन तक तुम रम लोगे उसमें? जल्दी ही ऊब जाओगे। देवता बिलकुल ऊबे हुए हैं। स्वर्ग में अगर कोई सब से बड़ा सवाल है, जो स्वर्ग के निवासी पूछते हैं, तो वह बोरडम है, ऊब है। ऊबे हुए हैं।

तुम धनी आदमियों को देखते हो, उनमें थोड़ी-सी झलक मिलेगी तुम्हें ऊब की। अगर अमरीका में, यूरोप में, जहां सम्पन्नता बढ़ी है, कोई सवाल सबसे बड़ा दार्शनिक मूल्य रखता है तो वह ऊब का है। तुम अगर आधुनिक दर्शन शास्त्र की किताबें पढ़ोगे तो तुम बहुत हैरान होओगे, उनमें ईश्वर की चर्चा न भी हो, आत्मा की चर्चा न भी हो, मगर ऊब की चर्चा जरूर होती है। ऊब! यह भी कोई आध्यात्मिक सवाल है? यह है। यह सम्पन्न आदमी का सवाल है।

तुम्हीं जरा सोचो, सुन्दर से सुन्दर स्त्रियां हों, सुन्दर से सुन्दर भवन हों, सुन्दर से सुन्दर भोजन हो, सुन्दर से सुन्दर वस्त्र हों--कितने दिन तक अटके रहोगे? जल्दी ही ऊब पैदा हो जाएगी। अब और आगे क्या है? गरीब आदमी में ऊब पैदा नहीं होती, उसको आशा रहती है जिन्दा। वह सोचता है : कल इससे बेहतर होगा, परसों उससे बेहतर; जल्दी ही मैं भी अच्छा मकान बनाऊंगा, सुख-सुविधा से रहूंगा। उसकी आशा उसे जिलाए रखती है।

अमीर आदमी की तकलीफ एक है कि उसकी आशा मर जाती है। आगे अब और क्या है? अगर राकफेलर यह सोचे कि कल अच्छा होगा, तो कैसे सोचे? कल्पना की सुविधा नहीं रही। अमीर आदमी की कल्पना आत्मघात कर लेती है। और कल्पना ही तुम्हारा जीवन है। कल्पना से ही तुम जी रहे हो। कल अच्छा हो

जायेगा, इस सहारे आज को गुजार रहे हो। अमीर आदमी की तकलीफ समझो। कल अच्छे होने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि अच्छी से अच्छी कार हो सकती थी, वह है। अच्छे से अच्छा हवाई जहाज हो सकता है, वह है। अच्छे से अच्छा मकान, अच्छी से अच्छी पत्नी, पति, जो भी हो सकता था, है। कल इससे बेहतर होने की कोई सम्भावना नहीं है। आगे जाने का कोई उपाय नहीं है। अंत पर आ गया।

अमीर आदमी ऊब जाता है। अमीर आदमी परेशान हो जाता है। और यह तो कुछ भी नहीं है, स्वर्ग में तो इससे बहुत ज्यादा गुना सुख होगा। वहां ऊब है। नर्क में ऊब नहीं है। नर्क में आशा है। नर्क में आशा के दीये जलते हैं। आदमी दुख भोगता है तो सोचता है आज नहीं कल नर्क से निकल जाऊंगा। लेकिन जहां सुख ही सुख है, आदमी सोचता है: अब क्या होगा? अब आगे क्या है? क्या यही जीना पड़ेगा, ऐसा ही जीना पड़ेगा? ऐसे ही जिऊंगा सदा-सदा? अब मेरी जिन्दगी में नया कुछ भी न होगा?

इसलिए भारत ने, सिर्फ भारत ने... दुनिया में और भी धर्म हैं—ईसाइयत है, यहूदी धर्म है, इस्लाम है—इन तीनों धर्मों में मोक्ष की कोई धारणा नहीं है। उस लिहाज से वे धर्म थोड़े अधूरे पड़ जाते हैं। स्वर्ग की धारणा है, नर्क की धारणा है, मोक्ष की कोई धारणा नहीं है। सच तो यह है, मोक्ष शब्द को अनुवादित करने के लिए दुनिया की भाषाओं में कोई शब्द नहीं है। क्योंकि जब धारणा ही नहीं तो शब्द कैसे होगा? मोक्ष हमारा बहुमूल्य शब्द है। वह हमारी सबसे बड़ी खोज है: दुख है, उससे भी छूटना है। सुख है, उससे भी छूटना है। दुख और सुख के द्वंद्व के पार जाना है—न जहां दुख रह जाए, न जहां सुख रह जाए। उस अवस्था को हम मोक्ष कहते हैं। मनुष्य ही उस अवस्था में उठ सकता है। मनुष्य ही उस अंतर्यात्रा पर जा सकता है।

नर्क में लोग बहुत दुखी हैं, अंतर्यात्रा करने की सुविधा नहीं है। स्वर्ग में लोग बहुत सुखी है, ऊबे हुए हैं, अंतर्यात्रा तक उठने की संभावना नहीं है। ऊब ही उन्हें मारे डाल रही है। वे नई-नई उत्तेजनाएं खोजने में लगे रहते हैं। मनुष्य चौराहा है, जहां सारी प्रकृति के सारे रास्ते आकर मिलते हैं। मनुष्य में जीवन का सबसे बड़ा फूल खिल सकता है—मोक्ष कहो, निर्वाण कहो। यह फूल जब खिलता है तो वृक्षों में खिले फूल फीके पड़ जाते हैं। यह फूल जब खिलता है, पक्षियों के गीत फीके पड़ जाते हैं। यह फूल जब खिलता है, चांद-तारों की रोशनी फीकी और मंदी मालूम है।

तुम कहते हो: 'जहां पक्षी गीत गाते, पौधे लहराते।' अब सत्संग! तुम भी लहराओ और तुम भी गीत गाओ। छोड़ो लाज-संकोच। छोड़ो सब संस्कार।

छोड़ो बंधी-बंधाई धारणायें। मस्ती भीतर आ रही है, उसे बाहर भी बहने दो।

लोग बड़े कंजूस हैं। एक मित्र ने चार-छह दिन पहले ही मुझसे आकर पूछा कि हम और सद्गुरुओं के पास भी रहे हैं, वहां तो सदा यही कहा गया कि जब भीतर ऊर्जा उठे, कुंडलिनी जगे, तो उसको भीतर ही सम्भाल लेना और आप यहां कहते हैं: अभिव्यक्ति दो, अभिव्यंजना दो। यह बात बड़ी उल्टी है।

मैंने उनसे कहा: तुम किन्ही कंजूसों के पास रहे होओगे। भीतर ही सम्भाल लेना! आदमी की कंजूसी जाती ही नहीं। जो भीतर उठे बाहर प्रगट करो। और जितना तुम बांटोगे उतना बढ़ेगा। और क्या बाहर-भीतर का भेद किया है? श्वास भीतर जाती है, फिर उसको बाहर जाने देते हो कि नहीं? नहीं जाने दोगे, उसी क्षण मर जाओगे। इसलिये तुम्हारे तथाकथित महात्मा मुर्दे हैं। पकड़े हैं। थोड़ी-सी किरण आ गई है, थोड़ी-सी ज्योति आ गई है, थोड़ी-सी झलक आ गई है—ऐसे झपट्टा मार कर बैठ गये हैं, कि अब उसी से अटक गये हैं।

लुटाओ! और बहुत आयेगा। इतनी जल्दी पकड़ने की बात ही मत करो। जिस कुएं से पानी भरा जाता है, उसमें ताजी धार बहती रहती है, उसका जल निर्मल रहता है। जिस कुएं से लोग पानी नहीं भरते, कंजूस कोई हो तो ढांक कर रख दे कुएं को, कि कोई पानी न भरे, खुद भी न भरे; प्यासा मरे, मगर पानी न भरे, क्योंकि खर्च कहीं न हो जाए! वह कुआं मर जायेगा। उस कुएं का जल मुर्दा हो जाएगा। उस कुएं के झरने सूख जाएंगे। उनकी जरूरत ही न रहेगी। उस कुएं का पानी जल्दी ही जहर से भर जायेगा, पीने-योग्य नहीं रह जाएगा।

कुछ रोकना नहीं है, बांटना है। पाओ और लुटाओ। दोनों हाथ उलीचिये! जरा भी कृपणता मत करना। उसी को मैं नृत्य कह रहा हूं, उसी को फूल कह रहा हूं। जब तुम भीतर मस्ती से भरो तो छलकने देना। लबालब भरोगे तो मस्ती छलकेगी ही। छलकनी ही चाहिए। और तुम चकित होओगे यह बात जानकर: जितनी छलकेगी उतना ज्यादा तुम भरोगे। जितना बांटोगे उतना मिलेगा। यहां बांटनेवालों को मिलता है।

नाचो वृक्षों की भांति! गाओ पक्षियों की भांति। मुक्त भाव से लुटाओ!

जीसस ने कहा है: जो बचायेगा वह खो देगा और जो खो देगा उसे मिल जाएगा। ठीक कहा है।

यहां मैं चाहता हूं तुम्हें एक ऐसा नृत्य देना, एक ऐसा गीत... लेकिन तुम्हारी हजारों-हजारों साल की धारणायें हैं, वे तुम्हारे पीछे खड़ी हैं। मेरे पास भी आ जाते हो तो वे धारणायें पीछे अटकी रहती हैं। वे कहती हैं: ठीक है, सुख मिला तो अपना सम्भाल कर रखो। बताना क्या है? दिखाना क्या है? दिखाने के लिए नहीं दिखाना

है। बताने के लिए नहीं बताना है। मगर लुटाना जरूर है। वह लुटाने में दिखाई पड़ेगा, वह दूसरी बात है।

मेरे पास कृपणता मत रखना। इसीलिए हर ध्यान के बाद मैं अनिवार्य रूप से यह अंग मानता हूं ध्यान का, कि जब तुम आनन्द से भरो तो नाच कर उसे प्रगट कर देना। श्वास भीतर ली, उसे बाहर छोड़ देना। क्या बाहर क्या भीतर! सब उसका है। बाहर भी वही, भीतर भी वही। उसी से लेते हैं, उसी को दे देते हैं। त्वदीयं वस्तु तुभ्यमेव समर्पये ! तेरी चीज तुझको लौटा दी, तुझ ही को भेंट कर दी!

ये फूल जो खिलते हैं, कहां से आते हैं? ये पृथ्वी से आते हैं। ये आकाश से आते हैं। ये सूरज की किरणों से आते हैं। ये चांद के अमृत से आते हैं। ये हवाओं से आते हैं। फिर इसी में बिखर जाते हैं, इसी में सुगंध को लुटा देते हैं, इसी मिट्टी में गिर कर फिर मिट्टी हो जाते हैं। सूरज की किरण सूरज में गई, पानी सागर में गया, हवा हवा में उड़ गई, मिट्टी मिट्टी में गिर गई। फिर उठेगा फूल, फिर जगेगा फूल। अगर वृक्ष कंजूस हो जाएं और फूल खिल जाएं और उनको पकड़ कर बैठ जाएं तो वे फूल प्लास्टिक के हो जाएंगे, असली नहीं रह जाएंगे। असली तो आता है, जाता है। असली में तो गति होती है। असली में प्रवाह होता है। असली में परिवर्तन होता है।

नाचो! गाओ! हरि बोलौ हरि बोल!

पूछा है: 'हम न जानें प्रभु प्रार्थना।' यही तो है प्रभु-प्रार्थना। यही नाचना, यही गाना, यही गुनगुनाना यही प्रकृति के प्रति आह्लाद, का भाव--बस यही है प्रार्थना। मंदिरों में जो हो रही है, मस्जिदों में जो हो रही है, वह प्रार्थना नहीं है, प्रार्थना की पिटी हुई लकीर है; प्रार्थना का नाम है, प्रार्थना नहीं है। मस्ती है प्रार्थना। शब्दों से कोई सम्बध नहीं है। कभी शब्द उठेंगे भी और नहीं भी उठेंगे। उठ जाएं तो ठीक, न उठें तो ठीक। प्रार्थना कोई औपचारिक बात नहीं है--हिंदू की और ईसाई की और जैन की। प्रार्थना कहीं हिन्दू, ईसाई और जैन की हो सकती है? प्रार्थना तो भाव-दशा है। प्रार्थना तो अनुग्रह का बोध है। परमात्मा को धन्यवाद है।

और हमारे पास शब्द भी क्या हैं कि हम उसे धन्यवाद दें। इसलिए तो हम झुकते हैं। शब्द से कैसे कहें? झुक कर अपने प्राणों से कह देते हैं।

'हम न जाने प्रभु प्रार्थना, नहीं समझें स्वर्ग-नर्क की भाषा।
अब हमें न कहीं जाना न कुछ पाना, हमें तो यही संसार प्यारा।'

यही मेरी देशना है। कहीं किसी को नहीं जाना है। मोक्ष कहीं और नहीं है,

मोक्ष इसी संसार में होने का एक ढंग है। नर्क भी इसी संसार में होने का एक ढंग है, स्वर्ग भी इसी संसार में होने का एक ढंग है। यह होने के ढंगों के नाम हैं। यात्रायें नहीं हैं! कहीं जाना नहीं है। यहीं सब हो जाता है। जैसे तुम रेडियो पर स्टेशन लगाते न, कहीं जाना-आना थोड़े ही होता है कि दिल्ली लगाया कि लन्दन लगाया कि न्यूयार्क, तो तुम्हें कहीं जाना-आना तो नहीं होता। बस जरा रेडियो की सुई घुमानी पड़ती है। रेडियो की सुई उस तरंग से जोड़ देनी होती है जहां दिल्ली, और तत्क्षण तुम जुड़ गये।

ऐसे ही व्यक्ति के भीतर चित्त है और चित्त में तरंगें हैं। उन तरंगों को जोड़ने की बात है।

तुमने कभी देखा? दुख में बैठे हो, प्रयोग करना। दुख में बैठे हो, अचानक इसको एक अवसर बना लेना और सोचना कि कैसे सुख से जुड़ जाऊं। पहले तो बहुत मुश्किल होगी क्योंकि पुरानी आदत, पुराना ढंग यह है कि दुखी आदमी कैसे सुखी हो सकते हो? अभी तो दिल्ली लगी है, लन्दन कैसे लग सकता है? हमेशा लग सकता है। जरा कोशिश करना। दुख में बैठे हो, खड़े होकर गीत गुनगुनाने लगना। पहले तो हंसी आएगी। पहले तो खुद पर भरोसा नहीं आएगा। पहले तो सोचोगे: 'क्या मैं पागल हो रहा हूं? यह कोई वक्त है? अभी दुख का समय है।' फिर थोड़ा नाचने लगना और तुम चकित हो जाओगे। जल्दी ही तुम इस घटना को भीतर घटते देखोगे कि दुख की बदली छूट गई, सुख का सूरज निकला। और जब तुम बहुत सुखी हो रहे हो, तब भी बदल कर देखना। बड़े सुख में हो, बड़े प्रसन्न बैठे हो, बदल कर देखना हवा को। सोचने लगना दुख की बातें--फलां-फलां आदमी ने गाली दी और फलां आदमी ने धोखा दिया और फलां आदमी ने ऐसा दुर्व्यवहार किया। जरा सोचने में उतरना। तरंग को ले जाना उस तरफ, सुई को घुमाना उस तरफ--और जल्दी ही तुम पाओगे, विदा हो गया स्वर्ग, भूल गये सुख, चित्त क्रोध से भरा है, वैमनस्य भरा है। ईर्ष्या-हिंसा से भरा है, बदला लेने का भाव उठा है। हाथ तलवार खोज रही है।

एक झेन फकीर के पास जापान का सम्राट मिलने गया। पुरानी कहानी है, जब सम्राट फकीरों के पास जाते थे। अब तो दो कौड़ी के फकीर हैं, वे चले जाते हैं, कुछ नहीं चलो मोरारजीभाई देसाई का दर्शन करने चले जाते हैं। अभी कुछ दिन पहले खबर थी: गणेशपुरी के गोबरनरेश मुक्तानंद मोरारजी देसाई का दर्शन करने गये ... मोरारजी देसाई का दर्शन करने! तुम्हें दर्शन को कोई और दर्शनीय स्थान न मिला? जमाने बदल गये हैं। और न केवल दर्शन किया, बल्कि मोरारजी देसाई को कह कर आए कि हम सौभाग्यशाली हैं कि आप जैसा साधु-

पुरुष भारत का प्रधानमंत्री है! प्रधानमंत्री साधु-पुरुष हो सकता है? साधु-पुरुष को तुम प्रधानमंत्री होने दोगे? प्रधानमंत्री होने के लिए असाधुता अनिवार्य शर्त है। हां, साधुता का दिखावा जरूरी है। भीतर सब चालबाजियां, सब जालसाजियां। भीतर सब बेइमानियां। भीतर सब उठा-पटक। ऊपर-ऊपर साधुता का वेश जरूरी है। बगुला भगत होना जरूरी है।

देखते हैं बगुला भगत को! बिलकुल एक टांग पर खड़ा रहता है योगासन साधे! अकंप! बड़े सेवड़े योगी मात हो जाएं! बिलकुल आँख बंद किये, हिलता नहीं, डुलता नहीं, इसलिए इसको 'बगुला भगत' कहते हैं। कितनी भक्ति से खड़ा है! फिर आई मछली और उसने झपट्टा मारा।

राजनीति की दौड़ में जो लगा हो वह साधु तो हो ही नहीं सकता। राजनीति की दौड़ ही असाधु चित्त में पैदा होती है। पद की आकांक्षा हीन ग्रंथि से पीड़ित लोगों में होती है। पद मद है।

पुरानी कहानी है। सम्राट झेन फकीर के दर्शन को गया। फकीर बैठा खंजड़ी बजा रहा था। सम्राट ने पूछा कि मैं एक प्रश्न लेकर आया हूं--स्वर्ग क्या है, नर्क क्या है? उस फकीर ने खंजड़ी नीचे रख दी और उसने कहा: प्रश्न तो बड़ा ले आए और चेहरा बिलकुल बुद्धू जैसा है। खोपड़ी में गोबर भरा है।

अब सम्राट से ऐसी बात कहोगे...। सम्राट ने तो सोचा भी नहीं था कि कोई फकीर ऐसा बोलेगा। और यह परम ज्ञानी था। और इसकी दूर-दूर तक ख्याति थी। और वजीरों ने बड़ी प्रशंसा की थी कि आदमी जाने-योग्य अगर कोई है तो यह। सम्राट तो भूल ही गया। उसने तो तलवार खींच ली। और जब उसने तलवार खींची और तलवार उठा कर फकीर को मारने को ही था, फकीर खिल-खिला कर हंसा और उसने कहा: यह रहा नर्क का द्वार।

एक क्षण को चौंका। एक होश आया कि यह मैं क्या कर रहा हूं! यह मुझसे क्या हो गया! एक क्षण में इस फकीर ने चाबी घुमा दी, हटा दी सुई! अभी आया था बड़ी गरिमा से, सत्संग करने आया था, बड़े भाव-विभोर होकर आया था, अभी चरणों में झुका था--और तलवार निकाल ली! और जब फकीर ने हंस कर कहा कि यह नर्क का द्वार है, चोट लगी होगी गहरी, तलवार म्यान में वापस चली गई, साष्टांग जमीन पर गिर पड़ा, फकीर के चरण पकड़ लिए, आंख से आंसू बहने लगे। फकीर ने कहा: यह स्वर्ग का द्वार है।

स्वर्ग और नर्क चित्त की दो अवस्थायें हैं। जरा में स्वर्ग, जरा में नर्क हो जाता है। और ऐसी ही जो परम अवस्था है, मोक्ष, वह भी है--जहां दोनों से मुक्त हो गए, जहां दोनों के मध्य ठहर गये; जहां सब तादात्म्य विलीन हो गये; जहां

साक्षी का आविर्भाव हुआ; न तो जहां यह रहा कि मैं दुख हूं, न मैं सुख; जहां किसी चीज से कोई सम्बन्ध जोड़ने की बात ही न रही, सारे सम्बन्ध टूट गये, असंग भाव हुआ--वहीं मुक्ति, वहीं मोक्ष।

यही संसार मोक्ष हो जाता है, लेकिन तुम अपने ढंग से समझते हो। जब तुमसे कहा जाता है मोक्ष, तो तुम सोचते कहीं दूर-दूर, बहुत दूर आकाश में! मोक्ष यहीं है, जहां तुम हो। जब तुमसे कहा जाता है नर्क, तुमने कहानियां गढ़ ली हैं कि दूर-दूर बहुत दूर पाताल में। कहां जाओगे? पाताल में अमरीका मिलेगा। खोदते चले गये, चले गये। और अमरीका के लोग भी सोच रहे हैं कि पाताल में नर्क है। अगर अमरीका के लोग खोदते-खोदते चले आएं तो तुम मिलोगे। जमीन गोल है। कहां खोजोगे? और ऊपर कहां जाओगे? इस जगत में न कुछ ऊपर है न कुछ नीचे, क्योंकि इसकी कोई सीमा नहीं है। सीमा होती तो ऊपर-नीचे हो सकता था। कोई छप्पर थोड़े ही है आकाश में कहीं। छप्पर कहीं भी नहीं है। अन्तहीन विस्तार है। तो किसको ऊपर कहोगे, किसको नीचे कहोगे? यहां प्रत्येक चीज मध्य में है। ऊपर-नीचे की तुलना का उपाय नहीं है।

नहीं; वे धारणायें बचकानी हैं, छोटे बच्चों को समझाने के लिये हैं। बच्चों को समझाना होता है तो प्रतीक चुनने पड़ते हैं। ऐसे प्रतीक तुम्हारे लिए चुन लिए गये हैं। सचाई कुछ और है। सचाई सिर्फ इतनी है कि स्वर्ग-नर्क मनोवैज्ञानिक अवस्थायें हैं, तुम्हारे होने के ढंग हैं। अगर तुम यहां शांत बैठे हो, आनंद-मग्न मेरे पास, तुम स्वर्ग में हो। घर लौटोगे, भूल-भाल जाएगा सब आनंद, पहुंच जाओगे अपनी पुरानी दुनिया में, वही उपद्रव फिर तुम्हें पकड़ लेंगे--तुम नर्क में आ गए। अगर समझ जगने लगेगी तो धीरे-धीरे तुम यहां जो पैदा होता है, उसे घर तक सम्हाल कर ले जाओगे, उसे घर में भी सम्भाले रखोगे। तुम हर अवसर को एक परीक्षा बना लोगे कि पत्नी बिगड़ रही है, मगर तुम अपना स्वर्ग सम्भाले हो; तुम कहते हो कि बिगड़ने न देंगे स्वर्ग। तुम होश सम्भाले हो, कि करने दो पत्नी को शोरगुल, पटकने दो प्लेटें, बजाने दो दरवाजे, करने दो जो करना है--मैं अपना स्वर्ग सम्भालूं। एक दिन तुम पाओगे कि तुम वहां भी सम्भाल सकते हो। दुकान पर भी सम्भाल सकते हो। धीरे-धीरे यह अनुभव गहन होता जाएगा कि तुम जहां चाहो वहां सम्भाल सकते हो।

नर्क से स्वर्ग और फिर स्वर्ग से मोक्ष तक उठ जाना। मगर है सब यहीं। इस संसार के अतिरिक्त और कोई संसार नहीं।

रुकी-रुकी-सी शबे-मर्ग खत्म पर आई।
वो पौ फटी वो नई जिंदगी नजर आई।।

सत्संग, जागो ! सुबह पास ही है, हाथ फैलाओ और पकड़ो ।

रुकी-रुकी-सी शबे-मर्ग खत्म पर आई ।

मौत की रात समाप्त होने को आ गई ।

वो पौ फटी वो नई जिन्दगी नजर आई ।।

सुबह होने को है । वह नई जिन्दगी पैदा होने को है । लेकिन नई जिन्दगी कोई दूसरी जिन्दगी नहीं है । नई जिन्दगी इसी जिन्दगी का एक नया रूप है, एक नया निखार, एक नई शैली, एक नया अंदाज ।

रुकी-रुकी सी शबे-मर्ग खत्म पर आई ।
वो पौ फटी वो नई जिंदगी नजर आई ।।
ये मोड़ वो हैं कि परछाइयां भी देंगी न साथ ।
मुसाफिरों से कहो उसकी रहगुज़र आई ।।
फ़ज़ा तबस्सुमे-सुबहे-बहार थी लेकिन ।
पहुंच के मंजिले-जानां पे आंख भर आई ।।
किसी की बज्मे-तरब में हयात बटती थी ।
उमीदवारों में कल मौत भी नज़र आई ।।
कहां हर एक से इन्सानियत का बार उठा ।
कि ये बला भी तेरे आशिकों के सर आई ।।
दिलों में आज तेरी याद मुद्दतों के बाद ।
ब-चेहरा-ए-तबस्सुम व चश्मे-तर आई ।।
नया नहीं है मुझे मर्गे-नागहां का पयाम ।
हज़ार रंग से अपनी मुझे खबर आई ।।
फ़ज़ा को जैसे कोई राग चीरता जाए ।
तेरी निगाह दिलों में यूं ही उतर आई ।।
जरा विसाल के बाद आईना तो देख ऐ दोस्त !
तेरे जमाल की दोशीज़गी निखर आई ।।
अजब नहीं कि चमन-पर-चमन बने हर फूल ।
कली-कली की सबा जाके गोद भर आई ।।
शबे-'फिराक' उठे दिल में और भी कुछ दर्द ।
कहूं मैं कैसे तेरी याद रात भर आई ।।

परमात्मा को याद करने का क्षण सत्संग ! करीब आ गया । नाचो ! गुनगुनाओ ! मस्त होओ ! बांटो !

यही है, जैसा तुमने पूछा है । ऐसा ही सत्य है । न स्वर्ग है कोई, न नर्क है कोई, न मोक्ष है कहीं । सब यहीं है--तुम्हारे होने के ढंग, तुम्हारे होने की शैलियां ।

प्रार्थना क्या है, नहीं समझ में आया । कोई जरूरत नहीं है । प्रार्थना भाव की दशा है, समझने की कोई आवश्यकता भी नहीं है । प्रार्थना झुकने का आनंद है, नमन है, धन्यवाद है, अनुग्रह का भाव है ।

और तुमने कहा : 'न कहीं जाना है न कुछ होना है ।' बस मेरी बात समझ में आने लगी । यही तो मैं कह रहा हूं । न कहीं जाना है, न कुछ होना है । जागना है । तुम जो होना चाहिए, हो ही । और तुम्हें जहां होना चाहिए, वहीं तुम हो । सिर्फ तुम सोए हो । जागो ! और नाचने लगो तो जाग ही जाओगे ।

जरा सोचो, कोई सोया आदमी उठकर नाचने लगे, कितनी देर सोया रहेगा? नाचा कि जागा । जागा कि नाचा । दोनों तरफ से यात्रा होती है । जो जागने लगते हैं वे नाचने लगते हैं । जो नाचने लगते हैं वे जागने लगते हैं । ये एक ही घटना के दो हिस्से हैं । नाचता हुआ आदमी कैसे सोएगा ? गाता हुआ आदमी कैसे सोएगा?

गीत को जोर से उठने दो ! प्राण के संगीत को जोर से मुखर होने दो ।

रुकी-रुकी-सी शबे-मर्ग खत्म पर आई ।
वो पौ फटी वो नई जिंदगी नज़र आई ।।

दूसरा प्रश्न--

प्यार पर तो बस नहीं है मेरा लेकिन फिर भी
तू बता दे कि तुझे प्यार करूं या न करूं ?

माला ! पूछने की सुविधा कहां है ? प्रेम हो जाता है तो हो जाता है, नहीं होता तो नहीं होता । करने की बात कहां ? निर्णय की सुविधा कहां है प्रेम में ? प्रेम अवसर कहां देता है कि चुनो ? प्रेम तो पकड़ लेता है । तुम्हारे हाथ में थोड़े ही प्रेम है--तुम प्रेम के हाथ में हो । प्रेम तुमसे बड़ा है । और जब आता है तब आ जाता है और तुम्हें बहा ले जाता है । जैसे बाढ़ आ जाए, जैसे तूफान आए--ऐसा प्रेम आता है ।

तुमने पूछा--

प्यार पर तो बस नहीं है मेरा लेकिन फिर भी
तू बता दे कि तुझे प्यार करूं या न करूं ?

प्रेम पर बस नहीं है, यह अगर समझ में आ गया, तो फिर 'लेकिन, फिर भी' का उपाय कहां ? फिर से वापिस 'बस' की बात मत उठाओ । और प्रेम पूछता थोड़े ही है । और जिस प्रेम में तुम मेरे साथ बंध रहे हो, इसमें पूछने की कोई जरूरत ही नहीं है । क्योंकि यह प्रेम बंधन नहीं है, यह प्रेम स्वतंत्रता है ।

प्रेम के दो रूप हैं । एक तो प्रेम का रूप है--बंधन का । उससे ही तो लोग

पीड़ित हैं, परेशान हैं, थक गये हैं, बुरी तरह थक गये हैं।

कल ही रात मैं एक कहानी कह रहा था। एक आदमी अपनी विवाह का पच्चीसवीं वर्षगांठ मना रहा था। नाच, गीत चल रहा था, शराब ढाली जा रही थी। मित्र इकट्ठे हुए थे। अमरीका की बात है, जहां कि पच्चीस साल एक ही विवाह में रह आना बड़ा अद्वितीय घटना है। तीन-चार साल में लोग जैसे और सब चीजें बदल लेते हैं वैसे पत्नी भी बदल लेते हैं। पच्चीस साल! रजत-जयंती मना रहा था। लेकिन अचानक एक मित्र ने देखा कि वह एकदम से उदास हो गया और फिर बाहर चला गया। तो वह मित्र भी उसके पीछे हो लिया। बाकी तो अपने मस्ती में थे, नाच-गीत चल रहा था, शराब ढाली जा रही थी, भोजन हो रहा था। वह मित्र उसके पीछे-पीछे बाहर चला गया। वह आदमी बाहर गया, जिसकी विवाह की रजत-जयंती मनाई जा रही थी, और एक वृक्ष के नीचे खड़े होकर रोने लगा। आंखों से आंसू टपकने लगे। उस मित्र ने उससे पूछा कि क्या बात है? इस खुशी के अवसर पर क्यों रो रहे हो?

उसने कहा: रोने का कारण है। विवाह के पांच साल बाद मैं ऊब गया इस विवाह से, इसके बंधन से मैं इतना ऊब गया कि मैंने सोचा कि इस स्त्री की हत्या ही कर दूं। मैं अपने वकील के पास गया--पूछने कि अगर मैं हत्या करूं तो क्या होगा? अगर पकड़ जाऊं तो क्या होगा?

तो वकील ने कहा कि कम-से-कम बीस साल की सजा होगी। कम-से-कम! इतना तो पक्का ही है। ज्यादा भी हो सकती है, लेकिन कम-से-कम बीस साल की सजा होगी। तो मैं डर गया और मैंने हत्या नहीं की।

तो उसने पूछा कि फिर अब क्या रो रहे हो?

उसने कहा कि अब रो रहा हूं कि अगर मैंने उस मूरख वकील की बात नहीं मानी होती तो आज जेल से छूट जाता, मुक्त हो जाता। आज का दिन आनंद का दिन होता, मगर उस मूरख की बात मान कर मैं अटक गया सो अटक गया।

एक प्रेम तुमने संसार में जाना है, जो बंधन है। इसलिये उसमें दूसरे की आज्ञा लेनी जरूरी होती है। स्वाभाविक। जब किसी को बांधने चले तो उससे पूछना पड़ेगा कि भाई आप बंधने को राजी हैं या नहीं? इसलिए कहते हैं: प्रेम-बंधन, प्रणय-बंधन। हमारे पुत्र और पुत्रियां विवाह के बंधन में बंध रहे हैं--निमंत्रण-पत्रों में लिखा होता है। बंधन! तो स्वभावतः दूसरे की मर्जी तो कम-से-कम शुरू में एक दफे तो पूछ लेना जरूरी है। एक दफे बंध गये तो फिर बंध गये, फिर निकलना कोई इतना आसान थोड़े ही है। फिर तो दोनों निपट लेंगे आपस में। मगर शुरुआत में तो कम-से-कम स्वीकृति, एक समझौता तो होना ही चाहिए।

मेरे साथ प्रेम वैसा प्रेम तो नहीं। मेरे साथ तुम बंध तो नहीं रहे हो। तुम मुझे बांध तो नहीं रहे हो। मैं तुम्हें मुक्त कर रहा हूं। और जब मैं तुम्हें मुक्त कर रहा हूं, तो स्वभावतः यह एक और ही ढंग का प्रेम है। यही प्रेम है। प्रेम की परिभाषा यही है--जो मुक्त करे। जो बंधन में ले जाए, वह शत्रुता होगी, मित्रता कैसी? जो तुम्हारे जीवन की स्वतंत्रता को खंडित कर दे, जो तुम्हारे पैरों में जंजीरें डाल दे, हाथों में हथकड़ियां डाल दे, जो तुम्हारी गर्दन में फांसी बन जाए, उसका नाम प्रेम है, तो फिर घृणा किसका नाम है? अगर कारागृह का नाम प्रेम है तो फिर मंदिर...फिर मंदिर कहां बनेगा?

प्रेम मंदिर है--कारागृह नहीं है। और प्रेम स्वतंत्रता देता है। प्रेम स्वतंत्रता में ही सांसें लेता है। प्रेम पंख फैलाता है स्वतंत्रता के ही आकाश में।

तो यहां तो तुम स्वतंत्रता का पाठ सीखने मेरे पास आए हो। अगर तुम मेरे प्रेम में भी पड़ रहे हो तो इसलिए कि तुम्हें स्वतंत्रता से प्रेम है; और कोई कारण नहीं। मुझसे तुम संबंध भी जोड़ रहे हो तो इसीलिए ताकि मुक्त हो सको। मुक्ति यानी स्वतंत्रता। परम मुक्ति अनुभव में आ सके।

मुझसे पूछने की कोई जरूरत नहीं। तुम मुझे कोई बांधने तो माला जा नहीं रही, न मैं तुम्हें बांध रहा हूं। यहां तो सारे बंधन गिराने हैं। दिल भर के करो, जितना कर सको उतना प्रेम करो। और मैं तुमसे यह भी कहना चाहता हूं कि मुझे ही क्यों, प्रेम करो! उसे एक ही दिशा में क्यों बहाओ? जब एक दिशा में बहाने से इतना आनंद मिलता है तो सारी दिशाओं में क्यों न बहाओ? अनंत गुना आनंद होगा।

इसलिये बजाय व्यक्तियों के प्रति प्रेम की धारा बनाने के, सिर्फ प्रेम की अवस्था बनानी चाहिए। चारों तरफ बहती रहे। जिससे मिलो, जिसके पास बैठो, जहां खड़े हो जाओ, वहीं प्रेम की सुगंध उड़नी चाहिए। काश, मैं तुम्हें ऐसा प्रेम सिखा सकूं तो मेरा काम पूरा हुआ!

पर ख्याल रखना, बंधन वाले प्रेम में अहंकार को मरने की जरूरत नहीं पड़ती। सच तो यह है, जितने बंधन होते हैं, अहंकार को उतना ही बचाव होता है। बंधन अहंकार के लिए आभूषण है। और जहां स्वतंत्रता प्रेम का अर्थ होता है वहां अहंकार को मरना होता है। स्वतंत्रता अहंकार के लिए मृत्यु है। वह उसकी कब्र है। इसलिए तो लोग बंधन वाले प्रेम को पसंद करते हैं; बंधन-मुक्त प्रेम को पसंद नहीं करते, क्योंकि वहां अहंकार गंवाना पड़ेगा। अगर कोई चीज बांधने को न हो तो अहंकार बच ही नहीं सकता, क्योंकि अहंकार को सीमा चाहिए और बंधन से सीमा मिलती है। मैं पति, मैं पत्नी, मैं बाप, मैं मां, मैं बेटा, भाई, मित्र--इन सब से

सीमा मिलती है, परिभाषा मिलती है। न मैं पति, न मैं भाई, न मैं बेटा, न मैं बाप, न मैं पत्नी--सब सीमायें गईं, सब सीमायें तिरोहित हो गईं। अब जो बचा, उसे तुम 'मैं' नहीं कह सकते। अब 'मैं' कैसे कहोगे उसे? 'मैं' की तो सारी ईंटें निकल गईं, जिनसे 'मैं' का भवन बना था। अब तो अहं ब्रह्मास्मि! अब तो ब्रह्म ही है। अब तो तत्त्वमसि! अब तो वह ही है। अब तुम तो मिट गये।

मिटने की तैयारी करो माला! मेरे प्रेम में पड़ने का मतलब होता है: मिटने की तैयारी।

मुझको मारा है हर इक दर्दो-दवा से पहले।
दी सजा इश्क ने हर जुर्मो-खता से पहले॥
आतिशे-इश्क भड़कती है हवा से पहले।
ओंठ जलते हैं मोहब्बत में दुआ से पहले॥
अब कमी क्या है तेरे बे-सरों-सामानों को।
कुछ न था तेरी कसम तर्को-फना से पहले॥
खुद-ब-खुद चाक हुए पैरहने-ताला-ओ-गुल।
चल गई कौन हवा बादे-सबा से पहले॥
मौत के नाम से डरते थे हम ऐ शौके-हयात।
तूने तो मार ही डाला था क़ज़ा से पहले॥
गफलतें हस्ती-ए-फ़ानी की बता देंगी तुझे।
जो मेरा हाल था एहसासे-फ़ना से पहले॥

प्रेम महामृत्यु है। मौत से भी पहले मौत! और मृत्यु नहीं है; अगर ठीक से समझो तो आत्मघात है। क्योंकि अहंकार को अपने हाथ से मारना आत्मघात है। बड़ी हिम्मत चाहिए, बड़ी जोखम उठाने का साहस चाहिए,! दुस्साहस चाहिए।

माला! अगर प्रेम ने पकड़ा है तो उठो और चलो इस दुस्साहस में। अपने को मिटाओ। मेरे साथ प्रेम की शर्त पूरा करने का एक ही उपाय है: अपने को मिटाओ। मैं मिट गया हूं, तुम भी मिट जाओ, तो ही मुझसे जुड़ सको। एक शून्य हो गए व्यक्ति से जुड़ने के लिए शून्य हो जाने के अतिरिक्त और कोई शर्त नहीं है। मैं तो फना हुआ, मैं तो मिटा। अब यहां कोई है नहीं। ऐसे ही तुम्हारे भीतर भी कोई न बचे, सन्नाटा हो जाए, शून्य हो जाए, तो मिलन हो सकता है। मेरे साथ होना हो तो कुछ मेरे जैसा हो जाना जरूरी है।

यह प्रेम महंगा सौदा है। मगर अगर होना शुरू हुआ है तो अब रुकने का कोई उपाय नहीं। और मैं तो रोकूंगा क्यों?

तुम मुझसे पूछती हो--

प्यार पर बस तो नहीं है मेरा लेकिन फिर भी,
तू बता दे कि तुझे प्यार करूं या न करूं।

मैं तो निमंत्रण ही दे रहा हूं। इसलिए तुम्हें बुलाया है और तुमने बुलावा सुना और आए। इसलिए तुम्हें पुकार रहा हूं। ये सारे डोरे इसीलिए डाल रहा हूं कि प्रेम जन्मे। तुम धीरे-धीरे मेरे द्वारा प्रेम के भेजे गए संदेशों को सुन-सुन कर सरकते आओ, सरकते आओ, मिटते जाओ। एक दिन वह शुभ घड़ी आये, जब तुम अपने भीतर कोई भी न पाओ। सन्नाटा हो, शून्य हो। उसी दिन असीम हो गए। और उस दिन तुम मुझसे ही नहीं मिल जाओगे, उस दिन अपने से भी मिले। बस उसी दिन अपने से मिले!

गुरु तो वही जो तुम्हें तुमसे मिला दे और तुम अपने से ही नहीं मिल जाओगे, उसी दिन तुम परमात्मा से भी मिल जाओगे। क्योंकि परमात्मा तुम्हारा 'स्व' है, तुम्हारा अंर्तमन है।

तीसरा प्रश्न--

आप प्रेम करने को कहते हैं। प्रेम मैंने भी किया था; हार खाई और घाव अभी भी भरे नहीं हैं। समाज को वह प्रेम भाया नहीं और मेरी प्रेयसी कमजोर थी; वह समाज के सामने झुक गई। मैं उसे क्षमा भी नहीं कर पाता हूं। और फिर भी आप प्रेम करने को कहते हैं?

❋ मैं प्रेम करने को नहीं कहता--मैं प्रेम होने को कहता हूं। करना छोटी बात है, क्षुद्र है। वहां तो हार ही हाथ लगेगी और घाव ही हाथ लगेंगे।

और अच्छा ही हुआ कि समाज ने बाधा डाल दी; नहीं तो अभी मैंने तुमसे जो कहानी कही, वही दशा होती। अब तक रजत-जयंती मना रहे होते। समाज की बड़ी कृपा थी। धन्यवाद दो समाज को! अनुग्रह मानो।

और तुम उस स्त्री को क्षमा नहीं कर पा रहे हो! कैसा यह प्रेम, जो क्षमा भी न कर सके! कैसा यह प्रेम, जो प्रतिशोध से भरा हो! और ये घाव बड़े मूल्यवान घाव नहीं हैं। ये कुछ बहुत भीतर नहीं जाते। ये ऊपर-ऊपर हैं, जैसे चमड़ी छिल गई। चमड़ी से ज्यादा इनकी गहराई नहीं है। ये सब भर जाते हैं। समय भर देता है। इनको लिए बैठे मत रहो।

दोस्त मायूस न हो
सिलसिले बनते-बिगड़ते ही रहे हैं अक्सर
तेरी पलकों पर सर अश्कों के सितारे कैसे
तुझको ग़म है तेरी महबूब तुझे मिल न सकी

और जो जीस्त तराशी थी तेरे ख्वाबों ने
आज वो ठोस हकाइक में कहीं टूट गई
तुझको मालूम है मैंने भी मुहब्बत की थी
और अंजामे-मुहब्बत भी है मालूम तुझे
अनगिनत लोग जमाने में रहे हैं नाकाम
तेरी नाकामी नई बात नहीं है दोस्त मेरे
किसने पाई है भला जीस्त की तल्खी से नजात
चार-ओ-नाचार ये ज़हराब सभी पीते हैं
जां-सुपारी के फ़रेबिंदा फ़सानों पे न जा
कौन मरता है मुहब्बत में सभी जीते हैं
वक्त हर जख्म को, हर ग़म को मिटा देता है
वक्त के साथ ये सदमा भी गुजर जाएगा
और ये बातें जो दोहराई हैं मैंने इस वक्त
तू भी इक रोज इन्हीं बातों को दोहराएगा
दोस्त मायूस न हो !

यह तो समय भर देता है घाव। और जिन घावों को समय भर देता है उनका कोई मूल्य नहीं। घाव तो वे ही मूल्यवान है जिनको शाश्वतता ही भर सके। अभी तुमने वह घाव खाया नहीं और तुम मेरी बात भी नहीं समझ पा रहे हो। तुम समझ न पाओगे, क्योंकि तुम प्रेम का एक अनुभव लिए बैठे हो और तुम समझते हो कि वही अनुभव सारे प्रेम का अर्थ है।

मैंने सुना है, एक नेताजी संग्रहालय देखने गये। वहां मिश्र से लाई गई एक ममी रखी हुई थी। उसके नीचे लिखा था : ५३९ बी. सी.। गाइड बोला : यह। नेताजी बोले : मैं जानता हूं। यह धन्नो की लाश है।

गाइड आश्चर्य से बोला : धन्नो की लाश ! यह आप कह क्या रहे हैं ?

नेताजी बोले : हां भाई, मेरे जिस ट्रक के नीचे आकर वह मरी थी उसका नम्बर बी. सी. ५३९ ही था।

मैं जिस प्रेम की बात कर रहा हूं, वह कुछ और है--तुम बता रहे हो धन्नो की लाश, जो तुम्हारे ट्रक के नीचे आने से मर गई। तुम अपनी लगाए हो, मैं किसी और प्रेम की बात कर रहा हूं। मगर प्रेम शब्द सुनते ही तुम्हारे भीतर तुम्हारे अनुभव से अर्थ आ जाते होंगे, तुम्हारे अर्थ खड़े हो जाते होंगे। तुम फिर सोचने लगते होओगे--वह प्रेम जो सफल नहीं हुआ।

यहां जो सफल हो जाते हैं वे भी कहां सफल होते हैं ! जरा गौर से तो देखो।

यहां सभी असफल होते हैं। असफल जो होते हैं, वे तो होते ही हैं; जो सफल होते हैं वे भी असफल होते हैं। इस जगत के प्रेम काम नहीं आते। इस जगत का कोई संबंध काम नहीं आता। क्योंकि इस जगत के सारे संबंध हम अज्ञान और मूर्च्छा में निर्मित करते हैं, बेहोशी में।

एक और भी प्रेम है, जो जागृति में फलता है। एक और फूल है। मैं उस प्रेम की बात कर रहा हूं। मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि तुम प्रेम करो; मैं कह रहा हूं : 'तुम प्रेम हो जाओ।' और यह बड़ी अलग बात है। प्रेम 'करने में' दूसरे की जरूरत पड़ती है, प्रेम 'होने में' दूसरे का कोई सवाल नहीं है। जैसे एकांत में कहीं कोई फूल खिलता है, कोई राह से गुजरे कि न गुजरे, कोई फूल को खिला देखे कि न देखे, क्या फर्क पड़ता है? फूल खिला ही रहता है। फूल अपनी मस्ती में मस्त रहता है। कुछ ऐसा थोड़े ही है कि आज कोई देखने वाला नहीं निकला, तो फूल बड़ा उदास हो जाता है, कुम्हला जाता है; कि आज कोई चित्रकार नहीं आए, कोई फोटोग्राफर नहीं आए, अखबारनवीस नहीं आए, तो फूल एकदम सिर ढांप कर और रोने लगता है। कुछ ऐसा थोड़े ही है कि आज जनता-जनार्दन का आगमन नहीं हुआ, तो आज क्या मुस्कुराना ! आज क्या हवाओं में नाचना ! आज क्या सुगंध लुटाना ! नहीं; फूल तो अपनी मस्ती में वैसा ही होता है; कोई गुजरे तो ठीक, कोई न गुजरे तो ठीक।

किसी ने गालिब को कहा कि आपके काव्य में लोगों को अर्थ नहीं मालूम होता। तो गालिब ने कहा--

न सताइश की तमन्ना न सिले की परवाह
गर नहीं है मेरे अशआर में मानी, न सही

--न तो मुझे प्रशंसा की कोई इच्छा है, न पुरस्कार की कोई आकांक्षा है। अगर मेरे गीतों में कोई अर्थ नहीं है तो न सही।

न सताइश की तमन्ना न सिले की परवाह
गर नहीं है मेरे अशआर में मानी, न सही।

जब किसी के भीतर गीत उठता है तो गाने का मजा है--स्वांतः सुखाय ! जब नाच उठता है तो नाचने का मजा है--स्वांतः सुखाय। और जब प्रेम उठता है तो प्रेम लुटाने का मजा है--स्वांतः सुखाय।

मैं तुमसे प्रेम 'होने' को कह रहा हूं, 'करने' को नहीं। कृत्य वाला प्रेम तो बड़ा छोटा प्रेम है। और जब तक तुम प्रेम नहीं हो, तुम प्रेम करोगे कैसे ? तुम्हारा प्रेम धोखा होगा, झूठा होगा, अभिनय होगा, पाखंड होगा, दिखावा होगा।

प्रेम करने के पहले प्रेम हो जाना जरूरी है। सुगंध देने के पहले सुगंध हो

हो जाना जरूरी है। तुम वही तो दे सकोगे जो तुम्हारे भीतर घट गया है।

तो मैंने तुमसे कुछ और कहा। मैं रोज ही प्रेम के लिए कह रहा हूं, क्योंकि मेरे लिये प्रेम परमात्मा है। लेकिन यह प्रेम तुम सदा ख्याल रखना, भ्रान्ति न कर लेना, भूल-चूक न कर लेना, तुम अपने प्रेम से इसे मत जोड़ लेना। नहीं तो तुम अर्थ का अनर्थ कर दोगे। तुम कुछ का कुछ समझ लोगे। और बजाए इसके कि मुझसे तुम्हें मार्ग मिलता, तुम कुमार्ग खोज लोगे।

तुमने कहा कि मैंने प्रेम किया और अभी तक मैं क्षमा नहीं कर पा रहा हूं। प्रेम में क्षमा तो आना ही चाहिए। प्रेम के पीछे क्षमा तो ऐसे ही चलती है, जैसे तुम्हारे पीछे छाया चलती है। प्रेम और क्षमा न कर सके, तो वह प्रेम नहीं था, कुछ और रहा होगा। तुम अधिकार करना चाहते थे किसी स्त्री पर। तुम मालिक होना चाहते थे किसी स्त्री के। तुम किसी स्त्री की गर्दन पर अपने हाथ चाहते थे। तुम किसी आकाश के पक्षी को अपने पिंजरे में बंद कर लेना चाहते थे। तुम्हारी वह मनोवांछा पूरी नहीं हुई। तुम किसी के पंख काटना चाहते थे, नहीं काट पाए, तुम तड़फ रहे हो। तुम किसी को जंजीरें पहना देना चाहते थे, नहीं पहना पाए। तुम्हारी मालकियत की एक यात्रा टूट गई। तुम्हारा एक अभियान बिखर गया। तुम किसी पर आक्रमण करने निकले थे, इसलिए तुम 'हार' शब्द का उपयोग कर रहे हो। तुम कहते हो : लेकिन मैं हार गया।

प्रेम में कभी कोई हारा? प्रेम में तो जीत ही जीत है। प्रेम में हार होती ही नहीं। तुमने प्रेम किया, बात पूरी हो गई। प्रतिकार की आकांक्षा प्रेम में नहीं होती। प्रतिफल की आकांक्षा प्रेम में नहीं होती। तुमने प्रेम नहीं किया, तुमने कुछ और किया। तुम चाहते थे कि वह स्त्री भी तुम्हें प्रेम करे। तुम चाहते थे कि तुम्हें प्रेम का प्रतिफल मिले। तुम चाहते थे, उत्तर नहीं मिल पाया। तुमने निवेदन किया और तुम्हारा निवेदन आकाश में खो गया। तुम नाराज हो। तुम्हारी अवहेलना हुई है। तुम्हारी उपेक्षा हुई है।

ऐसा आदमी प्रार्थना तो कर ही नहीं पायेगा, क्योंकि प्रार्थना में यही तो एक खास बात है : वही प्रार्थना कर सकता है, जो प्रत्युत्तर न मांगता हो। क्योंकि उत्तर थोड़े ही आएगा। तुम कहोगे : हे प्रभु! और वहां से कोई नहीं बोलेगा, कि हां जी, कहिए क्या आज्ञा है? कोई उत्तर कभी न आएगा। अगर तुमने उत्तर की आकांक्षा रखी तो प्रार्थना असम्भव हो जाएगी।

प्रार्थना वही कर सकता है जो उत्तर मांगता ही नहीं, जो कहता है : मुझे तो प्रार्थना करने में ही उत्तर मिल गया। मेरी आंखें गीली हो गईं, और क्या चाहिए? मेरा सिर झुक गया, और क्या चाहिए? मेरा हृदय गद्‌गद् हुआ, और क्या चाहिए?

मुझे कोई उत्तर नहीं चाहिए।

आकाश से कोई उत्तर आते भी नहीं। और जितने उत्तरों की तुमने बातें सुनी हैं, सब कहानियां हैं और बेईमानों ने गढ़ी हैं। जब तुम सुनते हो कोई आदमी ने प्रार्थना की और भगवान बोला, वह सिर्फ कहानी है। भगवान कभी नहीं बोला है। मगर आदमी चाहता है बोले। वस्तुतः तो नहीं बुलवा पाता तो कहानियों में बुलवा लेता है। कहानियां परिपूरक हैं। सोच लेता है कि चलो कहानी में तो कुछ नहीं कर सकता, बेबस है, बोलना ही पड़ेगा। जो बुलवाना है वही बुलवा लेता है।

आकाश चुप है। अस्तित्व चुप है। वहां परिपूर्ण सन्नाटा है। तुमने जो प्रार्थना की वह गई, अनंत में खो गई। वह अनंत के साथ एक हो गई। उसका कोई उत्तर कभी नहीं आएगा। मगर इसका यह अर्थ नहीं है कि उसका कोई लाभ नहीं है। लाभ तो उसके करने के भीतर ही है। लाभ तो उसके होने के पहले ही है। वह तुम जो झुके...।

सूफी फकीर अलहिल्लास से किसी ने पूछा कि तू इतनी प्रार्थना करता है, इतना परमात्मा को पुकारता है, तुझे कभी उत्तर मिलता है या नहीं? उसने कहा : तुम भी पागल हो! उत्तर चाहता कौन है? मैं उसे कष्ट देना चाहता हूं? उत्तर तो मेरे प्रश्न के पहले मुझे मिल गया है। प्रार्थना तो मेरा धन्यवाद है; मेरी मांग नहीं, मेरी वासना नहीं। उससे मुझे कुछ चाहिए थोड़े ही। उसने इतना दिया मेरे मांगने के पहले, इसका धन्यवाद है। उसके प्रसाद का स्वीकार है। दे तो वह चुका है पहले ही, मेरे मांगने के पहले। उससे मुझे कुछ चाहिए नहीं। कोई उत्तर भी नहीं चाहिए।

क्या तुम सोचते हो, तुम्हारी प्रार्थना परमात्मा के हृदय को बदलने के लिए है? अक्सर लोग यही सोचते हैं। जब तुम मंदिर में जाते हो और कहते हो 'हे प्रभु, नौकरी नहीं मिलती, कि पत्नी बीमार है, कि बेटा नालायक हुआ जा रहा है, कुछ करो', तो तुम क्या कर रहे हो? तुम यह कर रहे हो कि प्रार्थना से परमात्मा का हृदय बदलने की कोशिश कर रहे हो। नहीं; यह प्रार्थना नहीं है। वस्तुतः प्रार्थना में प्रार्थना करने वाले का हृदय बदलता है; परमात्मा का हृदय बदलने का कोई सवाल नहीं है। प्रार्थना करने में ही हृदय बदल जाता है।

विवेकानंद के जीवन में उल्लेख है। विवेकानंद के पिता मरे। पिता मौजी आदमी थे। मौजी रहे होंगे, तभी विवेकानंद जैसा बेटा पैदा हो सका। कुछ बचाया नहीं, जिन्दगी-भर लुटाते रहे। कमाया बहुत, मगर लुटाते रहे। जब मरे तो कर्ज छोड़ कर मरे। जो कुछ था वह कर्ज में चला गया। घर की हालत ऐसी हो गई कि खाने को भी दो रोटी जुटाना मुश्किल। विवेकानंद अपनी मां को यह कहकर

चले जाते कि आज मुझे किसी के घर निमंत्रण मिला है और रास्तों पर भूखे घूमते रहते। लौट कर आते हाथ फेरते हुए, डकार लेते हुए। कहीं कोई मित्र ने निमंत्रण दिया नहीं है। मां को बताने के लिए कि पेट भर गया है, तू फिकर मत कर, जो थोड़ा-बहुत घर में है, तू अब भोजन कर ले। क्योंकि वह इतना थोड़ा होता या तो विवेकानंद कर ले या मां कर ले। मस्त तगड़े आदमी थे, काफी भोजन चाहिए पड़ता। मां यह सोच कर कि बेटा भोजन कर आया है, भोजन कर लेती जो भी रूखा-सूखा होता।

रामकृष्ण को खबर लगी तो रामकृष्ण ने एक दिन विवेकानंद को कहा कि तू पागल है! तू जा कर मंदिर में काली को क्यों नहीं कहता? यहां-वहां क्या भटक रहा है? एक दफा जा कर दे, सब मामला हल हो जाएगा। तू जा प्रार्थना कर।

अब रामकृष्ण कहे तो विवेकानंद इन्कार कैसे करें? गये। घंटा-भर लग गया। बाहर रामकृष्ण बैठे हैं चबूतरे पर, राह देख रहे हैं। जब निकले विवेकानंद, गद्गद्, आंखों से आंसुओं की धार बह रही है, मस्ती की तरंग छाई हुई। तीन दिन के भूखे हैं, यह तो भूल ही गये हैं। बड़े आनंद-मग्न हैं। आकर रामकृष्ण के चरणों में गिर पड़े। रामकृष्ण ने कहा: दूसरी बात पीछे होगी, तूने कह दिया न? तूने प्रार्थना कर ली न?

विवेकानंद ने कहा: अरे! मैं तो भूल ही गया। मैं प्रार्थना में ऐसा मस्त हो गया!

रामकृष्ण ने कहा: फिर से जा। ऐसा तीन बार हुआ और तीसरी बार विवेकानंद बाहर आए और रामकृष्ण को देखा और कहा कि माफ करें, यह शायद हो नहीं सकेगा। जैसे ही मैं वहां जाता हूं, प्रार्थना ऐसा घेर लेती है कि छोटी-छोटी बातें करने का सवाल ही नहीं उठता। और छोटी-छोटी बातें करूं, यह बात बेहूदी लगती है, अभद्र लगती है। यह मुझसे नहीं हो सकेगा रामकृष्ण! परमहंसदेव, क्षमा कर दें! यह मुझसे नहीं हो सकेगा।

रामकृष्ण ने छाती से लगा लिया विवेकानंद को और कहा: इसीलिए तीन बार भेजा, मैं देखना चाहता था, क्या प्रार्थना में तू कुछ मांग सकता है अब भी या नहीं? अगर नहीं मांग सकता तो तू प्रार्थना की कला सीख गया। अब मैं निश्चित हूं। तुझे प्रार्थना आ गई। प्रार्थना मांग नहीं है, हालांकि प्रार्थना शब्द का ही अर्थ हमने मांगना कर लिया है। मांगने वाले को प्रार्थी कहते हैं। वह 'शब्द' का अर्थ ही हमने भ्रष्ट कर लिया।

प्रार्थी का अर्थ मांगनेवाला नहीं, प्रार्थी का अर्थ झुकनेवाला है। प्रार्थना का अर्थ मांगना नहीं है, प्रार्थना का अर्थ अहोभाव, धन्यवाद।

तुमने अगर प्रेम में मांगा कुछ तो तुम प्रेम से भी चूक गए। और अब तुम मेरे पास आए हो। और अगर तुमने उस प्रेम का अनुभव अभी भी अपने भीतर संजो कर रखा है, तो तुम प्रार्थना से भी चूकोगे। तुम कहते हो: 'मैं क्षमा नहीं कर पाता।' तुमने प्रेम किया था। यह तुम्हारी तरफ से बात पूरी हो गई। दूसरी तरफ से प्रेम का उत्तर आया या नहीं आया, समाज ने बाधा दी या क्या हुआ--इससे क्या लेना-देना है? क्या तुमने प्रेम किया, इतने से ही तुम अनुगृहीत नहीं हो गए? अहोभाव रखो!

अब तुम आगोशे-तसव्वुर में भी आया न करो
मुझसे बिखरे हुए गेसू नहीं देखे जाते
सुर्ख आंखों की कसम, कांपती पलकों की कसम
थरथराते हुए आंसू नहीं देखे जाते
अब तुम आगोशे-तसव्वुर में भी आया न करो
छूट जाने दो जो दामाने-वफा टूट गया
क्यूं यह नाजीदा-खिरामी ये पशीमां-नजरी
तुमने तोड़ा तो नहीं रिश्तए-दिल टूट गया
अब तुम आगोशे-तसव्वुर में भी आया न करो
मेरी आहों से ये रुखसार न कुम्हला जायें
ढूंढ़ती होंगी तुम्हें रस में नहायी हुई रातें
जाओ कलियां न कहीं सेज की मुरझा जाएं
अब तुम आगोशे-तसव्वुर में भी आया न करो
मैं इस उजड़े हुए पहलू में बिठा लूं न कहीं
लबे-शीरीं का नमक आरिजे-नमकीं की मिठास
अपने तरसे हुए होंटों पें चुरा लूं न कहीं
अब तुम आगोशे-तसव्वुर में भी आया न करो
तुमको यह रस्म भी दुनिया न निभाने देगी
बढ़के दामन से लिपट जाएगी यूं ये ताजा बहार
मेरे आगोशे-तसव्वुर में भी आने न देगी।

प्रेमी तो हर हाल राजी हो जाता है। वह कहता है: अब तुम आगोशे-तसव्वुर में भी आया न करो। मेरी कल्पना की गोद में भी मत आया करो। असली गोद में आना तो नहीं हो सका, तुम मेरी कल्पना की गोद में भी मत आया करो।

अब तुम आगोशे-तसव्वुर में भी आया न करो

मुझसे बिखरे हुए गेसू नहीं देखे जाते
ये तुम्हारे बिखरे हुए बाल मुझसे नहीं देखे जाते ।
सुर्ख आंखों की कसम, कांपती पलकों की कसम
थरथराते हुए आंसू नहीं देखे जाते

प्रेमी क्षमा करने को सदा तैयार है; न केवल क्षमा करने को, बल्कि प्रेमी अपने को बिदा कर लेने को भी तैयार है। अगर उससे अड़चन होने वाली है, अगर कहीं उससे पीड़ा होने वाली है तो वह चुपचाप सरक जाएगा, हट जाएगा। वह राह छोड़ देगा। और तुम बैठे हो घाव को सम्हाले हुए ! और तुम घाव को कुरेद रहे हो ! तुम शायद उसे भरने भी नहीं देते। शायद तुम अब घाव के प्रेम में पड़ गए हो।

ऐसा अक्सर हो जाता है, लोग बीमारियों के प्रेम में पड़ जाते हैं। फिर बीमारियों को पकड़ लेते हैं। अब शायद यह घाव ही तुम्हारा एकमात्र संगी-साथी है। अब तुम एकांत में बैठकर इसी को कुरेदते रहते हो, इसी को भरने नहीं देते।

सम्भलो ! प्रेम से कुछ तो पाठ लो। यह एक अवसर था। प्रेम तुमने किया, प्रतिफल नहीं मिला--इससे यह समझो कि प्रेम में प्रतिफल मांगने में ही भूल है, इससे घाव लगते हैं। इससे यह सीख लो और यह सीख बहुमूल्य हो जाएगी। और अब ऐसा प्रेम करो, जिसमें प्रतिफल की आकांक्षा न हो। अब ऐसा प्रेम करो जो मांगे ही नहीं--जो दे, चुपचाप दे ! जो शोरगुल न मचाये ! जो आग्रह से भरा हुआ न हो ! जिसका कोई आग्रह ही न हो ! और तब तुम पाओगे तुम्हारे जीवन में एक नई खुशबू, एक नई सुवास, एक नई सुबह होने लगी है।

प्रेम अपना प्रतिफल आप है। प्रेम बनो। प्रेम करने की बात ही नहीं। प्रेम तुम्हारे अंतर की दशा हो। संबंध नहीं--अंतर्दशा।

आखिरी प्रश्न--

सैद्धान्तिक रूप से सब कुछ समझ आते हुए भी चीजें व्यवहार में क्यों नहीं आ पातीं ? कृपया समझायें।

❋ मैं समझा दूंगा, फिर तुम सैद्धान्तिक रूप से समझ लोगे, फिर व्यवहार में नहीं आएंगी। यह तो दुष्ट-चक्र हो गया। इससे सार क्या होगा ?

सैद्धान्तिक रूप से चीजें समझ में आ जाती हैं, फिर भी व्यवहार में नहीं आतीं--इससे एक बात समझो कि सैद्धान्तिक समझ कोई समझ ही नहीं है। समझ तो वही है जो व्यवहार में आ जाए। नहीं तो समझ का धोखा है। सैद्धान्तिक समझ बिल्कुल धोखे से भरी समझ है। स्वभावतः, मैं जो शब्द बोल रहा हूं, सीधे-साधे हैं। ये तुम्हारी समझ में आ जाते हैं, मगर शब्दों के भीतर जो छिपा है, वह शब्दों से

बहुत बड़ा है। वह चूक जाता है। तुम शब्दों की खोल तो इकट्ठी कर लेते हो, अर्थ का गुदा चूक जाता है। फिर उस खोल से क्या होगा ? फिर उस खोल से कुछ सार नहीं।

और तुम्हारे मन में यह भी सवाल है कि जब सैद्धान्तिक रूप से समझ में आ गया तो व्यवहार में कैसे लाऊं ? सच तो यह है कि जब समझ में लाना नहीं होता, व्यवहार में लाना पड़े तो भी मैं तुमसे कहूंगा कि समझ में नहीं आया। समझ में न आने वाले आदमी को ही व्यवहार में लाने की चेष्टा करनी पड़ती है। जिसको समझ में आ गया, बात खत्म हो गई। व्यवहार में लाने की चेष्टा का सवाल ही नहीं है। अगर तुम्हें समझ में आ गया कि सिगरेट पीने में जहर है, तो तुम्हारे हाथ में आधी जली सिगरेट आधी जली ही रह जाएगी, वहीं से गिर जाएगी, बात खत्म हो गई। अब तुम यह थोड़े ही कहोगे कि अब अभ्यास करेंगे, अब सिगरेट छोड़ने का नियम लेंगे, अब व्रत करेंगे, अभी दस पीते थे, फिर नौ पियेंगे, फिर आठ पियेंगे, फिर सात पियेंगे, ऐसे धीरे-धीरे घटाएंगे। ऐसा वर्षों में अभ्यास किया है पीने का, अब वर्षों लगेंगे घटाने में। अगर इस तरह तुमने किया तो एक बात साफ है कि तुम्हें समझ में नहीं आई बात।

अगर तुम्हारे घर में आग लगी है तो तुम बाहर निकलने का अभ्यास करते हो ? तुम कहते हो, निकलते निकलते निकलते निकलेंगे ?--और कोई एकदम से थोड़े ही निकल जाएं; पहले योगासन करेंगे, पहले शीर्षासन करेंगे, शास्त्र पढ़ेंगे, सत्संग करेंगे, श्रवण-मनन, निदिध्यासन, फिर निकलते-निकलते निकलेंगे। अब इस घर में रहते भी कितना समय हो गया है, एकदम से थोड़े ही निकल जाएं। लगी है आग लगी रहे। समझ में तो आ गई बात कि आग लगी है, लेकिन अब इंतजाम तो करें निकलने का।

तुम ऐसा करोगे ? तुम ऐसा कहोगे ? घर में आग लगी होगी तो तुम न तो शास्त्र में उलट कर देखोगे कि घर से निकलने का रास्ता क्या है, न गुरु की तलाश करोगे, न किसी से पूछोगे। झपट्टा मारोगे और बाहर हो जाओगे। अगर सामने का दरवाजा जल रहा होगा तो खिड़की से कूद पड़ोगे। लाज-संकोच भी न करोगे। अगर नंग-धड़ंग स्नान कर रहे हो तो वैसे ही भाग कर बाहर निकल आओगे। फिर यह भी न सोचोगे कि लोग कहीं जैन मुनि न समझ लें, कोई झंझट न खड़ी हो जाए ! वैसे ही निकल भागोगे। फिर कहां लोक-व्यवहार, फिर कैसी लोक-लज्जा ! फुरसत कहां ! और कोई तुम्हें दोष भी न देगा। कोई यह भी नहीं कहेगा कि अरे, कम-से-कम तौलिया तो लपेट लेते। मगर जब घर में आग लगी हो तो तौलिया लपेटने के लिए भी कोई दोष नहीं देगा।

जब चीजें समझ में आती हैं तो तत्क्षण परिणाम होता है। 'तत्क्षण' मैं कह रहा हूं। एक क्षण भी नहीं खोता। एक बात दिख जाती है, वहीं बात समाप्त हो जाती है। व्यवहार में लानी नहीं पड़ती। व्यवहार में लाने पड़ने का तो एक ही अर्थ है : तुम्हारी समझ में नहीं आई, तुम समझ का धोखा खा गए। भीतर-भीतर कुछ और समझते रहे, ऊपर-ऊपर कुछ और समझ लिया। तुम्हारे भीतर दोहरी समझ हो गई। ऊपर-ऊपर तुमने मान लिया कि सिगरेट पीना बुरा है, लेकिन भीतर-भीतर तुम जानते रहे कि सिगरेट पीने में कुछ भलाई है; या भीतर कारण मौजूद हैं, जो कहते हैं : भला बुराई हो, इतनी बुराई नहीं है।

मुल्ला नसरुद्दीन को किसी ने कहा कि तू सिगरेट पीना बंद कर दे, नहीं तो जल्दी मर जाएगा। वैज्ञानिक कहते हैं एक साल उम्र कम हो जाती है।

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि सत्तर साल की जगह उनहत्तर साल जी लेंगे, मगर एक साल ज्यादा जीने के लिए पूरी जिन्दगी सिगरेट का मजा लिये बिना जीना, यह मेरी समझ में नहीं आता।

यह दोहरी बात हो गई। बात तो मानता है कि ठीक कहते हैं, वैज्ञानिक कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे कि एक साल उम्र कम हो जाएगी।

एक डॉक्टर ने उससे कहा—क्योंकि बीमारी उसकी बढ़ती गई, बढ़ती गई—कि भाई तू देख, शराब पीना बंद कर, सिगरेट पीना बंद कर, अब उम्र भी तेरी हुई, अब स्त्रियों के पीछे दौड़-धूप बंद कर; नहीं तो जल्दी मर जाएगा।

मुल्ला ने कहा : आपकी बातें सब ठीक हैं, मगर अगर ये सब मैं बंद कर दूं तो जिन्दा रहने का सार क्या? फिर जिन्दा किसलिए रहना, यह भी मुझे बता दें। सिगरेट भी न पीऊं, शराब भी न पीऊं, स्त्रियों का पीछा भी न करूं, तो बैठे बुद्धू की तरह! फिर जीकर क्या करेंगे?

और ऐसा आदमियों के साथ ही नहीं है। मैंने एक कहानी पढ़ी है। एक आदमी मरा। ईसाई रहा होगा। जब पहुंचा स्वर्ग के द्वार पर तो संत पीटर ने उसका स्वागत किया। उस आदमी से पूछा कि भाई तेरे कर्मों का लेखा-जोखा दे-दे, खाता-बही देखना पड़ेगा। उसने कहा : बुरे कर्म मैंने कोई किये ही नहीं।

संत पीटर ने पूछा : स्त्रियों के पीछे भाग-दौड़ की?

उसने कहा : कभी नहीं! मैं सदा का ब्रह्मचारी—बाल ब्रह्मचारी! इस झंझट में कभी पड़ा नहीं।

'शराब पी?'

उसने कहा : कभी नहीं? तुमने मुझे पागल समझा है? मैं जहर पीऊं?

'सिगरेट पी? जुआ खेला?'

हर चीज में वह कहता गया, नहीं, नहीं, नहीं। आखिर संत पीटर ने अपना सिर पीट लिया और कहा : तो फिर इतनी देर क्यों लगाई? क्या करता रहा?

आदमियों की तो बात छोड़ दो, संत पीटर भी ये पूछते हैं कि फिर इतनी देर क्या करता रहा! आखिर इसका भी तो कोई उत्तर होना चाहिए, करता क्या था इतनी देर तक?

अगर सब पाप छोड़ दो तो करने योग्य बचता क्या है? ऊपर से तुम समझ लो भला कि शराब पीना बुरा है, सिगरेट पीना बुरा है, यह बुरा, वह बुरा; लेकिन भीतर तुम जानते हो कि फिर करेंगे क्या? फिर जिंदगी में सार क्या? यही तो सार है। इसी में तो थोड़ा अपने को उलझाये हैं। फिर उलझाएंगे कहां? फिर जिंदगी बहुत बोझ-रूप हो जाएगी। फिर चिंता ही चिंता पकड़ेगी।

क्या तुम्हें पता है कि अगर तुम जिन चीजों को छोड़ना चाहते हो, एकदम छोड़ दो, तो तुम एकदम खाली हो जाओगे? अव्यस्त हो जाओगे। अचानक सन्नाटा मालूम पड़ेगा। समझ में ही न आएगा, अब क्या करें क्या न करें? न सिनेमा जाना है, न क्लब जाना है, न नाचघर जाना है, न घुड़-दौड़ देखने जाना है—अब करना क्या है? न ताश खेलना, न शतरंज खेलना—अब करना क्या है? न गप-शप करनी, न निंदा करनी, न एक-दूसरे को गाली-गलौच करनी—अब करना क्या है? जरा सोचो! तुम सब काट दो, जिसको लोग कहते हैं बुरा है, फिर तुम्हारे पास बच क्या रहता है? फिर एक ही बुराई करने को बची रहेगी—आत्मघात कर लो? और क्या करो? कूद जाओ किसी पहाड़ से जाकर, कि ट्रेन के नीचे सो जाओ।

तो ऊपर-ऊपर से तुम समझ लेते हो कि हां, बुरा होगा, आप कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे; मगर भीतर तुम्हारे बड़े न्यस्त स्वार्थ हैं।

बौद्धिक समझ, सैद्धान्तिक समझ काम न आएगी। और तरह की समझ चाहिए, जिसको आन्तरिक समझ कहते हैं, हार्दिक समझ कहते हैं। समग्र! पूरी की पूरी! जब मैं तुमसे कुछ कह रहा हूं, तो एक बात ख्याल रखो : मैं तुम्हारा आचरण बदलने में उत्सुक नहीं हूं। लेकिन तुम अब तक जितने लोगों के पास गये होओगे, वे सब तुम्हारा आचरण बदलने में उत्सुक हैं। वे तुम्हें समझाते इसलिए हैं, ताकि तुम व्यवहार में लाओ। और मैं तुम्हें इसलिए समझा रहा हूं, ताकि तुम जागो, व्यवहार इत्यादि का सवाल ही नहीं है। अगर जाग गये तो तुम्हारे जीवन में क्रान्ति अपने से घट जाएगी।

इतना मैं जानता हूं कि जागा हुआ आदमी बैठकर सिगरेट नहीं पियेगा। क्यों? क्योंकि यह बात बड़ी मूढ़ता की है कि धुआं भीतर ले गये, बाहर निकाला;

धुआं भीतर ले गये, बाहर निकाला। जागा हुआ आदमी शराब नहीं पियेगा। नहीं कि छोड़ देगा। नहीं कि कसम खाएगा मंदिर में जाकर। वे तो सोये हुए आदमी के लक्षण हैं। जागा हुआ आदमी शराब नहीं पिएगा, क्योंकि अब और बड़ी शराब उसके भीतर आनी शुरू हो गई। अब इस छोटी शराब में कौन पड़ता है! परमात्मा को पियेगा। रसो वै सः! अब उसका रस पियेगा। अब परम रस बहने लगा।

जागा हुआ आदमी छोटी-छोटी, जिन चीजों में तुम उलझे हो, में नहीं उलझेगा। क्योंकि उसे उलझने में अब कोई रस ही नहीं रहा। अब तो खाली होने में मजा आने लगा, अव्यस्त होने में, अनअकुपाइड होने में मजा आने लगा। जब खाली हो जाता है तब ऐसा आनंद बहता है! जब शांत बैठ जाता है, तभी तार जुड़ जाते हैं। तभी स्वर परमात्मा के साथ समवेत हो जाते हैं, एकलय हो जाते हैं। परमात्मा के साथ नाच शुरू हो जाता है। रास रच जाता है। अब तो जब एकांत होता है, जब अकेला होता है, जब खाली होता है, तभी जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण घड़ी होती है। अब तुम उसे कैसे कहो कि आओ भाई ताश खेलो। समय तो काटना है चलो ताश खेलें।

मैं वर्षों तक यात्रा करता था ट्रेनों में। अक्सर ऐसा हो जाता था कि मेरे कम्पार्टमेन्ट में मैं होता, एक आदमी और होता। वह आदमी बातचीत करने की कोशिश करता। स्वभावतः अब बैठे-बैठे क्या करना है। कभी चौबीस घंटे की यात्रा होती, कभी छत्तीस घंटे की भी होती, और ज्यादा भी होती। वह बातचीत करता। भरने का उपाय। मैं हां-हूं में उत्तर देता। वह थोड़ी देर में परेशान हो जाता। वह कहता : आप मुझमें उत्सुक नहीं मालूम होते। अब अकेले हम दोनों ही हैं तो कुछ बात करें।

मैं उससे कहता : अकेले होने में मुझे बहुत मजा है। वह कहता : समय कैसे कटेगा? मैंने कहा : समय काटना किसको है! समय काटने की जरूरत क्या है? अजीब आदमी हो! एक तरफ कहते हो समय कैसे कटे और दूसरी तरफ कहते हो जिन्दगी लंबी कैसे हो! अजीब लोग हैं! जिन्दगी मिले तो काटें कैसे और जिन्दगी न मिले तो लम्बी कैसे हो!

अब अमरीका ने यही झंझट कर ली है, जिन्दगी को लम्बी कर ली, अब इसको काटें कैसे! तो अब नये-नये मनोरंजन के उपाय खोजो, कि जिन्दगी कैसे कटे, समय कैसे कटे? ताश के पत्ते बनाओ, उनमें झूठे राजा-रानी बनाओ, अब उनका खेल करो, कि शतरंज बिछाओ। लोग ताश निकाल लेते कि चलिए आइये ताश खेलें। मैं कहता कि मैं बड़े मजे में हूं, आप अकेले ही खेलें। शतरंज निकाल लेते लोग कभी-कभी कि आइए। वे समझते कि मुझ पर बड़ा उपकार कर रहे हैं।

आदमी क्यों इन व्यर्थ की बातों में व्यस्त होना चाहता है? क्योंकि अव्यस्त होने में अभी उसे रस नहीं आया। अभी अव्यस्तता ही ध्यान है।

तो मैं तुमसे आचरण बदलने को कह भी नहीं रहा। मगर तुम्हारी धारणायें हैं। तुम जाते हो साधु-संतों के पास तो वहां आचरण ही बदलने का जोर है कि कुछ-न-कुछ आचरण बदलो। कुछ व्रत लेकर जाओ।

जैन मुनियों के पास जाते हैं लोग तो वे कहते हैं, कुछ व्रत लो। अब आए हो सत्संग, तो व्रत ले कर जाओ। अब जरा संकोच होता है भीड़-भाड़ के सामने कि व्रत न लो, यह भी अच्छा नहीं लगता। तो कुछ-न-कुछ व्रत ले लेते हैं कि ठीक है, सप्ताह में एक दिन नमक न खाएंगे, कि एक दिन घी न खाएंगे, कि एक महीने ये उपवास कर लेंगे। कोई न कोई व्रत वे लेते हैं।

नरेंद्र के पिता ने ठीक व्रत लिया। नरेंद्र के पिता मस्त आदमी हैं। वे गये जैन यात्रा तीर्थ-यात्रा को। वहां किसी मुनि के दर्शन किये। जैन मुनि तो कहते ही हैं कि भाई कुछ व्रत लो। आ गये तीर्थ तो कुछ कसम खाकर जाओ। भीड़-भाड़ थी। वे दर्शन को झुक गये। मुनि आए थे तो उनके दर्शन किये। मुनि ने कहा : कुछ व्रत लो। वे मस्त आदमी हैं। उन्होंने कहा : अच्छी बात है। अभी तक बीड़ी-सिगरेट नहीं पीता था, अब से पीऊंगा।

लोग समझते हैं उनको पागल, लेकिन मैं समझता हूं कि वे आदमी बड़े काम के हैं। मुनि भी बहुत चौंके कि यह भी कोई व्रत हुआ!

उन्होंने कहा : यह क्या कह रहे हो? होश की बातें कर रहे हो?

उन्होंने कहा : भाई! छोड़ने के व्रत तो मुझसे पलते नहीं। वे मैं कई ले चुका पहले। वे टूट-टूट जाते हैं। अब यह एक ऐसा व्रत ले रहा हूं जो सच में पाल सकूंगा।

तब से वे बीड़ी-सिगरेट पीते हैं। व्रत तो लिया तो अब करना ही पड़ेगा।

अब ध्यान रखना, यह पाप मुनि को ही लगेगा। ये नर्क जानेवाले नहीं, मगर मुनि महाराज गये।

तुम मुझे नर्क मत खींचो। मैं तुम्हें कोई कसम नहीं दिलवाना चाहता। तुम कुछ छोड़ो कुछ पकड़ो, मेरा आग्रह नहीं है। मेरी उत्सुकता नहीं है। मैं तुम्हें आंख देना चाहता हूं, आचरण नहीं। तुम्हें दिखाई पड़ने लगे। तुम्हारे सामने सब चीजें खोल कर रख देता हूं। तुम जल्दी आचरण की सोचो ही मत। मगर तुम वहां बैठे हो, यही सोच रहे हो, हिसाब लगा रहे हो--इसमें से कौन-सी बात करेंगे, कौन-सी कर सकूंगा? यह करूं कि वह करूं? यह हो पाएगी कि नहीं हो पाएगी? इसी गणित्री में मैं जो समझा रहा हूं वह तुम समझ ही नहीं पा रहे हो। तो पीछे से तुम को लगता है कि सैद्धान्तिक रूप से सब कुछ समझ में आ जाता है और व्यव-

हार में कुछ भी नहीं आता।

यहां व्यवहार की बात ही मत उठाओ। यहां तो मेरे पास जो मैं तुमसे कह रहा हूं, यह फिकर ही छोड़ दो कि इसको जीवन में उतारना है। इतनी चिंता भी समझने में बाधा बन जाएगी। तुम तो आनंद लो इसे समझने का। मेरे साथ मस्त होओ। मेरे साथ डोलो। मेरे साथ उठो-बैठो। चीजें साफ होने दो। रोशनी सघन होने दो। तुम अचानक पाओगे कि जितनी-जितनी गहराई से कोई बात समझ में आती है, उतना-ही-उतना अपने-आप आचरण हो जाता है। तुम चौंकोगे कि अरे! यह मेरा आचरण कैसे बदलने लगा! मैं रूपान्तरित कैसे होने लगा! क्योंकि मैंने कोई चेष्टा नहीं की है रूपान्तरित होने की।

रूपान्तरित होने की चेष्टा से जो रूपान्तरण होता है वह ऊपर-ऊपर होता है, थोथा होता है। थोपा हुआ होता है, इसलिए थोथा होता है। एक और रूपान्तरण है जो भीतर से आता है, प्रबल वेग से आता है--और सारे जीवन को रोशन कर जाता है! सारे जीवन को नये प्रकाश से भर आता है!

अंतस बदले तो आचरण अपने से बदलता है।

ध्यान करो। ध्यान में डूबो। प्रेम करो। प्रेम बनो। शेष सब अपने से होगा।

हरि बोलौ हरि बोल!

आज इतना ही।
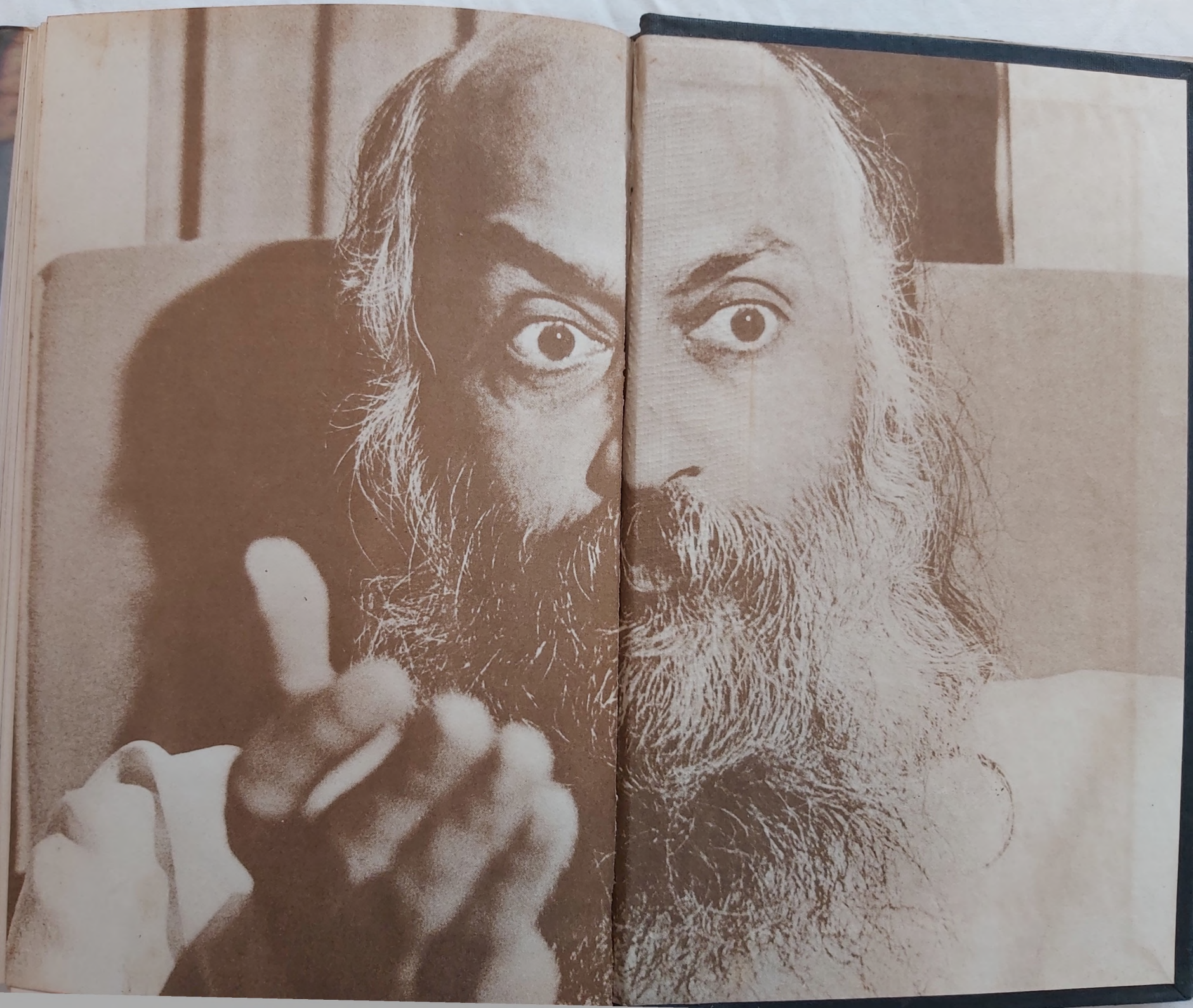
मैं रोज-रोज यही कह रहा हूँ कि बहुत दिन बाँझ रह लिए, अब हरे हो जाओ। अब जन्माओ अपने भीतर प्रभु को। बहुत दिन खाली रह लिए, अब भरो। बहुत दिन यह दीया बुझा-बुझा रह लिया, अब जलो! यह विराट ऐसे ही न चूक जाए। यही रोज कह रहा हूँ। परमात्मा के बिना आदमी बाँझ है। तुम कैसे बाँझ न रह जाओ, यही एक बात तुमसे बार-बार कह रहा हूँ।

और मैं ही नहीं कह रहा हूँ, वही एक बात रोज-रोज कही गयी है—कृष्ण ने, बुद्ध ने, मुहम्मद ने, नानक ने, कबीर ने, दादू ने, सुन्दरदास ने। बस यही एक बात कही है: हरि बोलौ हरि बोल। दूसरी बात कहने को नहीं है। इस एक बात को सुन लेने पर, सब सुन लिया गया। इस एक बात को समझ लेने पर, सब समझ लिया गया।

हरि बोलौ हरि बोल!